जुलाई-सितंबर 2019
ISSN: 2321-0443
UGC Care List Journal No. 20
ई-संस्करण सहित

ज्ञान गरिमा सिंधु

अंक : 63

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Education (Department of Higher Education)
Government of India

UGC CARE LIST JOURNAL NO.20 ISSN: 2321-0443

ज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

अंक-63

जुलाई-सितम्बर 2019

सत्यमेव जयते

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

शिक्षा मंत्रालय

(उच्चतर शिक्षा विभाग)

भारत सरकार

2019

COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY

MINISTRY OF EDUCATION

(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)

GOVERNMENT OF INDIA

2019

'ज्ञान गरिमा सिंधु' एक त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है-हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी व अन्य छात्रों के लिए सामाजिक विज्ञान-संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक साहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली-चर्चा, पुस्तक-समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश-

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान से संबंधित होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 से 3000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ या कागज के एक ओर स्पष्ट हस्तलिखित लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें। लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का प्रयोग करें तथा प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
6. श्वेत-श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं।
7. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
8. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र-व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है। अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएँगे। अतः लेखक कृपया टिकट-लगा लिफाफा साथ न भेजें।
9. प्रकाशित लेखों के लिए मानदेय की दर 2500/-रुपए प्रति हजार शब्द है, तथा भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
10. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें:

संपादक, 'ज्ञान गरिमा सिंधु'
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

अध्यक्ष की ओर से

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग विभिन्न वैज्ञानिक, तकनीकी, उच्चतर शिक्षा एवं मानविकी आदि से संबद्ध क्षेत्रों में तैयार की गई शब्दावली का समुचित उपयोग सुनिश्चित करने के उद्देश्य से तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए 'ज्ञान गरिमा सिंधु' पत्रिका का प्रकाशन करता है। आयोग द्वारा समय-समय पर इस पत्रिका के कुछ विशेष विषयों पर केंद्रित विशेषांकों का प्रकाशन किया जाता है। प्रस्तुत अंक को अपने पाठकों व लेखकों को उपलब्ध कराते हुए मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। 'ज्ञान गरिमा सिंधु' का जुलाई सितम्बर-2019 का यह अंक भारतीय जीवन दर्शन, मुद्दों एवं समकालीन विषयों पर केंद्रित है।

पत्र-पत्रिकाएँ न केवल संस्था विशेष के ज्ञान के वैशिष्ट्य का परिचायक होती हैं बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर अलग-अलग क्षेत्रों में हो रहे महत्वपूर्ण अनुसंधानों व शोध-कार्यों का एक समेकित व जनोपयोगी सार्थक मंच भी होती हैं। यद्यपि अन्य वैज्ञानिक पत्रिकाओं के समानांतर ही 'ज्ञान गरिमा सिंधु' का उद्देश्य भी मूल रूप से हिंदी में मानविकी विषयक लेखन को प्रचारित-प्रसारित करना है, जिसका कार्यान्वयन व अनुपालन पत्रिका अपने प्रत्येक अंक में करती रही है। ऐसे अंकों के कारण विविध विषयों पर वैविध्यपूर्ण जानकारी प्रस्तुत करने से, पाठकों को संबधित क्षेत्रों में हो रहे नवीनतम अनुसंधानों एवं शोध-कार्यों की अद्यतन जानकारी एक ही स्थान पर, उनकी भाषा में, उपलब्ध हो जाती है। पत्रिका का यह अंक कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण व संग्रहणीय है। देश भर से विविध विषयों पर चिंतन-मनन करने वाले विभिन्न प्राध्यापकों/लेखकों द्वारा अपने-अपने विषयों के महत्वपूर्ण आलेख तैयार किए गए हैं।

मैं इस अवसर पर देश के प्रतिनिधि विश्वविद्यालयों, तकनीकी, वैज्ञानिक एवं अन्य संस्थानों के अध्यापकों, वैज्ञानिकों एवं अधिकारियों से अपेक्षा करता हूँ कि वे आयोग के विशेषज्ञ विद्वानों के सहयोग से तैयार की गई प्रामाणिक व मानक शब्दावली का अधिक से अधिक प्रयोग कर अपना सार्थक सहयोग प्रदान करें।

इस कार्य को पूर्ण रूप से संपादित कर प्रकाशन योग्य तैयार करने का उत्तरदायित्व डॉ.शाहजाद अहमद अंसारी द्वारा निभाया गया है। इस पत्रिका के परामर्श एवं संपादन समिति के प्रत्येक विशेषज्ञ तथा संपादक डॉ. शाहजाद अहमद अंसारी के प्रति धन्यवाद व्यक्त करता हूँ। मैं इस अंक के लेखकों को भी साधुवाद देता हूँ। सुधी पाठकों के अमूल्य सुझावों व सहयोग की प्रतीक्षा रहेगी।

(प्रोफेसर अवनीश कुमार)
अध्यक्ष एवं प्रधान संपादक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

संपादकीय

'ज्ञान गरिमा सिंधु' का 63 वाँ अंक आपके समक्ष है। इस अंक में विविध सरोकार हैं जिन पर लेखकों ने अपनी चिन्ताएँ प्रकट की हैं और चिन्तन मनन कर अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के प्रयत्न किए हैं।

प्रस्तुत अंक पाँच खण्डों में बांटा गया है। कुल 38 आलेखों को विषय के अनुसार विभिन्न खण्डों के अन्तर्गत रखा गया है। पहला खण्ड वैचारिक परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित है जिसमें गांधी-अम्बेडकर भगतसिंह व नवमानव पर केन्द्रित आलेख हैं जिसमें विभिन्न विचारकों की दृष्टि के आधार पर धर्म, राजनीति,जाति को समझने का प्रयत्न किया गया है। दूसरा खण्ड 'शिक्षा एवं समाज' केन्द्रित है जिसमें समाज व शिक्षा की समस्याओं पर चिन्तन मनन किया गया है। तीसरा खण्ड 'स्त्री विमर्श' पर चर्चा करता है और विकास की प्रक्रिया में स्त्री संघर्ष व उनसे मुक्ति की खोज तथा स्त्री सशक्तीकरण पर विस्तृत विवेचन, विश्लेषण प्रस्तुत किया है। चतुर्थ खण्ड 'अन्तरराष्ट्रीय परिदृश्य' में अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर राजनीति, आर्थिकी, राष्ट्रवाद, आतंकवाद व विभिन्न देशों के आपसी सम्बन्धों पर विस्तृत चर्चा की गई है। अंतीम खण्ड 'विविध' मे अन्तर्गत पर्यावरण, सिनेमा, साहित्य, सरकारी योजनाओं, आपदाओं व तुलनात्मक राजनीति पर केन्द्रीत है। उपरोक्त सभी खण्डों में चर्यानत आलेखों में जहाँ गांधी-अम्बेडकर बार-बार वर्तमान की समस्याओं को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने पर बल देते हैं वहीं समाज राजनीति व शिक्षा के क्षेत्र में जरुरी बदलानों की आवश्यकता पर भी जोर देते हैं।

प्रस्तुत अंक में देश भर से कुल 60 आलेख प्राप्त हुए थे। मूल्यांकन हेतु उपस्थित सभी विशेषज्ञों ने विचार विमर्श के पश्चात मूल्यांकन के बाद अंत में 38 आलेखों को स्वीकृति प्रदान की। मैं सभी आलेख-लेखको व परामर्श-संपादन समिति के सदस्यों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

मैं माननीय अध्यक्ष महोदय के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिनके मार्गदर्शन व प्रोत्साहन से यह कार्य नियत समय पर निस्पादित हो सका। मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत अंक पाठकों के लिए लाभदायक एवं उपयोगी साबित होगा। आप लोगों के सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी।

(डॉ. शहजाद अहमद अंसारी)
सहायक वैज्ञानिक अधिकारी
राजनीति विज्ञान

परामर्श एवं संपादन मंडल

प्रधान संपादक

प्रोफेसर अवनीश कुमार, अध्यक्ष

संपादक

डॉ. शाहजाद अहमद अधिकारी

सहायक वैज्ञानिक अधिकारी (राजनीति विज्ञान)

प्रकाशन

श्री शिव कुमार चौधरी, सहायक निदेशक

संपादन समिति

1. डॉ. राजेन्द्र कुमार पाण्डेय, राजनीति विज्ञान विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (उ. प्र.)
2. श्री राजेश कुमार सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय, कुल्लू (हि.प्र.)
3. डॉ. नावेद जमाल, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली
4. डॉ. हरिराम परिहार, सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय कॉलेज, जोधपुर (राजस्थान)
5. डॉ. दिनेश कुमार गहलोत, सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)
6. डॉ. मोहम्मद शब्बीर, सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मोतीलाल नेहरु कॉलेज, दिल्ली
7. डॉ. पवन कुमार शर्मा, आचार्य एवं अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
8. डॉ. उरसेम लता, एसो. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, कूल्लू (हि.प्र)
9. डॉ. सुधांशु शेखर, सहायक प्रोफेसर (दर्शनशास्त्र) एवं जनसंपर्क पदाधिकारी, बी.एन. मंगल विश्वविद्यालय, मधेपुरा (बिहार)
10. डॉ. वैशाली देवपूरा, राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपूर, (राजस्थान)
11. डॉ. रीना रागी, इतिहास विभाग, आर्यभट्ट कॉलेज, नई दिल्ली
12. डॉ. शाजिया प्रवीन, सहायक प्रोफेसर, डी.आई.आर.डी, हौलम्बी, दिल्ली

अनुक्रमाणिका

संपादकीय

आलेख	लेखक	पृष्ठ संख्या
खंड-I (वैचारिक परिप्रेक्ष्य)		
1. भारतीय संघीय व्यवस्था और अम्बेडकर	मनोज कुमार शुक्ल	1
2. भगत सिंह का सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन	राजन तिवारी	8
3. गांधी दर्शन में धर्म तथा राजनीति	आरती	15
4. 21वीं सदी में नवमानववाद की प्रासंगिकता	अखलाख अहमद डॉ. शाजिया प्रवीन	21
खंड-II (शिक्षा एवं समाज)		
5.अम्बेडकर का शिक्षा दर्शन	सुधांशु शेखर	26
6.छात्रों के सीखने और प्रदर्शन की गुणवत्ता का विश्लेषणात्मक अध्ययन	मोजफ्फर ईस्लाम	33
7. नई शिक्षा नीति प्ररुप 2019 में दिव्यांगों के लिए प्रावधान	सौरभ राय **मो. फैज्जुल्ला खाँ**	42
8.पूर्व विद्यालयी शिक्षा की अधिगम संस्कृति	रवनीत कौर एवं ऋषभ कुमार मिश्र	48
9.भारतीय शिक्षा के पश्चिमीकरण के प्रारंभिक प्रयास: एक आलोचनात्मक अध्ययन	प्रवीण कुमार तिवारी	56
खंड-III (स्त्री-विमर्श)		
10.उदारवादी लोकतंत्र के विकास में नारी : आरंभिक मुद्दे एवं संघर्ष	कृष्ण मोहन कुमार दुबे	63

11. भारत में दलित महिलाओं की स्थिती	डॉ. रुपाली भारौदिया चंचला रानी	71
12.प्राचीन भारत में लैंगिक विषमताएँ : एक अध्ययन	मुकेश कुमार सिंह	84
13.भारत में स्त्री-विमर्श की विकास प्रक्रिया : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	ऋचा सिंह	92
14.भारतीय महिलाएँ एवं मानव अधिकार	प्रतिमा गुप्ता	100
15.भारत में पंचायती राज एवं महिला सशक्तीकरण	वैशाली देवपुरा	108
16. मानवाधिकारों का दार्शनिक और ऐतिहासिक ...	डॉ. नावेद जमाल डॉ. संजियो कुमार सिंह	118
17.ग्राम पंचायत और महिला – सहभागिता: एक अध्ययन	नावेद जमाल एवं अनिता रानी	132
18.मध्यप्रदेश की राजनीति में महिला विधायकों की भूमिका	नियाज अहमद अंसारी रईस अहमद खान	145
19. भारतीय गणतंत्र के सात दशक: एक समीक्षा	खलीकुर रहमान	152
खंड-IV (अन्तरराष्ट्रीय परिदृश्य)		
20.अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक संस्थाएं और तकनीकी शब्दावली	मयंक कुमार सिंह	160
21.अन्तरराष्ट्रीय राजनीति और राष्ट्रवाद की अवधारणा	शिव बहादुर सिंह एवं विमल कुमार यादव	166
22.ब्रेक्जिट और उसका भारत पर प्रभाव	सोहन लाल	176
23.भारतीय विदेश नीति में कूटनीति के नए आयाम	नावेद जमाल	185
24.भारत-बांग्लादेश संबंध और चीन	अली इमाम	194

25.आतंकवाद का पारिभाषिकीय विवाद : मुद्दे एवं दुविधाएं	सोनाली सिंह	208
26. हिंद महासागर का अमेरिका के लिए बढ़ता भू राजनीतिक महत्व	क्षिप्रा शर्मा	218
खंड-V **(विविध)**		
27.विकासशील देशों में पर्यटन व गरीबी के मध्य विचार-विमर्श विशेषतः भारत के संदर्भ में	डॉ. कुमार आशुतोष एवं केतन भट्ट	225
28.संस्कृत वांग्मय में तुलनात्मक राजनीति	पवन कुमार शर्मा	234
29.भारत में आपदा प्रबंधन नीति का विकास	राजेन्द्र कुमार पाण्डेय	245
30.बिहार में बाढ़ प्रबंधन : नीति एवं राजनीति	पंकज कुमार झा	253
31.नए भारत के निर्माण में सरकारी योजनाओं का योगदान	सरिता	266
32.भारत में न्याय प्रणाली : टूटते सपने एवं आशा की किरण	दिनेश कुमार गहलौत एवं हरिराम परिहार	273
33.विधान परिसद् की संरचना एवं कार्य का एक सामान्य अवलोकन	डॉ. अशोक कुमार	279
34.दिव्यांगों हेतु पर्यावरण शिक्षा	विमलेश शर्मा	287
35.समकालीन हिन्दी सिनेमा में बनारस की संस्कृति का यथार्थवादी चित्रण	अभिजीत कुमार मिश्रा सुरभि गुप्ता	293
36. आधुनिक प्रबंधन में भारतीय लोकाचार	प्रो. मुकेश रंगा	298
37.एकात्म मानव दर्शन और प्रेमचंद	मंजू चतुर्वेदी	308
38. मैथिली तकनीकी शब्दो के महत्व व अनुप्रयोग	पुतुल कुमारी	314

1.भारतीय संघीय व्यवस्था और बाबासाहेब अंबेडकर

मनोज कुमार शुक्ल**

भारतीय संवैधानिक व्यवस्था में संघवाद को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । भारत मे संघवाद की स्थापना का विचार भारतीय शासन अधिनियम 1935 द्वारा औपनिवेशिक काल में ही प्रस्तुत किया गया था। परन्तु उस समय कतिपय राजनीतिक कारणों से कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को मूर्त रूप देने में अपनी असमर्थता व्यक्त की । परन्तु स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय नेताओं के मध्य इस विषय पर एकराय थी कि देश की राजनीतिक व्यवस्था का स्वरुप संघीय ही होना चाहिए। तत्पश्चात, संविधान सभा में इस विषय पर विस्तृत तथा व्यापक विचार विमर्श किया गया। अंततः संविधान निर्माता इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यद्यपि भारत में संघीय राजनीतिक व्यस्था को अंगीकार किया जाना है किन्तु भारतीय संघीय व्यवस्था अमेरिका इत्यादि देशों में विद्यमान संघीय व्यवस्था से सर्वथा भिन्न होगी। इस प्रकार संविधान सभा के ऊपर देश के लिए एक विशिष्ट प्रकार की संघीय व्यवस्था के सृजन का गुरुत्तर दायित्व आ पड़ा। इस स्थिति में देश के लिए एक उपयुक्त तथा कार्यशील संघीय व्यवस्था के निर्माण में अन्य नेताओं के साथ साथ बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर ने बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रस्तुत आलेख में भारतीय संघीय व्यवस्था पर बाबासाहेब के विचारों का संक्षिप्त विश्लेषण करने का प्रयत्न किया गया है।

संघीय व्यवस्था का स्वरुप

भारतीय संघीय व्यवस्था का विश्लेषण करते हुए सबसे पहला प्रश्न इसके स्वरुप के बारे में खड़ा होता है। विभिन्न विद्वान इस विषय पर अपना अलग अलग मत व्यक्त करते हैं। किन्तु जब इस प्रश्न के बारे में बाबासाहेब से पूछा गया तो उनका बड़ा स्पष्ट मत था: ''भारत की शासन व्यवस्था दोहरे तौर पर संघीय है । ''यूनियन'' शैली के राजनीतिक महासंघ के जरिये एक ऐसे सामाजिक सांस्कृतिक संघवाद को लाया गया जो एक लम्बे संमय से अपनी निरन्तरता, महाद्विपीय आयाम, सामाजिक जटिलता और सांस्कृतिक विविधताओं, जातिवाद इत्यादि के कारण विश्व के सबसे पुराने, सबसे बड़े और सर्वाधिक बहुरंगी समाज का रूप ले चुका है।''[1]

राजनीतिक दृष्टि से भारत की संघीय प्रणाली का स्त्रोत भारतीय राष्ट्रीय आदोलन की उन मांगो मे भी था जिसमें क्षेत्रीय दबावों के बीच सामंजस्य बनाये रखने के लिए एक वृहत्तर भारतीय केन्द्र सरकार की

* **शोधार्थी, संघीय अध्ययन केंद्र, जामिया हमदर्द विश्वविद्यालय, नई दिल्ली**

जरूरत पर जोर दिया गया था। राष्ट्रीय एकता की जरूरत उस वक्त और ज्यादा महसूस हुई जब भारत को विभाजन की त्रासदी से गुजरना पडा। यही वजह है कि भारतीय संविधान में सत्ता को अधिक केन्द्रीयकरण और केन्द्र को व्यापक अधिकार देने की जरूरत पडने लगी थी। केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाने के पीछे एक मुख्य उददेश्य नजर आता है कि समस्त भारत के राज्यों को एकता के सूत्र मे बॉधा जा सके। जैसा कि बाबासाहेब लिखते हैं, हमे यह भी घ्यान रखना चाहिए कि 15 अगस्त 1947 को जब ब्रिटिश ताज ने भारत के राष्ट्रीय नेताओ के हाथों मे सत्ता को सौपा था उस समय साफ तौर पर औपचारिक रूप से प्रशासन और सरकार को निरन्तरता बनाये रखने की वाछंनीयता पर जोर दिया था और इसमे अन्य बातो के अलावा केन्द्र का भी प्रमुख वर्चस्व भी एक विषय था। यह बात सविधान सभा मे हुई उन चर्चाओं से साफ जाहिर होती है। जिसमें राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के नेताओं ने राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय एकजुटता के समर्थन में उठे स्वर के कारण स्वाभविक रूप से हावी रहने वाली एक केन्द्रीय शासन व्यवस्था का पक्ष लिया क्योंकि उन्हें ऐसी गतिविधियों से डर था। जिन्हें अलगाववादी और विघटनकारी चाल तथा प्रवृत्तियों के प्रतीक मानते थे हमें याद रखना चाहिए कि भारतीय संविधान कोई मौलिक समझौते का दस्तावेज नहीं है जो पूर्व में आजाद दर्जा रखने वाली महासंघ की इकाइयों के बीच हुआ हो। भारतीय संघवादी व्यवस्था में केन्द्र के अधिकार क्षेत्र को ज्यादा व्यापक बनाया गया है जिससे भारतीय भू-भाग तथा राज्यों को एकता के सूत्र मे बांधा जा सके।[2]

बाबासाहेब हमेशा ही अमेरिकी संघवाद के पक्षधर थे लेकिन समय और पारिस्थितियों को देखते हुए उन्होने भारतीय संघवाद मे केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाने के पक्ष में अपनी भूमिका निभायी । इस प्रकार की व्यवस्था में राज्यों को कम शक्तियाँ प्रदान की गईं थी। कुछ परिस्थितियों में भारतीय संविधान केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था में बदल सकता है । जैसे कि विदेशी हमला या हमले का खतरा होने पर या सशस्त्र विद्रोह, राज्य मे कानून व्यवस्था ठ़प पड़ जाने पर या वित्तीय व्यवस्था ठ़प हो जाने पर । भारतीय संविधान सभा में बाबासाहेब ने भारतीय संविधान के स्वरूप की बताते हुए कहा था कि भारतीय संघ का शीर्ष पदाधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति कहा जायेगा । उन्होंने यहॉ पर अमेरिकी राष्ट्रपति की तुलना करने पर बताया कि मुझे अमेरिका के राष्ट्रपति की याद आ रही है। लेकिन नामों में समानता को छोड़कर यह अमेरिका में प्रचलित शासन प्रणाली से बिल्कुल अलग होगी।

अमेरिकी शासन प्रणाली को राष्ट्रपति शासन प्रणाली कहा जाता है। इस संविधान में संसदीय शासन प्रणाली का प्रस्ताव है। दोनो मूलतः भिन्न हैं। भारतीय संविधान में राष्ट्रपति का वही दर्जा दिया गया है जो इंग्लैड के संविधान मे महाराजा का है। वह राष्ट्र का अध्यक्ष है लेकिन कार्यपालिका का नहीं। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है लेकिन राष्ट्र पर शासन नही करता। वह राष्ट्र का प्रथम नागरिक है। भारतीय

संघ का राष्ट्रपति आमतौर पर अपने मन्त्रियों के सलाह से बंधा होता है। वह बिना मंत्री या प्रधान मंत्री की सलाह के कोई कार्य नहीं कर सकता है।

भारतीय संघीय व्यवस्था का वैशिष्ठ्य

संविधान सभा के सदस्यों द्वारा बार बार भारतीय संघीय व्यवस्था के स्वरुप पर पूछे जाने पर बाबासाहेब ने कहा, एक को यूनिटरी (केन्द्रीकृत) और दूसरे को फेडरल (संघीय) कहा जाता है। एक संघीय संविधान के दो मूल लक्षण हैं, एक केन्द्रीय शासन व्यवस्था और साथ-साथ आनुषंगिक शासन व्यवस्थाओं का अस्तिव, और हरेक का अपने लिए निर्धारित कार्यक्षेत्र में सार्वभौम रहना। दूसरे शब्दों मे, महासंघ (फेडरेशन) का मतलब एक दोहरी शासन व्यवस्था की स्थापना है। यह संविधान इस मायने में एक संघीय संविधान है, जहां तक कि इसका एक दोहरी शासन व्यवस्था कायम करने से ताल्लुक है। भारतीय संविधान के तहत इस दोहरी शासन व्यवस्था में एक केंद्र और उसके चारों ओर राज्यों का अस्तित्व है, जहां हर कोई संविधान में प्रदत्त अपने अधिकार क्षेत्रों में सार्वभौम अधिकारों से सम्पन्न है। यह दोहरी शासन व्यवस्था अमेरिकी संविधान से मिलती-जुलती है। अमेरिकी शासन व्यवस्था भी एक दोहरी व्यवस्था है। जिसमें एक संघीय सरकार है और कई राज्य हैं और ये इस संविधान में प्रस्तावित केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों से मिलती-जुलती है। अमेरिकी संविधान में संघीय सरकार राज्यों की महज एक लीग नहीं है और ना ही राज्य सरकारें संघीय सरकार की प्रशासकीय इकाइयाँ या एजेन्सियां है। इसी तरह प्रस्तावित भारतीय संविधान में भी केन्द्र न तो राज्यों की एक लीग है और ना ही राज्य केन्द्र सरकार की प्रशासकीय इकाई या एजेन्सियां हैं। लेकिन यहीं पर भारतीय और अमेरिकी संविधानों मे समानताएं समाप्त हो जाती हैं। इन दोनों के बीच जो विभिन्नताएं हैं, वे ज्यादा मौलिक और सुस्पष्ट हैं, बजाय समताओं के।[3]

उन्होंने आगे बताया कि अमेरिकी महासंघ और भारतीय महासंघ में विभिन्नताओं के बिन्दु मुख्यतः दो हैं। अमेरिका में दोहरी शासन व्यवस्था के साथ-साथ दोहरी नागरिकता भी हैं। अमेरिका में सयुंक्त राज्य अमेरिका की नागरिकता है तो राज्य की भी एक नागरिकता है। लेकिन भारतीय संविधान में एक नागरिकता वाली दोहरी शासन व्यवस्था है। पूरे भारत के लिये केवल एक नागरिकता है। यह है भारतीय नागरिकता। यहां राज्य की कोई नागरिकता नहीं है। हर भारतीय को नागरिकता का समान अधिकार है, चाहे वह किसी भी राज्य में क्यों न रहता हो। भारतीय संविधान में एक नागरिकता वाली दोहरी शासन व्यवस्था है। पूरे भारत के लिये केवल एक नागरिकता है। यह है भारतीय नागरिकता। यहां राज्य की कोई नागरिकता नहीं है। हर भारतीय को नागरिकता का समान अधिकार है, चाहे वह किसी भी राज्य में क्यों न रहता हो।

लेकिन प्रस्तावित भारतीय महासंघ में कुछ ऐसे स्वरूप हैं जो उसे न केवल अमेरिकी महासंघ से,

बल्कि अन्य सभी महासंघों से भिन्न बनाते है। अमेरिका सहित सभी संघीय व्यवस्थाओं को संघीयवाद के एक कसे हुए ढांचे में रखा गया है। चाहे परिस्थितियां कैसी भी हों, ये अपना आकार और स्वरूप नहीं बदल सकतीं। ये कभी "यूनिटरी (केन्द्रीकृत) नहीं हो सकती। दूसरी ओर भारतीय संविधान समय की जरूरतों और हालात के मुताबिक, "युनिटरी" भी हो सकती हैं और संघीय (फेडरल) भी । साधारण समय में यह एक संघीय प्रणाली के रूप में कार्य करेगा। लेकिन युद्ध के समय इसके कार्य करने का ढंग इस प्रकार रखा गया है, मानों यह एक "यूनिटरी" व्यवस्था हो। एक बार राष्ट्रपति द्वारा अधिघोषणा जारी किये जाने पर, जिन्हें कि संविधान के प्रावधानों में अधिकार दिया गया है, पूरा दृश्य परिवर्तित हो सकता है और शासन ''यूनिटरी'' रूप ले सकता है। किसी भी महासंघ के पास अपने को यूनिटरी शासन में परिवर्तित करने की शक्ति नहीं है। यही प्रस्तावित महांसघ और अब तक हमें ज्ञात सभी अन्य महासंघों के बीच विभिन्नता का बिन्दु है।

ऐसा माना जाता है कि महासंघ की दो कमजोरियां होती हैं। एक कसावट और दूसरी वैधानिकता। इस को लेकर कोई विवाद नहीं हो सकता कि ये कमजोरियाँ संघीयवाद में अन्तर्निहित है। एक संघीय संविधान लिखित संविधान ही हो सकता है और एक लिखित संविधान का कसा हुआ होना स्वाभाविक है। एक संघीय संविधान का अर्थ संघीय सरकार और राज्यों के बीच संविधान के कानून के जरिये सार्वभौमिकता के विभाजन से कम नहीं है। चूंकि संघीयवाद का यह स्वरूप है इसलिये संघीय संविधान वैधानिकता के आरोप से बच नहीं सकता। जिन देशों ने बाद में संघीयवाद अपनाया, उन्होंने उसमें अन्तर्निहित कसावट और वैधानिकता के कारण उत्पन्न अवगुणों को कम करने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में हम आस्ट्रेलिया का जिक्र कर सकते हैं।

कसावट और वैधानिकता से उत्पन्न बाधाओं को कम करने के लिये इस संविधान ने आस्ट्रेलिया की तुलना में भी बड़े व्यापक पैमाने पर आस्ट्रेलियाई योजना को अपनाया है। आस्ट्रेलियाई संविधान की तरह इसमें भी कानून बनाने के समवर्ती अधिकारों की एक लम्बी विषय सूची है। इस संविधान ने आस्ट्रेलियाई संविधान पर जो सबसे ज्यादा बढ़त हासिल की है, वह संसद में न्यस्त कानून बनाने के अनन्य अधिकारों के क्षेत्र में है। इसमें संघीयवाद में निहित कसावट और वैधानिकता को दूर करने के लिये नये और विशेष तरीके जोड़े गये हैं और ये प्रावधान अन्यत्र कहीं नहीं मिलेंगे। इसलिये हम इत्मीनान से कह सकते हैं कि भारतीय महासंघ कसावट या वैधानिकता की कमजोरियों से पीड़ित नहीं होगा। इसका सबसे विशिष्ट स्वरूप यह है कि यह एक लचीला महासंघ है।

प्रस्तावित भारतीय महासंघ का एक अन्य विशिष्ट रूप इसे अन्य महासंघों से अलग रखता है।

चूंकि एक महासंघ में दोहरी शासन प्रणाली होती है जिसमें दोनों शासन व्यवस्थाओं के लिये न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधानपालिका के अलग अधिकार हैं तथा अधिकारों का विभाजन है, इसलिये ऐसी हालत में कानून, प्रशासन और न्यायिक संरक्षण में विविधता पैदा होना स्वाभाविक है। इस संविधान ने ऐसे उपाय और तरीके तैयार किये हैं जिनके जरिये भारत में महासंघ होगा। और उसके साथ ही ऐसे सभी मौलिक विषयों में एकरूपता होगी जो देश की एकता को कायम रखने के लिये जरूरी है। संविधान द्वारा अपनाये गये उपाय तीन हैं- (i) एक न्यायपालिका; (ii) मौलिक कानूनों, दीवानी और फौजदारी, में एकरूपता, और, (iii) महत्वपूर्ण पदो के लिये एक समान अखिल भारतीय सिविल सेवा। दोहरी शासन प्रणाली होते हुए भी भारतीय महासंघ में कोई दोहरी न्यायपालिका नहीं है।''[4]

संघीय व्यवस्था और राष्ट्र निर्माण

संघीय व्यवस्था वास्तव में बाबासाहेब के लिए राष्ट्र निर्माण का भी एक माध्यम थी। वह उन लोगों के लिए समानता और नागरिक अधिकार चाहते थे जो सदियों से वंचित थे। भारतीय समाज को ध्यान में रखकार अंबेडकर ने यह कहा की भारतीय समाज एक ऐसी व्यवस्था थी जिसने समानता और भाईचारे की भावना के विकास के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोडी जो कि लोकतांत्रिक रूप से सरकार के लिए आवश्यक है। बहुत से लोग बुनियादी मानव अधिकारों से वंचित थे वह अत्याचारियों की रक्षा के लिए संवैधानिक सुरक्षा उपाय चाहते थे।

बाबासाहेब का यह मानना था कि भारतीय समाज जातीय व्यवस्था के अलावा कुछ भी नहीं था, जिसमें बढ़ती हुई श्रद्धा और विरोध करने की कम गुंजाइश शामिल है। विदेशी वर्चस्व के बारे में अंबेडकर का विचार बहुत पारदर्शी था। अम्बेडकर का मानना था कि कुछ सामाजिक बुराइयों को दूर करने की आवश्यकता का एहसास होने के बावजूद, ब्रिटिश प्रशासन कुछ सामाजिक बुराइयों को खत्म नहीं करना चाहता था क्योंकि उन्हें डर था कि इससे भारतीय समाज के सामाजिक आर्थिक जीवन में प्रतिरोध की भावना जन्म ले सकती है।

अंबेडकर के लिए संघीय व्यवस्था देश और लोगों दोनों के लिए गरिमा की भावना पैदा करता है, वह गरीब और अछूतों के लिए ऐसी गहरी भावना रखते थे, जिन्होंने उन्हें बुनियादी मानवाधिकारों से वंचित करने के खिलाफ लड़ने के लिए प्रेरित किया। अम्बेडकर के इस तरह के व्यवहार की कुछ कांग्रेसी नेताओं ने राष्ट्र विरोधी के तौर पर भी देखा था, लेकिन सही अर्थों में, यह मानवतावाद और राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति के अलावा कुछ भी नहीं था, जिसमें उन्होंने ईमानदारी से खुद को समर्पित किया था।

अंबेडकर के विचार में, संघीय व्यवस्था का अर्थ है लोगों की आंतरिक एकता की अभिव्यक्ति

और उनका यह भी कहना है कि यह सामाजिक एकीकरण की एक प्रक्रिया है। इसलिए, जाति, रंग और धर्म के बावजूद, राष्ट्रवाद को एकदम सही माहौल मिल जाता है यदि लोगों के बीच में सामाजिकता एक समान पनपती है आम्बेडकर के लिए, राष्ट्रवाद के सामने जाति की भावना नगण्य हो जाती है और जाति भावना कुछ भी नही बल्कि केवल सांप्रदायिकता है। उन्होंने जातिवाद, भाषावाद, और अलगाववाद के खिलाफ लड़ने पर जोर दिया क्योंकि उनका मानना था कि इन सामाजिक बुराइयों ने लोगों को छोटे सामाजिक इकाइयों मे विभाजित किया जो कि राष्ट्रवाद की भावना के खिलाफ हैं।

अंबेडकर की नज़र में, सांप्रदायिक समूह के एक रूप का (किसी एक धर्म का वर्चस्व) एकीकरण राष्ट्रीय एकीकरण के लिए एक खतरा है जो समान रूप से दूसरे लोगों के लिए मार्ग में बाधा डाल सकता है। संक्षेप में, आम्बेडकर ने मानवतावाद में, निहित राष्ट्र और उसके लोगों का आपस में जातिगत मतभेदों से रहित मेलजोल के रूप में राष्ट्रवाद को देखा। जिन लोगों ने अंबेडकर को कांग्रेसी नेतृत्व की स्वतंत्रता संग्राम के विरोध के लिए दोषी ठहराया, वे यह समझने में नाकाम रहे कि विदेशी शासन से स्वतंत्रता दासता और शोषण के आंतरिक स्वरूप से स्वतंत्रता नहीं थी। अंबेडकर के शब्दों में, किसी देश की आजादी को अपने लोगों की स्वतंत्रता से भी जोड़ा जाना चाहिए, अगर केवल एक खास वर्ग कि स्वतंत्रता और समानता सबको बराबर समझना है। यदि समाज के एक वर्ग को स्वतंत्रता से वंचित रखा जाए तो स्वतंत्रता एक भ्रामक धारणा होगी।

सही मायने में, अंबेडकर ने उत्पीड़ित लोगों की मुक्ति पर बहुत ज्यादा ज़ोर दिया जो कि सालों से हिन्दू वर्ण व्यवस्था में गुलाम बने हुए थे। लोकतंत्र मे सरकारें किसी एक खास वर्ग के हितों का ध्यान नहीं रखती है बल्कि सभी लोगों का सही प्रतिनिधित्व होना चाहिए। यह केवल तभी संभव है जब ये लोग भय, उत्पीड़न और शोषण से स्वतंत्र होंगे और इसी से लोगों को वास्तविक आजादी मिलेगी। अंबेडकर धर्म के ठेकेदारों, धार्मिक सहिष्णुता और धर्म और राष्ट्रवाद के नाम पर सभी पाखण्ड और उत्पीड़न की निंदा करते हैं। भारत में धर्मों की विविधता के बीच, उनका मानना है कि धर्म एक ऐसी शक्ति होनी चाहिए जो मानव समाज की एकता को मजबूत करें, मानव समाज की एकजुटता ही लोगों को एक साथ सामाजिक और भावनात्मक एकता के लिए ला सकता है एवं राजनीतिक स्थिरता को आगे बढ़ा सकता है।

अंबेडकर राष्ट्रीय चरित्र को मानवजीवन में एक शक्ति के रूप में मानते थे। राष्ट्रीय चरित्र वह विचार है जो देश के प्रति भक्ति व प्रेम-भाव पर आधारित है। जब राष्ट्रवाद की भावना जागृत होती है तो वह एक आंदोलन का रूप धारण कर लेती है। वह उसके समक्ष न तो क्षेत्रीय मित्रता टिकती है और न धार्मिक एकता ही काम करती है। वे सच्चे राष्ट्रवादी थे राष्ट्रीय सम्मान एवं सामाजिक एकता उनकी

राष्ट्रीय भावनाओं के मूलाधार थे। उन्होंने सच्चे राष्ट्रवाद की जड़ों को खोजा व शोषित वर्गों के लिए अधिकारों की मांग रखी। वे ब्रिटिश शासन के साथ-साथ भारत में आंतरिक शोषण व अन्याय के भी विरूद्ध थे। ब्रिटिश सरकार ने तटस्थता की नीति अपनाई, अतएव उसने सामाजिक असमानता व अन्याय को दूर करने के कर्त्तव्य की अपेक्षा की। अतः भारत के शोषित वर्ग को ऐसी सरकार के विरूद्ध संघर्ष हेतु प्रेरित किया I उनके अनुसार राष्ट्रवाद एवं देशभक्ति का दृष्टिकोण आर्थिक समानता, राजनैतिक स्वंतत्रता, सांस्कृतिक एकता व सामाजिक दृढ़ता पर आधारित है। उनकी राष्ट्रीय भावनाओं का आधार बौद्धिक है। उनके मत में राष्ट्रवाद की सीमाएं सँकुचित न होकर मानवकल्याण की ओर होनी चाहिए।[5]

भारत मे संघवाद का एक अनोखा मॉडल अंबेडकर के द्वारा तैयार किया गया था। जिसमें तत्कालीन पारिस्थिति तथा भारत मे विभिन्न तरह के अलग-अलग जाति-धर्म सामाजिक राजनीतिक आर्थिक पारिस्थितियों के देखते हुए भारतीय संविधान का एक अनोखा संघवाद का मॉडल तैयार किया गया जिसमें देश को सामाजिक आर्थिक विकास रूपी गाडी को आगे बढ़ाया जा सके। इसके अलावा तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए भारतीय संविधान में संघवाद तथा केन्द्रीकृत प्रणाली दोनो रखा गया है। हमने देखा है किस तरह से भारतीय संविधान कुछ परिस्थितियों में केन्द्रीकृत हो जाता है। भारतीय संघवाद का यह अनोखा मॉडल भारतीय परिस्थितियों को देखते हुए बनाया गया है जिसमे सभी जाति, धर्म, के लोग स्वंतत्रतापूर्वक रह सकें और खुद को सुरक्षित महसूस करें। यही वजह है कि भारतीय संविधान को धर्मनिरपेक्ष बनाया गया है। इस तरह से अगर हम देखें तो भारतीय संविधान विश्व का अनोखा संविधान है जहॉ पर देश की परिस्थितियों को देखते हुए संविधान संघवाद और केन्द्रीकृत दोंनो मे बदल जाता है।

सन्दर्भ सूची

1. रशीदउद्दीन खांन, *संघीय भारतः परिवर्तन की एक रूपरेखा,* नई दिल्लीः साहित्य पब्लिकेशनस, 1992, पृ. 28
2. पी.एस.भाटी, डॉ.बी.आर. *अम्बेडकर : जीवन और विचार धारा,* जोधपुरः राजधानी ग्रन्थागर, 2007, पृ. 123
3. वेलेरियन रोड्रिग्स, द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ डॉ अंबेडकर, नई दिल्ली, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007, पृ. 58
4. धनंजय कीरः अम्बेडकरः लाइफ एण्ड मिशन, बम्बई, पॉपुलर प्रकाशन, 1991, पृ. 70
5. क्रिस्टोफ जैफरले एंड नरेंद्र कुमार (सम्पादित), डॉ अंबेडकर एंड डेमोक्रेसी, नई दिल्ली, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2018, पृ. 19

***

2.भगत सिंह का सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन

राजन तिवारी*

क्रान्तिकारी राष्ट्रवाद,भारतीय स्वाधीनता संघर्ष की एक महत्वपूर्ण धारा है। क्रन्तिकारी नाम सुनते ही अपने आप हमारे दिमाग में भगत सिंह उभर आते हैं। भारतीय जनमानस में भगत सिंह की छवि एक ऐसे क्रन्तिकारी की है जिन्होने मुख्यधारा के गाँधीवादी अहिंसक आंदोलन के स्थान पर हिंसा का रास्ता अपनाया .आज भी वामपंथियों के कुछ समूह और आतंकवादी जो हिंसा को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग करते हैं, भगत सिंह को अपनाकर स्वयं को न्यायसंगत ठहराने का असफल प्रयास करते हैं। सांडर्स वध, असेम्बली बम कांड या हॅसते हॅसते फांसी को गले लगाने की घटना को अत्यधिक महत्व देने से उनका वैचारिक व दार्शनिक पक्ष दब जाता है। भगतसिंह कहा करते थे की अंग्रेज व्यक्ति को मार सकते हैं परन्तु उसके विचारों की हत्या संभव नही है।

भगत सिंह से पहले व उनके बाद भी बहुत से क्रांतिकारियों ने अपने प्राणों की आहुति भारत माता के चरणों में दी परन्तु फिर भी 23 वर्ष का यह नौजवान सबसे ज्यादा लोकप्रिय है। कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष मोतीलाल नेहरू ने उनकी तुलना महात्मा गाँधी से की थी। कांग्रेस के आधिकारिक इतिहासकार पट्टाभि सीतारमैया के अनुसार 1930 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में वो गाँधी के बराबर लोकप्रिय थे तथा युवाओं ने उन्हें अपना आदर्श मान लिया था। सुभाषचंद्र बोस भगत सिंह को व्यक्ति नही बल्कि क्रांति के प्रतीक की संज्ञा देते हैं। भगत सिंह भारतवर्ष के ऐसे अनोखे क्रन्तिकारी हैं जिन्होंने अपनी मृत्यु की योजना स्वयं बनाई और उसका क्रियान्वयन भी किया .असेम्बली में बम फेंककर, भागने की बजाय गिरफ्तारी देना उनकी योजना ही थी ताकि क्रन्तिकारी विचारों को देश के सामने अदालत तथा अन्य माध्यमों से लाया जा सके .इस गिरफ्तारी के 90 वर्षों के बाद भी उनके विचार आज भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं।

उनका तत्कालीन उद्देश्य भारत माता को गुलामी की बेड़ियों से मुक्त करना था परन्तु साथ ही साथ वो साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के खिलाफ भी थे,जिसका न सिर्फ भारत अपितु वर्तमान विश्व राजनीति में भी पर्याप्त महत्व है। इसके अतिरिक्त भगत सिंह ने भविष्य के भारत के बारे में भी एक खाका तैयार किया था। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें आतंकवादी घोषित किया था परन्तु वो खुद व्यक्तिगत तौर पर आतंकवाद के आलोचक थे। भगत सिंह ने भारत में क्रांतिकारी आंदोलन को एक नई दिशा दी। ऐसे समय पर जब गांधी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ही देश की आजादी के लिए एक मात्र विकल्प थे, भगत सिंह

---

* **शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, हरियाण केंद्रीय विश्वविद्यालय,** महेन्द्रगढ़ (हरियाणा)

एक नई सोच के साथ दूसरे विकल्प के रूप में उभर कर सामने आये .उन्होंने असहयोग आंदोलन के बाद पैदा हुए राजनीतिक निर्वात को भरने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भगतसिंह क्रन्तिकारी होने के साथ साथ एक प्रबुद्ध राजनीतिक चिंतक भी थे जिन्होंने तात्कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का गंभीरता के साथ अध्ययन किया। उन्होंने रूस, आयरलैंड, इटली इत्यादि देशों की क्रांतियों को भी समझने का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त बर्ट्रेंड रसेल, मार्क्स, लेनिन, थॉमस पेन, विलियम वड्र्सवर्थ जैसे अनेक चिंतकों को भी पढ़ा। उनके अनुसार क्रांति की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है। उन्होंने गहन अध्ययन करके समाज, राजनीति, राष्ट्रवाद, उपनिवेशवाद,समाजवाद, विश्वबंधुत्व, समानता, सामाजिक न्याय, भाषा समस्या, धर्मनिरपेक्षता, आतंकवाद, जनांदोलन इत्यादि के बारे में अपने स्पष्ट विचार रखे। वो भारतीय राष्ट्रीय चेतना के क्रन्तिकारी प्रतीक हैं जिन्होंने समतावादी समाज का खाका खींचा था।

भगत सिंह ने ना केवल अपने समय की लगभग सारी विचारधाराओं तथा चिंतकों को पढ़ा, बल्कि भारत की तात्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में उनका मूल्याङ्कन भी किया। उनके विचारों के केंद्र में सामाजिक न्याय की अवधारणा थी। भगत सिंह अपने लेखों में राजनीतिक अवधारणाओं यथा स्वतंत्रता, समानता, न्याय, क्रांति, लोकतंत्र, शक्ति, वैधता इत्यादि की चर्चा करते हैं। 23 वर्ष की अल्पायु में शहादत होने से भले वो इन विचारों का विस्तृत विवेचन नही कर पाए परन्तु उनके लेखों, बयानों तथा भाषणों को आधार बनाकर हम भगत सिंहके विचारों को समझने का प्रयास करेंगे।

भगत सिंह ने सत्रह वर्ष की उम्र में अपने प्रथम प्रकाशित लेख " पंजाब की लिपि और भाषा की समस्या"(1924) में लिखा कि किस प्रकार हिंदी, उर्दू और पंजाबी भाषा क्रमशः हिन्दू, मुस्लिम और सिखों के बीच सांप्रदायिक आधार पर बँटी हैं। उन्होंने मजहबी विचार से ऊपर उठकर इस समस्या पर गौर करने की सलाह दी। उन्होंने लिखा कि "हमारे सामने इस समय सबसे मुख्य प्रश्न भारत को एक राष्ट्र बनाना है। एक राष्ट्र बनाने के लिए एक भाषा होना आवश्यक है, परन्तु यह एकदम हो नहीं सकता।उसके लिए क़दम-क़दम चलना पड़ता है। यदि हम अभी भारत की एक भाषा नहीं बना सकते तो कम से कम लिपि तो एक बना देनी चाहिए।" भगतसिंह जानते थे की भारत जैसे बहुभाषी व बहुसांस्कृतिक देश में राष्ट्र निर्माण शनैः शनैः होगा। इसी सिद्धांत को मानते हुए गाँधी जी ने भी हिंदुस्तानी भाषा की बात की, जिससे देश में जुड़ाव की भावना आ सके।

भगतसिंह का पूरा परिवार अपना सुख त्यागकर भारत मां की सेवा में लगा हुआ था।इसी संस्कार का असर था की बचपन में ही अंग्रेजों को मार भगाने के लिए भगतसिंह बंदूकें बोने लगे थे। इस कार्य के

लिए वो अधिक से अधिक युवाओं को अपने साथ जोड़ना चाहते थे क्योंकि वो मानते थे की हर समाज के भाग्यविधाता युवक ही होते हैं। उनके अनुसार सारे विश्व की क्रांतियों व परिवर्तनों के केंद्र में युवाशक्ति ही थी जिसको जागृत व संगठित करने के लिए उन्होंने नौजवान भारत सभा नामक संगठन बनाया। युवक (1925) शीर्षक से लिखे अपने लेख में भारतीय युवकों को नींद से उठाकर वो प्रश्न करते हैं कि तेरी माता, तेरी प्रातः स्मरणीया, तेरी परम वंदनीया, तेरी जगदम्बा, तेरी अन्नपूर्णा, तेरी त्रिशूलधारिणी, तेरी सिंहवासिनी, तेरी शस्य श्यामलान्चला आज फूट-फूट कर रो रही है। क्या उसकी विकलता तुझे तनिक भी चंचल नही करती?"

"विश्व प्रेम" (1924) निबंध का प्रारम्भ ही भगतसिंह वसुधैव कुटुंबकम से करते हैं। यहाँ भगतसिंह राष्ट्रप्रेम से ऊपर उठते हुए विश्वप्रेम की बात करते हैं जो हमारी प्राचीन संस्कृति से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। वो ऐसे विश्व की कल्पना करते हैं जहाँ सभी अपने हों, कोई पराया न हो। विश्वबन्धुता से उनका अर्थ संसार में समानता लाना था। वो देश की तुलना मां से करते हुए कहते हैं कि बंदी मां को स्वतंत्र कराने के लिए आजन्म काले पानी में ठोकरे खाने को तैयार हो जाओ। सिसकती मां को जीवित रखने के लिए मरने को तत्पर हो जाओ। तब हमारा देश स्वतंत्र होगा।

भगत सिंह मैकाले द्वारा बनाई गई शिक्षा पद्धति पर सीधा प्रहार करते हैं जिसका उद्देश्य केवल पढ़ा लिखाकर देश के लिए क्लर्क तैयार करना था। भगत सिंह शिक्षा को व्यक्ति की चेतना के सर्वांगीण विकास का माध्यम मानते हैं।" विद्यार्थी और राजनीति (1928) नाम से लिखे लेख में भगत सिंह पंजाब सरकार के उस सर्कुलर का विरोध करते हैं जिसमे विद्यार्थियों को राजनीति से दूर रहने का आदेश दिया गया था। आगे वो लिखते हैं की" पढाई के साथ साथ विद्यार्थियों को देश की परिस्थितियों का ज्ञान लेकर उनमें सुधार के उपाय भी सोचने चाहिए। ऐसी शिक्षा तो निकम्मी है जो सिर्फ क्लर्की करने के लिए ही हासिल की जाए।"

एक तरफ महात्मा गाँधी अछूतों को हरिजन नाम देकर उच्च जातियों के ह्रदय परिवर्तन की बात कर रहे थे वहीं दूसरी तरफ डॉ अम्बेडकर उनके लिए पृथक निर्वाचन की मांग कर रहे थे। ऐसे समय में भगत सिंह" अछूत समस्या (1928) निबंध में लिखते हैं की अपने को आध्यात्मिक देश कहने वाला भारत मानव को मानव मानने से झिझकता है जबकि भौतिकतावादी यूरोप ने समानता, स्वतंत्रता व बंधुत्व का नारा दिया है। उनके अनुसार खुद छुआछूत को मानकर,अंग्रेजों से समानता का हक़ मांगना नैतिक रूप से अनुचित है। समानता की यूरोपीय अवधारणा को मानते हुए वह कहते हैं की सभी इंसान समान हैं तथा न तो जन्म से कोई भिन्न पैदा हुआ और न कार्य विभाजन से। आगे वो लिखते हैं की" समस्या यह है कि 30

करोड़ की जनसंख्या वाले देश में जो 6 करोड़ लोग अछूत कहलाते हैं, उनके स्पर्श-मात्र से धर्मभ्रष्ट हो जायेगा !उनके मन्दिरों में प्रवेश से देवगण नाराज़ हो उठेंगे !कुएँ से उनके द्वारा पानी निकालने से कुआँ अपवित्र हो जायेगा !ये सवाल बीसवीं सदी में किए जा रहे हैं, जिन्हें कि सुनते ही शर्म आती है "उनका यह कथन आज इक्कीसवीं सदी में भी उतना ही प्रासंगिक है। यहाँ भगतसिंह अमेरिकी व फ्रांसीसी क्रांति के घोषणापत्र की 'सभी लोग जन्म से स्वतंत्र व समान हैं' का समर्थन करते हैं।

असहयोग आंदोलन 1920 की असफलता के बाद सारे भारत में भयंकर सांप्रदायिक दंगे प्रारम्भ हो गए। भगत सिंह ने दंगो की समाजशास्त्रीय व आर्थिक व्याख्या की।" सांप्रदायिक दंगे और उनका इलाज" (1928) नामक लेख में वो लिखते हैं की " एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायियों के जानी दुश्मन हैं। अब तो एक धर्म का होना ही दूसरे धर्म का कट्टर शत्रु होना है। यह मार-काट इसलिए नहीं की गई कि फलाँ आदमी दोषी है, वरन् इसलिए कि फलाँ आदमी हिन्दू है या सिख है या मुसलमान है। जब स्थिति ऐसी हो तो हिन्दुस्तान का ईश्वर ही मालिक है। " वो आगे कहते हैं कि पता नही धार्मिक दंगे भारत वर्ष का पीछा कब छोड़ेंगे। इन दंगो ने संसार की नजर में भारत को बदनाम कर दिया है। वो इसे ख़त्म करने के लिए लोगों की आर्थिक स्थिति को सुधारने की बात करते हैं साथ ही वो नवयुवकों को धर्म से ऊपर इंसानियत व राष्ट्र को रखने की सलाह देते हैं।

मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ माना जाता है, तथा इसकी निष्पक्षता तथा सत्यनिष्ठा पर ही सभ्य समाज की बुनियाद टिकी होती है। आज गोदी पत्रकारिता या पीत पत्रकारिता के युग में, जहाँ लोगों का भरोसा मीडिया से कम होता जा रहा है, भगत सिंह कि बात प्रासंगिक लगती है। सांप्रदायिक दंगों में पत्रकारिता की भूमिका के बारे में वो लिखते हैं कि "पत्रकारिता का व्यवसाय जो किसी समय बहुत ऊँचा समझा जाता था, आज बहुत ही गन्दा हो गया है। यह लोग एक-दूसरे के विरुद्ध बड़े मोटे-मोटे शीर्षक देकर लोगों की भावनाएँ भड़काते हैं और परस्पर सिर-फुटौव्वल करवाते हैं। अखबारों का असली कर्तव्य शिक्षा देना, लोगों से संकीर्णता निकालना, साम्प्रदायिक भावनाएँ हटाना, परस्पर मेल-मिलाप बढ़ाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता बनाना था; लेकिन इन्होंने अपना मुख्य कर्तव्य अज्ञान फैलाना, संकीर्णता का प्रचार करना, साम्प्रदायिक बनाना, लड़ाई झगड़े करवाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता को नष्ट करना बना लिया है। यही कारण है कि भारत वर्ष की वर्तमान दशा पर विचार कर आँखों से रक्त के आँसू बहने लगते हैं और दिल में सवाल उठता है कि' भारत का बनेगा क्या?" उनकी यह बात आज डिजिटल व सोशल मीडिया के दौर में और अधिक प्रासंगिक प्रतीत होती है।

राजनीतिक सिद्धांत में मैकियावेली ने जो धर्मनिरपेक्षता के बीज डाले थे भगत सिंह उसी परंपरा को आगे बढ़ाने का प्रयास करते हैं। भगतसिंह का मूल उद्देश्य भारत की स्वतंत्रता थी जो ब्रिटिश प्रेरित

धार्मिक दंगों के कारण बाधित हो रही थी। भगत सिंह ग़दर आंदोलन को अपना आदर्श मानते हैं जिसने धर्म को राजनीति से अलग किया। परिणामस्वरूप आंदोलन एकजुट रहा व हिन्दू,मुस्लिम, सिख सभी ने स्वयं को भारतीय मानकर अपने प्राणों की आहुति दी। वो विवेक व तर्कशीलता को जीवन का आधार बनाना चाहते थे अर्थात हमें किसी चीज को केवल इसलिए नही मानना चाहिए क्योंकि सभी उसे मान रहे हैं। उनके लिए धर्म व्यक्तिगत विश्वास की चीज था ना कि सामाजिक। उनका मूल विरोध धर्म से जुड़ी कुरीतियों व अंधविश्वासों से था तथा इनको मिटाकर वो धर्म के मूल अर्थ को अपनाने की बात करते हैं यथा धारण करने योग्य आचार, विचार व व्यवहार। जो अंततः मानव धर्म व 'धार्यते इति धर्मः' में समाहित हो जाता है।

महात्मा गाँधी साध्य व साधन दोनों की पवित्रता की बात करते थे जिसके कारण उन्होंने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया वहीं दूसरी तरफ भगत सिंह तथा उनके साथी क्रांतिकारी पवित्र लक्ष्य को पाने के लिए हिंसा को भी उचित मानते थे। उनकी क्रांति केवल राजनीतिक या संविधानिक परिवर्तन से सम्बंधित नही थी अपितु क्रांति से उनका आशय अन्याय पर आधारित अंग्रेजी उपनिवेशवादी सामाजिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन से था। वो अंग्रेजों से केवल सत्ता का हस्तांतरण)अर्थात लार्ड इरविन की जगह अगर सर तेजबहादुर सप्रू आ जाएँ (नही चाहते थे, बल्कि पूरी शोषणकारी व्यवस्था को ख़त्म करके एक समतावादी, शोषणरहित समाज बनाना चाहते थे। भगतसिंह भारत में ऐसी लोकतान्त्रिक व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे जो सही अर्थों में 'जनता का, जनता के द्वारा, जनता के लिए शासन' हो।

1917 की रुसी क्रांति के बाद रूस की प्रगति ने सारे संसार को आकर्षित किया वहीं दुसरी तरफ 1920 के दशक के अंतिम वर्षों में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मंदी की चपेट में आ गई। इन परिस्थितियों में भगत सिंह का समाजवाद के दर्शन के प्रति झुकाव स्वाभाविक था। हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के घोषणापत्र में उन्होंने लिखा कि "भारत साम्राज्यवाद के जुवे के नीचे पिस रहा है। इसमें करोड़ों लोग आज अज्ञानता और ग़रीबी के शिकार हो रहे हैं। भारत की बहुत बड़ी जनसंख्या जो मज़दूरों और किसानों की है, उनको विदेशी दबाव एवं आर्थिक लूट ने पस्त कर दिया है। भारत के मेहनतकश वर्ग की हालत आज बहुत गम्भीर है। आज मेहनतकश की तमाम आशाएँ अब सिर्फ़ समाजवाद पर टिकी हैं और सिर्फ़ यही पूर्ण स्वराज्य और सब भेदभाव ख़त्म करने में सहायक साबित हो सकता है। " इस प्रकार उनका समाजवाद रॉल्स तथा अमर्त्य सेन के न्याय सिद्धांत से काफी साम्यता रखता है, जो कि गरीब वर्ग के कल्याण तथा उनकी क्षमता संवर्धन पर बल देता है।

रूसो के अनुसार ब्रिटेन में जनता पांच वर्ष में एक बार स्वतंत्र होती है, क्योंकि मतदान के बाद

जनप्रतिनिधि पर लोगों का प्रभावी नियंत्रण ख़त्म हो जाता है। इस समस्या पर विचार करते हुए,भगत सिंह ने अपने सपनों के भारत के बारे में कहा था कि लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए राइट टू रिकाल जरूरी है ताकि लोग अपने चुने हुए जनप्रतिनिधियों को वापस बुला सकें .इससे लोकतंत्र सही मायने में प्रभावी बन सकता है। जेरमी बेंथम की तरह भगत सिंह ने जेल सुधारों के लिए प्रभावी प्रयास किए .उन्होंने अपने क्रन्तिकारी साथियों के साथ मिलकर राजनीतिक बंदियों के मानव अधिकार के लिए लड़ाई लड़ी तथा अंततः सफल भी हुए.

वर्तमान भारत में भी कई अतिवादी संगठन यथा आतंकवादी, नक्सलवादी इत्यादि अपनी हिंसक विचारधारा को भगतसिंह से जोड़कर स्वयं को उचित ठहराते हैं। परन्तु भगतसिंह स्वयं कहते हैं कि अपने क्रन्तिकारी जीवन के प्रारंभिक काल के अलावा वो कभी आतंकवादी नही रहे तथा हिंसक तरीकों से उन्होंने कुछ हासिल नही किया। उनके अनुसार क्रांति के लिए खुनी लड़ाइयां अनिवार्य नही हैं और ना ही उसमे व्यक्तिगत हिंसा के लिए कोई स्थान है। असेम्बली में बम फेंकने का उद्देश्य भी हिंसा न होकर बहरे कानों को सुनाना था। वो नौजवानों को सलाह देते हुए कहते हैं की हिंसा की जगह जनता को संगठित करो व समाज को जागरूक करो। इसी से देश व समाज का कल्याण हो सकता है।

भगत सिंह एक व्यक्तिवादी विचारक भी थे। जो व्यक्ति को स्वतंत्र, तार्किक तथा स्वायत्त मानते थे। 8 अप्रेल 1929 को संसद में फेंके गए पर्चे में वो लिखते हैं कि" हम मनुष्य के जीवन को पवित्र मानते हैं हम ऐसे उज्ज्वल भविष्य में विश्वास रखते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शांति व स्वतंत्रता का अवसर मिल सके, हम मानव रक्त बहाने की अपनी विवशता से दुखी हैं, परन्तु यह रक्तपात सभी को समान स्वतंत्रता देने व मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त करने के लिए अनिवार्य है।" इस प्रकार वो उदारवाद के दर्शन से जुड़ते हुए प्रतीत होते हैं। इसी दर्शन को बुनियाद बनाकर उन्होंने अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था पर भी अपने विचार रखे। वो साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद को पूरे विश्व से ख़त्म करने के पक्षधर थे। उन्होंने धर्म,नस्ल इत्यादि से ऊपर उठकर मानवमात्र की भलाई को अपना लक्ष्य माना। उन्होंने पूरे विश्व को अपना परिवार माना, जिसमें सुख व शांति हो।

भगतसिंह के विचारों की प्रासंगिकता वर्तमान समय में और अधिक बढ़ रही है। धार्मिक विभाजन हो या जातिगत भेदभाव, गरीबी हो या किसानों की समस्या, नक्सलवाद हो या आतंकवाद,भाषागत विभाजन हो या राष्ट्रवाद की भावना, शिक्षा व्यवस्था हो या बेरोजगारी की समस्या, इन सभी चुनौतियों व समस्याओं का समाधान भगतसिंह के विचारों में मिलता है। वर्तमान वैश्वीकरण के युग में वसुधैव कुटुंबकम के उनके विचार शक्ति संघर्ष में उलझी विश्व व्यवस्था को सकारात्मक रास्ता दिखा सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. संधू, वीरेंद्र, (2012), सरदार भगत सिंह :पत्र और दस्तावेज, राजपाल एँडसंस
2. लाल, चमन, (2014), भगत सिंह के सम्पूर्ण दस्तावेज, आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
3. सिंह, जगमोहन &लाल, चमन, (1987), भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज, राजकमल प्रकाशन
4. नूरानी, ए .जी., (2005), दट्रायल ऑफ़ भगत सिंह :पॉलिटिक्स ऑफ़ जस्टिस, ऑक्सफ़ोर्डप्रेस
5. सिंह, चन्दरपाल, (2011), भगतसिंहरिविजिटेड :हिस्टोरिओग्राफ़ी, बायोग्राफी एँड आइडियोलॉजी ऑफ़ द ग्रेट मार्टियर, लो प्राइस पब्लिकेशन
6. गौर, ईश्वरदयाल, (2008), मार्टियर एस ब्राइड ग्रूम :फोकरिप्रसेंटेशन ऑफ़ भगत सिंह, एँथमप्रेस
7. नय्यर, कुलदीप, (2000), दमार्टियर भगत सिंह :एक्स पेरिमेंटइन रिवोल्यूशन, हर आनंद पब्लिकेशन
8. नय्यर, कुलदीप, (2012), विदाउट फियर :दलाइफ एँड ट्रायल ऑफ़ भगत सिंह, हार्परकॉलिंस
9. लाल, चमन, (2013), अंडर स्टैंडिंग भगत सिंह, अकबर बुक्स
10. हबीब, एस .इरफ़ान, (2010), टू मेक द डीफ हियर :आइडियोलॉजी एँड प्रोग्राम ऑफ़ भगत सिंह एँड हिसकॉमरेड्स, थ्री एसेकलेक्टिव्स
11. बख्सी, एस .आर, (1988), रिवोल्यूशनरी एँड दब्रिटिशराज, अटलांटिक पब्लिशर
12. मैक्लीन, कामा, (2016), अरिवोल्यूशनरी हिस्ट्री ऑफ़ इंटरवार इण्डिया, पेंगुइन पब्लिकेशन
13. वर्मा, शिव, (2010), संस्मृतियाँ :क्रन्तिकारी शहीदों के संस्मरणात्मक रेखाचित्र, राहुल फाउंडेशन
14. संधू, वीरेंद्र, (2012), युगदृष्टा भगत सिंहऔर उनके मृत्युंजय पुरखे, राजपाल एँडसंस
15. जनतंत्र एवं प्रजातंत्र शब्द के स्थान पर तब जगह लोकतंत्र) CSTT मानव शब्द (किया जाए।

***

3.गांधी दर्शन में राजनीति तथा धर्म

आरती*

धर्म का अर्थ 'पूजा पद्धति' या 'उपासना' के रुप में सामान्यतः लिया जाता है। धर्म को मानवीय अन्तःकरण से जुड़ी अभिवृत्ति व ऐसी परम मानवीय शक्ति के रुप में परिभाषित किया जा सकता है जो उसे उसके नियामक के प्रति श्रद्धावान बनाती है। इस अर्थ में धर्म जहाँ मनुष्य के आत्मिक विकास का साधन है वहीं राजनीतिक जीवन के भौतिक उद्देश्य एवं लक्ष्यों की वाहिका है।

मानव जीवन के आरम्भ से लेकर वर्तमान तक यह विवाद का विषय रहा है कि जीवन संचालक निश्चित (प्रेरक) तत्व भौतिक (राजनीतिक) होने चाहिए अथवा आध्यात्मिक (धार्मिक)। निश्चित रुप से मानव विकास की प्रारम्भिक अवस्था में धर्म ही वह मूल था जिसने मनुष्य को अनुशासन व एकता के सूत्र में पिरोया। परन्तु मनुष्य के जीवन का मुख्य उद्देश्य सद्जीवन की प्राप्ति है। अतः यह विचार प्रमाणिक रुप से सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं का आधार बन गया कि धर्म ही नीतिगत है तथा धर्म मानवीय सद्गुणों के विकास का श्रेष्ठ माध्यम है। अतः यह विचार मान्यता प्राप्त करने लगा कि सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में धर्म ही मानक एवं पथ प्रदर्शक होना चाहिए।

एक संस्था के रुप में राज्य के उदय में भी धर्म का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। धर्म ने राज्य के कर्तव्यों को राजधर्म के रुप में परिभाषित किया। भारतीय परम्परा में धर्म व्यक्ति के सामाजिक जीवन के विभिन्न कर्त्तव्यों का प्रतीक माना जाता रहा है। प्राचीन व आधुनिक दोनों ही कालों में धर्म को राजनीति की प्रेरक शक्ति मानने अथवा न मानने पर अनेक विचारकों ने गहराई से विचार किया है।

भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भारत के नवनिर्माण की राजनीति की समस्याओं का हल आध्यात्मिक मार्ग से चाहते थे। वर्तमान राजनीति में व्याप्त हिंसा, अनैतिक आचारण की समस्या तथा भ्रष्टाचार के आकंठ में डूबे सत्ता लोलुप राजनीतिज्ञों, प्रशासकों व धनिकों ने राजनीति के कल्याणकारी उद्देश्य के मूल मंतव्य को ही नष्ट कर दिया है। ऐसे में गांधी दर्शन में राजनीति व धर्म के सम्मिलन से जिस राजनीति के आध्यात्मीकरण की संकल्पना को स्थान दिया गया है वह और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है।

सम्भवतः गांधी ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने धर्म को व्यक्तिगत मोक्ष के स्थान पर समाज सेवा व राजनीतिक आन्दोलन का अचूक हथियार बनाया। गांधी के शब्दों में, "मेरी राष्ट्र सेवा मेरी आध्यात्मिक साधना है जिसके द्वारा मैं अपनी आत्मा को शरीर के बन्धन से मुक्त करना चाहता हूँ।" राजनीतिक

---

* **शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)**

पराधीनता से मुक्ति हो अथवा आर्थिक शोषण सभी समस्याओं का हल गांधी के लिए धर्म के अन्तर्गत विद्यमान रहा। इतिहास में अनेक संत या समाज सुधारक हुए जिन्होंने धर्म के सहारे समाज सुधार के कार्य किए, परन्तु व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन से आगे बढ़कर राजनीति में अथवा सार्वजनिक जीवन में धर्म को जीवनव्यापी बनाने का अपार साहस केवल गांधी के विचारों व दर्शन में ही परिलक्षित होता है। मनुष्य जीवन की पीड़ा को मिटाने के लिए उनमें धार्मिक भावनाओं के संचार का अद्भुत प्रयोग गांधी अपने जीवन में चरितार्थ करते है।

धर्म गांधी के जीवन से अत्यन्त गहराई से जुड़ा था। इसका उल्लेख वे स्वयं करते है " मैं धर्म के बिना एक पल नहीं रह सकता"। मेरे बहुत से राजनीतिक मित्र मुझसे नाराज हैं, क्योंकि उनका कहना है कि मेरी राजनीति भी धर्म से व्युत्पन्न है और वे ठीक ही कहते हैं। मेरी राजनीति और मेरे अन्य सभी कार्यकलाप मेरे धर्म से व्युत्पन्न हैं। मैं एक कदम और आगे बढ़कर यहां तक कहूँगा कि धर्मनिष्ठ व्यक्ति का प्रत्येक कार्य धर्म से व्युत्पन्न होना चाहिए क्योंकि धर्म का अर्थ है ईश्वर से आबद्ध मानी कि आपकी प्रत्येक श्वास पर ईश्वर का अधिकार।

जीवन के सभी क्षेत्रों में धर्म की स्थापना के प्रयास की सफलता के लिए गांधी ने इस बात पर बल दिया कि राजनीति अवश्यम्भावी है। गांधी के लिए धार्मिक जीवन व्यतीत करने का अर्थ है सम्पूर्ण मानव जाति के साथ तादात्म्य स्थापित करना। राजनीति के माध्यम से धर्म की राह पर चलते हुए सर्वकल्याण के लिए कार्य करना। राजनीति के धार्मिक आधारों की नवीन अवधारणा को लोगों के सामने प्रस्तुत करने व उनके प्रत्यक्ष प्रयोग से गांधी ने राजनीति की छवि बदलने का कार्य किया। स्वयं गांधी के शब्दों में "करोड़ों लोगों का जीवन मेरी राजनीति है, जिससे मैं अपने जीवन के ध्येय तथा ईश्वर को छोड़े बिना मुक्त नहीं हो सकता।"[2]

धर्म को राजनीति का संचालक तत्व बनाकर ही गांधी ने लोगों को स्वशासन हेतु प्रेरित किया। स्त्रियों के लिए पुरुषों के समकक्ष समानता की बात कही। हिन्दू धर्म को अस्पृश्यता के कलंक से मुक्त कराने का जिम्मा उठाया। धर्म ही वह ताकत थी जिसके बल पर गांधी ने राष्ट्र को विभक्त करने वाले साम्प्रदायिक व धार्मिक झगड़ों का अन्त किया।

धर्म व राजनीति के अन्तर्सम्बन्धों को लेकर गांधी को अपने विचारों की आलोचना भी सहनी पड़ी तब भी वे उस पर अटल रहे। गांधी ने कहा कि मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ कि धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म से पृथक राजनीति गांधी के लिए मृतक शरीर के तुल्य है जो केवल जला देने के योग्य है। अपनी आत्मकथा में गांधी लिखते हैं कि जो लोग यह कहते है कि धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है, वे यह जानते ही नहीं कि धर्म के मायने क्या है ?

गांधी ने राजनीति को धर्म की सहचरी माना तथा धर्म में त्याज्य सभी दुष्प्रवृत्तियों को राजनीति में भी त्याज्य माना। गांधी ने कुरान की व्याख्या में कहा कि सबसे श्रेष्ठ व बड़ा धर्म वही है कि जो कुछ तुम अपने लिए चाहते हो, वही दूसरों के लिए भी चाहो और जिस बात को अपने लिए हानिप्रद, दु:खद और बुरी मानो, उसे दूसरों के लिए भी वैसा ही समझो। धर्म को गांधी ने जीवन का आधार मानकर संसार से इतर व्यवहारों को उसके अधीन रखा।

धर्म व राजनीति दोनों ही गांधी के लिए ऐसे मानवीय अध्यवसाय थे जो समान प्रयोजन (मानव कल्याण) के प्रति समर्पित थे। अत: गांधी ने धर्म व राजनीति को परस्पर पूरक व निर्भर माना। राजनीति का उद्देश्य है जनकल्याण और कोई भी व्यक्ति जो ईश्वर की साधना करना चाहे वह इस सत्कार्य से उदासीन कैसे रह सकता है। गांधी के लिए ईश्वर व सत्य एक ही है। अत: गांधी की आकांक्षा थी कि राजनीति के प्रत्येक क्षेत्र में सत्य के नियम की प्रस्थापना हो।

गांधी के राजनीतिक दर्शन का आधार भी उनकी धार्मिक पृष्ठभूमि में ही निहित है। उनका मानना है कि "जब तक मैं अपने आप को मानवता से सम्बन्धित नहीं करता जो कि राजनीति में हिस्सा लिए बिना संभव नहीं है, मैं एक सच्चा धार्मिक जीवन जीने की कल्पना नहीं कर सकता वे मानते थे कि धर्म हमारे सभी कार्यों में शामिल होना चाहिए। मनुष्य की गतिविधियों को विभाजित नहीं किया जा सकता। वे सब एक दूसरे पर आधारित है और धर्म उन सबका नैतिक आधार प्रस्तुत करता है।"[3]

गांधी के अनुसार, "कोई भी व्यक्ति धर्म के बिना नहीं रह सकता है कुछ लोग ऐसे है जो अहम से प्रेरित होकर अपने आपको धर्म से पृथक बताते हैं लेकिन यह उस व्यक्ति के समान है, जो यह कहता है कि वो सांस तो लेता है, लेकिन उसके नाक नहीं है। चाहे विवेक से, तर्क से, अन्तर्बोध से या अंधविश्वास से किसी न किसी माध्यम से मानव उस दिव्य शक्ति के साथ अपने सम्बंधों का बोध कराता है।

मूल रुप में गांधी धार्मिक व्यक्तित्व हैं। उनकी राजनीतिज्ञता, उनकी नैतिकता, उनका दार्शनिकता या समाज सुधारक का चरित्र तो उसकी उपज मात्र है। प्रो. निर्मल कुमार बोस के अनुसार " प्राचीन भारत की परम्परागत भाषा में कहें तो गांधी एक क्षत्रिय है ब्राह्मण नहीं। परन्तु उनकी महानता इस तथ्य में निहित है कि उन्होंने प्रेम के नियमों को हमारी जाति का सर्वोच्च नियम बनाया और इस नियम के अनुरुप जीवन गुजारा गांधी को एक साधु दार्शनिक ब्राह्मण तो नहीं कहा जा सकता है।"[5]

गांधी के व्यक्तित्व तथा सार्वजनिक जीवन में 'धर्म' तथा 'राजनीति' दोनों को नवीन अर्थ प्रदान किया। गांधी के लिए धर्म लौकिक जीवन से पृथकता नहीं है, बल्कि समाज में रहते हुए प्राणीमात्र की सेवा करना है। गांधी राजनीति में जिस धर्म की स्थापना की बात कहते है वह 'मूल धर्म' या 'सार्वभौमिक

धर्म' है। यह व्यक्ति को पवित्र बनाता है और समष्टि के साथ व्यष्टि की एकात्मकता की अनुभूति है।

गांधी का स्वआरोपित नैतिक अनुशासन ईश्वरीय इच्छा की सर्वोपरिता, अन्तरात्मा की शक्ति तथा आध्यात्मिक प्रेरणाओं ने गांधी को राजनीति में एक चमत्कारिक व्यक्तित्व के रुप में पहचान दिलाई। संसार भर में अहिंसा के विज्ञान की महत्ता स्थापित करने के क्रम में गांधी ने राजनीतिक व सामाजिक परिवर्तन के शान्तिमय साधनों की खोज की। गांधी ने मूल्यपरक दृष्टि से अपने राजनीतिक सिद्धान्तों का विकास किया। उस समय की तमाम राजनीतिक समस्याओं का हल गांधी ने धर्म व नैतिकता के सहारे खोज निकाले। केवल धार्मिक व नैतिक प्रस्थापनाओं की खोज उनका लक्ष्य नहीं था बल्कि उन्होंने अपने जीवन में प्रत्यक्ष प्रयोग के द्वारा नैतिक सिद्धान्तों की पुष्टि भी की। नैतिकता के अभाव में राजनीति भी अनैतिक हो जाती है ऐसा गांधी का मानना था।

राजनीति में बल प्रयोग की अपेक्षा गांधी ने आत्मबल की अपराजेय शक्ति को सिद्ध कर दिखाया। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भारत से ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकना था। बल प्रयोग या हथियारों के सहारे भारत राजनीतिक स्वतंत्रता पा सकता था, इसमें सन्देह नहीं है, पर गांधी ने राजनीति में जिन नैतिक शक्तियों का प्रयोग किया, वे ही भारत की स्वतंत्रता के सशक्त सूत्र बने। राजनीति में धर्म का (प्रवेश करवाकर गांधी ने राजनीति के छल-कपट, दम्भ और विनाश के तत्वों से मुक्त कराया। धर्म व नैतिकता विहीन राजनीति गांधी के लिए सर्वथा त्याज्य है। गांधी स्वयं को तथा जनमानस को राजनीति के ऐसे दलदल से बचाना चाहते थे, जो मनुष्य के नैतिक विकास को अवरुद्ध करें।

गांधी ने धर्मयुक्त नैतिक राजनीति को अपनाकर उसे नई दृष्टि दी। राजनीति में कूटनीति की अपेक्षा नैतिकता पर बल दिया। राजनीति में नैतिक अनुशासन व्यक्ति, समाज व राष्ट्र सबके लिए उपयोगी है ऐसा गांधी मानते थे। राजनीति को धर्म व नैतिकता से जोडकर गांधी ने राजनीतिक समस्याओं व संघर्ष समाधान के लिए युद्ध के नैतिक विकल्प के रुप में सत्याग्रह की अवधारणा दी। गांधी इस बात को भली-भांति जानते थे कि सेना की शक्ति से राज्य का पुनः निर्माण नहीं किया जा सकता उसके लिए तो आध्यात्मिक व नैतिक शक्तियों को जगाना आवश्यक है। यह आध्यात्मिक व नैतिक जागरण धर्म से पृथक रहकर संभव नहीं है।

गांधी जीवन के सभी पक्ष धर्म से अत्यधिक प्रभावित रहे। गांधी कहते हैं, " मेरा मानना है कि मानव मन या मानव समाज सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक अलग-अलग और स्वतंत्र चौखटों में बंटा हुआ नहीं है। ये सभी एक दूसरे के साथ क्रिया प्रतिक्रिया करते हैं। इस हेतु राजनीति भी धार्मिक प्रभाव (मूल्य व नैतिकता) से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती तथा मानव जीवन अविभाजित इकाई है। अतः इसके राजनीति शास्त्र, नीतिशास्त्र व धर्म में भी विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती है।

मूलतः एक धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्तित्व होने के बावजूद गांधी राजनीति में आते हैं। उनका मानना था कि " मेरे भीतर बैठे राजनीतिज्ञ ने मेरे एक भी निर्णय को मुख्य रुप से प्रभावित नहीं किया है और यदि मैं राजनीति में भाग लेता दिखाई देता हूँ तो वह इस कारण की राजनीति ने सर्प की कुडंली की भांति हमें जकड़ लिया है और व्यक्ति कितनी भी कोशिश क्यों न करें, इससे मुक्त नहीं हो सकता इसलिए मैं इस सर्प के साथ संघर्ष करना चाहता हूँ। " अर्थात् गांधी राजनीतिक बुराईयों या दुष्प्रवृतियों को पूर्णतः आध्यात्मिक उपचार से ठीक करना चाहते थे, जो केवल धर्म व राजनीति के सम्मिलन से ही संभव है।

धर्म राजनीति में प्रवेश कर उसे किस प्रकार अनुशासित और मूल्य परक बना सकता है इस हेतु गांधी ने राजनीति के धार्मिक आधारों का उल्लेख किया है। धर्म राजनीति में त्याग की भावना लाता है क्योंकि धर्म का मूल ही मानव सेवा है। धर्म से प्रभावित राजनीति करुणा, सहनशीलता, प्रेम एवं न्याय की भावना का संचार करती है। धर्म, भाषा, जाति, रंग व नस्ल के भेद से परे एकता का संदेश देकर राजनीति का शुद्धिकरण करता है।

धर्म का प्रभाव राजनीतिज्ञों के आत्मबल में वृद्धि कर निर्भयता को बढ़ाता है। धर्म की अपरिग्रह की धारणा न्यूनतम आवश्यकता के साथ जीवनयापन करने व संग्रही जीवन जीने की प्रवृत्ति से दूर ले जाने का कार्य करता है। धर्म के साथ जुड़कर राजनीति परिवर्तन के लिए अहिंसक मार्ग की ओर प्रवृत्त होती है। राजनीति में सर्वजन हिताय का भाव धर्म से ही प्रबल होता है। सार्वजनिक क्रियाओं में अनुशासन का भाव धर्म से सहज संभव है। राजनीति में भी धर्म के समान सत्य की सर्वोच्चता को अधिष्ठात किया जा सकता है। धर्म का राजनीति में सर्वोच्च प्रभाव साधनों की पवित्रता के संदर्भ में देखा जा सकता है।

गांधी महान कर्मयोगी थे। इसलिए राजनीति में धर्म का प्रवेश कर उस दौरे के उस नैतिक मानदण्ड को समाप्त करना चाहते थे जिसके अनुसार राजनीति, राजनीति है और व्यापार, व्यापार है। गांधी मानते थे कि राजनीति केवल शक्ति व सत्ता प्राप्त करने का संघर्ष नहीं है बल्कि यह तो लाखों पददलितों को सुन्दर जीवन व्यापन करने की क्षमता विकसित करने का साधन है। यह मानवीय गुणों के विकास उनमें स्वतन्त्रता, समानता और बधुत्व व आध्यात्म के बारे में शिक्षित करने का प्रयास है। राजनीति में धर्म का प्रवेश सत्य व न्याय की दिशा में अग्रसर होना है। धर्म व राजनीति के एकीकरण से गांधी ने तात्कालिक पथभ्रमित समाज को एक नई दिशा प्रदान की। गांधी ने स्वतंत्रता आन्दोलन का संचालन एक संत की तरह किया तथा अहिंसक साधनों व नीतिगत निर्णय से भारत को राजनीतिक स्वतंत्रता दिलाकर राजनीति व धर्म की एकता को सार्थक कर दिखाया। गांधी का यह राजनीति के आध्यात्मीकरण का प्रयास वर्तमान युग में भी प्रासंगिक है। धर्म व राजनीति का गांधी द्वारा सुझाया एकीकरण राजनीति को शुद्ध कर मानव जाति को नवजीवन प्रदान कर सकता है।

वर्तमान में समुचा विश्व मानव इतिहास के एक संकटपूर्ण दौर से गुजर रहा है उसे एक नए विकल्प की तलाश है जो भूमण्डलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण से न केवल देश बल्कि दुनिया के बदलते सांस्कृतिक, आर्थिक वैचारिक परिदृश्य को नष्ट होने से बचा सकें। संरचनात्मक हिंसा तथा प्रकृति की अंधी दौड़ से मानव को बचा सकें। इन तमाम उलझनों को सुलझाने का हल गांधी ने राजनीति के आध्यात्मिकरण (धर्म राजनीति के एकीकरण) में उपलब्ध हैं। अतः हमारी प्रज्ञा हमें गांधीवाद के उस विचार तक ले जाती है जो हमारी समस्याओं का समाधान प्रदान करें तथा यह समाधान धर्म राजनीति का एकीकरण है अर्थात् राजनीति का आध्यात्मिकरण है जिसमें मानव सेवा, सामुहिक जीवन मूल्यों की उच्यता, नैतिकता का समावेश, सामाजिक आर्थिक समानता व परिवर्तन का अहिंसक विज्ञान शामिल है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. हरिजन 02.मार्च, 1934 पृ. सं. 23
2. हरिजन 10.फरवरी, 1940 पृ. सं. 445
3. नरेश दाधीच : महात्मा गांधी का चिन्तन, रावत पब्लिकेशनः 2014 पृ. सं. 152
4. ऑगबन एवं निमकॉक : ए हैण्डबुक ऑफ सोशियोलॉजी पृ. सं. 488
5. एन.के. बोस : स्वराज्य ओ गांधीवाद, अ बंगाली पब्लिकेशन, कलकत्ता 1954 पृ. सं. 19
6. यंग इण्डिया 02. मार्च, 1922 पृ. 131
7. यंग इण्डिया 12. मई, 1920 पृ. 2

4. 21वी सदीं में नवमानववाद की प्रासंगिकता

डॉ. अखलाख अहमद*

डॉ. शाजिया प्रवीन **

21 वीं सदीं मानववादी मूल्यों की सुरक्षा की दृष्टि से असंतोषजनक स्थिति में है। आज तक इन मूल्यों को स्थापित करने के सकारात्मक प्रयास होते रहे हैं, जिसमें आंशिक सफलता ही मिल पायी है। वर्तमान सामाजिक संरचनाओं की जटिलताओं ने जहाँ चुनौतियों को वृहत करने में उत्प्रेरक की भूमिका निभाई है वहीं 20 वीं सदीं के अंत में चली वैश्वीकरण की आंधी ने इसे सार्वभौमिक बना दिया। जाति, धर्म, लिंग, नस्ल. सम्प्रदाय, अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, लिंचिंग, पर्यावरण, आतंकवाद जैसी समस्याएँ वैश्विक पटल पर गैर राजनीतिक रुप में उपस्थित है। ऐसे में इन समस्याओं की प्रकृति को समझाने एँव उनके निदान हेतु मानववाद एँव नवमानववाद जैसी विचारधाराओं का अध्ययन आवश्यक प्रतीत होता है।

मानववाद एक महत्वपूर्ण दर्शन है जिसका आरंभ ग्रीक चिंतन में देखा जा सकता है। चाहे वह प्लेटो का दर्शन हो या सोफिस्टो का,-'मानव' ही चिंतन का केन्द्रीय विषय रहा है। मानव के कल्याण को केन्द्र में रखकर किए गए चिंतन को आमतौर से मानववाद के अंतर्गत रखा जाता है। इस संदर्भ में जहाँ कुछ विचारकों ने अमूर्त संकल्पनाओं या धार्मिक चिंतन के परिप्रेक्ष्य में अपने विचार प्रस्तुत किए है वहीं कुछ के द्वारा इसे भौतिकवादी दर्शन के साथ जोड़ का विमर्श किया गया है। मानवेन्द्र नाथ राय का मानवतावाद भी भौतिकतावादी है जिसे नवमानववाद के रुप में जाना जाता है।

मानववाद एवं नवमानववाद दोंनो मित्र विचारधाराएँ है –

मानववाद को अमूर्त संकल्पनाकों या धार्मिक चिंतन के परिप्रेहय में प्रस्तुत किया जाता है, जबकि नवमानववाद भौतिकवादी दर्शन है। मानववाद का तात्पर्य व्यक्ति के संदर्भ में किए गए कल्याणकारी कार्यों से है वहीं नवमानववाद दर्शन की विशिष्ठ पद्धति है जिसके अंतर्गत स्वतंत्रता, विवेक एवं नैतिकता का संयोजन है। मानववादी विचारकों को नवमानववादी होना आवश्यक नही है ठीक उसी प्रकार नवमानववादी को भी मानववादी होना पूर्ववत नहीं है। मानववाद ने आध्यात्मिक अनुभूति को सर्वोच्च मूल्य की वस्तु

* **सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग डी.के.कॉलेज, डुमरॉव, बिहार**

** **सहायक प्रोफेसर, डी.आई.आर.डी, हौलम्बी, दिल्ली**

माना है। बौद्धिकता दैवी सत्ता ने निषिध्द की है जबकि नवमानववाद स्वभाविक बुद्धि एवं ऐन्द्रिक अंत:करण में विश्वास रखा है।

जहाँ मानववाद परम्परागत मूल्यों में विश्वास रखता है, वहाँ नवमानववाद नवीन, यर्थाथवादी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण में विश्वास रखता है।

अपने जीवन के अंतिम वर्षों में मानवेन्द्रनाथ राय 'मानववाद' की व्याख्या करने में लगे थे। उनका मत था कि विज्ञान ने मनुष्य की सृजनात्मक क्षमता में वृद्धि कर दी है और अंधविश्वासों तथा अतार्किक परालौकिक भयों से मुक्त कर दिया है। राय के अनुसार आधुनिक सभ्यता जिस नैतिक तथा सांस्कृतिक संकट से गुजर रही है उसको देखते हुए मानववादी मूल्यों का पुन: स्थापन करना अत्यंत आवश्यक है। आनुभाविक पद्धति के उद्देश्य से सहज, गुच्छ नैतिक बुद्धि की धारणा ध्वस्त हो गई है। परिणाम स्वरुप मानव जाति एक नैतिक उलझन में फँस गई है। नैतिक मूल्यों की वस्तुपरकता का ह्रास हो चुका है। इस परिस्थिति में वे विश्लेषणात्मक तथा विवादपूर्ण बुद्धि पर आधारित करना चाहते थे। राय के अनुसार सद् विवेक बौद्धिकता की उपज है। उनका आग्रह है कि नवीन मानववाद स्वभाविक बुद्धि और ऐच्छिक अंत: करण पर आधारित होना चाहिए। उनके मत में भौतिकवादी ब्राह्मशास्त्र पर आधारित बुद्धि परक मानववादी आधारनीति ही मनुष्य की समस्याओं का एकमात्र समाधान है।

यह चिंतन मानववादी है, क्योंकि यह मनुष्य के अस्तित्व को अक्षुण्य बनाए रखना चाहता है। साथ ही यह उग्रवादी अर्थात परिवर्तनकारी है, क्योंकि अन्य चिंतनों की तुलना में मात्र अमूर्त विचारों पर बल न देकर व्यक्ति जो कि समाज का आधार है, उस पर बल देता है।

नवमानववाद राष्ट्रीयता एवं अंतरराष्ट्रीयता दोंनो के विरुद्ध है। यह विश्व बंधुत्व की भावना से सम्बंधित है तथा एक सरकार जैसी व्यवस्था की कल्पना करता है। जहाँ मनुष्य के लिए अधिक से अधिक स्वतंत्रता को बाधित करते है व मानव एवं मानव के मध्य विभाजन करते है। नवमानववाद उपयोगितावाद से पूर्ण सहमत है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन के उद्देश्य अपने सुख और स्वतंत्रता मे वृद्धि ही है। नवमानववाद तर्क सम्मत मूल्यपरक चिंतन ही है। इस विचारधारा के अनुसार मानव स्वभाव की दों विशेषताएँ है –

(क) मनुष्य स्वभाव से विवेकयुक्त है अर्थात मनुष्य का प्रत्येक कार्य विवेक सम्मत है।

(ख) प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्रता की कामना करता है।

नवमानववाद के अनुसार समाज का जन्म ही भौतिक कारणों से हुआ है। समाज की उत्पत्ति तब

हुई जब मानव ने जीविकोपार्जन के लिए कृषि आरंभ की तब समाज सामुदायिक था। उत्पादन के साधनों पर सभी का बराबर का स्वामित्व था की तब रुसों एवं एंगेल्स ने माना है कि निजी संपत्ति का उदय होने से सामाजिक अव्यवस्था उत्पन्न हुई इसके परिणाम स्वरूप राज्य अस्तित्व में आया।

बहुलवाद भी नवमानववाद की विशिष्टता है अर्थात राज्य को अन्य संघों के समान संघ माना जाना चाहिए। मानव की स्वतंत्रता के लिए आर्थिक पुर्नगठन आवश्यक है जिससे कि मानव अपनी मूल – भूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके और एक अच्छा जीवन व्यतीत कर सके। नवमानववाद में क्रांति शिक्षा के द्वारा लायी जाएगी न कि हिंसात्मक संघर्षो के द्वारा। नैतिक मनुष्य व मानवीय राजनीति नवमानववाद के अभिन्न अंग है अर्थात यह नैतिक मानव की संकल्पना में विश्वास रखता है। तर्कजनित नैतिकता व मानवीय राजनीति से इनका तात्पर्य राजनीति से भक्ति को अलग करना या समाप्त करना है एवं मानवीय मूल्यों पर आधारित राजनीति की स्थापना करना है।

नवमानववाद प्राकृतिक विवेक व धर्मनिरपेक्ष चेतना पर आधारित है, इसके तीन प्रमुख तत्व है –

i)स्वतंत्रता ii) विवेक iii) नैतिकता

सर्वप्रथम, तारगोड व कन्डोलेड से प्रभावित होकर मानव की स्वतंत्रता में विज्ञान के योगदान का वर्णन किया गया है। स्वतंत्रता से तात्पर्य मनुष्य को अपने अस्तित्व को बनाए रखने में किया गया संघर्ष और इस संघर्ष की सफलता ही मानवीय स्वतंत्रता का मापन हो सकता है स्वतंत्रता के सम्बंध में हम यहाँ पर मानवशास्त्र व डार्विन के सिद्धांतों का प्रभाव देखते हैं। मानवेन्द्र नाथ राय ने विकास को स्वीकार करते हुए लिखा है कि विज्ञान ने व्यक्ति को अनेक प्रकार के मतों एवं अंधविश्वासों से मुक्ति दिलाई और मानव की सृजनशीलता को बढ़ाया है। विज्ञान ने न केवल अस्तित्व की रक्षा की है, बल्कि मनुष्य को एक अच्छे जीवन के सुअवसर प्रदान किए है।

स्वतंत्रता की संकल्पना इसी भौतिक जगत से उत्पन्न हुई है। अरविन्द घोष जैसे विचारक के अनुसार स्वतंत्रता की खोज घणे जैसी संकल्पनाओं में की जा सकती है। इस विचार को ने आंतरिक एवं बाहय स्वतंत्रता में भेद करने का प्रयास किया है, जिसको नवमानववाद अनुचित मानता है।

स्वतंत्रता और विवेक एक दूसरे से सम्बंधित है। विवेक की प्रकृति भी भौतिकवादी है और मानवीय इतिहास के क्रमिक विकास से विकसित हुई है। विवेक की प्रकृति सार्वभौमिक सत्ता में निहित न होकर मानवीय विकास की प्रक्रिया में होती है। जैसे-जैसे स्वतंत्रता का विकास होता है, वैसे-वैसे विवेक का विकास होता है अथवा विवेक का विकास मानवीय स्वतंत्रता को बढ़ाता है।

नैतिकता का सरोकार भी सामाजिक जीवन से है। इसका विकास किसी सत्ता से न होकर विवेक से होता है अर्थात विवेक नैतिकता की जननी है, जो स्वयं भौतिकवादी प्रक्रिया का परिणाम है। मानव जब समाजोन्मुख होता है तो आपस के सम्बंधों को किस प्रकार से नियमित किया जाए इसके लिए अपने विवेक का प्रयोग करता है। विवेक का सामाजिक सम्बंधों में प्रयोग ही नैतिकता है।

नवमानववाद की महत्ता विचारों की नवीनता में न होकर प्राचीनता में है। कतिपय प्राचीन तथा सर्वमान्य विचारों को दर्शन का आधार बनाकर उन्हें पुर्नर्जीवित किया गया है। यह कार्य उन प्राचीन सिद्धांतों में नवीनता का संचार करता है जिनकी मान्यताएँ व्यक्ति को सर्वाधिक प्रतिष्ठा दिलाने की पक्षपाती है तथा साधन न बनाकर साध्य बनाती है।

नवमानववाद के एक घटक के रुप में 'धर्मविहीन नैतिकता' का विचार आधुनिक समाज के लिए अतिलाभकारी है। इसके द्वारा समाज में फैली हिंसा, धार्मिक अंधविश्वास तथा धर्माचार्यो की साम्प्रदायिकता से मुक्ति मिल सकती है। नवमानववाद वाह्य तथा आंतरिक दोंनों प्रकार की स्वतंत्रता पर बल देकर व्यक्ति को विवेकी तथा तर्कपूर्ण बनाता है ताकि वह अन्धानुसरण और विचारों की निर्धनता का शिकार न बन सके।

व्यक्ति की नैतिक एवं संविधानिक करण जवाबदेहिता से नौकरशाही, राजनीतिक भ्रष्टाचार, पर्यावरण, आतंकवाद, नस्लवाद, लिंचिंग आदि से संबंधित समस्याओं का समाधान हो सकता है।

नवमानववाद दर्शन उस आत्मप्रेरणा तथा आत्म विश्वास का मानी है जहाँ भाग्यवादिता का कोई स्थान नहीं है। इस दर्शन ने मानव को स्वयं के अंतर्मन में रोकने के लिए बाध्य किया है। ईश्वर के प्रति विद्रोह इसका प्रतीक है। व्यक्ति ही नव वस्तुओं का निर्माता है तथा वह अपना भाग्य स्वंय निर्मित कर सकता है। ध्येय, राज्य तथा नवमानववाद का अंतिम संकल्प है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. अवस्थी, आर. केः साइंटिफिक, हमेनिज्यः सोमिओ. पोलिटिकल आइडियाज आफ एम. एन. राय (एक्रिटिक), जयपुर
2. ओवरस्ट्रीट तथा विंडमिलरः कम्यूनिज्य इन इंडिया, दी पेरेनिभल प्रेस, बम्बई,1960
3. ग्रोवर. डी.सी.:एम.एन.रायः रिवोल्यूशन एँड रीपन इन इंडियन पोलिटिक्स, कलकत्ता, 1973

4. रॉय, मानवेद्र नाथः रीजन, रोयेंरीसिज्य एण्ड रिवोल्यूमन, 246I रेनसां पठित. कलकत्ता, 1952 तथा 1955
5. रॉय, मानवेद्र नाथः न्यू हमेनिज्यः ए मेनिफिस्टों, कलकत्ता,1947
6. रॉय, मानवेद्र नाथः रिवोल्यूशन एण्ड काउंटर रिवोल्यूशन इन – इन कलकत्ता, 1946
7. रॉय, मानवेद्र नाथः पावर्टी और प्लेंटी, कलकत्ता,1943
8. रॉय, मानवेद्र नाथः न्यू ओटिंयरेशन, कलकत्ता, 1946
9. रॉय, मानवेद्र नाथः दी कम्युनिस्ट इंटरनेशनल, बम्बई, 1943
10. रॉय, मानवेद्र नाथः रेडिकल हयेनिज्य, नई दिल्लीः 1952
11. प्लान मीव (जर्नल्स)
12. इंडियन जर्नल्स ऑफ पालिटिकल साइंस

***

5.डॉ. अंबेडकर का शिक्षा-दर्शन

डॉ. सुधांशु शेखर*

डॉ. भीमराव अंबेडकर एक दर्शनशास्त्री, अर्थशास्त्री, विधिवेत्ता, राजनीतिशास्त्री, संविधान विशेषज्ञ, समाज सुधारक, जननेता, धार्मिक उपदेशक एवं शिक्षाशास्त्री के रूप में देश-दुनिया में सुप्रसिद्ध हैं। देश के पहले कानून मंत्री को भारत सरकार ने 1991 में भारत रत्न की उपाधि प्रदान कर अपनी भूल सुधार की और कुछ वर्षों पूर्व कोलंबिया विश्वविद्यालय ने उन्हें 'सिम्बल ऑफ नॉलेज' अर्थात् 'ज्ञान के प्रतीक' के तौर पर मान्यता प्रदान कर अपने आपको गौरवान्वित किया है। कहना न होगा कि एक अछूत परिवार में जन्म लेने के बाद शिक्षा के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचना आसान नहीं रहा होगा। यह डॉ. अंबेडकर की दृढ़ इच्छा शक्ति, अदम्य साहस एवं अथक परिश्रम का ही परिणाम है कि वे सर्वकालीक महान विद्वानों में शुमार किए जाते है। 'शिक्षित बनो संगठित रहो और संघर्ष करो' उनके इस मंत्र ने करोड़ो लोगों की जिंदगी बदल दी।

डॉ. अंबेडकर के अनुसार सामाजिक न्याय की स्थापना में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। उनका विश्वास था कि शिक्षित बनना मनुष्य के चहुमुँखी विकास के लिए आवश्यक है।[1] शिक्षा के अभाव में कोई भी व्यक्ति अपने कर्तव्यों एवं अधिकारों का निर्वहन एवं संरक्षण नहीं कर सकता है। सामाजिक न्याय एवं सार्वभौम मानवाधिकार की बातें भी शिक्षा के बिना 'मिथक' मात्र बनकर रह जाती हैं। स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुता जैसे उदात्त मूल्य भी तभी साकार रूप ले सकते हैं, जब समाज में शिक्षा का समुचित प्रचार-प्रसार हो। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि जब तक मन को स्वतंत्रता का उपयोग करने की शिक्षा न दी जाए, तब तक स्वतंत्रता का कोई मूल्य ही नहीं रहता। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए शिक्षा प्राप्ति का अधिकार स्वतंत्रता की दृष्टि से परमावश्यक हो जाता है। किसी मनुष्य को ज्ञान से वंचित रखना, उसे अनिवार्य रूप से उन लोगों का गुलाम बना देना है, जो उससे अधिक सौभाग्यशाली हैं। ज्ञान से वंचित रखने का मतलब है, उस शक्ति को नकारना, जिससे व्यक्ति अपनी प्रगति के प्रति आवश्वस्त हो सके।

डॉ. अंबेडकर शिक्षा को समाज-परिवर्तन का एक जरूरी औजार मानते थे।[2] इसके जरिए वर्णाश्रम आदि सभी शोषणकारी व्यवस्थाओं को नष्ट किया जा सकता है, सभी प्रकार की कुरीतियों एवं अंधविश्वासों को दूर किया जा सकता है और सभी कृत्रिम बंधनों को तोड़कर मनुष्य को मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठित करने का सपना साकार किया जा सकता है। इस तरह केवल शिक्षा ही समाज को रूढ़ियों एवं जड़ताओं से मुक्त कर सकती है और भारत के दलित-शोषित वर्गों में नई चेतना पैदा कर सकती है।[3] शिक्षा

* **सहायक प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, बी. एन. मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा (बिहार)**

शेरनी के दूध के समान है, जिसे पीकर हर व्यक्ति दहाड़ने लगता है। अतः सभी को शिक्षा का दुग्धपान कराना एक आंदोलन है।

डॉ. अंबेडकर मानते थे कि आदमी केवल रोटी के सहारे जीवित नहीं रह सकता, उसे मस्तिष्क भी मिला हुआ है, जिसे विचारों की खुराक की जरूरत है। यह खुराक शिक्षा के जरिए ही मिल सकती है, प्रत्येक व्यक्ति का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि उसे शिक्षा की पर्याप्त खुराक मिले।

इसलिए शिक्षा का मार्ग सभी के लिए खुला होना चाहिए। सभी के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य रूप से शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। शिक्षा रूपी रौशनी मात्र कुछ ही लोगों तक सीमित नहीं रहे और साक्षरता प्रचार हेतु प्रौढ़ शिक्षा की योजना लागू की जाए। प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक सबों की पहुँच रहे इसके लिए जगह-जगह सरकारी विद्यालय एवं विश्वविद्यालय की स्थापना की जाए। शिक्षा पर कम-से-कम उतनी राशि अवश्य खर्च की जाए, जितना लोगों से उत्पाद शुल्क के रूप में सरकार वसूलती है।[4] दलित एव पिछड़ी जातियों के प्रतिभा संपन्न और बुद्धिमान छात्र-छात्राओं को उच्च शिक्षा हेतु प्रोत्साहन राशि देने के लिए सरकारी कोष की व्यवस्था हो।

डॉ. अंबेडकर मानवीय शिक्षा के समर्थक थे। उनके अनुसार, मानव हित एवं सामाजिक उत्थान ही शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। मानव विकास एवं उन्नति के लिए मन की शिक्षा-दीक्षा अनिवार्य है, जैसा कि बौद्ध शिक्षा का विश्वास है। यदि मन नियंत्रित हो जाए, तो मानव एवं समाज के बीच सौहार्द एवं समन्वय हो सकता है। शिक्षा ही एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा मानव स्वयं को प्रबुद्ध बनाकर सामाजिक शक्तियों को संगठित कर सकता है और जो अन्याय, शोषण तथा बुराईयों का अंत करने में सहायक है।

संक्षेप में, शिक्षा एवं संगठन के अभाव में कोई आंदोलन और किसी प्रकार का उत्थान संभव नहीं हो सकता।[5] इसलिए, डॉ. अंबेडकर ने अनेक मुश्किलों का सामना करते हुए स्वयं उच्चतम शिक्षा प्राप्त की और जीवनभर 'शिक्षित बनो, संगठित हो एवं संघर्ष करो' का आचरण एवं उपदेश करते रहे। उन्होंने 1924 ई. में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' का गठन कर शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस सभा के माध्यम से वंचित वर्गों के लिए महाविद्यालय, छात्रावास, पुस्तकालय, अध्ययन केन्द्र आदि खोले गए। साथ ही 'सरस्वती बेलास' नामक एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया गया। सभा ने 1925 में शोलापुर और बेलगाँव में छात्रावास और मुम्बई में दो छात्रावास के साथ-साथ एक मुफ्त अध्ययन केन्द्र की शुरूआत की। आगे डॉ. अंबेडकर ने 1928 ई. में 'डिप्रेस्ड क्लास एजूकेशनल सोसाइटी' और 1945 में 'लोक शिक्षित समाज' की स्थापना की। इन दोनों संगठनों ने भी शिक्षा के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। डॉ. अंबेडकर ने शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा का समर्थन किया। उन्होंने कहा है कि हमारी प्रगति में

तीव्र गति से वृध्दि हो सकती है, यदि हम लड़को के साथ-साथ लड़कियों को भी शिक्षा दें।[6]

डॉ. अंबेडकर ने भारतीय स्त्रियों को धार्मिक एवं सामाजिक आडंबरों एवं जकड़नों से मुक्त करने के लिए सर्वप्रथम स्त्री-शिक्षा पर जोर दिया। उनका मानना था कि अगर स्त्रियों की शिक्षा को पुरूषों की शिक्षा के साथ-साथ आगे बढ़ाया जाए, तो हम जल्दी ही अच्छे दिन देखेंगे और हमारी प्रगति अत्यंत तीव्र होगी। उन्होंने स्त्रियों से कहा, "बहिनो! हर समाज में स्त्री का अपना अलग ही महत्व होता है। जिस घर की स्त्री शिक्षित एवं सुसंस्कृत होती हैं, उसके बच्चे भी सदैव उन्नति के पथ पर अग्रसर रहते हैं। स्त्रियों से ही घर बनता और बिगड़ता है। ... आप अपने बच्चों को खूब पढ़ाइए और इस देश का शासक बनाइए।"[7] उन्होंने स्त्रियों को शिक्षित बनने के साथ-साथ चरित्रवान, आत्मविश्वासी और आत्मनिर्भर भी बनने की सलाह दी। इस दिशा में डॉ. अंबेडकर ने स्वयं भी भरपूर प्रयास किया। खासकर स्त्री-अधिकारिता से जुड़े 'हिन्दू कोड बिल' का निर्माण स्त्री-मुक्ति आंदोलन को उनकी अमूल्य देन है।[8]

'शिक्षा' एक दुधारी तलवार की तरह है। इसका अनुचित एवं उचित दोनों तरह से प्रयोग हो सकता है। मसलन, यथास्थितिवादी एवं रूढ़िगामी ताकतें शोषण-दमन एवं लूट-खसोट को जारी रखने के लिए शिक्षा का दुरुपयोग करती हैं। यदि शिक्षित व्यक्ति शीलवान नहीं हो, तो वह अपनी शिक्षा का उपयोग व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति और आम जनता को ढ़गने के लिए करता है। यही कारण है कि डॉ. अंबेडकर ने शिक्षा के सकारात्मक उपयोग पर जोर दिया और इसके लिए नैतिकता या 'शील' का होना आवश्यक माना। उनके शब्दों में, "कोई पढ़ा-लिखा आदमी यदि शीलसंपन्न होगा, तो वह अपने ज्ञान का उपयोग लोगों के कल्याण के लिए करेगा, लेकिन यदि उसमें शील नहीं होगा, तो वह आदमी अपने ज्ञान का दुरुपयोग लोगों को नुकसान पहुँचाने के लिए करेगा।"[9] शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मानव व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन कर उनका चारित्रिक विकास होना चाहिए। जो व्यक्ति चरित्रहीन एवं विनयरहित है, उनका जीवन पशु से भी गया गुजरा है। शिक्षा से विवेक पैदा होता है, जिससे अच्छे-बुरे का ज्ञान एवं निर्णय लेने की क्षमता विकसित होती है। यह मनुष्य को स्वयं के अधिकार एवं कर्तव्य समझाने में सहायक होती है। डॉ. अंबेडकर आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा के पक्षधर थे और औद्योगिक शिक्षा पर विशेष बल देते थे। उनके अनुसार गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, साहित्य एवं नीतिशास्त्र को शिक्षा का मुख्य पाठ्यक्रम होना चाहिए। साथ ही खेल-कूद, व्यायाम, स्वच्छता एवं स्वरोजगार को शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग बनाया जाना चाहिए। उनका मानना था कि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की शिक्षा पाकर वंचित वर्ग अपनी भौतिक उन्नति कर सकता है, लेकिन वे नैतिक या चारित्रिक उन्नति की अवहेलना नहीं करना चाहते थे। यही कारण है कि उन्होंने हमेशा लोगों को धर्म या नैतिकता से जुड़ने के लिए प्रेरित किया। यहाँ यह विशेष

रूप से उल्लेखनीय है कि डॉ. अंबेडकर धर्म को मानव जीवन के लिए आवश्यक मानते थे, लेकिन धर्म के नाम पर कर्मकाण्ड एवं पाखंड के विरोधी थे।

डॉ. अंबेडकर चाहते थे कि शिक्षा पारलौकिक मूल्यों का खंडन करे और समाजोपयोगी लौकिक मूल्यों की सृजन में सहयागी बने। यह वास्तविक मानव जीवन पर अवलंबित हो और सभी के लिए हितकारी बने। शिक्षा के द्वारा शिक्षार्थियों में सद्गुण धारण करने की शक्ति का विकास होना चाहिए। इसके लिए शिक्षकों का चरित्रवान होना आवश्यक है। डॉ. अंबेडकर के अनुसार शिक्षा केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं है, बल्कि यह व्यक्तिगत एवं सामाजिक मुक्ति का मार्ग भी है। वे शिक्षा के माध्यम से समाज में स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुता जैसे उदात्त मूल्यों का प्रचार-प्रसार करना चाहते थे। उनके अनुसार आदर्श शिक्षक केवल विद्वान ही नहीं, बल्कि चरित्रवान भी होना चाहिए। शिक्षक व्यक्तिवादी विचारों से युक्त नहीं होना चाहिए। शिक्षक का दृष्टिकोण व्यापक हो और वह रूढ़ियों को तोड़ना एवं समाज को सम्यक् दिशा देने वाला यथार्थवादी होना चाहिए। उन्होंने शिक्षकों के निम्न गुण बताए हैं[10]-

1. शिक्षक का शीलवान होना आवश्यक है- शिक्षक को हिंसा एवं जीव-हत्या नहीं करनी चाहिए। यह हत्या कर्म से ही नहीं, बल्कि मन और वचन से भी नहीं करनी चाहिए।
2. शिक्षक को चोरी, उठाईगीरी और किसी भी प्रकार का भ्रष्टाचार नहीं करना चाहिए।
3. शिक्षक को व्यभिचार और बलात्कार जैसे दुष्कर्मों से हमेशा दूर रहना चाहिए।
4. शिक्षक को सर्वदा सत्य का अनुशीलन करना चाहिए। उसे चुगलखोरी, कटु वचन, मिथ्या बकवास नहीं करनी चाहिए एवं सोच-समझकर संयम से बोलना चाहिए।
5. शिक्षक को शराब, भांग, गांजा, बीड़ी-सिगरेट, तम्बाकू एवं तम्बाकू से बने पदार्थों के सेवन से बचना चाहिए।
6. शिक्षक का प्रज्ञावान होना आवश्यक है। उसमें सत्य को सत्य और असत्य को असत्य कहने अर्थात् दूध का दूध और पानी का पानी करने का गुण होना चाहिए।
7. शिक्षक में करूणा और दया की भावना का होना आवश्यक है, जिससे वह विद्यालय में निर्धन और कमजोर वर्ग के छात्रों की सभी प्रकार की सहायता कर सकें।
8. शिक्षक में समानता का व्यवहार करने की भावना होनी चाहिए। उसमें जाति, अमीरी-गरीबी और समाज के किसी भी स्तर के आधार पर समान व्यवहार करने की भावना होनी चाहिए, अर्थात् उसमें पितृ एवं मातृतुल्य भावना होनी चाहिए।
9. शिक्षक का परिश्रमी होना अत्यंत आवश्यक है, जिसमें वह परिश्रम के साथ स्वयं अध्ययन कर सके और छात्रों को भी परिश्रम के साथ पढ़ा सकें।

10. शिक्षक के चरित्र में लोकतांत्रिक गुणों का समावेश होना चाहिए, जिससे छात्रों में लोकतांत्रिक एवं मानवतावादी गुणों का पैदा करके उन्हें स्थायी बना सके।
11. शिक्षक छात्र का पथ-प्रदर्शक होता है। उसे इस प्रकार की परिस्थितियां एवं वातावरण का निर्माण करना चाहिए, जिससे बालक क्रियाशील रहे और जो शिक्षा प्राप्त कर रहा है, वह उसके भविष्य के जीवन में उपयोगी रहे।

डॉ. अंबेडकर शिक्षकों के साथ-साथ विद्यार्थियों में भी ईमानदारी, परिश्रम एवं अन्य नैतिक गुणों का समावेश चाहते थे। वे यह मानते थे कि किसी समाज की प्रगति उस समाज के बुद्धिमान, कर्मठ एवं उत्साही विद्यार्थियों पर निर्भर करता है। जब समाज जागृत, सुशिक्षित एवं स्वाभिमानी होगा, तभी उसका विकास होगा। अपने गरीब और अज्ञानी भाईयों की सेवा प्रत्येक शिक्षित नागरिक का प्रथम कर्तव्य है। अधिकांश लोग बड़े पद पाते ही अपने असंख्य अशिक्षित भाईयों को भूल जाते हैं। यह समाज के प्रति घोर अपराध है।

उन्हेंने शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं आमजनों के लिए बौद्व धर्म का समर्थन किया है जो नैतिकता एवं सुशिक्षा का पर्याय है। बौद्व धर्मग्रंथ 'महामंगलसूत्र' में 35 नैतिक कर्म बताए गए हैं। ये हैं[11] -

1. मूर्खों की संगति न करना, 2. बुद्विमानों की संगति करना, 3. पूज्यों की पूजा करना, 4. अनुकूल स्थानों पर निवास करना, 5. पूर्व जन्म के संचित पुण्य का होना, 6. अपने को सन्मार्ग का लगाना, 7. बहुश्रुत होना, 8. शिल्प सीखना, 9. शिष्ट होना, 10. सुशिक्षित होना, 11. मीठा बोलना, 12. माता-पिता की सेवा करना, 13. पुत्र-स्त्री का पालन-पोषण करना, 14. व्यर्थ (गड़बड़) के काम न करना, 15. दान देना, 16. धर्माचरण करना, 17. बन्धु-बांधवों का आदर-सत्कार करना, 18. निर्दोष कार्य करना 19. मन-वचन और शरीर से पापों का त्यागना, 20. मद्यपान न करना, 21. धार्मिक कार्यों में तत्पर रहना, 22. गौरव करना, 23. नम्र होना, 24. संतुष्ट रहना, 25. कृतज्ञ होना, 26. उचित समय पर धर्म का श्रवण करना, 27. क्षमाशील होना, 28. आज्ञाकारी होना, 29. श्रमणों का दर्शन करना, 30. उचित समय पर धार्मिक चर्चा करना, 31. ब्रह्मचर्य का पालन करना, 32. चित्त को लोक धर्म से विचलित न करना, 33. निःशोक रहना, 34. निर्मल रहना और 35. निर्भय रहना।

डॉ. अंबेडकर के अथक संघर्ष एवं दूरगामी सोच की ही यह फलश्रुति है कि आज दलितों की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं शैक्षणिक स्थिति कुछ बेहतर हुई है, लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि ऐसे नव विकसित दलितों में भी प्रायः सभी ब्राह्मणवादी बुराइयाँ घर कर गई हैं। ये नवब्राह्मणवादी दलित भी यह चाहते हैं कि दलितों के लिए निर्धारित सभी हक-अधिकार एवं सुविधाएँ उनके ही हिस्से आएँ, इसमें सामान्य दलितों की हिस्सेदारी एवं भागीदारी नहीं हो। ऐसे स्वार्थी दलितों के बारे में डॉ.

अंबेडकर ने स्वयं कहा था, "मैं जो कुछ भी प्राप्त कर सका, उनसे कुछ पढ़े-लिखे लोग ही मजे ले रहे हैं। वे अपने कपटपूर्ण क्रियाकलापों के कारण बिल्कुल व्यर्थ हैं। उनके मन में अपने दलित भाइयों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं है। ... वे केवल अपने लिए और अपने हित लाभ के लिए जी रहे हैं।"[12] डॉ. अंबेडकर की यह पीड़ा मौजूदा शिक्षा-व्यवस्था के लिए भी एक सबक है। आखिर क्यों हम शिक्षित तबकों में मानवीय मूल्यों, नैतिक संस्कारों एवं सामाजिक सरोकारों को भर पाने में सफल नहीं हो पा रहे हैं या इस ओर ध्यान ही नहीं दे रहे हैं!

डॉ. अंबेडकर एक महान राष्ट्रभक्त और भारतीयता के प्रबल समर्थक थे। इसलिए वे पश्चिमी-शिक्षा की बजाय भारतीय परंपरा से निकली बौद्ध-शिक्षा की हिमायत करते थे, लेकिन दुर्भाग्य से अंबेडकर की बातों को ठीक ढंग से नहीं समझा गया।[13] उनके द्वारा हिंदू धर्म की कुरीतियों के विरोध को भारतीयता का विरोध एवं पश्चिमीकरण का समर्थन मान लिया गया, लेकिन यह अंबेडकर-दर्शन की मूल भावना के बिल्कुल विपरीत है। ऐसे में हमें पुनः बौद्ध-दर्शन में निहित भारत की सच्ची शिक्षा-नीति के आलोक में अपनी नई वैज्ञानिक एवं लोकतांत्रिक शिक्षा-व्यवस्था के पुनर्निर्माण की जरूरत है। लेकिन, स्वतंत्र भारत की सरकारों ने भी अक्षर-ज्ञान एवं पश्चिमी विज्ञान को ही अपना आदर्श माना और तथाकथित प्रगतिशिलता के नाम पर नीति एवं धर्म से शिक्षा का संबंध-विच्छेद कर दिया। यह स्थिति आज भी कायम है। हमारी सरकारें दर्शनशास्त्र एवं साहित्य आदि के अध्ययन-अध्यापन की उपेक्षा कर एमबीए, मैनेजमेंट आदि पाठ्यक्रमों को बढ़ावा दे रही है।[14] अपने आपको डॉ. अंबेडकर का अनुयायी कहने वाले कुछ तथाकथित दलित विचारक भी 'अंग्रेजी माता' एवं 'मैनेजमेंट पिता' के सहारे दलितोत्थान का ख्वाब देख रहे हैं,[15] लेकिन वास्तविकता यह है कि 'अंग्रेजी-मैनेजमेंट' के सहारे एक दो प्रभुवर्गीय ब्राह्मण या दलित का विकास भले हो जाए, सर्वोदय या सामाजिक न्याय कभी नहीं आ सकता।

संदर्भ ग्रथ सूची :-

1. चन्द्र, सुभाष; डॉ. अंबेडकर से दोस्ती : समता एवं मुक्ति, साहित्य उपक्रम, नई दिल्ली, पृ. 25-27.

2. अंबेडकर, डॉ. बी. आर.; डॉ. अंबेडकर ने कहा, संपादक : अनीता कुमारी, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, संस्करण-2010, पृ. 13.

3. प्रज्ञाचक्षु, डॉ. सुकन पासवान; केवल दलितों के मसीहा नहीं हैं अंबेडकर, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2011, पृ. 134.

4. अंबेडकर, डॉ. बी. आर.; बाबा साहेब अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड : 3, प्रधान संपादक : डॉ. श्याम सिंह शशि, संपादक : कैलाश चंद्र सेठ एवं भारतीय नरसिंहमन, डॉ. अंबेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-मार्च 1994, पृ. 56.

5. जाटव, डॉ. डी. आर.; डॉ. अंबेडकर का मानववादी चिंतन, समता साहित्य सदन, जयपुर (राजस्थान), प्रथम संस्करण-1993, पृ. 10.

6. हिलसायन, सुधीर; 'ज्ञान के प्रतीक बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर' , सामाजिक न्याय संदेश, डॉ. अंबेडकर फाउंडेशन, नई दिल्ली, जुलाई 2016, पृ. 2.

7. अंबेडकर, डॉ. बी. आर; बाबा साहेब अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड : 3, पूर्वोक्त, पृ. 186.

8. भारती, कँवल; समाजवादी आंबेडकर, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ. 150-151.

9. अंबेडकर, डॉ. बी. आर.; और बाबा साहेब अंबेडकर ने कहा ..., खंड : 5, संपादक : डॉ. एल. जी. मेश्राम 'विमलकीर्त्ति' , राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2008, पृ. 148.

10. सुत्तनिपात, 2/4 महामंगलसुत्त.

11. डॉ. धर्मकीर्ति; 'डॉ. अंबेडकर और उनका शिक्षा-सिद्धांत' , सामाजिक न्याय संदेश, डॉ. अंबेडकर फाउंडेशन, नई दिल्ली, जुलाई 2014, पृ. 14-15.

12. रत्तु, नानक चंद; डॉ. अंबेडकर : जीवन के अंतिम कुछ वर्ष, अनुवादक : डॉ. आर. बी. लाल, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.

13. शेखर, सुधांशु; 'शिक्षा और सामाजिक न्याय : संदर्भ डॉ. अंबेडकर' , अनुप्रयुक्त दर्शन तथा नीतिशास्त्र के आयाम, संपादक :अम्बिकादत्त शर्मा, कंचन सक्सेना, शैलेश कुमार सिंह एवं दिलीप चारण, अखिल भारतीय दर्शन परिषद्, भारत एवं न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 276.

14. शेखर, सुधांशु; 'हिंद स्वराज्य का शिक्षा-दर्शन' , शिक्षा-दर्शन, संपादक : डॉ. मुकेश कुमार एवं सुधांशु शेखर, जागृति साहित्य प्रकाशन, पटना (बिहार), 2010, पृ. 176.

15. शेखर, सुधांशु; सामाजिक न्याय: अंबेडकर-विचार और आधुनिक संदर्भ, दर्शना पब्लिकेशन, भागलपुर (बिहार), 2014, पृ. 46

.***

6. ग्रामीण एवं शहरी छात्रों के सीखने और प्रदर्शन की गुणवत्ता का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. मोज़फ़्फ़र ईस्लाम*

शिक्षा ही विकास की पूर्णता की अभिव्यक्ति है। शिक्षा के द्वारा ही इच्छा शक्ति पर सार्थक नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। शिक्षा से ही व्यक्ति सही रूप में चिंतन करना सीखता है। शिक्षा व्यक्तियों का निर्माण तथा चरित्र को उत्कृष्ठ बनाती है। शिक्षा एक साधन है, जो व्यक्ति के नैतिक, शारीरिक, संवेगात्मक बौद्धिक एवं आंतरिक ज्ञान को बाहर लाने में योग देने वाली एक क्रिया है। इस प्रकार हम कह सकते है कि व्यक्ति के जीवन में शिक्षा ऐसा परिर्वतन लाती है। जिससे वह निरंतर उत्कृष्टता की ओर अग्रसर हो सकता है। सामाजिक अन्तःक्रिया कई रूपों में होती है। प्रथमतः प्रतिद्वंद्विता का रूप है जिसमें अविभाज्य लक्ष्य को दो या दो से अधिक व्यक्ति प्राप्त करना चाहते हैं और उसके लिए संघर्ष करते हैं। दूसरा रूप सहयोग का है। इसमें सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सामूहिक प्रयत्न होता है। व्यक्तिगत उपलब्धियों के लिए प्रतिद्वंद्विता एवं सामूहिक उपलब्धि के लिए सहयोग अत्यावश्यक सामाजिक अन्तःक्रिया है। सामाजिक अन्तःक्रिया का तीसरा रूप संघर्ष है। संघर्ष में पारस्परिक विरोध होता है। समंजन चौथा रूप है। समंजन में पारस्परिक अनुकूलन निहित है। सामाजिक अन्तःक्रिया का परिणाम हम दूसरों की रुचियों के साथ तादात्म्य के रूप में देखते हैं। संकेत एवं अनुकरण भी प्रभावशाली अन्तःक्रियाएँ हैं। इन अन्तःक्रियाओं से बालक का समाजीकरण होता है।

1- प्रस्तावना

शिक्षा प्रणाली मानव की योग्यताओं के अधिकतम विकास की एक सर्वाधिक सरल, व्यवस्थित एवं प्रभावी प्रक्रिया है, जो उसके ज्ञान, बोध एवं कौशल में वृद्धि करती है। शिक्षा प्रणाली को और अधिक सशक्त बनाने में सूचना प्रौद्योगिकी की नवीनतम तकनीकियों, नवाचारों, उपकरणों तथा जनसंचार माध्यमों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है तथा ज्ञान प्राप्ति एवं कौशल विकास के नये द्वार खोल दिए हैं। शैक्षिक उपलब्धि का महत्व प्रत्येक शिक्षण कार्य में अत्यन्त आवश्यक है इससे विद्यार्थी की बौद्धिक स्तर के उन्नयन का पता चलता है।

2- शिक्षा

* **सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, दरभंगा, बिहार**

"शिक्षा बालक की सर्वांगीण उन्नति का अत्यन्तम साधन है, उसके व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का सोपान है। शिक्षा, बालक के अन्तरनिहित शक्तियों को उभारकर उन्हें पूर्ण विकसित करती है। यह वह ज्ञान है, जो बालक रूपी हीरे की क्रश्मल रूपी बुराईयों को दूर कर, उसके आन्तरिक गुणों को जगमगा देता है, जिसके प्रकाश में बालक स्वयं अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता है और समाज को भी लाभ पहुँचाता है।शिक्षा का वास्तविक उदेश्य मानवीय गुणों, ज्ञान एवं अनुभवों में सर्वसम्पन्नता एवं अन्तरनिहित शक्तियों का समुचित विकास करना है।

3- विद्यालय :-

के. पी. सैयदेन के अनुसार- "विद्यालय को सामाजिक जीवन का एक आदर्श निचोड़ होना चाहिए। उसे अपने परिवेश में समाज की सीमा मुख्य उपयोगी गतिविधियों को स्थान प्रदान करना चाहिए।"

विद्यालय को समाज का लघु रूप माना गया है, अब तक विद्यालय का कार्य परम्परागत विषय पर परम्परागत ढंग से शिक्षण करने तक सीमित था। पाठयपुस्तकों के आधार पर पाठयक्रम के अनुसार विद्यार्थियों को केवल सूचनाएँ दी जाती हैं। आज भी निरीक्षण एवं परीक्षाएँ इसी सूचनात्मक पक्ष पर बल देती हैं। यह सत्य है कि सूचनाएँ शिक्षा का आवश्यक अंग हैं, लेकिन शिक्षा के साथ ज्ञान भी बहुत आवश्यक है। आधुनिक युग में शिक्षा शास्त्रियों द्वारा इस तथ्य की अनुभूति ने विद्यालय की इस परम्परागत धारणा को समाप्त करने पर बल दिया।

1- भारत में ग्रामीण शिक्षा

भारत की ज्यादातर आबादी आज भी गाँवों में बसती है इसलिए भारत में ग्रामीण शिक्षा का विषय अत्यंत महत्वपूर्ण है। 'शिक्षा की वार्षिक स्थिति पर रिपोर्ट' नाम के सर्वे से पता चलता है कि भले ही ग्रामीण छात्रों के स्कूल जाने की संख्या बढ़ रही हो पर इनमें से आधे से ज्यादा छात्र दूसरी कक्षा तक की किताब पढ़ने में असमर्थ हैं और सरल गणितीय सवाल भी हल नहीं कर पाते। इतना ही नहीं गणित और पढ़ने का स्तर भी घटता जा रहा है। भले ही प्रयास किए जा रहे हों पर उनकी दिशा सही नहीं है। सर्वे में इसे लेकर जो कारण बताया गया है वो एक से ज्यादा ग्रेड के लिए एकल कक्षा की बढ़ती संख्या है। कुछ राज्यों में छात्रों और शिक्षकों की हाजिरी में भी कमी आ रही है। यह कुछ कारण हैं जिनकी वजह से भारत में ग्रामीण शिक्षा विफल रही है।

शिक्षा की गुणवत्ता और उसकी पहुंच भी ग्रामीण स्कूलों की चिंता का प्रमुख विषय है और वहां शिक्षकों की कम प्रतिबद्धता, स्कूलों में पाठ्य पुस्तकों की कमी और पढ़ने के सामान की कमी भी है। यूं

तो सरकारी स्कूल हैं लेकिन निजी स्कूलों की तुलना में उनकी गुणवत्ता एक प्रमुख मुद्दा है। गाँवों में रहने वाले ज्यादातर लोग शिक्षा की महत्ता को समझ चुके हैं और यह भी जानते हैं कि गरीबी से निकलने का यही एक रास्ता है। लेकिन पैसों की कमी के कारण वे लोग अपने बच्चों को निजी स्कूलों में नहीं भेज पाते और शिक्षा के लिए सरकारी स्कूलों पर निर्भर रहते हैं। इस सबके अलावा कुछ सरकारी स्कूलों में पूरे स्कूल के लिए सिर्फ एक ही शिक्षक होता है और यदि वह भी काम पर ना आए तो स्कूल की छुट्टी रहती है। यदि इन स्कूलों में क्वालिटी के साथ साथ शिक्षकों की संख्या, वो भी प्रतिबद्ध शिक्षकों की संख्या बढ़ाई जाए तो इच्छुक ग्रामीण बच्चे और भारत देश कुछ महान काम करके अपने सपनों को साकार कर सकता है।

2- वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षा की अवधारणा

समाज, व्यक्ति और परिवार अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्थाएँ है। व्यक्ति और समाज परस्पर विलग नहीं किए जा सकते। व्यक्ति का विकास परिवार एवं समाज में रहकर होता है। प्रारम्भ में बालक अपने माता-पिता, रिश्तेदार, मित्रमण्डली व स्कूल के साथियों के साथ रहते हुए अधिगम प्राप्त करता है। समाज एवं परिवार ऐसी संस्थाएँ हैं जो बालक के भाष्य कण विनिर्धारण करती है। अतः जिस समाज में शासक रहता है उसके विभिन्न मूल्यों को आत्मसात करना स्वाभाविक है।

3- शहरी क्षेत्र

प्रसिद्ध समाजशास्त्री लुइसवर्थ ने समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए लिखा है कि समाजशास्त्रीय –दृष्टिकोण से एक नगर की परिभाषा सामाजिक भिन्नता वाले व्यक्तियों के बड़े, घने बसे हुये एवं स्थाई निवास के रूप में की जा सकती है।

बिलकॉक्स के मतानुसार - जहाँ मुख्य व्यवसाय कृषि है उसे ग्रामीण तथा जहाँ अन्य व्यवसाय प्रचलित है उसे शहरी क्षेत्र कहेंगे।

4- ग्रामीण क्षेत्र

एक ग्रामीण समुदाय संघ का वह स्वरूप है जो एक स्थानीय क्षेत्र में जनता और उसकी संस्थाओं के बीच पाया जाता है। वे बिखरे हुए खेतों में झोपड़ियों में एक समूह बनाकर रहते हैं उसे ग्राम कहते हैं और प्रायः वही उसकी गतिविधियों का केन्द्र होता है। इनसाइक्लोपीडिया और सोशल साइन्सेज का कथन है कि एकाकी परिवार से बड़ा सम्बन्धित एवं असम्बन्धित लोगों का समूह जो एक बड़े मकान अथवा निवास के अनेकों स्थानों पर रहता है, घनिष्ठ संबंधों में आबद्ध हो तथा कृषि योग्य भूमि पर मूल रूप से

संयुक्त रूप में कृषि करता हो वह ग्राम कहलाता है।

5- सम्बंधित साहित्य

पणिग्रही मानस राजन **2005** द्वारा ''एकेडमिक अचीवमेंट इन रिलेशन टू इटेंलीजेंस एण्ड सोसियो इकोनॉमिक स्टेटस ऑफ हाईस्कूल स्टूडेन्टस 11 विषय पर शोधकार्य किया गया। इस शोधकार्य में इन्होंने X वीं कक्षा में पढ़ने वाले 100 विद्यार्थियों का चयन न्यादर्श के रूप में किया, जिसमें विभिन्न विद्यालयों के 50 छात्र एवं 50 छात्राऐं शामिल थीं। उचित प्रमाणीकृत परीक्षणों द्वारा छात्रों की बुद्धिमत्ता एवं सामाजिक आर्थिक स्तर का मापन किया गया जिसमें विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं बुद्धिमत्ता के मध्य धनात्मक सह सम्बन्ध पाया गया, जबकि शैक्षिक उपलब्धि एवं सामाजिक आर्थिक स्तर के सापेक्ष परस्पर निम्न धनात्मक सह सम्बन्ध पाया गया।

बैरी जेनीफर **2005** द्वारा ''द इफेक्ट ऑफ सोसियो इकोनॉमिक स्टेटस ऑन एकेडमिक अचीवमेंटश्श् विषय पर शोधकार्य किया गया। इस शोधकार्य में इन्होंने 10 वीं कक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थियों को समग्र के रूप में प्रयोग किया। प्रमाणीकृत परीक्षण द्वारा विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर का निर्धारण किया गया। सामाजिक आर्थिक स्तर मापने हेतु विभिन्न कारकों जैसे- विद्यालय, परिवार आदि कारकों का चयन किया गया। शोधकर्ता द्वारा निष्कर्ष निकाला गया कि विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं सामाजिक-आर्थिक स्तर के मध्य निम्न श्रेणी का धनात्मक सहसम्बन्ध है।

जे. विजयलक्ष्मी एवं पी. लवान्या **2006** द्वारा रिलेशनशिप बिटवीन स्टैंस एण्ड मैथमेटिक्स अचीवमेंट अमंग इण्टरमीडिएट स्टूडेन्टस विषय पर शोधकार्य किया गया। इस शोधकार्य में शोधकर्ताओं द्वारा 11वीं और 12वीं कक्षाओं में अध्ययनरत 180 विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक विधि से न्यादर्श के रूप में किया। शोधकर्ताओं द्वारा निष्कर्ष निकाला गया कि जिन छात्रों के पिछली कक्षा में गणित में अधिक अंक हैं, उनमें कम तनाव है। शोधकर्ताओं ने अपनी दूसरी परिकल्पना में पाया कि छात्राओं की अपेक्षा छात्र उच्च तनाव से ग्रसित है। अपनी तीसरी परिकल्पना में शोधकर्ताओं ने पाया कि 11वीं कक्षा के विद्यार्थियों में 12वीं कक्षा के विद्यार्थियों की अपेक्षा कम तनाव है, साथ ही साथ शोधकर्ताओं ने देखा कि शिक्षित माता-पिता वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा अशिक्षित माता-पिता वाले विद्यार्थियों में उच्च तनाव है।

मैथ्यू एवं जयन **2006** द्वारा एकेडमिक स्टैंस एण्ड कोपिंग स्टाइल अमंग प्लस टू स्टूडेंटस विषय पर शोधकार्य किया गया। इस शोधकार्य में शोधकर्ताओं द्वारा 12वीं कक्षा में अध्ययनरत 100 विद्यार्थियों का चयन किया गया, जिनमें 50 छात्र एवं 50 छात्राएँ सम्मिलित थे। उचित प्रमापीकृत परीक्षणों का प्रयोग

शोधकार्य में किया गया। शोधकर्ताओं द्वारा निष्कर्ष निकाला गया कि विद्यालयी परिस्थितियाँ समान हों तो छात्र एवं छात्राओं में मामूली शैक्षिक तनाव ह ता है। 0.05 सार्थकता स्तर पर अध्ययन करने पर पाया गया कि छात्र एवं छात्राओं के शैक्षिक तनाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

आर.अरूना एवं राव किरन **2007** द्वारा ''अटैचमेंट स्टाइल इन रिलेशन टू फैमिली फंग्सनिंग एण्ड डिस्टैंस इन कालेज स्टूडेंटस विषय पर शोधकार्य किया गया। इस शोधकार्य में शोधकर्ता द्वारा स्नातक महाविद्यालयों के छात्र-छात्राओं में से 327 विद्यार्थियों का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया। शोधकर्ताओं द्वारा निष्कर्ष निकाला गया कि यदि कार्यावली की जानकारी विद्यार्थियों को काफी पहले से हो तो उनके तनाव का स्तर काफी कम हो जाता है।

गनेश एम.पी. एवं मग्धालिन सुजारिथा **2007** द्वारा ''अटैचमेंट स्टाइल इन रिलेशन टू फैमिली फंग्सनिंग एण्ड डिस्टैंस इन कालेज स्टूडेंटस विषय पर शोध कार्य किया गया। इस शोधकार्य में शोधकर्ताओं द्वारा न्यादर्श के रूप में 80 लड़कों का चयन किया गया। जिसमें 40 लड़के एकल परिवार से लिऐ गए जबकि अन्य 40 लड़के संयुक्त परिवारों से लिए गए, जो लगभग समान आयुवर्ग एवं सामाजिक-आर्थिक स्तर से सम्बन्ध रखते थे। उपकरण के रूप में प्रमापीकृत, राजेन्द्र द्वारा निर्मित शैक्षिक तनाव प्रश्नावली का प्रयोग किया गया। शोधकर्ताओं ने निष्कर्ष निकाला कि संयुक्त परिवारों से लिए गए लड़के एकल परिवारों से लिए गए लड़कों की अपेक्षा उच्च शैक्षिक तनाव रखते हैं।

अकबर हुसैन **2008** द्वारा एकेडमिक स्टैंस एण्ड एडजस्टमेंट अमंग हाईस्कूल स्टूडेंटस विषय पर शोध कार्य में शोधकर्ता द्वारा न्यादर्श के रूप में कक्षा 9वीं के 100 विद्यार्थियों का यादृच्छिक विधि से चयन किया गया, जिसमें 50 सरकारी अनुदानित विद्यालयों के तथा 50 स्ववित्तपोषित विद्यालयों के विद्यार्थी थे। उपकरण के रूप में शैक्षिक तनाव मापने हेतु सिन्हा एवं सिन्हा की शैक्षिक तनाव मापनी का प्रयोग किया गया तथा समायोजन मापने हेतु समायोजन सूची का प्रयोग किया गया। शोधकर्ता द्वारा निष्कर्ष निकाला गया कि स्ववित्तपोषित विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों का शैक्षिक तनाव सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है, जबकि सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में स्ववित्तपोषित विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अपेक्षा समायोजन की क्षमता अधिक है।

6- शोध-विधि

प्रस्तुत अध्ययन की विधि सर्वेक्षण है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में हमारे शैक्षिक, आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में शोध का विशेष महत्व है। समाज और राष्ट्र की प्रगति को शोध के परिणामों द्वारा

पहचाना जाता है, क्योंकि समाज और राष्ट्र की मूल समस्याओं का समाधान शोधकार्यों द्वारा किया जाता है। शोध कार्यों द्वारा ज्ञान वृद्धि के साथ मानव विकास तथा कल्याण को महत्व दिया जाता है। विधि अनुसंधान क्रिया को सम्पादित करने का एक ढंग है जो समस्या की प्रकृति के द्वारा निर्धारित होती है।

निर्धारित न्यादर्श संख्या की चयन विधियाँ

प्रस्तुत अध्ययन में विद्यालय सर्वेक्षण के लिए इलाहबाद के माध्यमिक विद्यालयों का चयन किया गया है। इस शोध में 600 (ग्रामीण 300 व शहरी 300) विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया है।

प्रदत्तों का संकलन एवं व्यवस्थापन

प्रस्तुत शोध अध्ययन सर्वेक्षण पर आधारित है। किसी भी प्रकार के सर्वेक्षण कार्य की सफलता उसके उपकरण पर निर्भर करती है, यदि उपकरण का प्रयोग या प्रशासन उचित प्रकार से उचित ढंग से नहीं किया जाता है तो उसके द्वारा प्राप्त निष्कर्ष भी पूर्ण विश्वासनीय नहीं होते। यही कारण है कि उपकरण के प्रयोग में अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता होती है। किसी भी शोध अध्ययन को आगे बढ़ाने के लिए सर्वप्रथम प्रदत्तों को संकलित करने की आवश्यकता होती है।

वर्तमान प्राप्त आँकड़ों के आधार पर तथ्यों को सारणीबद्ध रूप में प्रस्तुत कर उनका साख्यिकीय विश्लेषण एवं व्याख्या को प्रस्तुत किया गया है।

ग्रामीण एवं नगरीय छात्रों की सीखने की क्षमता में सार्थक अंतर नहीं है।

सारणी सं. 1

ग्रामीण एवं नगरीय छात्रों की सीखने की क्षमता के मध्यमान एवं मानक विचलन की स्थिति

संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मान	सार्थकता	संख्या
ग्रामीण	100	9-03	3-99	4881-00	< 0.05 पर सार्थक नहीं हैं।
नगरीय	100	9-20	3-95		

चित्र. सं. **1**

ग्रामीण एवं नगरीय छात्रों की सीखने की क्षमता के मध्यमानों की तुलनात्मक की स्थिति सारणी संख्या 9 एवं चित्र संख्या 9 के अवलोकन से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों की सीखने की क्षमता के स्तर का मध्यमान 9.03 एवं मानक विचलन 3.99 है जबकि नगरीय क्षेत्र के छात्रोंकी सीखने की क्षमता के स्तर का मध्यमान 9.20एवं मानक विचलन 3.95है।

परिणाम

- ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों के सीखने की क्षमता के अभिरूचि के स्तर नगरीय क्षेत्र के छात्रोंकी अपेक्षा निम्न है।
- छात्रों के सीखने की क्षमता के अभिरूचि में उनके ग्रामीण एवं नगरीयआवासीय स्थिति में सार्थक अन्तर पाया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है अध्ययनरत छात्रों के सीखने की क्षमता के अभिरुचि पर उनके ग्रामीण एवं नगरीय आवासीय स्थिति का प्रभाव पड़ता हैं।

ग्रामीण एवं नगरीय छात्रों की शैक्षिक प्रदर्शन में सार्थक अंतर नहीं है।

सारणी सं. **2**

ग्रामीण एवं नगरीय छात्रों की शैक्षिक प्रदर्शन के मध्यमान एवं मानक विचलन की स्थिति

संख्या छ	मध्यमान डम्।छ	मानक विचलन क्	मान	सार्थकता	संख्या छ
ग्रामीण	100	8-69	4-41	4754-00	< 0.05 पर सार्थक नहीं हैं।
नगरीय	100	8-88	3-66		

चित्र. सं. **2** ग्रामीण एवं नगरीय छात्रों की शैक्षिक प्रदर्शन के मध्यमानों की तुलनात्मक स्थिति सारणी संख्या 10 एवं चित्र संख्या 10 के अवलोकन से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों की शैक्षिक प्रदर्शन के स्तर का मध्यमान 8.69 एवं मानक विचलन 4.41है जबकि नगरीय क्षेत्र के छात्रोंकी शैक्षिक प्रदर्शन के स्तर का मध्यमान 8.88 एवं मानक विचलन 3.66 है।

परिणाम

- ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों के शैक्षिक प्रदर्शन के स्तर नगरीय क्षेत्र के छात्रों की अपेक्षा निम्न है।
- छात्रोंके शैक्षिक प्रदर्शन में उनके ग्रामीण एवं नगरीय आवासीय स्थिति में सार्थक अन्तर पाया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है अध्ययनरत छात्रों के शैक्षिक प्रदर्शन पर उनके ग्रामीण एवं नगरीय आवासीय स्थिति का प्रभाव पड़ता है।

उपसंहार

ग्रामीण विद्यार्थियों को शिक्षा ग्रहण करने के लिए शैक्षिक समस्याओं के साथ-साथ अन्य अनेक समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। फलस्वरूपये शिक्षा से वंचित रह जाते हैं अथवा अपव्यय या अवरोधन की स्थिति आने पर शिक्षा से पिछड़ जाते हैं ये ग्रामीण विद्यार्थी निम्न पारिवारिक व आर्थिक स्थिति के कारण साधन सुविधाएँ उपलब्ध नहीं कर सकते हैं। शैक्षिक समस्याओं के कारण स्वयं का स्कूल में समायोजन नहीं कर सकते, या निम्न जाति में पैदा होने के कारण जब इन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता है तो ये पलायन कर जाते हैं। अतः यदि ग्रामीण वर्ग में शैक्षिक जागरूकता लानी है, उन्हें सभ्य बनाना है तो उनके आकांक्षा-स्तर, पारिवारिक वातावरण एवं शैक्षिक समस्याओं की तरफ उचित ध्यान देना होगा। साथ ही मार्ग में आने वाली सभी कठिनाइयों को दूर करना होगा क्योंकि शिक्षा के माध्यम से ही जनक्रान्ति लाई जा सकती है। अज्ञानता, दरिद्रता तथा सामाजिक कुप्रथाओं का अन्त करके प्रत्येक नागरिक को आगे बढ़ने का अवसर सुलभ करवाया जा सकता है। संसाधनों के अभावों को दूर किया जा सकता है, ताकि प्रत्येक वर्ग चाहे वह ग्रामीण वर्ग ही क्यों न हो उसका हर विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करके देश का गौरवमय विकास करने में अपना योगदान दे सके।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. पणिग्रही मानस राजन (2005), एकेडमिक अचीवमेंट इन रिलेशन टू इ डेंटलीजेंस एण्ड सोसियो इकोनॉमिक स्टेटस ऑफ हाईस्कूल स्टूडेन्टस, एडूटैक, नीलकमल पब्लिकेशन, हैदराबाद, वोल्यूम नं.: 5, पेज नं.: 26-27
2. बैरी जेनीफर (2005), द इफेक्ट ऑफ सोसियो - इकोनोमिक स्टेटस ऑन अकेडमिक अचीवमेंट डिपार्टमेंट ऑफ सोसियोलॉजी बैचलर ऑफ आर्ट, विचिता स्टेट यूनीवर्सिटी, यू.एस.ए.
3. जे. विजयालक्ष्मी, पी. लवान्या (2006), रिलेशनशिप बिटवीन स्टैस एण्ड मेथमेटिक्स अचीवमेंट अमंग इण्टरमीडिएट स्टूडेंटस, एडूट ट्रैक, नीलकमल पब्लिकेशन, हैदराबाद, वोल्यूम नं.: 5, पेज नं. : 34-37

4. मैथ्यू बी.एड. जयन सी. (2006), एकेडमिक स्टैस एण्ड कॉपिंग स्टाइल अमंग प्लस टू स्टूडेंटस, इण्डियन साइकोलॉजीकल रिव्यू, वोल्यूम नं. : 66 (1), पेज नं. : 41-48
5. आर.अरूना, राव किरन (2007), अटैचमेंट स्टाइल इन रिलेशन टू फैमिली फंसनिंग एण्ड डिस्टैस इन कॉलेज स्टूडेंटस, एडूटैक, नीलकमल पब्लिकेशन्स, हैदराबाद, वोल्यूम नं. : 33, पेज नं. : 15-22
6. ण् एम.पी. गनेश एण्ड मग्धालिन सुजारिया (2007), अटैचमेंट स्टाइल इन रिलेशन टू फेमिली फंसनिंग एण्ड डिस्टैस इन कालेज स्टॅडेंटस, एडूटैक, नीलकमल पब्लिकेशन, हैदराबाद, वोल्यूम नं.: डी 33, पेज नं.: 53-56
7. अकबर हुसैन (2008), अकेडमिक स्टैस एण्ड एडजस्टमेंट अमंग हाईस्कूल स्टूडेंटस, जामियाँ मिलिया इस्लामियाँ, न्यू दलही, वोल्यूम नं. : 34, पेज नं. : 70-73

***

7. नई शिक्षा नीति प्रारुप 2019 में दिव्यांगों के लिए प्रावधान

सौरभ राय*

मो. फैज्जुल्ला खाँ**

भारत एक महान प्राचीन देश है जहाँ उच्च शिक्षा के लिए नालंदा एवं तक्षशिला जैसे प्राचीन विश्वविद्यालय मौजूद थे लेकिन भारत जैसे देश में वर्तमान उच्च शिक्षा दिव्यांजनों के लिए ना तो सुगम है ना सहज है और न ही उनके लिए ऐसी व्यवस्थाएँ मौजूद है, जिनके माध्यम से वे अपने उच्च शिक्षा के लक्ष्य को हासिल कर सकते हैं। के. बी. पवार के अनुसार, "पिछड़े वर्गो की शिक्षा, जिनमें विकलांग मौजूद हैं आत्यधिक अवहेलना झेल रहे हैं" (पवार, 2002), दुनिया में दिव्यांगों की शिक्षा के साथ जो अवहेलना हो रही है, उसको समझने के लिए ऐतिहासिक दृष्टि से देखना बहुत जरूरी है; क्योंकि निकोलस सान्डरसन, हेलन केलर और स्टीफन्स हॉकिन्स जैसे बड़े नाम दिव्यांगों के बीच मौजूद हैं। लेकिन आज भी विकासशील देशों में जैसे भारत में एन. सी. पी. ई. डी. पी. के अुनसार, "केवल 0 +56 प्रतिशत विशेष आवश्यकता वाले छात्र भारतीय विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों में मौजूद हैं" (एन. सी. पी. ई. डी. पी., 2014) है।

<u>दिव्यांगों की उच्च शिक्षा की ऐतिहासिक स्थिति</u> :

दिव्यांग लोग 6700 ई. पू दीर्घतमा के रूप में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। अष्टावक्र हो, धतराष्ट्र हो अथवा मलिक मोहम्मद जायसी हो, इनके उच्च शैक्षिक गुणों का लोहा सब मानते हैं। वहीं राणा सांगा, महाराजा रणजीत सिंह, कुंवर सिंह जैसे योद्धाओं ने भी अपना नाम इतिहास में दर्ज किया है। पाश्चात्य जगत में होमर, जॉन मिल्टन, डीडीमस और निकोलस सांन्डरसन, जैसे महान लेखक और विद्वान हुए। लेकिन 12वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड के राजा किंग एडवर्ड एवं 13वीं शताब्दी में पोप ग्रेगरी द्वारा इन्हें दया एवं सहानुभूति का पात्र माना गया। 12वीं से 16वीं शताब्दी तक यही क्रम चला और भीख मांगना दिव्यागों का मुख्य व्यवसाय माना जाने लगा। 16वीं और 17वीं शताब्दी में फ्रांस, अमेरिका, इग्लैण्ड, रुस आदि देशों में

* **सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली**

** **सहायक प्रोफेसर शिक्षण प्रशिक्षण एवं अनौपचारिक, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली**

जहाँ एक तरफ संघर्ष हो रहा था, वहीं दूसरी तरफ फ्रांस में श्रवण बाधितों, दृष्टि बाधितों एवं मानसिक मंदितों की शिक्षा का विकास हो रहा था। 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में दुनिया के विकसित देशों में दिव्यांगजनों के सशक्तीकरण एवं उनकी शिक्षा को लेकर तेजी से काम हुआ। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही कई देशों में एकीकृत शिक्षा का विकास हुआ, भारत में भी 1910 तक कुछ खास दिव्यांगों की शिक्षा को लेकर कोई चर्चा नही हुई थी। लेकिन उसके पश्चात प्रथम व द्वितीय विश्व युद्व के बाद भारत में भी कई विद्यालय दिव्यांगों के लिए खोले गए। भारतीय संकेत भाषा व भारतीय ब्रेल पर भी काम प्रारम्भ हुआ संयुक्त राज्य संघ द्वारा सभी देशों को अपने नागरिकों के हितों में कार्य करने के लिए अधिकार घोषणा पत्र और ऐसे घोषणा पत्र आते रहे और 1983 में विश्व विकलांग सशक्तीकरण दिवस मनाने की घोषणा संयुक्त राष्ट्र ने की और 3 दिसम्बर को विश्व विकलांग दिवस की घोषणा की गई।

भारत में सन् 1983 में दिल्ली की सड़कों पर एक भयावाह लाठीचार्ज हुआ, जो अपने अधिकारों के लिए आवाज उठा रहे दिव्यांगों पर किया गया, जिसके पश्चात संयुक्त राष्ट संघ द्वारा भारत को अपमानित करते हुए एक पत्र भेजा गया। इस पत्र में लिखा गया था, "यदि आपके यहाँ मौजूद विकलांग नहीं संभल रहे हैं, तो हमें दे दों" (मिश्र, 2008) इसके बाद भारत में इनको रोजगार देने की और इनका पुनर्वास करने की होड़ लगी, लेकिन उच्च शिक्षा प्राप्त न होने के कारण अधिकतम लोगों को चतुर्थ श्रेणी में नियुक्ति मिली। सन् 1986 भारत की नई शिक्षा नीति और मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम के लागू होने का वर्ष था। डॉ. विनोद कुमार मिश्र के अनुसार, "विकलांग लोग यह मान चुके थे कि वे इस देश में शिक्षा नीति का हिस्सा नहीं हैं" (मिश्र, 2008)।

सन् 1991 वह वर्ष था, जब दुनिया के विकसित देश समावेशी शिक्षा को अपना रहे थे और भारत में पहली बार संशोधित, शिक्षा नीति 1986 में विकलांगों के लिए विषयों को शामिल किया गया। सन् 1992 के भारतीय पुनर्वास परिषद् अधिनियम संशोधित शिक्षा नीति, 1992, जिसे कार्य योजना के नाम से जानते हैं।

सन् 1995 में अन्तरराष्ट्रीय दबाव, जो एशिया प्रशांत महासागरीय विकलांग सशक्तीकरण दशक के रूप में चल रहा था, से प्रभावित होकर विकलांगजन अधिनियम (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण एवं सम्पूर्ण भागीदारी) 1995 में लागू हुआ। आगे चलकर सन् 1997 से 2002 9वीं पंचवर्षीय योजना के तहत तीन योजनाएँ यू. जी. सी. द्वारा लागू की गई। पहली विशेष आवश्यकता वाले व्यक्तियों के लिए उच्च शिक्षा दूसरी विशेष शिक्षा शिक्षक शिक्षा योजना और तीसरी दृष्टि बाधित शिक्षकों हेतु वित्तीय सहायता योजना। सन् 1999 में राष्ट्रीय न्यास अधिनियम आया। सन् 2000 में सर्वशिक्षा अभियान, सन् 2008 में संयुक्त राष्ट्र विकलांग अधिकार घोषणा पत्र आया। सन् 2009 में शिक्षा का अधिकार कानून आया। सन् 2016 में दिव्यांगजन अधिकार

अधिनियम, 2016 आया, जो अप्रैल 2017 से लागू हुआ। ठीक इससे पहले 2013 में राष्ट्रीय उच्चतर उपकरण वितरण योजना आई। इन सभी काल खण्डों में हुई घटनाओं, योजनाओं, अधिनियमों के बावजूद आज भी दिव्यांगों की स्थिति उच्च शिक्षा में अत्यधिक दयनीय मालूम पड़ती है।

नई शिक्षा नीति 2019 का प्रारूप और उच्च शिक्षा में दिव्यांगों की वर्तमान स्थिति:

डॉ. विनोद कुमार मिश्र के अनुसार, "विकलांगों की शिक्षा की स्थिति अत्यधिक दयनीय है और प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक स्तर पर इतना अधिक कुसमामोजन और बाधा मुक्त वातावरण है कि विकलांग उच्च शिक्षा तक पहुँच ही नही पाते" (मिश्र, 2010)।

वर्तमान नई शिक्षा नीति का प्रारूप 2019 को समझने व पढ़ने पर ऐसा लगता है कि सम्भवत: सरकार के संवेदनशीलता के चलाये जा रहे सारे कार्यक्रम निराधार हो गए हैं। अलग-अलग मंत्रालयों द्वारा शिक्षा के ही विषयों पर कोई सामन्जस्य नहीं है; क्योंकि सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय द्वारा संचालित संस्थानों एवं आयोगों के लक्ष्यों से जुड़ी किसी भी बात का इस शिक्षा नीति को प्रारूप में शामिल नहीं किया गया है। इस प्रारूप के निर्माण के लिए जिन संस्थाओं और व्यक्तियों से परामर्श लिया गया है। उनमें कोई भी संस्था दिव्यांगों के लिए कार्य नहीं करती हैं। महत्वपूर्ण हस्तियों में केवल एक व्यक्ति श्री इमरान अली, जो अस्थि बाधित है और एन.सी.पी.ई.डी.पी. के अध्यक्ष हैं, को शामिल किया गया है। इसलिए यह शिक्षा नीति का प्रारूप सभी अर्थ में दिव्यांगों के प्रतिकूल ही माना जायेगा।

उच्च शिक्षा के सन्दर्भ में इस प्रारूप में ना तो किसी बाधा मुक्त वातावरण बनाने की चर्चा की गई है, ना ही अनुवादक, वाचक, लेखक की व्यवस्था की बात भी की गई है। ना तो यह नीति संयुक्त राष्ट्र विकलांग अधिकार घोषणा पत्र को समाहित करता है और ना उसके अनुसार है और ना ही यह दिव्यांग जन अधिकार अधिनियम, 2016 के अनुरूप है, जिसके कारण यदि यह प्रारूप नीति के रूप में भारत में लागू होता है, तो भारत में दिव्यांगजन की शिक्षा में स्थिति खासकर उच्च शिक्षा स्तर पर बिगड़ने के साथ-साथ संकटों से भरी बन जायेगी। इस स्थिति से निपटने के सुझाव निम्न प्रकार है।

नई शिक्षा नीति 2019 के प्रारूप में दिव्यांगजनों की उच्च शिक्षा के सन्दर्भ में सुझाव :

- नई शिक्षा नीति, 2019 के अन्तर्गत संस्थाओं के वर्गीकरण के सिद्वान्त को अपनाने का जो सूत्र इस्तेमाल किया गया है वह बिल्कुल गलत है क्योंकि किसी भी शिक्षक को केवल शिक्षण कार्य या केवल अनुसंधान कार्य के लिए बाधित नहीं किया जा सकता।
- नई शिक्षा नीति 2019 में सर्वाधिक विवादित प्रक्रिया नियुक्ति से सम्बन्धित है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के ऑकड़ो के अनुसार 12 +5 लाख सरकारी विद्यालयों में 15 लाख पद रिक्त है

जिनमे 5 +7 लाख पदों की नियुक्ति प्रक्रिया चल रही है। इतनी बड़ी संख्या में नियुक्तियों को देखते हुए किसी भी हाल में अत्यधिक लम्बी व बहुचरणीय नियुक्ति प्रक्रिया स्वीकृत नही की जा सकती। इसमें जल्द से जल्द सुधार जरूरी है।

- नई शिक्षा नीति 2019 के लिए सर्व प्रथम सरकार को सामाजिक न्याय व अधिकारिता मंत्रालय द्वारा संचालित दिव्यांगजनों से सम्बन्धित आयोगों की सिफारिशे लेनी चाहिए।
- नई शिक्षा नीति 2019 के लिए सर्व प्रथम सरकार को सामाजिक न्याय व अधिकारिता मंत्रालय द्वारा संचालित दिव्यांगजनों से सम्बन्धित आयोगों की सिफारिशें लेनी चाहिए।
- नई शिक्षा नीति 2019 के लिए सरकार को गैर-सरकारी एवं स्वयं सेवी संगठनों जो दिव्यांगों के लिए कार्य करती है से सीधे सलाह करनी चाहिए व मार्ग निर्देशन प्राप्त करना चाहिए।
- नई शिक्षा नीति 2019 में प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, उच्चतर माध्यमिक शिक्षा पर सहायक सेवाऐं, मूलभूत इमारती बदलाव, बाधा मुक्त वातावरण, अनुवादक, वाचक लेखक, सहायक उपकरण, विशेष शिक्षक एवं संसाधन कक्ष की उपलब्धता को सुनिशिचित करना चाहिए।
- नई शिक्षा नीति 2019 को देश के प्रत्येक जिले में एक आदर्श समावेशी विद्यालय की स्थापना को सुनिश्चित करना चाहिए।
- नई शिक्षा नीति 2019 को पूरे देश में दिव्यांगजनों की परीक्षा सम्बन्धी दिशा निर्देश को शामिल करना चाहिए जो 2013 और 2018 में मुख्य विकलांग आयुक्त द्वारा जारी किए गए है।
- नई शिक्षा नीति 2019 को केन्द्र व राज्य स्तर के सभी मंत्रालयों द्वारा जैसे मानव संसाधन विकास मंत्रालय, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय गृह मंत्रालय, अल्प संख्यक कार्य मंत्रालय आदि द्वारा संचालित सभी शिक्षण संस्थानों को चिन्हित कर उन्हें एक ही मंत्रालय के अन्तर्गत कर उनकी आवश्यकताओं के अनुसार नीतियों को निर्धारित करना चाहिए।
- नई शिक्षा नीति 2019 को सम्पूर्ण भारत में विश्वविद्यालयों, कालेजों एवं उच्च शिक्षा संस्थानों में विशेष प्रक्रिया द्वारा बाधा मुक्त वातावरण, अनुवादक, वाचक, लेखक, सहायक उपकरण एवं जागरूकता ईकाईयों की स्थापना करना चाहिए।
- नई शिक्षा नीति 2019 को देश के सभी केन्द्रीय एवं राज्य विश्वविद्यालयों में दिव्यांगजन शिक्षा विभाग की स्थापना करनी चाहिए जिसमें डिप्लोमा विशेष शिक्षा, स्नातक विशेष शिक्षा व स्नातकोत्तर विशेष शिक्षा व पी +एच +डी +विशेष शिक्षा पाठ्यक्रम चलाये जाये।
- नई शिक्षा नीति 2019 को बी +ए +बी +एड + चार वर्षीय पाठ्यक्रम के साथ-साथ बी +ए +बी +एड + विशेष शिक्षा विशेषज्ञा पाठ्यक्रम को भी मान्यता देनी चाहिए।
- नई शिक्षा नीति 2019 को उच्च शिक्षा संस्थानों में 1995 से अप्रैल 2017 तक और अप्रैल 2017 से अत तक की दिव्यांगजनों की बैकलॉग और वर्तमान चिन्हित आरक्षित पदों की भर्ती को शीघ्र अति शीघ्र पूर्ण करना सुनिशिचित करना चाहिए। जो शैक्षणिक व गैर शैक्षणिक दोनों ही वर्गो में हो।

- नई शिक्षा नीति 2019 को अपना प्रारूप संयुक्त राष्ट विकलांग घोषणापत्र 2008, शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रावधानों के अनुरूप संशोधित, परिवर्धित और अनुकूलित करना चाहिए।

भारतीय संविधान अपने प्रत्येक नागरिक को स्वावलम्बी रूप से जीने का अधिकार देता है। जिसकी पूर्ति करने के लिए वह उसे शिक्षा का अधिकार भी देता है। यदि कोई भी नीति किसी नागरिक, किसी समुदाय, किसी समूह विशेष को उसके अधिकारों से वंचित रखती है तो वह संशोधन योग्य है स्वीकार्य योग्य नही।

डॉ. स्वर्ण आहूजा के अनसार "विकास सतत् प्रक्रिया हो सकती है किन्तु जब तक इसका प्रसार समाज के प्रत्येक वर्ग तक नही है तब तक न तो विकास गति प्राप्त कर सकता है और ना ही सही स्थिति" (आहूजा, 2001)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. आहूजा, स्वर्ण (2009). दृष्टिहीनों का शिक्षण तथा पुनवार्स : प्रारम्भ व विकास, मुम्बई, भारत, नेशनल ऐसोसियेशन फॉर दी ब्लाइण्ड।
2. कुमारी, नूतन एँव कुमार, प्रवीन (2015) भारत में उच्च शिक्षा के वर्तमान परिदृष्य, अवसर एँव चुनौतियां - भविष्योन्मुखी दृष्टि, में पाल, सुरेन्द्र उच्च शिक्षा नई दिल्ली,
3. अर्जुन पब्लिसिंग हाउस। चन्द्र, अखिलेश एँव सिंह, गीता (2014) उच्च शिक्षा : दशा एँव दिशा, नई दिल्ली,
4. आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस। मिश्र, विनोद कुमार (2008) विकलांगों के अधिकार, कल्याणी शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली।
5. मिश्र, विनोद कुमार (2010) विकलांगों के लिए करियर, किताब घर, नई दिल्ली। श्रीवास्तव, संगीता, (2014) उच्च शिक्षा : नई दिल्ली, रिलांइस पब्लिशिंग हाउस।

1. aaneja, a. (2012). Combating Discrimination: Some Path-Breaking advocacy
2. Initiatives for the Visually Impaired. New Delhi, India. A.I.C.B. and CBM Fourth asia Regional office.
3. Das, B.B. (2006). Support Services for Disabled in India. Orissa. NYSASDRI.
4. Joseph, D. (2014). Enabling access for Persons with Disabilities to Higher Education and Workplace (Role* of ICT and assistive Technology). Banglore, Fourth Wave Foundation.

5. Powar, K. B. (2011). Indian Higher Education Revisited (Continuing Concerns and Emerging Issues). Delhi, India. Vikas Publishing House Pvt. Ltd.
6. Laxminarayan, K.R. (1999). Higher Education and the Blind in India, in Gunawathy Fernandez and Others, See with the Blind. Germany, CBM International.
7. Mani, M.N.G. (1999). Services for VI Person : Challenges for the Future, in
8. Gunawathy Fernandez and Other's, See with the Blind. Germany, CBM International.
9. N.C.E.R.T. (2006). Position Paper; National Focus Group on Education of Children with Special Needs. New Delhi, India. N.C.E.R.T.
10. NCPEDP. (6, APRIL, 2015). Only 0.56% of Disabled Students in Higher Education. THE TIMES OF INDIA. Lucknow, Page No.9.
11. Sriram (1999). Challenges of Higher Education, in Gunawathy Fernandez and Others, See with the Blind. Germany,CBM International.
12. UGC. (2012). Person with Disabilities Scheme in Universities XII. Plan (2012- 2017). New Delhi, India, University Grant Commission.
13. MHRD. (2014). Educational Statistics at a Glance. India. MHRD. Retrieved 22/06/2015 from http://mhrd.gov.in/sites/ upload_files/mhrd/files/ statistics/ EaG2014.pdf.
14. MSJE. (1995). The Persons with Disabilities (Equal Opportunities, Protection of Rights and Full Participation) act, 1995. India, MSJE Retrieved 12/07/2015 from
15. http://socialjustice.nic.i n/pwdact1995 .php?pageid=2.
16. N.C.P.E.D.P. (2004). Status of Mainstream Education of Disabled Students in India. Retrieved 30/09/2015 from http://ncpedp.org/eductn/ed- resrch.htm#univ.
17. RUSA. (2014). RUSA Presentation. India. RUSA. Retrieved 15/09/2015 from http://www.aicte- india.org/downloads/RUSA_Presentation.pdf.
18. UNESCO. (2005). Guidelines for Inclusion: Ensuring the access to Education for all. Paris: UNESCO. Retrieved 23/05/2015 from. http://unesdoc.unesco.org/ images/0014/001402/140224e.pdf.

***

8. पूर्व विद्यालयी शिक्षा की अधिगम संस्कृति

ऋषभ कुमार मिश्र*
रवनीत कौर**

वर्तमान में पूर्व विद्यालयी शिक्षा की महत्ता को नीतिगत स्तर पर स्वीकार किया जा चुका है। प्रस्तावित शिक्षा नीति में भी पूर्व विद्यालयी शिक्षा को बच्चों के समग्र विकास के लिए अपरिहार्य माना गया है। इसके अनुसार स्वास्थ्य के साथ-साथ संज्ञानात्मक विकास के लिए पूर्व विद्यालयी शिक्षा की ठोस और व्यापक संरचना आवश्यक है। प्रस्तावित नीति इसके लक्ष्यों को उद्घाटित करती है और यह भी सम्भावना है कि निकट भविष्य में पूर्व विद्यालयी शिक्षा भी बच्चों का मूलाधिकार होगी. पूर्व में हुए अध्ययन बताते हैं की इस दिशा में भारत की उपलब्धि उत्साहजनक लेकिन समस्या है कि इस तरह की शिक्षा को प्रयोग में उतारना। इस लेख में नई तालीम के सिद्धान्त पर संचालित आनंद निकेतन स्कूल की पूर्व विद्यालयी शिक्षा के प्रयासों का विश्लेषण किया गया है। यह विश्लेषण इस दृष्टि से औचित्यपूर्ण है कि ग्रामीण परिवेश में 3 से 6 वर्ष के बच्चों के लिए समग्र शिक्षा का आयोजन कैसे हो? इसमें समुदाय, विद्यालय और शिक्षक की क्या भूमिका है ? कैसे बच्चों के शरीर, बुद्धि और हृदय का समेकित विकास किया जाए?

यह लेख एक वृहद् शोध परियोजना का हिस्सा है। इस हेतु आंकड़ों का संकलन सहभागी अवलोकन विधि द्वारा किया गया है। अभिभावकों और शिक्षकों का साक्षात्कार भी लिया गया है। प्रदत्त संकलन के लिए कक्षा, खेल के मैदान और भोजनालय में शोधकर्ता द्वारा शिक्षिका के साथ सहभागिता की गई है। शोध के लिए चयनित विद्यालय (आनंद निकेतन) नई तालीम द्वारा संचालित है। यह विद्यालय गांधी द्वारा स्थापित सेवाग्राम आश्रम में स्थित है। यहां के पूर्व प्राथमिक खंड में 30 विद्यार्थी पढ़ते हैं। इस खंड के लिए तीन शिक्षिकाएँ नियुक्त हैं। सभी विद्यार्थी आसपास के गांव से आते हैं। इनमें लड़के और लड़कियों की भागीदारी लगभग बराबर है। यदि सामाजिक- आर्थिक दृष्टि से देखे तो समूह मिश्रित है। यहां सेवाग्राम मेडिकल कॉलेज के शिक्षकों, कर्मचारियों के बच्चे आते हैं तो सेवाग्राम के किसानों और श्रमिकों के बच्चे भी आते हैं। स्कूल की फीस न्यूनतम हैं।

बालवाड़ी की दिनचर्या

* **शिक्षा विभाग, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र**
** **सहायक प्रोफेसर माता सुन्दरी कॉलेज, दिल्ली**

बालवाड़ी का दिन प्रातः 10 बजे शुरू होता है। शेष विद्यालय जहां प्रातःकालीन सभा के लिए प्रार्थना सभा में एकत्रित होता है वहीं बालवाड़ी के बच्चे सीधे अपनी कक्षा में जाते हैं। कक्षा में प्रवेश करने के बाद वे अपने लंच बॉक्स को तय स्थान पर रखते हैं। सभी बच्चे गोल घेरे में बैठ जाते हैं और सुबह की प्रार्थना से दिन की शुरूआत करते हैं। यह प्रार्थना मराठी बालगीत होती है जिसमें बच्चे अपनी ज्ञानेन्द्रियों का बोध करते हैं। अपनी ऊर्जा और कुछ कर सकने की क्षमता की सराहना करते हैं। इसके बाद बच्चे और शिक्षिकाएँ मिलकर कहानी, खेल, कला और अभिनय जैसी गतिविधियों में संलग्न हो जाते हैं। इन गतिविधियों का नियोजन किया जाता है लेकिन इसके लिए कोई कठोर समय सारिणी नहीं है। अपराह्न 1 बजे से 2 बजे के बीच में भोजनावकाश होता है। भोजन करने के पूर्व विद्यार्थी निम्नलिखित मराठी श्लोक का पाठ करते हैं-

- धुवा हात पाय चला भोजनाला (हाथ पैर धुलकर भोजनालय चलो)
- बसा निट येथे तुम्ही मांडी घाला (पालथी मारकर आराम से बैठो)
- नका मांगू काही अधासी पणानि (उतावले होकर कुछ मांगना नहीं है)
- नका टाकू काही करा स्वच्छपाने (कोई भी जूठा नहीं छोड़ना, सब अच्छे से खाना है)
- नका भांडू तंट नका निन्दु अन्न (खाने के समय झगड़ा न करें, अन्न की निंदा न करें)
- म्हणा श्लोक आर्या तुम्ही झेपताना।। (आरंभ करते समय सुविचार बोलिए)

स्पष्ट है कि यह श्लोक उनमें स्वच्छता की आदत से लेकर सामुदायिकता तक बीज रोपता है। प्रायः वे अपने खाने के डिब्बे में भोजन लाते हैं लेकिन किसी विशेष आयोजन के अवसर पर ये बच्चे विद्यालय की रसोई में भी जाते हैं। इनकी दिनचर्या में विद्यालय में घूमना, समूह में खेलना, मिट्टी में खेलना, गौशाला भ्रमण, गाँधी आश्रम का भ्रमण, गोपुरी का भ्रमण, विनोबा आश्रम के भ्रमण के साथ- साथ आसपास सामूहिक भ्रमण के लिए जाना शामिल है। इस तरह की गतिविधियों से बच्चे गाँधी और विनोबा से परिचित हो जाते हैं। इनकी दिनचर्या का एक महत्वपूर्ण हिस्सा अपनी कक्षा की सजावट और स्वच्छता भी है। शुरूआत के एक-दो महीने बीत ने के बाद ये बच्चे कक्षा के बाहर चप्पल और जूतों को पंक्तिबद्ध व्यवस्थित करना सीख जाते हैं। अपनी कक्षा के भीतर पानी से भ रे पतीला में फूल आदि रखकर सजाते हैं। कक्षा की दीवारों पर अपने बनाए चित्रों की प्रदर्शनी भी लगाते हैं।

ज्ञानेन्द्रियों का समन्वय और समग्र विकास

प्रत्येक दिन विद्यार्थियों के साथ अनेक ऐसी गतिविधियां की जाती हैं जो उनकी ज्ञानेन्द्रियों के समन्वय पर आधारित होती हैं। ये सभी गतिविधियां सामूहिक होती हैं। उदाहरण के लिए-कागज के लड्डू बनाना। इस गतिविधि में शिक्षिका सभी बच्चों को अखबार के कुछ टुकड़े बांटती हैं। बच्चों को निर्देशित

करती हैं कि कागज के लड्डू बनाते समय किस-किस अंग का प्रयोग किया जा रहा है। बच्चे बताते हैं- उँगलियों का, हथेली का, आँखों का, दोनों हाथों का। शिक्षिका के मार्गदर्शन में बच्चे कागज के लड्डू बनाते हैं। इस गतिविधि का उद्देश्य बच्चों को उँगलियों का समन्वय करना सीखाना था। उन्हें बताना था कि हथेली की मदद से कैसे चीजों को आकार दिया जाता है। दोनों हाथों से कार्य करते समय कैसे नियंत्रण और संतुलन बनाया जाए। ऐसे ही बच्चों के साथ छोटे ब्लॉक बनाना, माला पिरोना, रोटी बेलना, तकिया का खोल डालना, शर्ट कि बटन बंद करना, कपड़ो को तह में रखना, घरेलू उपकरणों जैसे कैची, चिमटे आदि का इस्तेमाल, आदि गतिविधि भी करायी जाती है। विद्यालय की समग्र विकास के प्रति दृष्टि को एक उदाहरण से समझ सकते हैं। शिक्षिका के साथ दो-दो की टोली में विद्यार्थी बाग से बाल्टी में मिट्टी लाते हैं। हर समूह अपनी-अपनी बाल्टी में पौधे लगाता है। इस दौरान शिक्षिका बच्चों से प्रश्नोत्तर करती हैं-

शिक्षिका: पौधे को कहाँ लगाया जायेगा?

छात्र 1: मिटटी के अन्दर। जिसमें पौधे की जड़े मिटटी के अन्दर रहेगी और पेड़ ऊपर

छात्र 2: उसके बाद जड़ों को मिटटी से ढक दिया जायेगा।

शिक्षिका: पौधे की जड़ों को क्यों ढक दिया जायेगा?

छात्र 1: क्योंकि जड़ सूख जायेगा.

शिक्षिका: उसके बाद क्या होगा?

छात्र 3: पौधे लगाने के बाद गमले में पानी दे दिया जायेगा।

अब बच्चों ने अपने-अपने गमलों में मिट्टी डाली और पौधे को लगाया। तदुपरांत उसमें पानी दिया। इस प्रक्रिया के बाद प्रत्येक टोली से कहा गया कि अब यह पौधे तुम्हारे हैं इनकी देखभाल करना आपके ऊपर है। इस दिन के बाद से हर दिन बच्चे अपने पौधे का अवलोकन करते हैं, पानी देते हैं और घास निकलते हैं। यह उदाहरण व्यक्ति और समुदाय का समवाय का है।

स्वावलंबन का विकास

नई तालीम का प्रमुख लक्ष्य विद्यार्थियों में स्वावलंबन का विकास है। इस विद्यालय में स्वावलंबन का बीज बालवाड़ी में ही रोपा जाता है। विद्यालय में बच्चों को बिना किसी दबाव के सहज तरीके से कक्षा को साफ रखने, उठाए गए सामान का यथास्थान पर रखने, कपड़े पहनने, कपड़े धुलने आदि का अभ्यास कराया जाता है। वे अपने छोटे-छोटे रूमाल खुद धुलते हैं। घर जाने के समय बस्ता खुद बांधते हैं। ऐसे ही भोजन के समय थाली लगाने और पानी देने का भी अभ्यास करते हैं। इन विद्यार्थियों की दिनचर्या में अनाज बीनना, सब्जियों की पत्ती चुनना, उन्हें चीरना, छीलना, पीसना, कटना, मथना, घिसना आदि का भी अभ्यास कराया जाता है। उन्हें विदयालय की सामान्य दिनचर्या में भागीदार बनाया जाता है।

इसका उदाहरण देते हुए शिक्षिका ने बताया कि उन्हें दूसरे बच्चों को खाना परोसने का भी अभ्यास कराया जाता है। वे बड़े विद्यार्थियों के साथ सफाई और जूठन उठाने आदि का भी अभ्यास करते हैं। कुछ महीने स्कूल में बिताने के बाद उन्हें अपनी कक्षा और खेल के स्थान को भी साफ करने का अभ्यास कराया जाता है। स्वावलंबन के साथ-साथ बच्चों में अनुशासन का भी जन्म होता है। जब शिक्षिका से पूछा गया कि बालवाड़ी में अनुशासन के क्या उपाय किए जाते हैं ? तो शिक्षिका ने तुरंत कहा कि "क्यों जरूरी है अनुशासन सीखना? यदि हमारा शिक्षक समुदाय ही अनुशासित नहीं है तो अनुशासन सीखना तो बेईमानी होगी। बच्चे तो बड़ों का अनुकरण करते हैं वे हमसे सीखते हैं? हमें एक बात हमेशा ध्यान रखनी है कि बच्चे का बच्चा बना रहना जरूरी है और वही उसकी दुनिया है। नई तालीम उस दुनिया का सम्मान करती है। मैं अनुशासन पर जोर नहीं देती हूँ। " शोधार्थी का अवलोकन रहा है कि स्वालंबन की आदत के विकास का कारण कक्षा की स्वच्छता, दूसरों को सुनना, खुद की बात को कहने की उत्सुकता, एक दूसरे की मदद करने जैसे गुणों का अवलोकन यहां के विद्यार्थियों में किया जा सकता है।

संप्रेषण दक्षता का विकास

इन बच्चों को संप्रेषण कौशल की दक्षता भी प्रदान की जाती है। ये समूह में एक दूसरे को कहानी सुनाते हैं। यह सुनिश्चित किया जाता है कि वे दूसरों की बातों को सुनें, समझें और जरूरत पड़ने पर संवाद करें। यहां श्रवण और सम्प्रेषण से जुड़ी गतिविधियों द्वारा अक्षरों में श्रवण भेद सिखाया जाता है। बोलने के साथ सुनने के कौशल पर भी बल दिया जाता है। हर बच्चा दूसरे साथी की कहानी और कविता सुनता है। उसकी सराहना करता है। कक्षा की बातचीत के दौरान बच्चे घर पर किए कार्यों का विवरण देते हैं। ऐसे ही उन्हें अपने किसी दोस्त के बारे में बोलने को कहा जाता है। वे स्थानीय मराठी गीतों को याद करते हैं और सुनाते हैं। कहानी वाचन और निर्माण की गतिविधि करायी जाती है। रविवार या किसी अन्य अवकाश के बाद जब बच्चे वापस आते हैं तो उनसे पूछा जाता है कि कौन-कौन गाँव गया? गाँव में लोगों को क्या-क्या करते देखा? बच्चे बताते हैं कि गाँव में लोग खेत जाते हैं। वहां गाय, भैस और बकरी भी होती हैं। एक बच्चे ने अपना अनुभव साझा करते हुए बताया कि "मैं अपने दादा-दादी के पास गया था। वह अभी भी मिटटी के चूल्हे और लकड़ी से खाना पकाते हैं। मैं उनके साथ बकरी चराने भी गया था। " जानवरों, पक्षियों की आवाज़ निकालना, उनके हाव-भाव का अभिनय करना आदि का अवसर विदयार्थियों की सम्प्रेषण दक्षता को बढ़ाता है।

परिवेश की विविधताओं से परिचय

परिवेश की विविधताओं से परिचित कराने के लिए बच्चों को सत्रारंभ में ही सेवाग्राम आश्रम और

गांव का भ्रमण कराया जाता है। आश्रम का भ्रमण उन्हें विद्यालय के इतिहास से परिचित कराता है। साथ ही वे जानते हैं कि स्कूल में क्या, कहां हैं। परिसर के वृक्षों, भवनों और खेतों से परिचय कराया जाता है। वे विभिन्न बीजों को पहचानना सीखते हैं जैसे- अरहर, मूंग, चना, गेंहू, जबस, कद्दू के बीज, लौकी के बीज, मूंगफली आदि से परिचय। वे इन बीजों के आकार के अंतर का अवलोकन करते हैं। उन्हें एक दल और द्विदल बीजों में भेद बताया जाता है। वे बाग में तैयार फसलों और खरपतवार के बीच अंतर जानते हैं। वे बड़ी कक्षाओं के बच्चों द्वारा लगायी गई फसलों की पत्तियों को छूकर अनुभव करते हैं। बालवाड़ी की शिक्षिका बताती है कि तीन महीने के भीतर विद्यार्थी परिसर के वनस्पतियों और पक्षियों को पहचानने और उनमें अंतर करने लगते हैं। उन्हें घर से विद्यालय तक के रास्ते, सड़क पर चलने के नियम, परिवहन के साधनों आदि से भी परिचित कराया जाता है।

स्वच्छता की आदत का विकास

स्वच्छ रहने की आदत का विकास करना बालवाड़ी का प्रमुख उद्देश्य है। प्रत्येक दिन कक्षारंभ होने पर शिक्षिका बच्चों से पूछती है कि आज कौन-कौन नहाया है? फिर वह इस पर चर्चा करती हैं कि न नहाने से क्या नुकसान हैं ? शिक्षिका ने बताया कई बार बच्चे भी बताते हैं जैसे- न नहाने से शरीर में बदबू आने लगती है, खुजली होने लगती है, चिड़चिड़ा लगता है, दूसरा अपने साथ बैठने नहीं देता है। इसी तरह कक्षा में शरीर की स्वच्छता से जुड़े अन्य मुद्दों जैसे- ब्रश क्यों करना चाहिए? खाने से पहले हाथ धोना, टॉयलेट के बाद हाथ धोना, रुमाल का इस्तेमाल, नाखून काटना आदि पर भी चर्चा होती है। बालबाड़ी की शिक्षा कैसे घर तक जा रही है ? इसके बारे में अभिभावक बताते हैं कि बालवाड़ी में सीखी गई आदतों के कारण उनका बच्चा घर पर सबको कहता है कि खाना खाने से पहले सभी हाथ धुलो। वह हाथ धुलने को सही तरीका करके भी दिखाता है। एक अभिभावक ने बताया कि मेरा बच्चा कहता है कि "आप घर का काम क्यों नहीं करते हैं? आप भी किया करिए। उसने झाड़ लगाना, सब्जी धोना, खाना परोसना और खुद की सफाई करना आदि कामों को बताया। साथ ही अपने साथ करने के लिए कहा। " एक बच्चे की माता बताती हैं कि मेरा बच्चा है तो अभी छोटा ही लेकिन हरसंभव प्रयास करता है कि वह मेरी मदद कर सके। जैसे- जब मुझे खाना बनाना होता है तो वह सब्जी स्वयं धुलता है, सब्जी काटने के उपकरणों को इकठ्ठा रखता और जब खाना खाते हैं तब सबके बैठने के लिए आसन लगाता है।

कला और कल्पनाशीलता

बालवाड़ी के बच्चों की दिनचर्या का अनिवार्य हिस्सा मिट्टी से खेलना है। बच्चे खुद जाकर मिट्टी से खेलते हैं। वे अपने खिलौने रचते हैं। शोध कार्य के दौरान देखा गया कि बच्चों का समूह मिट्टी

में खेलते हुए वर्षा जल के निकास के लिए नाला बना रहे थे। वे उस नाले पर पुल की भी व्यवस्था कर रहे थे। दूसरा समूह खाना बनाने के लिए चूल्हे का निर्माण कर रहा था। बच्चे ऐसे ही रंग और ब्रुश का प्रयोग कर चित्र भी रचते हैं। उनकी रचनाओं को कक्षा में सजाया जाता है। उनकी इन रचनाओं के बारे में अभिभावकों को बताया जाता है। अभिभावक भी अपने बच्चों के इन कार्यों की सराहना करते हैं। विद्यार्थियों की कल्पनाशीलता का उदाहरण बापू कुटी परिसर के भ्रमण के दौरान भी देखने को मिला। इस भ्रमण के दौरान एक बच्चे ने सवाल किया कि मैं चिड़ियो कि तरह क्यों नहीं उड़ सकता ? गौशाला भ्रमण के दौरान एक बच्चे ने सवाल किया कि गाय जिस चारे को खाकर दूध देती है यदि मैं उस चारे को खाऊँ तो मैं दूध देने लगूंगा? बापू कुटी भ्रमण के दौरान शिक्षिका ने सभी बच्चों को बताया कि अमुक पेड़ के पत्ते खाने से हल्का बुखार ठीक किया जा सकता है। इस पर एक बच्चे ने प्रश्न किया कि हमें बुखार आता ही क्यों है ? उल्लेखनीय है कि स्कूल में इन प्रश्नों का स्वागत किया जाता है। बालविकास की दृष्टि से देखा जाए तो बच्चों की यह कल्पनाशीलता एक विकासात्मक संकेतक है जिसे स्कूल रचनात्मकता के सांचे में ढालता है। अन्य स्कूलों की भांति यहां करने, बोलने और रचने पर पाबंदी न होकर भरपूर आजादी है। यह आजादी बच्चों में खुद के बारे में सकारात्मक भाव पैदा करता है।

'स्व' का विकास

बालबाड़ी में 'स्व(मैं कौन हूँ) पर एक प्रकल्प कराया जाता है। इस प्रकल्प का लक्ष्य बच्चे को 'स्व' के बारे में जानने और बताने के बारे में प्रेरित करना होता है। पहले चरण में शिक्षिका विद्यार्थियों को स्वयं के बारे में जानना के उद्देश्य से निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर बताने को कहती है- मैं कौन हूँ ? मेरा नाम क्या है ? मैं कहाँ रहता हूँ? मेरा स्कूल कैसा है? स्कूल का नाम क्या है? मेरी माँ का नाम क्या है? मेरे पापा का नाम क्या है? दादा का नाम क्या है? दादी का नाम क्या है? मेरी पसंद क्या है(खाने, खेलने, सुनने, घूमने में आदि)? मेरे घर मे कुल कितने सदस्य हैं ? घर के कौन से सदस्य क्या-क्या करते हैं? कितने दोस्त हैं ? किसे अपना अच्छा दोस्त मानते हो?किसे अपनी बात कहने में डर लगता है ? कौन अपनी बात बिना डरे कह सकता है ? दूसरे चरण में बच्चों को परिवार, पड़ोस और स्कूल का चित्र बनाने को कहा जाता है। इन चित्रों में चार पैटर्न देखने का मिले। प्रथम, वे चित्र जिनमें बच्चों ने अपने घर के सभी सदस्यों को दर्शाया था। द्वितीय, जिनमें बच्चों ने मां और भाई-बहनों को दर्शाया था। इस तरह के चित्र का कारण बताते हुए बच्चों ने कहा कि पिता घर के बाहर काम करने के लिए जाते हैं। इसलिए उन बच्चों ने अपने चित्र में पिता को जगह नहीं दी। तृतीय, कुछ बच्चों के चित्र में पिता अनुपस्थित थे। इसके लिए बच्चों ने कारण बताया कि "मेरे पापा शराब पीते हैं और फिर मम्मी को पीटते हैं इसलिए मैंने उनका चित्र नहीं

बनाया।" विद्यालय ने बच्चों की इन प्रतिक्रियाओं को गंभीरता से लिया और इसके बारे में संबंधित अभिभावक से चर्चा की। चौथे प्रकार वे चित्र थे जिनमें घर पर बच्चों को दर्शाया गया है क्योंकि माता-पिता दोनों काम करते हैं इसलिए वे घर पर नहीं रहते हैं। इन अभ्यासों से स्पष्ट है कि बच्चा स्वयं की पहचान को अपने परिवार और परिवेश से जोड़कर पहचानने लगता है। बच्चों द्वारा परिवार की स्थितियों के प्रत्यक्षीकरण का उदाहरण देते हुए शिक्षिका बताती हैं कि ये बच्चे जब डाल हाउस में खेलते हैं तो उनके खेल में बच्चा "कभी बाप को डांटता है तो कभी रोता है कभी पूंछता है माँ से कि आपको पापा क्यों मारते हैं।" बच्चे दर्शाते हैं कि पिता शराब पीकर आता है और लड़ाई करता है। कुछ बच्चे माँ बाप के साथ बैठ कर बातें करते हैं, कुछ बच्चे माँ के साथ खाना बनाने में मदद कर रहे हैं। उल्लेखनीय है कि वह वयस्कों की आदत को न केवल पहचान रहा है उसके आधार पर उनसे खुद के संबंध को भी परिभाषित कर रहा है। बच्चों के चित्रों और डाल हाउस में वयस्कों और परिवार की हिंसात्मक प्रवृत्तियों को बच्चों के सामने नहीं रखा जाता जिससे इसका असर बच्चों के बालमन पर न पड़े एवं बच्चे और पिता के रिश्तों में बैर न हो लेकिन इसकी चर्चा सम्बंधित अभिभावकों से की जाती है।

अभिभावकों में विद्यालय के प्रति विश्वास और लगाव बढ़ाना

विद्यालय द्वारा अभिभावकों के साथ लगातार संवाद किया जाता है। वे अपने बच्चों को कक्षा तक छोड़ने आते हैं। वे अपनी राय देने और स्कूल के कार्यक्रमों में भागीदारी भी करते हैं। एक अभिभावक बताते हैं कि उन्हें इस बात की खुशी है कि स्कूल बच्चों को किताबी ज्ञान नहीं पढ़ाता बल्कि आपस में मिलजुलकर रहना सिखाता है। इस अभिभावक के विचार को पुष्ट करते हुए एक अन्य महिला बताती है कि उनका बच्चा जब घर पर स्कूल में बतायी गई कहानियां सुनाता है तो मालूम पड़ता है कि स्कूल में 'कुछ' अच्छा किया जा रहा है। 'अच्छा' की व्याख्या करते हुए बताती हैं कि उसे भाषा का ज्ञान हो रहा है। उसमें स्वच्छता की आदतें विकसित हो रही हैं। बच्चे को अपना काम खुद करने में आनंद आ रहा है। विद्यालय वार्षिकोत्सव में अभिभावकों को केवल अतिथि के रूप में नहीं बलाता बल्कि अभिभावक शिक्षकों के साथ मिलकर इस उत्सव की तैयारी करते हैं। इस उत्सव में हर बच्चे की भागीदारी सुनिश्चित की जाती है। उन्हें आनंद के लिए नृत्य या संगीत नहीं सीखाया जाता बल्कि उनकी थिमैटिक प्रस्तुति होती है जैसे- पिछले सत्र में स्थानीय पर्यावरण की समस्या पर बच्चों ने नृत्य और नाटिका की प्रस्तुति की थी।

ग्रामीण परिवेश में संचालित आनंद निकेतन विद्यालय की पूर्व विद्यालयी शिक्षा (बालवाड़ी) के अध्ययन से स्पष्ट है कि इस शिक्षा का लक्ष्य तीन से छः वर्ष आयु वाले बच्चों को स्कूल के पहले वर्ष में विद्यालयी वातावरण के प्रति सहज बनाना है। विद्यालय के अभ्यासों द्वारा बच्चों को उनके सामाजिक

और प्राकृतिक परिवेश के प्रति संवदेनशील बनाया जाता है। अक्षर ज्ञान के बदले विद्यालय द्वारा मौखिक संप्रेषण के माध्यम से बच्चों की भाषायी दक्षता को सुदृढ़ किया जाता है। उनमें आत्म बोध और सामुदायिकता के गुणों का विकास होता है। स्वालंबन और स्वच्छता जो अभ्यास स्कूल में कराए जाते हैं वे बच्चों द्वारा घर पर भी अपनाए जाते हैं। उनके विद्यालयी परिवेश की जीवंतता बच्चों की कल्पनाशीलता और रचनात्मकता को संवर्धित करती है। बच को विद्यालय में सम्मानित महसूस करते हैं। इससे उनमें खुद के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित होती है। आनंद निकेतन के प्रयोग प्रमाण है कि पूर्व विद्यालयी शिक्षा का लक्ष्य केवल प्राथमिक कक्षाओं के लिए छात्रों को तैयार करना नहीं है बल्कि जीवन जीने की कुशलताओं और सतत सीखने की अभिलाषा का विकास है।

***

9. भारतीय शिक्षा के पश्चिमीकरण के प्रारम्भिक प्रयास : एक आलोचनात्मक अध्ययन

डॉ. प्रवीण कुमार तिवारी*

भारत में आधुनिक पश्चिमी शिक्षा का आरम्भ प्रायः सन् 1772 के आसपास माना जाता है। 1772 में वारेन हेस्टिंग्स बंगाल के गवर्नर थे। 1774 में उनको भारत का गवर्नर जनरल (बंगाल, मद्रास एवं बम्बई प्रेसीडेन्सी) बनाया गया। इनके कालखण्ड में अंग्रेजी शिक्षा या आधुनिक शिक्षा के प्रयास प्रारम्भ हुए। किन्तु ये प्रयास कम्पनी के हितों की कीमत पर न हों यह ध्यान रखा गया।[1] इसलिए 19वीं सदी के प्रारम्भ तक ये प्रयास परवान न चढ़ सके, क्योंकि इस समय कम्पनी के हितों के प्रभावित होने की प्रबल संभावना थी। यद्यपि भारत और ब्रिटेन दोनों ही स्थानों पर अनेक लोग ब्रिटिश शिक्षा को भारत में स्वदेशी शिक्षा के स्थान पर लागू करने के लिए प्रयासरत थे, किन्तु कम्पनी के हितों का हवाला देकर ऐसा नहीं होने दिया गया। यद्यपि भारतीय जनता (हिन्दू-मुसलमान) को प्रसन्न करने के लिए 1781 में कलकत्ता[2] में और 1791 में वाराणसी[3] में अरबी और संस्कृत के संस्थान खोले गये। यहीं से भारतीय शिक्षा व्यवस्था वर्गों को प्रसन्न करने वाली एवं ब्रिटिश हितों के साधन के रूप में अस्तित्व में आई।

तुष्टिकरण के साथ-साथ पश्चिमीकरण के प्रारम्भिक प्रयासः

भारतीय शिक्षा को प्रभावित करने के जो संगठित प्रयास लगभग 60-70 वर्षों तक कंपनी के शासनकाल में हुए उन पर बहुत कम प्रकाश डाला गया है। शिक्षाशास्त्र की पुस्तकों में भी ज्यादा से ज्यादा 1813 के महाधिकार पत्र की ही बात होती है जबकि आदिकाल से भारत में शिक्षा के प्रचार-प्रसार में गुरूकुलों के महत्व को हमारे सभी ग्रन्थों में रेखांकित किया गया है। शिक्षा भारत में कोई 19वीं या 20वीं सदी की खोज नहीं है, और ना ही संगठित शिक्षण संस्थाएं भारत में कोई नवीन संरचना है। जब विश्व के बहुत से क्षेत्रों में विद्यालय जैसी संस्था पर विचार हो रहा था और सम्बन्धित संस्थाओं का अभ्युदय हो रहा था तब भारत के प्रत्येक ग्राम में ऐसी संस्थाओं की सुसंगठित व्यवस्था विद्यमान थी।[4]

भारत की शिक्षा व्यवस्था में अंग्रेजी हस्तक्षेप के संकेत सबसे पहले वारेन हेंस्टिंग्स के दौर में मिलते हैं, जब उन्होंने 'प्राच्यवाद' को बंगाल की सरकार का एक आधार बनाते हुए चतुराईपूर्वक स्वयं को भारतीय प्रशासकों, नियमों, मान्यताओं, और कार्य-व्यवहार के संरक्षक के रूप में स्थापित किया।[5]

---

* **एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्ष विभाग, महात्मा ज्योतिवा फूले, रुहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र)**

हेंस्टिंग्स ने बहुत से शैक्षणिक कार्यों जैसे, ऑक्सफोर्ड में फारसी प्रोफेसर की नियुक्ति, अरबी और संस्कृत कानूनी पुस्तकों का फारसी और अंग्रेजी में अनुवाद, बंगाली व्याकरण का निर्माण, आदि को प्रोत्साहित किया परन्तु उसका उद्देश्य भारतीय शिक्षा की उन्नति नहीं वरन तात्कालिक परिस्थितियों में कुछ लोगों को खुश रखकर अपने राज्य का विस्तार करना था।[6]

यह भी सर्वविदित तथ्य है कि अंग्रेजों ने कुछ स्थानों पर संस्कृत और मुस्लिम शिक्षा पद्धतियों की तुलना करते हुये जानबूझकर मुस्लिम शिक्षा पद्धति को यूरोपीय शिक्षा पद्धति के ज्यादा नजदीक बताया और अलगाव के बीज बोये। 1780 में जब लगभग 8000 मुस्लिमों ने वारेन हेंस्टिंग्स से इस्लामी कानून को समझने के लिए एक मदरसे की स्थापना की मांग की तो इसके पीछे के कारण बड़े रोचक थे। यद्यपि वारेन हेंस्टिंग्स ने मिनट्स (1781) में लिखा है कि *"कलकत्ता मदरसा की स्थापना का खर्च काफी दिनों तक हेंस्टिंग्स ने स्वयं दिया"* और इसका कारण यह बताया कि सामान्यजन में यह अवधारणा बनती जा रही है कि नयी नीति का मूल उद्देश्य लोगों का ईसाईकरण करना है जो इस देश में हमारी संभावनाओं को समाप्त कर देगी।

इसलिए हमें इन्हें बनाये रखना चाहिए और कंपनी को इसका खर्च भी देना चाहिए।[7] 1780 के आसपास कलकत्ता मदरसा और कुछ अन्य मदरसों की स्थापना के पीछे यही कारण था। इस प्रकार समाज आधारित व्यवस्था को राज्यपोषित बनाने का कार्य प्रारम्भ हुआ। मुस्लिमों के इस कदम के तुरंत बाद संस्कृत कॉलेज, कलकत्ता के 76 विद्यार्थियों ने भी एक याचिका हेंस्टिंग्स के समक्ष रखी, जिसमें उन्होंने कहा कि भारत की सच्ची प्राचीन विरासत का प्रतिनिधित्व संस्कृत ही करती है और भारतीय सांस्कृतिक जीवन में इसका बहुत महत्व है।[8]

वारेन हेंस्टिंग्स को यह समझ आ गया था कि किस प्रकार अलग-अलग समूहों को प्रलोभन और तुष्टीकरण से अपने साथ रखा जा सकता है और आपस में लड़ाया जा सकता है। यद्यपि माना ये भी जाता है कि हेंस्टिंग्स को यह उम्मीद थी कि मदरसा की स्थापना से और भारतीय मुस्लिमों को साथ जोड़ने से ब्रिटिश राज के तीव्र प्रसार में मदद मिलेगी। इस प्रकार से यह शिक्षा व्यवस्था भारतीयों को न केवल अंग्रेजों का अनुरागी बना रही थी, बल्कि भारत में द्विराष्ट्र के सिद्धांत का बीजारोपण भी कर रही थी।[9]

जोनाथन डंकन (1791) भी वारेन हेंस्टिंग्स को सलाह दे चुके थे कि दुनिया की सर्वश्रेष्ठ विरासत को संभालने के लिए थोड़ा खर्च करना चाहिए। जोनाथन डंकन ने यही प्रयास दोहराते हुए उत्तर में हिन्दुओं को खुश करने के लिए बनारस के संस्कृतकॉलेज की स्थापना में मदद की। यद्यपि डंकन ने इसका कारण स्पष्ट करते हुए कहा है कि ऐसा करने से हमें अपने चिकित्सकों और न्यायाधीशों के लिए आसानी से सहायक मिल जायेंगे।[10]

डंकन ने लार्ड कॉर्नवालिस को 1 जनवरी, 1792 को लिखे अपने पत्र में बनारस के संस्कृत कॉलेज की स्थापना से जुड़े दो फायदे बताये। *एक* तो भारतीय धर्म, नियमों, कला और विज्ञान को समझने में हमें मदद करने वाले लोग तैयार होंगे और *दूसरे* एक राज्यपोषित संस्था जन्म लेगी जो यूरोपीय न्यायाधीशों की मदद करेगी।

चार्ल्स ग्रांट के विचार उतने उदारवादी नहीं थे। इसका कारण यह था कि वह उस विचारधारा का समर्थक था जो राज्य विस्तार के साथ-साथ धर्म-प्रचार और धर्मान्तरण को जोड़े रखना चाहता था और ईसाईयत को सर्वोपरि सिद्ध करने की लालसा उसमें भरी हुई थी। ग्रांट की यह बड़ी सफलता थी कि उसने इस विषय को न केवल संसद की कार्यवाही के मिनट्स में छपवाया वरन कंपनी चार्टर में भी ये शर्ते जुड़वा दीं।उन शर्तों के अनुसार मिशनरियाँ ब्रिटिश भारत में कार्य करने के लिए स्वतंत्र हो गयीं। इस प्रकार से आधुनिक शिक्षा एक ओर युवाओं को अंग्रेज परस्त बनाने में मदद कर रही थी वहीं दूसरी ओर वह युवाओं को विधर्मी भी बना रही थी। इस प्रकार से कंपनी इस शिक्षा के माध्यम से दोहरा लाभ प्राप्त कर रही थी।[11]

18वीं सदी की शिक्षा के प्रयासों को यदि सारांश रूप में देखा जाये तो यह कहा जा सकता है कि वारेन हेंस्टिंग्स, जोनाथन डंकन, और चार्ल्स ग्रांट ने भारत में शिक्षा को या तो राज्य-प्रसार या धर्म-प्रसार के उपकरण के रूप में प्रयोग किया और शिक्षा समाज-आश्रित से राज्य-आश्रित एवं राज्य के लिए ही उपयोगी होने लगी। इसलिए उन्होंने समाज के दोनों वर्गों का उपयोग कंपनी के हितों के संरक्षण व संवद्र्धन के लिए किया।

भारत में ब्रिटिश राज्य व्यवस्था के अंतर्गत दो प्रकार के लोगों को प्रमुखता से वर्गीकृत किया जा सकता है। *पहले*, वे लोग हैं जो भारत के अच्छे और बुरे दोनों को समझने का प्रयास कर रहे थे तथा भारत से क्या सीखा जा सकता है इस विषय में भी सोच रहे थे। *दूसरे*, 18वीं सदी के पूर्वाद्र्ध के वे लोग थे, जो मात्र भारत की कमियों को ही रेखांकित करके ऐसी पीढ़ी का निर्माण करना चाहते थे, जो दीन-हीन और आत्मविस्मृत हो। दूसरी श्रेणी में पश्चिमी विदेशी लोगों केअतिरिक्त भारतीय भी सम्मिलित थे।

अंग्रेज़ी शिक्षा की सर्वश्रेष्ठता के भ्रम की स्थापना:

अंग्रेज विद्यार्थियों को कंपनी की भारतीय शासन व्यवस्था में मदद को तैयार करने के लिए लार्ड मार्क्विस वेलेजली ने कलकत्ता में सन 1800 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। यह वही संस्थान था जहाँ से अगले दो दशकों (1800-1820) में एच. टी. कॉलब्रुक, विलियम कर्वे और एच. एच. विल्सन ने अली इब्राहीम और उनसे जुड़े मुंशियों की सहायता से तत्कालीन भारतीय व्यवस्था को समझने का प्रयास किया।[12] इसी दौर में एक नए चिंतन ने आकार लेना प्रारंभ किया जिसका मानना था कि यूरोपीय शिक्षा भारतीय शिक्षा से श्रेष्ठ है। इसे सिद्ध करना और भारतीयों का मानस इसके लिए तैयार करना, इस विशेष

चिंतन से जुड़े हुए लोगों का लक्ष्य था। चार्ल्स ग्रांट के विचारों से इनको आधार मिला जिसका मानना था कि भारतीय जन-मानस में सुधार के लिए ईसाईयत और पश्चिमी ज्ञान को प्रचारित करना आवश्यक कदम होगा। इसी का परिणाम था कि 1813 के चार्टर एक्ट में मिशनरीज को ब्रिटिश भारत में काम करने की खुली छूट मिल गयी।[13]

यहाँ चार्ल्स ग्रांट ने उदाहरण देकर कहा कि जैसे मुगलों का शासन आने पर सत्ता के निकट रहने की इच्छा वाले हिन्दुओं ने फारसी भाषा सीखी जो धीरे-धीरे उच्च वर्ग के भारतीयों की भाषा बन गयी, उसी तरह अंग्रेजी को भी सरकार की भाषा बना देना चाहिए और हमें अपने पूर्ववर्ती मुगलों का ही अनुसरण करना चाहिए।[14]

अंग्रेजों ने इस काल से ही शिक्षण संस्थाओं को धार्मिक आधार पर अलग अलग मदद करना प्रारंभ कर दिया और इसका राजनीतिक अस्त्र के रूप में प्रयोग प्रारम्भ किया। कुछ स्थानों पर संस्कृत और मुस्लिम शिक्षा-पद्धतियों की तुलना करते हुये जानबूझ कर मुस्लिम शिक्षा-पद्धति को यूरोपीय शिक्षा-पद्धति के ज्यादा करीब बताया गया और अलगाव के बीज बोये गए जिसका परिणामआगे चल कर देश के विभाजन के रूप में हमें प्राप्त हुआ।

यह सर्वविदित तथ्य है कि 1813 के एक्ट में हेंस्टिंग्स और ग्रांट दोनों के विचारों को जगह देते हुए दो विरोधाभाषी लक्ष्यों को स्थान दिया गया अर्थात् परंपरागत ज्ञान को प्रोत्साहन और पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान का प्रसार। 1813 के एक्ट की धारा 43 में स्पष्ट तौर पर लिखा गया कि प्रत्येक वर्ष एक लाख रुपए का प्रावधान भारतीय परम्परागत साहित्य और ज्ञान के संरक्षण और सुधार के लिए किया जाएगा, साथ ही ब्रिटिश भारत के अधीन विद्यालयों में आधुनिक विज्ञान को भी प्रारम्भ किया जायेगा।[15]

इस एक्ट के माध्यम से विद्यालयों में होने वाली सभी नियुक्तियों को सरकार ने अपने नियंत्रण में ले लिया जो शिक्षा व्यवस्था में राज्य का सीधा हस्तक्षेप था और धीरे-धीरे ये और प्रबल होता गया जो आज तक चल रहा है। ब्रिटिश सरकार के इसी कदम ने भारतीय शिक्षा के समाज अवलंबित ढांचे को सर्वाधिक क्षति पहुंचाई जो आज भी अनवरत रूप से जारी है।[16]

इसके बाद एक और विचार ने जन्म लिया जिसे इतिहासकार 'रोपण नीति' का नाम देते हैं। 1820 के आसपास इसी पर ध्यान दिया जाने लगा कि धीरे-धीरे कैसे संस्कृत और फारसी सीखने वालों को सत्ता के नजदीक आने के अवसर और छात्रवृति जैसे उपायों से पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान की ओर मोड़ा जाये। इसके दुष्परिणाम 1828 के विलियम बेंटिक के परिपत्र के रूप में हमें प्राप्त हुए[17] जिसके द्वारा फारसी के मदरसे और संस्कृत की पाठशालाओं के संचालन पर रोक लगा दी गई।

जेम्स मिल ने पुणे कॉलेज के परंपरागत संस्कृत आधारित पाठ्यक्रम का खुला विरोध किया, वही माउंट स्टुअर्ट एलफिंस्टन जिन्हें मूलतः प्राच्यवादी माना जाता है, उन्होंने भी स्थानीय लोगों को ब्रिटिश शासन में इस्तेमाल करने के लिए अंग्रेजी शिक्षा दी जाने की जरूरत महसूस की।[18] 19वीं सदी के आरम्भ में अंग्रेजों ने यह महसूस करना प्रारंभ कर दिया था कि 'भद्रलोक' अंग्रेजी शिक्षा को अपने सुन्दर भविष्य के लिए महत्वपूर्ण मानने लगे हैं। इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रमाण राजा राम मोहन रॉय का पत्र है। 11 दिसम्बर, 1823 को राजा राममोहन रॉय ने लॉर्ड एमहर्स्ट को जो पत्र लिखा उसे भारत की परम्परागत शिक्षा व्यवस्था के क्षरण का आधारपत्र कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।[19]

ट्रेवलिनः हमारी जिम्मेदारी उन्हें सिखाना नहीं, वरन सीखा हुआ भुलाना है

भारतीय शिक्षा व्यवस्था का क्षरण कोई अकस्मात घटने वाली घटना नहीं थी वरन सुनियोजित रूप से इसके प्रयास किए गए। यदि तत्कालीन इतिहास पर दृष्टि डालें तो हम पाएंगे कि कैसे 19वीं सदी में प्रारम्भ से ही भारतीय शिक्षा व्यवस्था में बदलाव प्रारम्भ हुआ।

चार्ल्स ई. ट्रेवलिन ने 1838 में लिखी एक पुस्तक में तत्कालीन शैक्षिक परिस्थितियों का रोचक चित्रण किया है। अपनी पुस्तक 'ऑन द एजुकेशन ऑफ द पीपुल ऑफ द इंडिया' में वह लिखता है कि ऑक्सफोर्ड भले ही अरस्तू का भौतिक विज्ञान पढ़ाने में गर्व अनुभव करे परंतु जब मैं बनारस गया तो मैंने देखा कि वहाँ एक प्रोफेसर प्लोमी और अलगुंजार से उन्नत नक्षत्र-विज्ञान पढ़ा रहे थे। वहाँ अधिकांश बच्चे संस्कृत व्याकरण के साथ आनंद ले रहे थे। उन्होंने लिखा है कि बहुत से बच्चे सुन्दर फारसी लिख रहे थे और उनकी गणित उच्च स्तर की थी।[22]

1833 एक महत्वपूर्ण वर्ष है क्योंकि इसी वर्ष एच.एच. विल्सन के सेवानिवृत्त होने पर बेंटिक ने चार्ल्स ट्रेवलिन को नियुक्त किया था। ट्रेवलिन परम्परागत भारतीय शिक्षा के सबल पक्ष का निकट से अनुभव कर चुका था। अतः ट्रेवलिन का डफ और ग्रांट की तरह यह स्पष्ट मानना था कि अंग्रेजी भाषा का प्रसार उपमहाद्विप को नैतिक और बौद्धिक रूप से परिवर्तित कर देगा।[23] ट्रेवलिन ने अंग्रेजी व्यवस्था के मंतव्य को और स्पष्ट करते हुए लिखा है "हमारी जिम्मेदारी उन्हें सिखाना नहीं, वरन सीखा हुआ भुलाना है।"[24]

1838 में ट्रेवलिन ने कलकत्ता प्रेस में सभी भारतीय लिपियों को रोमन लिपि से प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया।[25] ट्रेवलिन की एक खूबी यह थी कि वह निरंतर बेंटिक के साथ निजी पत्राचार करता रहता था और जिसके कारण वह उनका विश्वासपात्र था। मैकाले भी ट्रेवलिन के सतत् संपर्क में था और उसके विचारों से सहमत भी था। बेंटिक और ट्रेवलिन बहुत से 'भारतीय भद्रजनों' से निरंतर संपर्क में रहने

लगे। 1835 में बेंटिक के कहने पर राधाकांत देव और रासमोय दत्त, मैकाले के साथ जी.सी.पी.आई. का हिस्सा बने।

मैकाले की 1835 की नीति पर सभी भद्रजन मित्रों, खासकर रॉय के पत्र का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, क्योंकि मैकाले ने रॉय के 1823 के पत्र में दिए गए संदर्भों का अच्छी तरह प्रयोग किया।

ऊपर दिए गए विवरण से एक बात तो स्पष्ट है कि भारतीय शिक्षा के अंग्रेजीकरण में जहाँ ग्रांट, ट्रेवलिन और मैकाले आदि ने सफल प्रयास किये वहीं, उनके इन प्रयासों को एक ठोस आधार कई भारतीयों ने ही प्रदान किया। यह मान लिया जाना चाहिए कि यदि भारतीयों ने उन्हें एक ठोस आधार नहीं दिया होता तो शायद वे प्रचलित व्यवस्था पर करारी चोट नहीं कर पाते।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कारनॉय, मार्टिन (2011).*सांस्कृतिक साम्राज्यवादऔर शिक्षा (अनुवादक- कृष्ण कांत मिश्र).* नई दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी. पृ. 77
2. रावल, ए.पी..*एजुकेशन इन ब्रिटिश इण्डिया प्रायर टू 1854 एंड इन 1870-71.* प्रकाशक कलकत्ता. पृ.1
3. रावल, ए.पी.. *तदैव*
4. धर्मपाल (2000).*ब्यूटीफुल ट्री.* गोवा: अदर इण्डिया बुक हाऊस, मापुसा (गोवा).
5. नायक, जे.पी. एवं नूरुल्ला, सैयद (1976).*भारतीय शिक्षा का इतिहास.*दी मैकमिलन कंपनी इण्डिया लि. पृ. 35-36, मद्रास.
6. कारनॉय, मार्टिन (2011).*तदैव.* पृ. 81
7. कारनॉय, मार्टिन (2011). *तदैव*
8. कारनॉय, मार्टिन (2011). *तदैव*
9. नायक, जे.पी. एवं नूरुल्ला, सैयद (1976).*तदैव.* पृ. 36
10. नायक, जे.पी. एवं नूरुल्ला, सैयद (1976). *तदैव.* पृ. 35-36
11. नायक, जे.पी. एवं नूरुल्ला, सैयद (1976). *तदैव.* पृ.45
12. कारनॉय, मार्टिन (2011). *तदैव.* पृ. 83
13. कारनॉय, मार्टिन (2011). *तदैव.*
14. कारनॉय, मार्टिन (2011). *तदैव.* पृ. 83-84
15. नायक, जे.पी. एवं नूरुल्ला, सैयद (1976). *तदैव.* पृ. 52-53
16. नायक, जे.पी. एवं नूरुल्ला, सैयद (1976). *तदैव.* पृ. 56
17. नायक, जे.पी. एवं नूरुल्ला, सैयद (1976). *तदैव.* पृ. 57
18. कारनॉय, मार्टिन (2011). *तदैव.* पृ. 82

19. *राजा राममोहन रॉय समग्रः खण्ड 3.* पृ. 327
20. रॉय, राममोहन (11 दिसम्बर, 1823). ब्यूरो ऑफ़ एज्यूकेशनः सेलेक्शन फ्राम एज्यूकेशनल रिकार्ड्स, पार्ट I (1781-1839). द्वारा सम्पादित - एच0 शार्प. कलकत्ताः सुपरिटेंडेंट गवर्न्मेंट प्रिंटिंग, 1920. रिप्रिंट दिल्लीः नेशनल आर्काइव्स ऑफ़ इंडिया, 1965, 98-101. (वर्मा, पवन कुमार (2010). *भारतीयता की ओर (अनुवादक-वैभव सिंह).* पेंगुइन बुक्स लिमिटेड. पृ. 45)
21. 1828 में विलियम बैंटिक ने इस आशय से मदरसों और संस्कृत की पाठशालाओं पर प्रतिबंध लगाया कि उन्हें अंग्रेजी के बिना सरकारी मदद नहीं मिलेगी।
22. ट्रेवलिन, सी.ई. (1838). *ऑन द एजुकेशन ऑफ द पीपुल आफ इण्डिया.* लंदनः लांगमैन आर्मे ब्राउन ग्रीन एण्ड लांगमैन. पृ. 59
23. कारनॉय, मार्टिन (2011). *तदैव.* पृ. 87
24. ट्रेवलिन, सी.ई. (1838). *तदैव*
25. वर्मा, पवन कुमार (2010). *तदैव.* पृ. 41

10. उदारवादी लोकतंत्र के विकास में नारी : आरंभिक मुद्दे एवं संघर्ष

डॉ कृष्ण मोहन कुमार दुबे*

प्रस्तुत आलेख नारी विषयक लोकतांत्रिक अवधारणाओं के विकास एवं स्वरूपीकरण के दार्शनिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं राजनीतिक विश्लेषणों पर केन्द्रित है। आलेख में मुख्य रूप से नवीन उदार लोकतंत्र के उदय एवं सहभागी स्वरूप पर चले विमर्श के क्रम में नारीवादियों द्वारा नारी शोषण के पहचानों, कारकों, मुद्दों एवं जटिलताओं के साथ-साथ नारी के विभिन्न अवदानों के संबंध में चिंतकों के राजनीतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परीक्षण करते हुए आधुनिक युग में नारीवाद के विभिन्न धाराओं एवं उनके मुद्दों के विश्लेषण का प्रयत्न किया गया है। साथ ही इस बात का भी स्पष्टीकरण किया गया है कि उपनिवेशवाद के विरोध एवं राष्ट्रवादी संरचना में नारी विषयक मुद्दे किस प्रकार उठाए गए, उपेक्षित हुए, दलित हुए, एवं वर्त्तमान में नारी के राजनीतिक सशक्तिकरण के समकालीन मुद्दों तक पहुंचने में किस प्रकार पितृसत्ता निर्मित अवरोधों का किला धराशायी हुआ।

इतिहास के प्रत्येक काल खंडों में नारी के ऊपर विमर्श देखने को मिलता है। कभी उसका उल्लेख किसी ऐतिहासिक पुरूष की सदाचारी माँ के रूप में, आदर्श पत्नी के रूप में, मुग्धा बेटी के रूप में तो कभी षड्यंत्रकारी एवं शासिका के रूप में मिलता है। इतिहासकार रोमिला थापर ने तो प्राचीन इतिहास की सामाजिक व्यवस्था को मातृसत्तात्मक ही सिद्ध किया है।हालांकि इस तरह की व्याख्याओं को कई सामाजिक वैज्ञानिकों ने संदेहास्पद बतलाया है। आर. एम. मेकाइवर ने अपनी पुस्तक '*Modern State*' में इस संबंध में लिखा है "मातृसत्तावाद नामक शब्द भ्रामक माने जा सकते हैं।.....पितृभाव के अपेक्षा माता का बच्चे के साथ रिश्ता सदा अधिक प्रभावशाली और गहरा होता है। इस सत्य ने वंश परंपरा को स्त्री वंश से खोजने की सामान्य प्रणाली पर पहुंचाया होगा और गलत नामधारी मातृसत्तात्मक परिवार का सृजन किया होगा।

मानव अस्तित्व के जैविक उद्गम एवं विकास में पुरूष एवं नारी का योगदान समान रूप से रहा है। परंतु सभ्यताओं के विकास के क्रम में पुरूषों ने कुछ हद तक अपने लैंगिक विशिष्टता के आधार पर सामाजिक संरचना के साथ लिंग जनित अवसरों को जन्म दिया। फलतः नारी नी एवं पुरूष के बीच अवसरों की समानता एवं अधिकारों के दायरों के बीच खाई चौड़ी बनती चली गई। इन्होंने नारी के

***राजकीय इंटर कॉलेज (जिला स्कूल) मुजफ्फरपुर बिहार**

सामाजिक इकाई का जन्म उस शिक्षा के शिक्षण स्थल के रूप में हुआ जिस का आदर्श वाक्य था- "नारी सार्वजनिक क्षेत्र के सभी महत्त्वों के लिए अनुपयुक्त है।" शिक्षा का यह स्वरूप इतना अधिक मनोवैज्ञानिक था कि नारी की दासता की कड़ियाँ सदी दर सदी और अधिक मजबूत होती गई। नारी के इस असमान स्थिति को सर्वप्रथम राजनीतिक चिंतकों के द्वारा विचारधारा के केन्द्र में लाने का प्रयास किया गया एवं नारी की स्वतत्र मानसिकता को पुरूषों के समान महत्त्व दिया गया। बावजूद इसके स्वतंत्र लिंग के रूप में नारी का शोषण समाज के केन्द्र में रहा। नारी के इस शोषण में धर्म ने भी विशेष भूमिका निभाई। धर्म एवं पितृसत्ता की इस ऐतिहासिक जकड़न के कारण एक नारी का सर्वथा निजी क्षेत्र 'प्रजननता' भी वंश शुद्धता के दर्शन से पितृसत्ता के दायरे में चला गया एवं नारी घर के चार दिवारी में कैद हो गई। इस तरह नारी के सार्वनिक मामलों के साथ-साथ वैयक्तिक मामले भी हाशिये पर चले गए। इस संदर्भ में सीमोन द बूआ ने लिखा है- " नारी की परिभाषा और व्याख्या विशुद्ध रूप से पुरूषों के संदर्भ में की गई है न कि एक स्वायत्त प्राणी के रूप में। पुरूष कर्ता है, नारी कर्म। नारियों को पुरूष के विरूद्ध संगठित होने के लिए ठोस साधनों का अभाव है। उसका कोई अतीत नहीं, कोई इतिहास नहीं, अपना कोई धर्म नहीं। उसके पास कार्य और हित की वह एकता भी नहीं जो सर्वहारा को उपलब्ध है।नारी की इस दासता की स्थिति के विरूद्ध लोकतंत्र के विकास के साथ-साथ स्वर तीव्र हुये। इस स्वर को और अधिक तार्किक बल लोकतंत्र के उदारवादी धारणा ने प्रदान किया। लोकतंत्र के इस उदारवादी अवधारणा में सर्वप्रथम कुछ लेखक/लेखिकाओं ने एक स्वतंत्र मानवीय अस्तित्व के रूप में नारी की प्रतिष्ठा हेतु पराधीनता के मुद्दों को चुनौती दी, अवसरों के द्विविभाजन का विरोध किया एँव मुक्ति हेतु कुछ माँगे रखी। इन सभी के फलस्वरूप नारी सशक्तिकरण की दिशा को ठोस धरातल प्राप्त हुआ।

इस प्रकार नारी सशक्तिकरण के सैद्धांतिक यात्रा का प्रारंभ सर्वप्रथम लैंगिक न्याय की स्थापना के मार्ग के लिए सैद्धांतिक एवं न्याय के विभिन्न लोकतांत्रिक सिद्धांतकारों के द्वारा मुखरित हुआ। इन सिद्धांतकारो ने अपने उद्बोधनों में लिंग के सांस्कृतिक स्वरूपण, अवसरों के द्विभागीकरण आदि मुद्दों के प्रति आक्रोश प्रकट किया।

नारी के नियंत्रणाधीन बिन्दुओं में उसका लिंग सर्वप्रथम था। मध्यकाल के सामुद्रिक मार्गो की सफलतम खोज, स्थलीय मार्गो के विस्तार, यातायात के साधनों का विकास आदि के कारण देशों के मध्य विभिन्न प्रकार के आदान- प्रदान से रिश्तों में सुदृढ़ता कायम हुई। देशों के मध्य इन संपर्को ने संस्कृति के ऊपर बहस के बिन्दुओं में नारी की लैंगिकता के ऊपर नियंत्रण की कड़िया और कस दी। नारी की इस पराधीनता को आधुनिक युग में लोकतंत्रात्मक विकास के क्रम में चुनौती दी गई। जिसे सर्वप्रथम फ्रांस की राज्य क्रांति के दौरान एवं ब्रिटेन में मताधिकार के मुद्दे पर हुए बहसों के क्रम में देखा जा सकता है। फ्रांस

में सर्वप्रथम कुछ नारियों ने अवसर की असमानता को केन्द्रीय मुद्दा बनाया। इनमें ओलम्पी डी0 गॉगेज *(olympe de G\uges 1748-1793)* प्रमुख थी। गॉगेज ने असमानता को केन्द्रीय मुद्दा बनाया। गॉगेज ने तत्कालीन पुरूषवादी नागरिक परिवेश के संदर्भ में "नारी एवं नागरिक के अधिकारों का घोषणापत्र" *(Decl\r\tion of rights of wom\n \nd citizen) 1791* में जारी की। गॉगेज ने नारी एवं पुरूष के बीच अधिकारों के विभेद का विरोध करते हुए कहा कि " नारी स्वतंत्र रूप से जन्म लेती है और उसके अधिकार पुरूष के अधिकारों के समान है।..... कानून सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। सभी नागरिकों को चाहे वे पुरूष हो या नारी इसे बनाने में हिस्सेदारी होनी चाहिए।.....नारी को फाँसी के तख्ते पर चढ़ाने का प्रावधान है, उसे संसद में भी जाने का अधिकार होना चाहिए।[1]

गॉगेज के साथ ही मेरी वोलस्टनक्राफ्ट जैसी नारीवादियों की प्रथम पीढ़ी ने अपने हृदयग्राही तर्को के साथ सभ्यता के विकास में, सभी आंदोलनों में नारी की भूमिकाओं को उठाया। इन भूमिकाओं में क्रांतिकारियों के मुख्य धारा से जुड़कर रही व्यवस्था के विरोध के रूप में जर्मेनिया की अवधारणा का उदाहरण दिया। साथ ही राष्ट्रवादी आंदोलनों में उन नारियों की भूमिकाओं को महत्व प्रदान किया जो घरेलू जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए 'दर्जिन एवं धोबिन' (सिमेस्ट्रीज एवं लाउंडरस(का कार्य कर घर की आवश्यकताओं को पूरा कर रही थी एवं अपने घर के पुरूषों को आंदोलन में सहभागिता हेतु प्रेरित की थी। घर के अंदर की इस महत्वपूर्ण भूमिका को बाद के वर्षों में मार्क्सवादी / समाजवादी नारीवादियों ने अपना केन्द्रीय लक्ष्य बनाया तथा घरेलू श्रम के लिए वेतन का प्रश्न उठाया।इस प्रकार की सक्रिय भूमिकाओं के निर्वहन के बाद भी नारी की स्थिति 'कल्पना' एवं भावनात्मक विचार तक ही सिमट कर रही। हालांकि इन कल्पनाओं एवं भावनात्मक विचारों के माध्यम से राष्ट्रीय अस्तित्व के प्रतीक रूप में नारियों को मुखपृष्ठीय स्थान जरूर प्रदान किया गया। लेकिन राष्ट्रीय निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में इन नारियों को अपने वैयक्तिक कार्यों की स्वतंत्रता तक प्राप्त नहीं थी। ऐसे में सर्वप्रथम फ्रांसीसी बुद्धिजीवियों के संगठन 'सेलोन' ने सत्ता पर पितृसत्ता के वर्चस्ववादी प्रावधानों का विरोध किया। सेलोन की नारी सदस्यों ने सर्वप्रथम राष्ट्रीय जीवन में नारी के महत्त्व की स्थापना के दृष्टि से दो महत्वपूर्ण कदम उठाये। अपने पहले कदम के अन्तर्गत इन सदस्यों ने सम्पूर्ण फ्रांसीसी क्रांति की पृष्ठभूमि बनी रोटी के लिए क्रांतिकारी विरोध की अगुआई की एवं कैदखाने को उड़ाने एवं कैदियों को आजाद कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। जबकि दूसरे कदम के रूप में राज्य से नारी सुलभ चिंताओं जैसे शिक्षा, दहेज से सुरक्षा, परिवार की शुचिता का बचाव, जिसके हेतु वेश्याओं को बैज पहनना जरूरी था, सार्वजनिक विषयों में अवैध बच्चों के पिता का नाम बतलाने के अधिकार आदि जैसे विषयों से संबंधित बाध्यताओं के

उन्मूलन की माँग की। 1789 में ऐस्टेट जनरल की बैठक में नारी प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति के मुद्दे पर इस संगठन ने फ्रांसीसी राजा का विरोध किया। इस विरोध को और अधिक बल तब मिला जब 1791 में पुरूष घरेलू नौकरों को तो नागरिकता का अधिकार प्रदान किया गया लेकिन नारी को इससे वंचित रखा गया।ग्रेट ब्रिटेन में भी नारी के सार्वजनिक अधिकारों के शोषण एवं अवसरों की असमानताओं का स्वरूप फ्रांस से ज्यादा पृथक नहीं था। 1688 ई. की गौरवपूर्ण क्रांति के बाद अपदस्थ राजा चार्ल्स द्वितीय की पुत्री को संसदीय सर्वोच्चता के सिद्धांत के आधार पर राष्ट्र प्रमुख का पद प्रदान किया गया। पर आम नारियों को न केवल सार्वजनिक,बल्कि वैयक्तिक मुद्दों पर भी किसी तरह की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी। तब शासन में नारी सहभागिता को अप्राकृतिक मानते हुए जिन तर्को के आधार पर नकार दिया जाता था, बाद के वर्षो में उन्ही तर्को को श्रीमती मैरिओन किर्कलैंड रीड, फ्रॉसेस पॉवर कोब एवं अराबेला शोरे ने चुनौती दी।

मैरिओन किर्कलैंड रीड ने अपनी पुस्तक 'A *Plea for women'* में नारी की पुरूष से प्राकृतिक असमानता को स्वीकार करते हुए कहा कि " हम यह नहीं कहना चाहते हैं कि नारी और पुरूष प्राकृतिक रूप से समान है या दिमागी तौर पर बराबर है, लेकिन अपने बृहत्तर लक्षणों के हिसाब से वे समान है और जिन कारणों से उनमें अंतर है वह बहुत छोटा है क्योंकि उनमें जो समानता है वह उनके एक- दूसरे के अंतर से बहुत अधिक है।दूसरी समाज सुधारक नारी पॉवर कॉव ने अपने लेखों में केवल लैंगिक असमानता के आधार पर नागरिक स्वतंत्रता प्रदान नहीं करने के आधार को चुनौती देते हुए कहा " मैं शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक रूप से तुमसे भिन्न हूँ लेकिन जब तुम यह मानते हो कि मेरे पास सही और गलत का अंतर करने की समझ है। मैं बहुत संतुष्ट हूँ और केवल नैतिक और बौद्धिक होने के नाते मैं अपने समान नागरिक अधिकारों का दावा करती हूँ।

इसी तरह अरावेला शोरे ने भी एक नारी के सर्वथा वैयक्तिक गुणों को लोकतंत्र के अनुकूल बतलाते हुए लंदन के "नारियों के अधिकार समिति" के कार्यक्रम में व्याख्यान देते हुए कहा है "माना कि नारी पुरूषों की तुलना में ज्यादा भावुक और आवेगी होती है लेकिन इससे क्या होता है? क्या एक या दूसरी जाति के कम या ज्यादा समान गुणों के कारण राष्ट्र की आधी आबादी प्रतिनिधित्व के लायक हो जाती है और आधी नालायक ? क्या एक आयरिश सिर्फ इसलिए वोट के अधिकार से अयोग्य ठहराया जा सकता है कि वह एक अंग्रेज की तुलना में ज्यादा आवेगी होता है? क्या उसकी भिन्नता उसकी खुबियों की तुलना में अधिक बेहतर नही ? इस प्रकार फ्रांस वह पहला राष्ट्र था जहां नारियों ने पितृसत्ता को चुनौती दी। तत्पश्चात ब्रिटेन में भी क्रमिक रूप से नारियों के मांग को विभिन्न अभिसमयों में स्वीकार किया गया। दुनिया के शेष राष्ट्र जो ब्रिटिश उपनिवेश थे, वहाँ नारियों को औपनिवेशिक नीतियों के साथ - साथ

राष्ट्रीय संरचना के शिलालेखों का भी सामना करना पड़ा। इसका उदाहरण अमेरिका है। जहाँ प्रारंभ में ब्रिटिश संस्कृति की मानसिकता एवं उत्तरोत्तर श्वेत- अश्वेत के मुद्दो ने नारी सशक्तिकरण के राह में अवरोधों की दीवार खड़ी की।

दुनिया के मानचित्र में लगभग 18 वीं सदी तक सम्पूर्ण अमेरिका एवं 20वीं सदी तक एशिया और अफ्रीका महादेश के अधिकतर देश लम्बी अवधि तक उपनिवेशवाद के शिकार रहें हैं। 19 वीं सदी के उत्तरार्ध एवं 20वीं सदी के पूर्वाद्र्ध में इस औपनिवेशिक नीति के विरूद्ध अधिकतर एशियाई, अफ्रीकी और लेटिन देशों जनता द्वारा इसे उखाड़ फेंकने की अभिव्यक्ति सामने आयी। विरोध की इस अभिव्यक्ति में नारियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। इन देशों में अधिकतर परिचारिका, बावर्चिन, बच्चे पालनेवाली, डाकिया तथा राष्ट्रीय मुक्ति सेना की गुरिल्ला के रूप में नारियों ने अपने भूमिकाओं का निर्वहन किया। लेकिन नारियों की इस भूमिका को समाज के पितृवादी संरचना द्वारा "नारी सुलभ" योगदान के रूप में दर्शाया गया। तीसरी दुनिया के देशों में चले औपनिवेशिक विरोधी आंदोलनों का यदि गहन अध्ययन किया जाये तो पता चलता है कि नारियों के आंदोलन का मुख्य लक्ष्य "समानता के आदर्श" की प्राप्ति थी। समानता की यह चाह दो बिन्दुओं पर केन्द्रित थीं प्रथम में जहाँ सभ्यतागत, जातिगत, नस्लवादी श्रेष्ठता का विरोध, क्योंकि ये वैसे तत्व थे जो अधिनायकवाद के सैद्धांतिक पक्ष को बल प्रदान करते थे, वहीं द्वितीय, विदेशी शासन के फलस्वरूप उपजे एवं मजबूत हुए सामंती वर्चस्व तथा शोषण का विरोध। इस तरह नारी आंदोलन का केन्द्र बिन्दु प्रथम रूप में विदेशी अधीनता का विरोध तथा दूसरे,s अधीनता की देशीय परंपरागत संरचना का विरोध था।

विरोध के इन दोनों स्तरों पर विशेष रूप से एशिया एवं अफ्रीका महादेश में नारियों को उदार लोकतंत्र और समाजवाद की विचारधारा ने लामबंद किया। उदार लोकतांत्रिक विचारधारा ने जहाँ, नारी की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परंपराओं की तरफ ध्यान आकृष्ट किया तथा लोकतांत्रिक अधिकारों, प्रतिनिधि सरकार सार्वजनिक वयस्क मताधिकार आदि का नारा दिया, वहीं बहुसंख्य नारी सम्राज्यवाद विरोध के संदर्भ में मार्क्सवादी विचारधारा के अधिक निकट आयी। मार्क्स ने जिस प्रकार समाज की वर्गवादी संरचना को सभी प्रकार के शोषण का कारण माना था, उसने नारियों को एक सैद्धांतिक उपकरण उपलब्ध कराया। जिससे औपनिवेशिक वर्चस्व की आलोचना करना और उसे चुनौती देना अधिक सुगम हो गया। इन दोनों संदर्भो में जो महत्वपूर्ण उपलब्धि रही, वह यह कि इसने नारी उत्पीड़न एवं मुक्ति के विचार और नारी अधिकारों के मुद्दों को सामने ला दिया।

इस उपर्युक्त सम्पूर्ण प्रकरण में उल्लेखनीय है कि जैसे-जैसे औपनिवेशिक दासता की जड़े कमजोर हुई एवं नारी उत्पीड़न एवं अधिकारों के मुद्दे सामने आये वैसे- वैसे राष्ट्रवाद का स्वरूप मजबूत

होता गया। नारीवादियों ने राष्ट्रवाद को भी उपनिवेशवाद की तरह ही एक पुरूषवादी व्यवस्था के रूप में चिन्हित करते हुए कहा कि इसमें भी पुरूषों को प्राथमिकता दी जाती है तथा नारियों को हाशिये पर धकेल दिया जाता है। सिंथिया एनलोये लिखती हैं कि "राष्ट्रवाद विशिष्टतः पुरूषवादी स्मृति, आहत पौरूष और पुरूषवादी आशा से उत्पन्न हुआ है।" एनलोय स्पष्ट करती है कि राष्ट्र को वैसे ही पुरूष माना जाता है और पुरूष नागरिक का अपने राष्ट्र के साथ वही प्रतीकात्मक संबंध होता है जो पुरूष का नारी के साथ होता है। राष्ट्रवाद में नारी उपेक्षा को बर्जिनिया बुल्फ ने और अधिक स्पष्ट एवं उग्र रूप में रखा। द्वितीय विश्व युद्ध के समय शान्ति के मुद्दे पर नारियों की भूमिका के संदर्भ में वे लिखती है कि ऐतिहासिक रूप से नारियों को सर्वदा युद्ध शुरू करने संबंधी निर्णयों से बाहर रखा गया है और यह युद्ध करने का निर्णय भी उनका नही है, इसलिए वह इस प्रश्न पर विचार जरूर करेंगी कि "मुझ बाहरी" व्यक्ति के लिए मेरे देश का क्या अर्थ है?" इस प्रश्न का उग्र रूप में उत्तर देते हुए वे कहती है "इस प्रश्न का निर्णय करने के लिए वह (नारी(अपने विषय में देश भक्ति के अर्थ का विश्लेषण करेगी। वह अतीत में अपने लिंग और वर्ग का लेखा-जोखा लेगी। वह इस बात पर विचार करेगी कि नारी आज कितनी जमीन, संपति की स्वामिनी है या असल में आज कितना इंग्लैंड उसके हाथ में है।.....। हमारा देश, वह कहेगी, 'इतिहास का ज्यादातर काल मुझे सिर्फ दास मानता आया है; इसने मुझे शिक्षा या मालिकाने में किसी भी प्रकार की हिस्सेदारी से वेदखल रखा.....असल में एक नारी के रूप में उसका कोई देश नहीं है। एक नारी के रूप में, मैं कोई देश चाहती भी नहीं। एक नारी के रूप में सम्पूर्ण विश्व मेरा देश है। और यदि, तर्क के प्रभाव के बावजूद कुछ धुंधली-धुंधली-सी भावनायें शेष रह जाती है। उद्यानों की अमराई या समुद्र तट पर लहरों के आवेग या बालपन की कविताओं के माध्यम से उसे इंग्लैंड के प्रति दिया गया कुछ प्रेम शेष रह जाता है, उसे भावना के बल पर वह सबसे पहले इंग्लैंड को देगी जो उसके विचार से दुनियाभर की शान्ति के लिए उसका उचित हिस्सा बनता है।

राष्ट्रवाद के उदय एवं प्रसार में नारी किस प्रकार जुड़ जाती हैं एवं अपनी सहभागिता निभाती है। इस पर विचार करते हुए भुवाल-डेविस और फ्लोरा एन्थियास ने उन पाँच प्रमुख कारणों को चिन्हित किया जिसके कारण नारी राष्ट्रवाद के दायरे में घसीट ली जाती है। वे निम्नलिखित हैं-

- राष्ट्रीय समूह के सदस्यों की जैविक प्रजननकर्ता के रूप में;
- राष्ट्रीय समूहों की सीमाओं के प्रजननकर्ता के रूप में;
- राष्ट्रीय संस्कृति के सक्रिय प्रसारक और उत्पादक के रूप में;
- राष्ट्रीय विभेद के प्रतीकात्मक संकेतक के रूप में; और

- राष्ट्रीय संघर्षों में सक्रिय हिस्सेदार के रूप में।

उपर्युक्त विशलेषणों के बावजूद यह भी यथार्थ है कि राष्ट्रवाद के प्रसार में नारी सशक्तिकरण को एक महत्त्वपूर्ण पहलू के रूप में विभिन्न देशों में समाज सुधारकों द्वारा नारी प्रश्न के मुद्दे को उठाया जाना है। समाज सुधारकों ने तत्कालीन परिवेश में औपनिवेशिक नीतियों एवं राष्ट्रवादी अभिजात वर्ग के बीच पिस रही नारी के मुद्दों की तरफ औपनिवेशिक सरकार का ध्यान आकृष्ट करते हुए इसमें हस्तक्षेप करने की मांग की। इन मुद्दों में भारत में सतीप्रथा, मिश्र, तुर्की और ईरान में पर्दा प्रथा, बहुविवाह और परित्याग की प्रथा, चीन में नारियों के पैर बांधने की प्रथा आदि थी। सुधारकों ने इस क्रम में औपनिवेशिक सरकारों से पुरूषों द्वारा जनतांत्रिक अधिकार प्राप्त करने के क्रम में नारियों के अधिकार एवं दर्जे का मुद्दा भी उठाया। उदाहरण के लिए भारत में राजा राम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्या, महात्मा फुले, महादेव गोविन्द राणाडे, रमाबाई राणाडे आदि ने न केवल सतीप्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह जैसी प्रथाओं का विरोध किया, बल्कि इनमें सुधार हेतु नीतियों के निर्माण एवं कार्यन्वयन हेतु आंदोलन भी चलाये। इसी प्रकार जापान में मीजी काल में फुकुजुआ और सोहो जैसे सुधारकों ने पारिवारिक जीवन के कन्फूशियसवादी तरीके की आलोचना और नारियों के अधिकारों की वकालत की। तुर्की में तुर्क सुधारक गोकालपंद अहमद अगागोलू ने नारी मुक्ति हेतु आवाज उठाते हुए कहा कि" भविष्य में, तुर्क नैतिकता, लोकतंत्र और नारीवाद के साथ-साथ राष्ट्रवाद और देशभक्ति परिवार के श्रम और शक्ति पर आधारित होनी चाहिए। चीन के कांग युवेई जैसे सुधारवाद विचारकों ने चीनी समाज में नारी पर अंकुश लगानेवाले परंपरागत दबावों का विरोध किया।[4] उल्लेखनीय है कि इन समाज सुधारकों ने नारी के मुद्दों के संदर्भ में बहुधा उस प्राचीन संस्कृति की दुहाई दी जिसमें नारियों को सामाजिक दायरे में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त था। यथा भारत में सुधारकों ने उस वैदिक संस्कृति के आदर्शों को प्रचारित किया जिनमें नारियों को पुरूषों के समान सामाजिक दायरे में स्थान प्राप्त था। इसी तरह ईरानी सुधारकों ने जरथुस्ट्रीय परंपराओं की याद दिलाई, जिसमें नारियों को उच्च स्थान प्राप्त था। जापानियों ने अपने यहाँ सूर्य को देवी मानने एवं साम्राज्ञियों का उल्लेख किया तथा मिश्र में प्राचीन कालीन नेफेरतीती और हैत्शपैसुर जैसी साम्राज्ञियों के गौरवपूर्ण शासन काल का यशोगान किया गया।[5] इस प्रकार के सामाजिक प्रयासों से नारी एक विषय के रूप में सार्वजनिक मुद्दों के बहसों में शामिल हुआ।

लोकतंत्र सर्वथा समानताओं पर आधारित व्यवस्था के निर्माण का दर्शन है। शासन व्यवस्था के सभी प्रकारों में लोकतंत्र ही एक वह प्रकार है जो लम्बवत एवं क्षैतिज दोनों रूपों में समानता की परिकल्पना करता है परंतु नारी के संदर्भ में इस परिकल्पना की प्राप्ति की राह आसान नहीं थी। ऐसे में लोकतंत्र के उदारवादी स्वरूप ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हुये नारी अधिकारों को तार्किकता प्रदान की। कालांतर में उदारवाद के

कारण एवं उसने प्रतिक्रियास्वरूप भी जिन नवीन सामाजिक-आर्थिक- राजनीतिक व्यवस्थाओं का उदय हुआ उसी के अनुरूप पश्चिमी नारी अधिकारों के प्रकृति एवं स्वरूप में भी परिवर्तन आया। आज विश्व के प्रत्येक देश में चाहे वहाँ गैर लोकतांत्रिक व्यवस्था हीं क्यों न हो, नारी के सार्वजनिक अधिकार एवं प्रतिनिधित्व के मुद्दे बौद्धिक विमर्शो के केन्द्र में है। इन विमर्शो के परिणामस्वरूप ही इन देशों के राजनीतिक व्यवस्थाओं के दरवाजे लोकतंत्र के प्रवेश हेतु खुलने लगे हैं। अरब के देशों में हालिया वर्षो में आये परिर्वतन इसके मजबूत उदाहरण हैं। स्पष्ट है कि राजनीतिक व्यवस्थाओं को विभेद रहित एवं लोकतांत्रिक बनाने में नारी के लोकतांत्रिक अधिकारो के आंदोलन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है

***

11. भारत में दलित महिलाओं की स्थिति : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एक अध्ययन

डॉ. रुपाली भारौदिया*

चंचल रानी**

समाज का एक तबका आज भी हाशिए पर है जो दबा-कुचला और सदियों से अभाव का जीवन व्यतीत कर रहा है। समाज का यह वर्ग है- दलित वर्ग, जो आज भी सबसे निचले पायदान पर है और अन्य वर्गों की बराबरी नहीं कर पा रहा है। इन्हें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा गया यही कारण है कि आजादी के वर्षों बाद भी यह वर्ग दयनीय स्थिति में है। भारतीय समाज के सन्दर्भ में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह वर्ग जिसका उल्लंधन निरंतर प्रॉक ऐतिहासिक काल से जारी है। दलित समाज को भी यदि हम स्त्री और पुरूष के पटल पर बाँटकर देखें तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि दलित महिलाएँ सामाजिक संस्तरण में सबसे निचले स्थान पर आती है, इस प्रकार दलित महिलाएँ न केवल उच्च जाति की महिलाओं से दयनीय एवं विषम परिस्थितियों का सामना करती है बल्कि दलित वर्ग में भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण उनकी स्थिति और भी कमजोर एवं संवेदनशील है। दलित महिलाएँ तिहरे शोषण की शिकार है जिसका आधार जाति, वर्ग एवं लिंग भेद है।

ऐतिहासिक काल से ही दलित महिलाएँ कई प्रकार के शोषण का शिकार रही हैं तथा भारतीय सामाजिक व्यवस्था में उनके मानव अधिकारों का उल्लंघन होता रहा है। दलित महिलाओं को हिंदू सामाजिक-व्यवस्था में सिर्फ इतना ही स्थान दिया गया है जिससे उनकी सेवाओं का उपभोग उच्च जातियों के लोग कर सकें। ये सेवाऐं मुख्यत: दो रूपों में बाँटकर हम देख सकते हैं- पहला शारीरिक श्रम (मजदूरी, बेगार, मेला ढ़ोना आदि) एवं दूसरा उनका शारीरिक शोषण। मनुस्मृति में भी जब दलित महिलाओं के अधिकारों की बात आई तो उन्हें जानवरों के समकक्ष रखा गया। मध्ययुगीन काल से ही कुछ बदलाव की आवाजें बुलंद की गई और आजादी के बाद डॉ. अम्बेडकर के अथक प्रयासों के फलस्वरूप दलितों और उनकी महिलाओं के अधिकारों के लिए संवैधानिक दर्जा इख्तियार किया गया किन्तु हिंदू सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न लेखों के आधार पर व्यवस्थित एवं जातिगत पुरानी परम्परागत और भेदभावपूर्ण व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाने और उसमें बदलाव करने की कोशिशों को कभी छूट नहीं प्रदान की गई।

---

* **एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, (राजस्थान)**

** **शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, (राजस्थान)**

आज 21वीं सदी में भी भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था से अछूता नहीं है। जातीय शोषण आज भी विद्यमान है चाहे वह धर्म के आधार पर हो या जातिगत आधार पर, वैज्ञानिक युग में भी सामाजिक वर्गीकरण बना हुआ है। दलित महिलाओं की दयनीय स्थिति इसी वर्ण व्यवस्था का परिणाम है। वर्गीकरण के आधार पर दलित महिलाओं की स्थिति विभिन्न कालों में किस प्रकार रही होगी इसे हम विभिन्न कालों में बाँटकर देख सकते है कि ऐतिहासिक काल से वर्तमान तक दलित महिलाओं की स्थिति कैसी है? क्या उसमें ऐतिहासिक काल से वर्तमान तक कोई परिवर्तन आया है? आज संवैधानिक युग में भी अगर उनकी स्थिति में अन्तर आया है तो किस प्रकार ?

वैदिक काल में दलित महिलाओं की स्थिति

शुद्रों को यदि स्वर्ग में जाना है तो उसे बाह्मणों की सेवा करनी चाहिए। मनुस्मृति के अनुसार संसार में जो कुछ है वह ब्राह्मणों का है क्योंकि जन्म से ही ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। नामकरण के अवसर पर बाह्मण का नाम शुभकारी या मंगलवाचक, क्षत्रिय का बलवाचक, वैश्य का धनवाचक और शूद्र का निन्दायुक्त नाम रखना चाहिये।[2] अर्थात शूद्रों का अपनी महिलाओं पर भी अधिकार नहीं था। शूद्र स्त्रियाँ सभी वर्गों की सेवा के लिए थी जिनसे शारीरिक श्रम एवं शारीरिक उपभोग का काम लिया जाता था। शूद्र स्त्री का शोषण तीनों उच्च वर्गों द्वारा किया जाता था जो उनके अधिकार स्वरूप था, परन्तु शूद्र यदि किसी दूसरे वर्ण की स्त्री से व्याभिचार करे तो उसके लिंग को काट दिया जाता था या उसका वध कर दिया जाता था ऐसी धारणा थी कि यदि शूद्र की स्त्री से उच्च वर्ण के लोग व्याभिचार करें तो ऐसे संग से शूद्र स्त्री स्वर्ग में जाने का अधिकार प्राप्त कर लेती है।[2] इस वर्ण व्यवस्था की चार-दिवारी में दलित महिला घुट-घुट कर मरती रही है। शूद्रों का तो दमन होता ही था परन्तु उनकी महिलाओं को भी जानवरों स्वरूप समझा जाता था।

उत्तर वैदिक काल में दलित महिलाओं की स्थिति

अथर्ववेद के उन्नीसवें अध्याय में शूद्रों का वर्णन एक वर्ग के रूप किया गया है जिससे ज्ञात होता है कि शूद्र आर्यों का ही एक कबीला था जो ऋग्वैदिक आर्यों के बाद 1500 ई.पू. में भारत आया। उस समय संभवत भूमि और पशुओं को लेकर ऋग्वैदिक आर्यों और शूद्रों के बीच संघर्ष हुआ होगा जिसमें शूद्र पराजित हुए होंगें इसलिए उन्हें भी पराजित अनार्यों का दर्जा मिला। उसके पश्चात् अनेक अनार्य जातियों की गणना, जो भारत आर्यों के आने के पहले से रहती थी, शूद्रों मे कर दी गई। उत्तर वैदिक काल तक आते-आते आर्यों और दासों में वैवाहिक सम्बन्ध होने लगे थे। आर्य शूद्र स्त्री से विवाह कर सकता था परन्तु शूद्र पूरूष को आर्य स्त्री से विवाह का अधिकार न था। इस काल में वैश्यों और शूद्रों के व्यवसाय एक समान होने लगे थे। अत: वैश्य और शूद्र एक-दूसरे के निकट आने लगे थे। वैश्य शूद्र स्त्री से विवाह करने कारण ब्राह्मण और क्षत्रिय की भांति रक्त की पवित्रता नहीं रख सके। इसलिए इन दो उच्च वर्गों ने शूद्रों से बचने के लिए कुछ नियम बनाये। इस काल में शूद्रों की स्थिति अस्पष्ट थी क्योंकि सामुदायिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अन्य वर्गों के साथ शूद्र भाग लेते थे।[3] शूद्र महिलायें कृषि कार्यों में पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य करती थी और घर के कार्यों में भी अपनी भूमिका निर्वहन करती थी। परन्तु शूद्र

महिला की सन्तान वैश्य पिता की सम्पत्ति में सामान्य महिला की सन्तान की तरह बराबर की अधिकारी नहीं थी। इस काल के प्रारंभ में शूद्र महिलाएँ धार्मिक कृत्यों में भाग ले सकती थी परन्तु बाह्मण समाज की कट्टरता ने उन्हें इस कृत्य से भी दूर कर दिया और इस काल के अन्त तक उन्हें अधिकांश सामाजिक कृत्यों और अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

मौर्य काल में दलित महिलाओं की स्थिति

मौर्यकाल में शूद्रों की सामाजिक स्थिति अत्यंत दयनीय थी। शूद्रों और इन की महिलाओं को कोई सामाजिक और धार्मिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। कानूनी दृष्टिकोण से भी शूद्रों द्वारा किये गये अपराध के लिए अत्यन्त कठोर दण्ड और अन्य वर्गों द्वारा शूद्रों की स्त्रियों का शारीरिक शोषण किया जाता था। इस काल में शूद्र वैश्यों के साथ कृषि कार्य तो करते थे परन्तु इनके श्रम पर एवं इनकी सम्पत्ति पर राज्य का पूरा नियंत्रण था इनकी महिलाओं को भी राज्य की सम्पत्ति समझा जाता था। शूद्रों की स्त्रियाँ किसी भी स्थान पर सुरक्षित न थी न घर के अन्दर और न घर के बाहर। उनके इस प्रकार के निरन्तर शोषण का शूद्र विद्रोह भी नहीं कर सकते थे क्योंकि उन पर ब्राह्मणों की शिक्षा का व्यापक प्रभाव था। शूद्र महिलाएँ यह समझती थी कि हमने पूर्व जन्म में अवश्य ही कोई बुरे कर्म किये होगें जिसके फलस्वरूप हमारा जन्म शूद्र परिवार में हुआ होगा। इस काल में दास कारखानों में भी काम करते थे। जानवरों और दासों मे कोई फर्क महसूस नहीं किया जा सकता था। इस काल के शासक सम्राट अशोक ने दासों के साथ अच्छा व्यवहार करने का भी आदेश दिया था। मौर्योत्तर काल तक आते-आते शूद्रों की दशा उत्पादक वर्ग में होने लगी थी। नये-नये शहर बसने लगे थे परन्तु वाणिज्य में भूमिका निभाने के बावजूद भी शूद्रों की आर्थिक स्थिति उच्च जातियों से निम्न ही रही।[4] शिक्षा के अधिकार से यह वर्ग वंचित ही रहा। छोटे-छोटे अपराधों के लिए भी अंग-भंग की सजा का प्रावधान था। शूद्र महिलाओं की स्थिति यथावत बनी रही। इसके अलावा इनको दासों के वर्ग में रखकर इनका क्रय-विक्रय भी किया जाता था।

गुप्तकाल में महिलाओं की स्थिति

गुप्तकाल अथवा स्मृतिकाल की स्मृतियों से ज्ञात होता है कि इस काल में इनको अछूत समझा जाने लगा था। जिसके फलस्वरूप अस्पृश्य समुदाय के लोग सड़क साफ करते, शवों की रक्षा करते, अपराधियों को फांसी देते और रात के समय विचरण करते और चोरों का पता लगाने का काम करते थे। शूद्रों के विषय में धारणा थी कि शूद्र अपवित्र है, झूठ बोलते हैं, चोरी करते हैं और नास्तिक हैं और अवकाश के समय दूसरों से झगड़ते रहते हैं। इन जातियों को रात के समय नगर या कस्बे के अंदर आने की अनुमति नहीं थी। इनके निवास स्थान अथवा झोपड़ियाँ भी गाँव अथवा कस्बों के बाहर बनायी जाती थी। इस वर्ग के लोगों की पोशाकें भी निर्धारित थी। इनकी महिलाएँ भी सामान्य महिलाओं से अलग पोषाक धारण करती थी और आभूषण एवं नये वस्त्र पहनने का उनको अधिकार नहीं था। उनके लिए इस प्रकार की पोशाकों का निर्धारण इसलिए किया जाता था जिससे यह वर्ग अपनी पहचान बनाये रखे। शूद्र स्त्री से दिन में उच्च जातियों के घरों में साफ-सफाई का काम लिया जाता था और रात्रि में काम के स्वरूप ही

उनका शारीरिक शोषण किया जाता था। उनके लिए आराम एवं घर जाना निरर्थक था। लगातार परिश्रम करते रहने से और रात्रि में आराम न मिलने के कारण ये महिलाएँ स्वास्थ्य की ओर से भी प्रभावित रहती थी। कम पारिश्रमिक मिलने के कारण दलित महिलाएँ अपने और अपने बच्चों के लिए सिर्फ रोटी का इन्तजाम कर सकती थी जिससे इस वर्ग को स्वास्थ्य सेवाओं अर्थात वैद्य आदि का इलाज भी नहीं मिल पाता था जिस कारण दलित महिलाओं को अनेक बीमारियाँ भी होती रहती थी। रोगों में लिप्त हाने पर सभी उच्च वर्ग इनसे दूरी बनाये रखते थे और वैद्य भी छुआछूत करते थे और इनका इलाज नहीं करते थे, गाँव अथवा कस्बों से बाहर गन्दी बस्तियों में यह वर्ग जीवन यापन करता था।[5]

मध्यकाल में दलित महिलाओं की स्थिति

भारत में मुगलों अथवा मुसलमानों का शासन आरम्भ होने के बाद समाज की धर्मान्धता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। इस काल में धर्म के नाम पर अछूत कहे जाने वाले शूद्रों का सर्वाधिक शोषण हुआ। शूद्रों को मनुष्यों की बस्ती से दूर किसी निर्जन स्थान पर रहने के आदेश दिये गये और सार्वजनिक जीवन से सम्बन्धित किसी भी कार्य को करना उनके अधिकार क्षेत्र से बाहर कर दिया गया।[6] भारत पर लगभग 800 वर्षों तक मुस्लिम शासकों ने शासन किया। उच्च वर्ग के लोगों को मुस्लिम शासन में जासूस व वकील रख लिया जाता था और बाह्मणों को जजिया कर से भी छूट दी गई थी। बाह्मणों के सहयोग से ही मुस्लिम भारत पर लम्बे समय तक शासन कर पाये। दलितों को इन्होंने भी गुलाम एवं अपना दास बनाकर रखा। दलित वर्ग पर अत्यधिक जुर्म ढ़हाये जाते थे एवं इनको इस्लाम कबूल करने के लिए विवश किया गया। दलित महिलाओं का शोषण मुस्लिम काल में सर्वाधिक एवं खुले तौर पर किया जाता था। इस काल में अनेक शूद्रों ने मुस्लिम एवं ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था यह दलितों के लिए एक धर्मपरिवर्तन का युग भी रहा। स्वर्ण हिन्दू दलितों को हिन्दू धर्म का सदस्य कहने में भी संकोच करने लगे थे। खुलेआम दलित महिलाओं का शोषण और दमन जारी था। शूद्रों की हत्याएँ करने में किसी को कोई संकोच नहीं था। सैकड़ों वर्षों से पनपी हीन भावना और समस्त अधिकारों से वंचित शूद्र वर्ण कभी अपने असन्तोष को खुले में व्यक्त नहीं कर सका। 19वीं शताब्दी के अन्त में शूद्रों की समस्याऐं इतनी बढ़ गयी थी कि इन्हें हिन्दू समाज से पृथक कर दिया गया। इसी काल के अन्त में निर्गुण संत कवियों एवं कुछ भक्तों द्वारा इनके दर्द को व्यक्त करने की शुरूआत की गई।[7]

स्वतंत्रता से पूर्व दलित महिलाओं की स्थिति

भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ-साथ ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार करने वाली अनेक धार्मिक संस्थाओं का आगमन हुआ जिनका प्रमुख लक्ष्य मानवीयता को जागृत करना था। शूद्र जो दबे-कुचले थे, सड़कों पर नहीं चल सकते थे उन्होंने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। ईसाई मिशनरियाँ भारत में पश्चिमी सभ्यता का मानवीयता का रूप प्रस्तुत करने में बड़ी भूमिका अदा कर चुकी हैं। इनका सम्बन्ध समाज सेवा, दलितों- शोषितों का उद्दार एवं महिलाओं सहित समस्त वर्गों के कल्याण से है। भारत में ज्यों-ज्यों अंग्रेजी साम्राज्य विकसित होता गया, त्यों-त्यों दलितों-पिछड़ों एवं महिलाओं के लिए स्कूलों का

निर्माण किया गया जिनमें शिक्षा से लेकर दलित बालकों के जीवन की विसंगतियों को भी परखने का अवसर मिला।[7] ब्रिटिश शासन काल में दलित महिलाएँ जातिगत धंधों को त्यागकर कृषि, व्यापार एवं उद्योगों जैसे स्वच्छ व्यवसायों में प्रवेश लेने लगीं। दास प्रथा का अन्त हुआ और कॉफी, चाय के बागानों की शुरूआत हुई जिनमें दलित महिलाएँ काम करने लगी। उनकी आर्थिक स्थिति में परिवर्तन आने प्रारम्भ हुए। अम्बेडकर के संघर्षशील व्यवहार के कारण ब्रिटिश शासन में ही दलितों को वोट डालने का अधिकार भी प्राप्त हुआ परन्तु यह अधिकार शिक्षा के आधार पर किया गया था जबकि दलित महिलाएँ इस अधिकार से कोसों दूर थी। अंग्रेजी शासन काल में जातिगत भेदभाव पर ध्यान नहीं दिया जाता था, जिस कारण छुआछूत की तरफ अंग्रेजों का ध्यान ही नहीं गया। उच्च वर्ग प्राचीन की भांति ही दलितों पर हावी रहा और उन्हें सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं से दूर ही रखा गया। ब्रिटिश काल में जमींदारी प्रथा का अन्त हुआ परन्तु अब दासों का स्थान श्रमिकों के रूप में दलितों ने ले लिया था इस तरह शिक्षा से उन्हें दूर रखा गया। कुछ समाज सुधारकों ने दलित वर्ग के विकास हेतु प्रयास भी किये परन्तु ये प्रयास पहले दलित समुदाय का विकास करते उसके पश्चात दलित महिलाओं के अधिकारों की बात सम्भव थी। स्वामी दयानन्द, घासीराम, नारायण गुरू, रानाडे, विवेकानन्द, रामास्वामी पेरियार का आन्दोलन, ज्योतिबा फूले का सत्यशोधक समाज एवं उनकी पत्नी का महिला शिक्षा आन्दोलन, अम्बेडकर का दलितोत्थान, गाँधी के छुआछूत उन्मूलन आदि आन्दोलनों के द्वारा इन समाज सुधारकों ने दलितों की दशा सुधारने के प्रयास किये। ब्रिटिश काल में दलित महिलाओं का दोहरा शोषण हुआ एक तो हिन्दुओं द्वारा शूद्र एवं दलित मानकर और दूसरा अंग्रेजों द्वारा असहाय एवं कमजोर समाज की महिलाएँ मानकर। इस काल में भी इनको अस्पृश्य ही माना गया, न शिक्षा, न अच्छे वस्त्रों और न अच्छे भोजन पर इनका अधिकार था, इनका सार्वजनिक जलाशयों, कुओं, विद्यालयों एवं सड़कों से गुजरना निषेध था। दलित महिलाएँ उच्च जातियों के घरों में साफ-सफाई का काम करती थी और सड़कों का कूड़ा-कचरा साफ करती थी। विद्यालय जाने का इनका अधिकार नहीं था। काम के बदले इनको फटे-वस्त्र और झूठा भोजन ही मिलता था, अच्छे और साफ-सुथरे वस्त्र पहनने का इनका अधिकार नहीं था। इनके पुरूष जमीदारों के घरों में मजदूरी और मैला ढ़ोने का काम करते थे जो इस समुदाय के लोग इस कार्य को ही अपना पारम्परिक पेशा मानकर करते आ रहे हैं। बहुत से स्थानों पर दलित समुदाय की महिलाओं को अपने स्तन ढ़कने का भी अधिकार नहीं था और आभूषण पहनने पर भी प्रतिबन्ध था। पर्दाप्रथा, सतीप्रथा, देवदासी प्रथा एवं वेश्यावृत्ति इसी काल में सर्वाधिक थी। दलित समुदाय की महिलाओं को अत्यधिक शारीरिक एवं मानसिक शोषण का शिकार होना पड़ता था जो अन्त में दुःखी होकर वैश्यावृत्ति को स्वीकार कर लेती थी। दलित महिलाओं को देवदासी बनने के लिए मजबूर किया जाता था। केरल में प्रथा थी कि दलित समुदाय की महिलाएँ अपने स्तन नहीं ढ़क सकती थी। अपने स्तन ढ़कने पर उन्हें प्रतिबन्ध था उच्च जातियों द्वारा उनके समुदाय की पहचान के लिए यह प्रथा चलायी गयी थी कि यदि कोई दलित महिला अपने स्तन ढ़कना चाहती है तो उसे कर देना पड़ेगा जो कि उनके श्रम का दोगुना था। इस प्रकार दलित महिलाओं को बिना अपने स्तन ढके ही रहना

पड़ता था। दलित महिलाओं के लिए अधिकारों की बात करना तो दूर मानवीय समुदाय से भी पृथक समझा जाता है। पुर्नजागरण काल में विभिन्न समाज सुधारकों एवं अम्बेडकर के प्रयासों से इनकी यथास्थिति सुधारने के लिए अनेक संघर्षों एवं आन्दोलनों द्वारा इन्हें जागृत करने के प्रयास किये गये और शिक्षा के महत्व को समझाने की कोशिश की गई।

स्वतन्त्रता के पश्चात् दलित महिलाओं की स्थिति

भारत में लगभग दो शताब्दी तक ब्रिटिश राज स्थापित रहा और सन् 1935 में साइमन कमीशन ने अस्पृश्य जातियों के लिए अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग किया जिसे डॉ. अम्बेडकर ने भी स्वीकार किया। 1947 में भारत को ब्रिटिश राज से आजादी मिली और गणतन्त्र भारत के लिए एक स्वतंत्र एवं पृथक संविधान का गठन किया गया। डॉ. अम्बेड़कर के अथक प्रयासों एवं दलित समुदाय के लिए आजीवन संघर्षरत रहने कारण भारतीय संविधान में अनुसूचित जातियों के लिए विशेष अधिकारों को सम्मिलित किया गया। इन अधिकारों में महिलाओं के लिए विशेष एवं समान अधिकारों को भी शामिल किया गया है जिसमें दलित महिलाएँ भी सामान्य महिलाओं की तरह समान एवं गरिमामय जीवन-यापन कर सकें। भारतीय संविधान में अन्याय पर आधारित नियमों को समाप्त कर दिया गया, तथा न्याय पर आधारित समतावादी समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया गया है।"[8]

भारतीय संविधान में दलित महिलाओं से सम्बन्धी प्रावधान एवं कानून -

अनुच्छेद 14-विधि के समक्ष समानता, अनुच्छेद 15 के तहत धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान एवं वर्ग के आधार पर प्रतिबंध, अनुच्छेद 15 (2) में सार्वजनिक स्थलों, दुकानों, होटलों और मनोरंजन के स्थलों पर प्रवेश या कुऐं अथवा तालाबों आदि के इस्तेमाल पर प्रतिबंध निषेध किया गया है। अनुच्छेद 15(4) के अन्तर्गत राज्यों में पंचायतों सहित विभिन्न निकायों में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की महिलाओं का प्रतिनिधित्व एवं नामांकन स्वीकार किया गया है। इसके अलावा अनुसूचित जाति की महिलाओं के सामाजिक एवं शैक्षणिक स्तर को ध्यान में रखते हुए उनके विकास के अवसरों के लिए समानता प्रदान करने हेतु विशेष प्रबन्ध किये गये हैं। अनुच्छेद 16(1) में नौकरियों में आरक्षण की सुविधा, अनुच्छेद 16(2) में राज्यों के अधीन किसी नियोजन या पद से सम्बन्धित किसी भी व्यक्ति से उसकी जाति, धर्म, वंश, लिंग, निवास अथवा जन्मस्थान के आधार पर किसी नागरिक को अपात्र घोषित नहीं किया जा सकता और न कोई भेदभाव किया जायेगा। अनुच्छेद 16(4) में अनुसूचित जाति के सामाजिक-शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ेपन को दूर करने हेतु आरक्षण का भी लाभ दिया गया है। अनुच्छेद 17 के अन्तर्गत छुआछूत का पूर्णतः अन्त किया गया है और इसके अन्तर्गत अस्पृश्यता को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है। अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत प्रत्येक समाज के नागरिक को देश में जीविका जीने के साधन, व्यवहार एवं कोई भी कारोबार करने का अधिकार प्रदान किया गया हैं। अनुच्छेद 21 में दैहिक स्वतन्त्रता का अधिकार, अनुच्छेद 23(1) में बेगार या बलपूर्वक किसी से श्रम कराना दण्डनीय अपराध होगा। अनुच्छेद 25(2)(9) सार्वजनिक संस्थाओं में सभी हिन्दुओं को प्रवेश का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 28 में गैर सरकारी

स्कूलों और कॉलेजों में जिन्हें सरकार द्वारा अनुदान मिलता है। उनमें धार्मिक शिक्षा दी तो जा सकती है परन्तु अनिवार्यतः नहीं होगी। अनुच्छेद 29 द्वारा राज्य द्वारा पोषित किसी शिक्षण संस्थान में अनुसूचित जातिवर्ग के किसी भी नागरिक को प्रवेश के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता। अनुच्छेद 35(a),(2) में संसद को मौलिक अधिकारों से जुड़े संवैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन के तहत् अपराध दिये जाने एवं कानून बनाने का पूरा अधिकार दिया गया है और दण्ड की व्यवस्था भी की गई है। धारा 35 (अ)(77) के अन्तर्गत 'अस्पृश्यता अपराध अधिनियम 1955' पारित किया गया है। यह अधिनियम 106 के जरिये संशोधित कानून के रूप में 'नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955' यह जम्मू कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत पर लागू किया गया है। यह अधिनियम 30 जनवरी, 1990 में लागू हुआ। इस अधिनियम की धारा-3 अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके खण्ड 10 में यह प्रावधान किया गया है कि कोई भी मनुष्य अनुसूचित जाति के सदस्य का अपमान करने के उद्देश्य से कार्य करेगा अथवा अनुसूचित जाति की महिला की लज्जा भंग करना, या उपहास की दृष्टि से देखना या नीचा दिखाना, घृणा की दृष्टि से देखना, छुआछूत करना या जातिगत सम्बोधन करने पर उसे 6 माह से 5 वर्ष तक की अवधि की कैद और जुर्माने का प्रावधान किया गया है। इसके अलावा अनुसूचित जाति की महिलाओं को तंग करना, उनका अनादर करना, अनुचित दबाव बनाकर उनका लैंगिग शोषण करना एवं गाँव छोड़ने के लिए विवश करना इत्यादि हेतु धारा 3(1) के अन्तर्गत छः माह से पाँच वर्ष की अवधि का कारावास एवं जुर्माने का प्रावधान है। अनुच्छेद 330 और 332 के अन्तर्गत लोकसभा व राज्यसभा विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिये पृथक सीटों का प्रावधान है। इसके अतिरिक्त 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन विधेयक 1992 के द्वारा पंचायतों एवं नगरपालिकाओं में अनुसूचित जाति एवं जनजाति की महिलाओं हेतु 1/3 स्थानों को आरक्षित किया गया है।[11]

26 जनवरी, 1950 को संविधान लागू होने के बाद दलित महिलाओं के अधिकार बहाल हुए और वे अधिकार मिले जो इन्हें पहले प्राप्त नहीं थे। मनुवादी व्यवस्था के तहत उच्चवर्गीय लोगों को जो विशेषाधिकार प्राप्त थे वे भारतीय संविधान के अम्ल में आने के पश्चात् समाप्त हो गये। स्वतन्त्रता से पूर्व दलित महिलाओं को मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया और पशुवत जीवन जीने को विवश किया गया था, उन्हें भारतीय संविधान द्वारा अधिकार प्राप्त हुए। डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में उनके अथक प्रयासों के बाद इस अन्यायवादी सामाजिक व्यवस्था को समाप्त कर न्याय पर आधारित समतामूलक समाज की स्थापना की गई।[12] उपर्युक्त सवैंधानिक प्रावधानों एवं कानूनों के तहत भारत में वर्तमान में दलित महिलाओं की स्थिति निम्न प्रकार से है-

दलित महिलाओं की वर्तमान स्थिति -

वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार दलित महिलायें अपना समुचित विकास एवं समायोजन शिक्षा के माध्यम से ही कर सकती है। इन महिलाओं में व्याप्त निरक्षरता के कारण इनका शोषण सामान्य महिलाओं से अधिक होता है। इनके साथ निर्दयता और नशृंसता का व्यवहार किया जाता है और वे समाज की मुख्य

धारा से कटी रही है। इसीलिये अपनी निरक्षरता एवं अनिर्भरता के कारण ये आर्थिक शोषण का भी शिकार होती है। इन्हीं कारणों से दलित महिलायें मनोबल की दृष्टि से भी कमजोर होती है ये अपने ऊपर किये गये किसी भी अपराध, यौन-शोषण, बलात्कार, बेइज्जती, तिरस्कार आदि का खुलकर विरोध नहीं कर पाती है और यदि करना भी चाहें तो कुछ होने वाला नहीं है क्योंकि समाज में सामंती मानसिकता व्याप्त होने के कारण इन्हें अपने पैरों की धूल अथवा अत्यन्त ही निम्न दृष्टि से देखा जाता है। पीड़ित महिलायें अपनी बात कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाती। सामाजिक डर से वह अपना मुह ही नहीं खोल पाती अगर खोलती है तो समाज के दबंग लोग उन्हें जबरन चुप रहने को मजबूर कर देते हैं। इन सबके बावजूद दलित महिला यदिअपनी फरियाद लेकर थाने पहुँच भी जाये तो वहाँ उसकी फरियाद सुनने के बजाय उल्टा डाँट-डपटकर वापस लौटा दिया जाता है।

भारत में हर 15 मिनट में एक दलित का उत्पीड़न होता है, राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरों के आंकड़ों के मुताबिक 10 साल (2007-2017) दलित उत्पीड़न के मामलों में 66 फीसदी वृद्धि दर्ज की गई। एनसीआबी के अनुसार रोजाना देश में 6 दलित महिलाओं से दुष्कर्म के केस दर्ज किए गए जो 2007 की तुलना में दो गुनी है। एनसीआरबी के अनुसार देश में दलितों की समाज में स्थिति और उनकी दशा को बयां किया जा सकता है। आंकड़ों के अनुसार चार साल में दलित विरोधी हिंसा के मामलों में तेजी से वृद्धि हुई है। 2006 में दलितों के खिलाफ अपराध के कुल 27,070 मामले सामने आए, 2010 में 33,712 मामले, 2011 में 33,719, 2012 में 33,655, 2013 में 39,408 मामले तथा 2014 में 47,064 जबकि 2015 में 38670 मामले दर्ज किये गये जिनमें जिसमें दलित महिलाओं के साथ हुए बलात्कार के 2010 में 1,349 केस, 2011 में 1,557, 2012 में 1,576, 2013 में 2,073 और 2014 में 2,252 केस दर्ज किये गये। इनमें हुए अपराधों की कुल सूची में कुछ मामले एस सी/एस टी एक्ट के उत्पीडन के एवं कुछ मामले मानवाधिकार हनन के और कुछ दलितों की हत्या के मामले भी दर्ज किये गये है। दलित महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों में पिछले सालों के मुकाबले 2014 में 23.4 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। कुल मिलाकर 2004 से 2014 तक 14,253 दलित महिलाओं के साथ बलात्कार हुए।[13] भारत में अस्पृश्यता एवं जाति व्यवस्था को सिर्फ साहित्य और पुराणों के माध्यम से ही नहीं जाना जाता बल्कि यह समाज में हो रहे दिन-प्रतिदिन इस तरह की क्रियाकलापों में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। कानून द्वारा अस्पृश्यता की समाप्ति एवं दण्डनीय अपराध घोषित करने के बावजूद भी यह असमानता देखने को मिलती है। ग्रामीण इलाकों में अभी भी अस्पृश्यता विरोधी कानून, शिक्षा के प्रसार एवं आधुनिक जीवन की सुख-सुविधाओं में कमी के कारण अस्पृश्यता के रोग ने नये रूप धारण कर लिए है जैसे दलितों के घर डाक न पहुँचाना, सार्वजनिक यातायात के साधनों से वंचित रखना एवं बसों को उनकी बस्तियों में बने बस स्टॉप पर न रोकना, राशन वितरण प्रणाली में उनसे सप्ताह में एक दिन आकर राशन आकर ले जाने को कहना, दलित बच्चों को कक्षा में अलग बैठाना, जातिगत नाम से उनको पुकारना, सार्वजनिक स्थल पर पानी भरने से रोकना एवं पृथक व्यवस्था होना इत्यादि। जो लोग आधुनिक एवं शिक्षित है वे भी अस्पृश्यता का व्यवहार करते है। शहरों में

किरायें के घर हेतु पहले जाति का पूछना और निम्न जाति के लोगों को किराये पर घर न देना इत्यादि आधुनिक समाज की सोच बनी हुई है। सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक धरातल में बहुत अधिक अंतर बना हुआ है। इन दलित महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक धार्मिक कष्टों की दोहरी मार झेलती पड़ती है। इन समस्याओं को दूर करने हेतु हमारी केन्द्र एवं राज्य सरकारों को प्रभावशाली कदम उठाने होगें और न्यायपालिका को कठोरता से लागू कराना होगा।

समाज में निम्न स्तर :- भारतीय समाज में दलित महिलाओं को आज की निम्न स्तर का समझा जाता है। भारतीय संविधान में सभी को समान अधिकार दिये गये है परन्तु दलित महिलाएं समाज में आज भी प्रत्येक स्थान पर स्वयं को असुरक्षित महसूस करती हैं। भारत में अधिकांश स्थानों पर उच्च वर्ग के लोग अपने घर में किसी की मृत्यु होने पर मृत व्यक्ति की चारपाई और वस्त्र आदि दलित महिलाओं को इस्तेमाल के लिए दे दिये जाते है।

शिक्षा का अभाव – दलित महिलाओं में शिक्षा का अभाव प्राय: बना हुआ है। ये महिलायें स्वयं को असुरक्षित महसूस कर शिक्षा प्राप्त करने हेतु विद्यालय नहीं जा पाती क्योंकि या तो उच्च वर्गों द्वारा इनका उपहास उड़ाया जाता है, या विद्यालय जाने पर भी इसके साथ विद्यालयों में भी भेदभाव किया जाता है। गुजरात के एक गाँव हाल ही (2016) में एक अध्ययन में पाया गया है कि वहाँ के बच्चे जब विद्यालय जाते हैं तो उच्च वर्ग के बच्चों को दलित समुदाय से बच्चों से पृथक बैठाया जाता है, और घर आने पर उच्च वर्ग के बालकों की शुद्धि हेतु उन पर गंगाजल छिड़का जाता है।

शौचालयों का अभाव - दलित महिलाओं के घरों में आज भी शौचालयों का अभाव बना रहता है। दलित महिलाओं को शौच हेतु घरों से दूर जंगलों में जाना पड़ता है। जहाँ इन महिलाओं के साथ छेड़छाड़ एवं शारीरिक हिंसा की जाती है। प्रधानमंत्री द्वारा सम्पूर्ण भारत को शौचमुक्त बनाने का निर्णय लिया गया है और गरीब एवं दलित महिलाओं के घरों में शौचालयों की अनिवार्यता की गयी है। 2014 में उत्तरप्रदेश के बदायु जिले के एक गाँव में शौच के लिए गई दलित किशोरियाँ दो सगी बहनों के साथ बलात्कार कर उनको मौत के घाट उतार कर आम के पेड़ पर लटका दिया गया था। आरोपी उच्च जाति से सम्बन्धित थे और आरोप स्पष्ट होने पर प्रशासन द्वारा उन पर केस भी दर्ज नहीं किया गया परन्तु जातिगत आन्दोलन किये जाने पर एस.पी. एवं अन्य अधिकारियों को सस्पेंड भी किया गया और सरकार द्वारा सी.बी.आई. जाँच के आदेश भी दिये गये परन्तु अभी तक केस की गुत्थी सुलझ नहीं पाई और सरकार द्वारा केस को उलझाकर बंद कर दिया गया है।

निम्न आर्थिक स्तर - दलित समुदाय प्राचीनकाल से ही निम्न अवस्था में रहा है। परम्परागत पेशों को अपनाकर ये लोग उसी कार्य में लिप्त रहते है। आज भी इस समुदाय की महिलाएं मैला ढोने एवं सड़कों

की साफ-सफाई एवं मजदूरी का काम ही करती है जिस काम के लिए श्रम भी कम मिलता है। कम श्रम मिलने के कारण दलित समाज की महिलाएं सिर्फ अपने परिवार का पेट भरने में ही रह जाती है। जिस कारण ये आर्थिक एवं सामाजिक विकास के स्तर से सामान्य महिलाओं से पिछड़ी हुई हैं।

समाज में पृथक निवास स्थान - वर्तमान में भी इस समाज की अलग झोंपड़ियां अथवा मौहल्ले बनाये गये हैं। प्रत्येक गाँव अथवा कस्बे में दलित समुदाय अन्य वर्गों से पृथक रहते है। शहरों में भी इनकी कॉलोनियां अथवा झुग्गी-झोपड़ियाँ अलग स्थानों पर मिलती है। जहाँ रहन-सहन निम्न स्तर का एवं साफ-सफाई की कमी है। दलित वर्ग के लोग अगर शहर में किराये का मकान लेने जाते हैं तो उच्च वर्ग के लोगों द्वारा इनकी जाति पूछी जाती है और मकान किराये पर नहीं मिलता है।

रूढ़िवादी सोच – ब्राह्मणवादी सोच के कारण दलित महिलाओं में सर्वाधिक रूढ़ीवादी सोच पायी जाती है, क्योंकि युगों तक दबे-कुचले शोषित होने के कारण इनकी सोच भी वैसी ही बन गयी है। शिक्षा के अभाव में पिछड़ापन बना हुआ है, और अनेक रूढ़ीवादी प्रथाएं इनमें आज भी बनी हुई है। पर्दा प्रथा, ऊपरी बातें एवं अनेक स्थानों पर देवदासी, एवं वैश्यावत्ति के धन्धों में सर्वाधिक दलित समुदाय की महिलाएं ही लिप्त है।

राजनीतिक क्षेत्र में पिछड़ापन - दलित महिलाओं को भारतीय संविधान में समानता का अधिकार दिया गया है और पंचायतों में 1/3 स्थान आरक्षित किये गये है। समानता के अधिकार होने पर भी अधिकांश दलित महिलाएँ मतदान भी अपने परिवार की इच्छानुसार अथवा अपने पति की मर्जी से करती हैं। राजनीतिक नेतृत्व का इनमें पूर्णतया अभाव बना हुआ है। उत्तरप्रदेश की पूर्व मुख्यमंत्री रही सुश्री मायावती एवं लोकसभा अध्यक्ष मीरा कुमार दलित महिलाओं की नेतृत्वकर्ता मानी जाती हैं। इस प्रकार ये महिलाएं मतदान भी जातिगत आधार पर ही करती हैं। राजनीति के क्षेत्र में दलित महिलाओं का प्रतिनिधित्व न के बराबर ही दिखाई देता है और यदि है भी तो काम उनके पुरूष करते हैं।

परिवारिक उत्तरदायित्व – दलित महिलाएं अपना सारा वक्त पारिवारिक उत्तरदायित्व निभाने में लगा देती है। जिस कारण इनका ध्यान शिक्षा एवं राजनीति की ओर आकर्षित ही नहीं हो पाता दलित परिवारों में बच्चों की संख्या भी सामान्य परिवारों से अधिक पायी जाती है जो इनकी निम्न आर्थिक स्थिति का कारण है। पूरा समय ये महिलाएं बच्चों एवं परिवार की देखरेख में लगा देती हैं और उससे बाहर निकल ही नहीं पाती है।

स्वास्थ्य सेवाओं एवं संसाधनों का अभाव - दलित महिलाओं के घरों में इनका आर्थिक स्तर निम्न होने के कारण प्राय: संसाधनों का अभाव बना रहता है। ये महिलाएं स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं के लिए किसी

नजदीकी सरकारी स्वास्थ्य केन्द्र अथवा झोलाछाप डॉक्टरों पर ही निर्भर रहती हैं। जिस कारण इन महिलाओं में अत्यधिक परिश्रम करने एवं अधिक संतानोत्पत्ति के कारण शारीरिक रूप से कमजोरी आने से अनेक बीमारियां घर कर जाती है। इन समुदायों में जन्मदर एवं मृत्युदर भी अन्य समुदायों से अधिक है।

अधिकतम श्रम के लिए न्यूनतम वेतन – श्रमिक के रूप में अधिकांश दलित महिलाएं ही कार्य करती हैं। जिनसे पुरूषों से अधिक काम लिया जाता है और उन्हें समान कार्य के लिए समान वेतन भी नहीं दिया जाता है, जबकि भारतीय संविधान में समान कार्य के लिए समान वेतन का प्रावधान है। दलित पुरूषों से भी ज्यादा श्रमिकों में दलित महिलाओं की संख्या है क्योंकि इनके सामने इनके परिवार और बच्चों के पेट भरने की जिम्मेदारी होती है। उनके द्वारा कमाये गये पैसों पर उनके पति, पुरूषों द्वारा कब्जा कर लिया जाता है। इस समुदाय के अधिकांश पुरूष, शराब, नशाखोरी एवं जुऐ आदि की गन्दी आदतों में लिप्त हैं और महिलाओं की कमाई पर अपना अधिकार समझते हैं। दलित महिलाएँ कम श्रम के बदले में भी दिन-दोगुनी रात चौगुनी मेहनत से श्रम करती हैं जिससे इनके परिवार का पेट भर सकें एवं पोषण हो सके।

आज देश की आजादी को 70 के ऊपर दशक गुजर चुके हैं। लेकिन भारत के सामाजिक परिदृश्य में चार स्तरीय वर्ण व्यवस्था में पूर्णरूप से मौलिक परिवर्तन नहीं आ पाया है और यह व्यवस्था आज भी विद्यमान है। आजाद भारत में दलित महिलाओं के खिलाफ होने वाले अत्याचार एक नयी समस्या बनकर सामने आये हैं। ऐसी स्थिति में जब दलित समाज की जागरूकता में वृद्धि होने लगी है और उन्होंने आई.सी.एस. के सिद्धान्त तथा दासता को अस्वीकार कर दिया तब उनके खिलाफ होने वाले अत्याचार उन्हें दबाने के लिए एक अस्त्र के रूप में सामने आये इससे वे पहले की तरह ही असुरक्षित बने रहे क्योंकि शिक्षा एवं आरक्षण के सहारे सिर्फ गिनी-चुनी दलित महिलाओं का ही विकास हुआ है। राजनीति के क्षेत्र में देश की प्रथम दलित महिला मुख्यमंत्री सुश्री मायावती एवं लोकसभा अध्यक्ष रही मीरा कुमार जैसी संघर्षशील महिलाओं ने अपना परचम लहराया है। परन्तु उनके जीवन में आया यह परिवर्तन एवं बढ़ोतरी भी उच्च वर्ग की आँखों में खटकती है क्योंकि सदियों से दबे-कुचले, दीन-हीन एवं शोषित अवस्था में रही दलित नारियां उसी स्थिति में अभ्यस्त रही हैं।

आज देश सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के पथ पर निरन्तर अग्रसर है। देश के प्रत्येक हिस्से और सभी वर्गों के चेहरे पर विकास की निरन्तर झलक देखी जा सकती है लेकिन इन सबके बावजूद भी दलित वर्ग सदियों से पुरानी परम्पराओं के साथ जी रहा है। जिस कारण आज भी यह वर्ग विकास से कोसों दूर है। दलित महिलाओं को पंचायतों एवं नगरपालिकाओं में मिलने वाले 1/3 आरक्षण की आज भी कोई जानकारी नहीं है। उनमें शिक्षा का अभाव पूर्णतः बना हुआ है उन्हें इस बात की जानकारी नहीं है कि उनकी सरकार में कौन मुख्यमंत्री है और किस पार्टी का है। सरपंच एवं नगरपालिका के सदस्य एवं अध्यक्ष पद पर आरक्षित होते हुए भी दलित महिलाएँ सिर्फ नाममात्र की पदाधिकारी है

जबकि सारे काम उनके पुरूष पति करते हैं और उन्हें पीछे रखा जाता है। गाँव की सभा में भी उन्हें भाग लेने का अधिकार नहीं दिया जाता है और वे महिलाएँ घर के कामकाज एवं झाड़ू-पोंछे के काम तक ही सीमित हैं। इसके अलावा इनकी सरकार होने पर भी सर्वाधिक जुर्म, शोषण एवं बलात्कार दलित महिलाओं का ही होता है। गाँवों में रहने वाली दलित महिलाएँ जिनके लिए विकास का मतलब अभी भी सिर्फ बच्चों की पढ़ाई, बिजली, पानी एवं रोजगार ही है। दलित समुदाय में श्रम हेतु दलित पुरूषों से अधिक परिवार के लिए रोटी कमाने वाली दलित महिलाओं की संख्या अधिक हैं। नगरों में दलित महिलाएँ सड़कों पर मलमूत्र की सफाई, अस्पतालों विद्यालयों एवं अन्य सार्वजनिक स्थलों पर सफाई कार्य करती देखी जाती हैं। इसके अलावा उच्च जाति के लोगों के घरों में झाड़ू-पोंछे का काम करती हैं, और बदले में उनको श्रम के नाम पर फटे-पुराने कपड़े, बचा खाना एवं न्यूनतम श्रम दिया जाता है। यह महिलाएँ श्रमिक के रूप में भी एड़ी-चोटी तक पसीना बहाकर काम करती हैं। समाज में इनकी आर्थिक स्थिति सामान्य महिलाओं की आर्थिक स्थिति से काफी दयनीय है। ये महिलाएँ गरीबी के कारण कर्ज की वजह से और अत्यधिक संतानोत्पति के कारण शारीरिक कमजोरी, सामाजिक एवं राजनीतिक शोषण से भारी बोझ से दबी हुई है। जगह-जगह पर प्रत्येक राज्य में खासकर, उत्तरप्रदेश, बिहार एवं केरल में दलित महिलाओं का सबसे अधिक शारीरिक एवं मानसिक शोषण होता है। बलात्कार की शिकार दलित महिलाएँ सामाजिक एवं आर्थिक रूप से दबी एवं शोषित होने के कारण मृत्यु को गले लगा लेती हैं अथवा अपना मानसिक संतुलन खो देती है। बलात्कार की शिकार जो महिलाएँ आवाज उठाने की कोशिश करती है उन्हें सामाजिक रूप से अथवा परिवारिक रूप से बहिष्कृत कर दिया जाता है। दलित महिलाएँ यदि पुलिस थाने में रिपोर्ट दर्ज कराने जाती है तो उनका वहां भी दोहरा शोषण किया जाता है और उपहास उड़ाया जाता है ओर साथ ही रिर्पोट भी दर्ज नहीं की जाती है। पुलिस प्रशासन द्वारा भी इन महिलाओं को न्याय नहीं मिलता और अपराधी पुलिस प्रशासन की शह पर इनका और ज्यादा शोषण करते है एवं अपराध करने पर भी खुले में स्वतंत्र घूमते हैं।

उपर्युक्त निष्कर्ष के साथ कुछ सुझाव दिये जा सकते हैं जिनके आधार पर दलित महिलाओं को जागरूक किये जाने के साथ ही उनकी स्थिति में भी सुधार किये जा सकते हैं - वर्तमान में भारत 21वीं सदी के विकास की ओर अग्रसर है जहाँ वैश्वीकरण के दौर में भारत के प्रत्येक वर्ग का विकास किया जा रहा है। दलित महिलाओं के विकास के स्तर को बढ़ाने हेतु भी सरकार द्वारा विशेष कार्य एवं योजनाऐं चलायी जानी चाहिये। दलित वर्ग की बालिकाओं के लिए 1 से 8 तक की मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। उच्च शिक्षा हेतु भी छात्रवृत्ति एवं अनुदान की व्यवस्था की जाये। दलित महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने हेतु शहरों के साथ-साथ गाँवों में भी कुटीर उद्योगों एवं अन्य छोटे-छोटे कार्य जैसे कपड़ा-बुनना, सिलाई-कढ़ाई, बकरी पालन, आदि की व्यवस्था की जाये। दलित महिलाओं के स्वास्थ्य सेवाओं हेतु प्रत्येक गाँव एवं शहरों में मुफ्त स्वास्थ्य शिविर लगाये जाऐ एवं अस्पतालों का निर्माण किया जाये। अत्यधिक संतानोत्पत्ति पर रोक लगाने हेतु अस्पतालों एवं आशा

कार्यकर्ताओं द्वारा परामर्श एवं परिवार नियोजन के साधन प्रदान किये जाये। सरकार द्वारा दलित महिलाओं की सुरक्षा हेतु कड़े-निर्देश लागू किये जाये ओर प्रशासन द्वारा दलित महिलाओं का शोषण एवं बलात्कार करने वालों को कड़ी सजा एवं जुर्माने का प्रावधान किया जाये। राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं को भी चाहिये कि वे स्वयं भी आगे आयें और अपने पद का प्रयोग करें इसके लिए उनके परिवार को भी सहयोग प्रदान करना चाहिये जिससे दूसरी महिलाओं में भी जागरूकता आ सके। ग्राम पंचायत स्तर पर दलित महिलाओं को कानूनों एवं मानवाधिकारों की जानकारी भी प्रदान की जाये जिससे सभी महिलाएँ मानवाधिकारों और कानूनों की जानकारी प्राप्त कर सकें और उनका सही मायने में प्रयोग कर सके। हमारा देश सही मायने में विकास की ओर तभी अग्रसर हो सकेगा, जब प्रत्येक वर्ग एवं समाज की स्थापना समानता एवं न्याय पर आधारित हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. काजल, नीतू, दलित शक्तिकरण, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.सं.-18-19
2. उपरोक्त, वहीं, पृ.सं.-19
3. कुमारी, प्रीति, भारत में अनुसूचित जातियों की स्थिति, आलोक कुमार कश्यप, भारत में अनुसूचित जातियाँः कल और आज, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2013, पृ.सं.-94
4. जोशी, गोपा, भारत में स्त्री असमानताः एक विमर्श, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2015, पृ.सं.-152
5. उपरोक्त, वहीं, पृ.सं.-152
6. कुमारी, प्रीति, भारत में अनुसूचित जातियों की स्थिति, आलोक कुमार कश्यप, भारत में अनुसूचित जातियाँः कल और आज, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2013, पृ-96,97
7. उपरोक्त, वहीं, पृ.सं.-97
8. काजल, नीतू, दलित सशक्तिकरण, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.सं.-58
9. उपरोक्त, वहीं, पृ.सं.-58-59
10. उपरोक्त, वहीं, पृ.सं.-59
11. खण्डेला, मानचन्द, दलित अधिकार एवं व्यवहार, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2008, पृ.सं.-5-6
12. आलोक कुमार कश्यप, भारत में अनुसूचित जातियाँः कल और आज, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2013, पृ.सं. 318
13. नेशनल क्राइम रिकॉर्ड्स ब्यूरो

***

12. प्राचीन भारत में लैंगिक विषमताएँ - एक अध्ययन

डॉ. मुकेश कुमार सिंह*

समस्त संसार के सामाजिक संगठन पर एक दृष्टि डाली जाय तो एक बात निर्विवाद रूप से स्वीकार की जा सकती है कि स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में स्त्रियों को अपेक्षाकृत कम अधिकार ही प्राप्त हुए हैं। यह स्थिति आज भी अनेक रूपों में विद्यमान है। इसके पीछे मूल कारण पितृसत्तात्मक सामाजिक ढाँचे की अवधारणा मानी जाती है। मानव-जाति की भाषा, संस्कृति, इतिहास, कला एवं विचार पद्धतियाँ प्रधानतः पुरुषों की ही रचनाएँ हैं। प्राचीन भारतीय समाज भी पितृसत्तात्मक धुरी के इर्द-गिर्द घूमता रहा है। समाज में पुत्र को पुत्री की अपेक्षा अधिक प्रेम और अधिकार देने का प्रचलन है। पुत्रों के प्रति अधिक मोह की प्रथा आज भी भारतीय समाज का यथार्थ है। प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्म में स्त्रियों के प्रति उदार दृष्टि के दर्शन होते हैं जो कि तत्कालीन समय की दृष्टि से क्रान्तिकारी कहा जा सकता है। प्रस्तुत अध्ययन में प्राचीन भारतीय समाज की मुख्य धारा और बौद्ध दृष्टि का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

प्राचीन भारतीय समाज में बहु-पत्नीत्व प्रचलित पारिवारिक व्यवस्था रही है। इसके अन्तर्गत पति को एक से अधिक पत्नी रखने का अधिकार था। यह व्यवस्था स्त्री-पुरुष अधिकारों की दृष्टि से स्त्रियों के प्रति अत्यन्त भेदभावपूर्ण थी। इसमें पत्नी की स्थिति पूर्णतया पति पर आश्रित हो जाती थी। पालि साहित्य में बहु-पत्नीत्व के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। अंगुत्तर निकाय में चार सुन्दर पत्नियों वाले एक सुखी-सम्पन्न गृहस्थ का उल्लेख प्राप्त है। (1)मज्झिम निकाय के रट्ठपाल सुत्त में एक ब्राह्मण गृहपति के पुत्र रट्ठपाल के अनेक पत्नियों का उल्लेख प्राप्त हुआ है। थेरी गाथा में थेरी इसीदासी के पूर्वजन्म की कथा के सम्बन्ध में उल्लेख है कि उसका विवाह एक श्रेष्ठिपुत्र से हुआ। इस श्रेष्ठिपुत्र की पहले से ही एक पत्नी थी जो शीलवती, गुणवती तथा यशवती थी। इसके बाद भी दूसरी पत्नी से विवाह किया गया। (2)महाभारत में भी राजाओं व गृहस्थों की अनेक पत्नियों के उल्लेख प्राप्त हैं। रामायण में राजा दशरथ की तीन पत्नियों के सन्दर्भ मिलते हैं। बुद्ध के समकालीन अनेक राजाओं की एक से ज्यादा पत्नियों के उल्लेख प्राप्त होते हैं -जैसे -बिम्बिसार, अजातशत्रु, उदयन, प्रसेनजीत आदि। उपर्युक्त उल्लेखों से प्रतीत होता है कि समाज में बहुपत्नीत्व को मान्यता थी। हालाँकि आपस्तम्ब का कथन है कि जब प्रथम पत्नी धर्म कार्य में अपने पति का साथ देने योग्य न रह जाय अथवा बंध्या हो जाय, तभी पुरुष को पुनर्विवाह करना चाहिए। (3)लेकिन

---

* **सहायक प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, वाराणसी**

सामान्यतः ऐसा होता ही नहीं था। भरण-पोषण का सामर्थ्य रखने वाले पुरुष को इच्छानुसार पत्नियों को रखने का अधिकार था। प्राचीन भारतीय राजन्य एवं अभिजात वर्ग में यह व्यवस्था अधिक प्रचलित थी। एक से अधिक स्त्री से विवाह करने के पीछे के कारणों में पितृऋण की अवधारणा का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था की पितृऋण की अवधारणा के अनुसार जब तक पुत्र नहीं उत्पन्न होता, मनुष्य मोक्ष का अधिकारी नहीं होता। यह धारणा प्राचीन भारतीय समाज में उत्तरोत्तर बढ़ती गई। इस कारण समाज में पुत्र का महत्त्व बढ़ता गया और पुत्र के अभाव में पुनर्विवाह आवश्यक होता गया।

प्राचीन भारतीय समाज में पितृप्रधानता प्रभावी होने के कारण पुरुष ने स्वाभाविक रूप से पुनर्विवाह के अधिकार का उपयोग किया, परन्तु इस सम्बन्ध में स्त्रियों को अत्यन्त सीमित अधिकार प्राप्त थे। धर्मशास्त्रों में समाज का आदर्श चित्र उपस्थित करने के प्रयत्न में विधवा-विवाह या बहु-पति प्रथा का प्रायः निषेध किया है। इस सम्बन्ध में केवल बाल विधवाओं के प्रति सहानुभूति पूर्व विचारों का प्रदर्शन मिलता है। अतः कुछ धर्मशास्त्रकारों ने विधवा-विवाह की अनुमति दी है, तो कुछ ने इसका निषेध किया है। (4)ऐसा प्रतीत होता है कि अत्यन्त सीमित संख्या में पत्नियाँ भी पुनर्विवाह करती थीं। निःसन्तान विधवाओं का विवाह सन्तानयुक्त विधवाओं की अपेक्षा आसान था। नन्दजातक मे उल्लेख है कि एक वृद्ध श्रेष्ठी, जिसकी पत्नी युवा थी, सोचा करता -मेरी पत्नी मेरे मरने के बाद किसी युवा व्यक्ति से विवाह कर लेगी और सम्पूर्ण सम्पत्ति को अपने पति के साथ विलासित पूर्ण जीवन बिताने में नष्ट कर देगी, जिससे मेरे पुत्र के लिए कुछ भी नहीं बचेगा। (5) इसी प्रकार सुसीम जातक में उल्लेखित है कि एक राजा का देहान्त हो गया तो उसकी विधवा रानी ने उसके राज्य के पुरोहित से विवाह कर लिया। (6) इसके विपरीत अंगुत्तर निकाय में यह उदाहरण मिलता है कि जब एक व्यक्ति मरने के करीब पहुँच गया तब उसकी पत्नी ने उसे आश्वासन दिया कि स्वामी आप चिन्ता न करें, मैं कदापि पुनर्विवाह नहीं करूंगी और आपकी संतान व गृहस्थी की ठीक तरह से देखभाल करती रहूंगी। (7) स्त्री पुनर्विवाह के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि प्राचीन भारतीय समाज में नारी को परिवार की सम्पत्ति माना जाता था और संभवतः इसी कारण धर्मशास्त्रकारो ने विधवा को अपने मृत पति के परिवार के ही पुरुष को अपना पति बनाने पर जोर दिया। इसके पीछे प्राचीन भारत में प्रचलित नियोग की अवधारणा की मान्यता भी रही होगी। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखा जाता था कि अन्यत्र विवाह करने वाली विधवा मृत पति के परिवार से सम्पत्ति का कुछ भाग भी अपने साथ न ले जा सके। 8 कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि यदि विधवा ऐसे व्यक्ति से विवाह कर लेती है, जो उसके श्वसुर को स्वीकार्य न हो, तो उसे अपने विवाह के समय पति व श्वसुर से प्राप्त समस्त वस्त्राभूषण से वंचित होना पड़ता।

9 शिक्षा एक ऐसा क्षेत्र है जिसके द्वारा मानव को मूलभूत क्षमताओं के विकास के असीम अवसर

प्राप्त होते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में प्राप्त हुई अवसरों की असमानता से मानव के जीवन में गंभीर असमानताएँ देखी जा सकती हैं। प्राचीन भारतीय समाजों में शिक्षा के अवसर स्त्री पुरुषों को समान रूप से प्राप्त नहीं थे। प्राय: स्त्रियों को शिक्षा एवं प्रशिक्षण के बहुत कम अवसर प्राप्त थे। जो अवसर उपलब्ध भी थे, उनमें भी कुलीन वर्ग की स्त्रियों को लाभ मिलने की संभावना अधिक रहती थी। प्राचीन भारतीय समाज में यही प्रतिरूप देखने को मिलता है। स्त्रियों को प्राय: घर के भीतर के योग्य माना जाता था। उन्हें शिक्षा और प्रशिक्षण की उतनी ही व्यवस्था की जाती थी जो उनके घरेलू कार्यों के निर्वहन में सहायक होती थी। आपवादिक स्थितियों में ही स्त्रियों को शिक्षा प्राप्ति के अवसर प्राप्त होते थे। वैदिक साहित्य से जो साक्ष्य प्राप्त होते हैं उनसे प्रतीत होता है कि स्त्रियों को शिक्षा के कुछ अवसर अवश्य प्राप्त थे। ऋग्वेद से अनेक ऋषिकाओं के विषय में जानकारी प्राप्त होती है जिन्होंने अनेक मंत्रों और ऋचाओं की रचना की थी। लोपामुद्रा, विश्ववारा, आत्रेयी, अपाला, काक्षीवती, घोषा आदि विदुषी नारियाँ इनमें प्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा रचे गए मंत्रों और ऋचाओं को देखने से स्पष्ट है कि इनकी शिक्षा की अच्छी व्यवस्था रही होगी। उपनिषदों में भी अनेक विदुषी स्त्रियों के संदर्भ प्राप्त होते हैं। इनमें गार्गी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गृह्यसूत्रों से ज्ञात है कि स्त्रियों का भी उपनयन और समावर्तन संस्कार होता था। (10) समावर्तन संस्कार का संपादन शिक्षा के पूर्ण होने के बाद किया जाता था। इससे प्रतीत होता है कि पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी शिक्षा प्राप्त करने हेतु ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करती थी। गृह्यसूत्रों में यह भी उल्लेख है कि ऋषि तर्पण के समय गार्गी, सुलभा, मैत्रेयी, प्रतिथेयी आदि ऋषि नारियों के नाम भी लिए जाएँ। (11) प्राचीन भारतीय महाकाव्यों से भी स्त्री-शिक्षा के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। रामायण से ज्ञात होता है कि कौशल्या और तारा 'मंत्रविद्' विदूषी थी। (12)कैकेयी के अस्त्र-शस्त्र में पारंगत होने का उल्लेख प्राप्त होता है। महाभारत में सुलभा को जीवन पर्यन्त वेदान्त का अध्ययन करते हुए बताया गया है। द्रौपदी की भी शिक्षा अच्छी तरह से हुई थी। उत्तरा ने अर्जुन से संगीत और नृत्य की शिक्षा प्राप्त की थी।

आरम्भिक पालि साहित्य में भी जो साक्ष्य प्राप्त होते हैं उनसे प्रतीत होता है कि तत्कालीन समय में स्त्रियों के शिक्षा एवं प्रशिक्षण पर ध्यान दिया जाता था। बौद्ध साहित्य में अनेक शिक्षित नारियों का उल्लेख प्राप्त होता है। थेरीगाथा में भिक्षुणियों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों से स्पष्ट है कि उनकी शिक्षा की अच्छी व्यवस्था रही होगी। खेमा और धम्मदिन्न के धार्मिक वार्तालाप से ज्ञात होता है कि उनका धार्मिक-दार्शनिक ज्ञान अत्यन्त उत्कृष्ट था। खेमा को विनय पिटक का अच्छा ज्ञान था। वह स्वयं भी अत्यन्त बुद्धिमान, कुशाग्र व ज्ञानी थी। उसने राजा प्रसेनजीत को पुनर्जन्म के विषय पर इतने बेहतर ढंग से संतुष्ट किया कि इतिहास में ऐसे उदाहरण कम मिलते हैं। राजा भी उसकी व्याख्या से पूरी तरह से संतुष्ट हुआ। (13) एक अन्य उदाहरण से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समय में स्त्रियों को उच्च कोटि की संभाषण

कला का भी ज्ञान था। सुप्य नामक भिक्षुणी राजगृह में धार्मिक उपदेश देती थी। उसका धार्मिक उपदेश तत्कालीन समय में इतना लोकप्रिय था कि उसे मधु के समान मधुर एवं उपयोगी बताया गया है और विवेकी व्यक्ति के द्वारा उसे सुनने की अपेक्षा की गई है। (14) भद्दा कुण्डलकेशा सांसारिक जीवन का त्याग कर निग्रन्थों के संघ में सम्मिलित हुई व निग्रन्थों के सिद्धान्तों का अध्ययन कर उनका संघ छोड़ दिया तथा ज्ञानी पुरुषों से शास्त्रार्थ करती हुई विचरण करती रही। लेकिन तर्क में उसे कोई नहीं परास्त कर सका। अन्तत :शारीपुत्र ने उसे तर्क में परास्त किया और वह बौद्ध संघ की अनुयायी हो गई। (15) विमानवत्यु अट्ठकथा में शिक्षित नौकरानी का उल्लेख मिलता है। यहाँ उल्लेख है कि उपासक की पुत्री सावत्थी की पुत्री लता शिक्षित, विवेकपूर्ण और बुद्धिमति थी। (16) संघमित्रा को भी अत्यन्त विदुषी और संभाषण कला में दक्ष बताया गया है। वह त्रिपिटक का अच्छा ज्ञान रखती थी एवं अनुराधापुर में विनय, सुत्त एवं अभिधम्म पिटक की शिक्षा देती थी। (17) इन साक्ष्यों से भी स्पष्ट है कि प्रारम्भिक समय में बौद्ध धर्म और संघ में स्त्रियों को पुरुषों के समान ही सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था।

लेकिन ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में स्त्रियों की शिक्षा पर प्रतिबन्ध लगने लगा। उनका उपनयन संस्कार विवाह के अवसर पर सम्पन्न कर दिया जाता था। मनुस्मृति में उल्लेख है कि पति ही कन्या का आचार्य, विवाह ही उसका उपनयन संस्कार, पति-सेवा ही उसका आश्रम निवास और गृहस्थी का कार्य ही दैनिक धार्मिक अनुष्ठान है। (18) वस्तुतः अस्थिर राजनीतिक परिस्थितियों और विदेशी आक्रमणों ने स्त्रियों को घर के भीतर रहने पर विवश किया। इसका अपवाद सम्पन्न एवं कुलीन वर्ग की स्त्रियाँ थी जिनके शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था घर पर ही हो जाती थी। कामसूत्र, हर्षचरित, गाथा सप्तशती आदि ग्रन्थों से पता चलता है कि सम्पन्न घरों की स्त्रियों की घर में ही शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था थी। लेकिन सामान्य समाज पर इसका प्रभाव नहीं पड़ा। वस्तुतः जब तक सामान्य जनता के मध्य स्त्री-पुरुष के समान शिक्षा की व्यवस्था नहीं होती, तब तक समाज में शिक्षा का व्यापक प्रचार एवं प्रभाव नहीं स्थापित हो पाता। पुरुषों के लिए तक्षशिक्षा, नालन्दा, विक्रमशिला, काशी जैसे अनेक बड़े केन्द्र और असंख्य गुरुकुल एवं प्रशिक्षण केन्द्र थे, जहाँ उनकी शिक्षा अनवरत चलती रही लेकिन स्त्रियों के लिए इस प्रकार के केन्द्र नहीं विकसित हो सके। इस कारण स्त्रियाँ शिक्षा के क्षेत्र में पुरुषों से लगातार पिछड़ती गईं।

भारतीय समाज का चरित्र प्रायः दोहरा रहा है। अर्थात् वह सैद्धान्तिक रूप से उच्च आदर्शों की बात करता है किन्तु व्यवहारिक जगत में पुरुषों के पक्ष को अधिक महत्त्व देता है। भारतीय समाज में पुरुषार्थों की महत्ता अत्यन्त व्यापक है। पुरुषार्थों में प्रथम स्थान धर्म का आता है। वेद एवं स्मृतियों में धार्मिक कर्त्तव्यों की पूर्ति को पति और पत्नी का प्रथम कर्तव्य माना गया है। ऋग्वेद में एक स्थान पर उल्लेख है कि ''अपनी पत्नियों के साथ उन्होंने पूजा के योग्य अग्नि की पूजा की। ''(19) एक अन्य स्थान

पर ऋग्वेद में ही उल्लेख है कि ''यदि तुम पति और पत्नी को एक मन का बना दो तो वे अच्छे मित्र की भाँति तुम्हें घृत का लेप करेंगे। (20) आपस्तम्ब धर्मसूत्र में उल्लेख है कि विवाहोपरान्त पति और पत्नी धार्मिक कृत्य साथ करते हैं, पुण्यफल में समान भाग पाते हैं, धन-सम्पत्ति में समान भाग रखते हैं तथा पत्नी पति की अनुपस्थिति में अवसर पड़ने पर भेट आदि दे सकती है। (21) पाणिनी ने इसे और स्पष्ट करते हुए कहा है कि पत्नी उसी को कहा जाता है जो यज्ञ तथा यज्ञ फल की भागी होती थी। (22) उपर्युक्त साक्ष्यों से प्रतीत होता है कि धार्मिक कृत्यों के निर्वहन में पत्नी को पति के लगभग समान ही अधिकार प्राप्त थे। लेकिन ध्यान देने योग्य बात यह है कि पत्नी को धार्मिक कृत्य पति की अनुमति एवं सहमति से ही करने होते थे। उसे स्वतंत्र रूप से धार्मिक कृत्यों के सम्पादन का अधिकार नहीं था। (23)

एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि एक से अधिक पत्नियाँ होने की दशा में स्थिति जटिल हो जाती थी। यदि सभी पत्नियाँ एक ही वर्ण की हो, तो उनमें सबसे पहले जिससे विवाह हुआ हो उसी के साथ धार्मिक कृत्य किए जाते हैं, यदि पत्नियाँ अनेक वर्णों की है, तो पति के वर्ण वाली पत्नी की प्रधानता दी जाती थी, भले ही उसका विवाह बाद में हुआ हो। यदि अपने वर्ण की पत्नी न हो तो अपने से बाद वाली वर्ण की पत्नी को अधिकार प्राप्त होते थे। (24) पत्नी के कर्त्तव्य के विषय में स्मृतियों, पुराणों, महाकाव्यों आदि में विस्तार से चर्चा मिलती है। पत्नी का सबसे प्रमुख कर्त्तव्य है पति की आज्ञा मानना एवं उसे देवता की भाँति सम्मान करना। पत्नी को सदा हँसमुख, जागरुक, दक्ष, कुशल, गृहिणी, बरतनों, पात्रों आदि को स्वच्छ रखने वाली एवं मितव्ययी होना चाहिए। (25) इसके साथ ही उसे कुछ प्रवृतियो से दूर रहना चाहिए जैसे -मद्यपान करना, दुष्ट प्रकृति के लोगों के साथ रहना, पति से दूर रहना, दूर-दूर घूमना, दिन में सोना, अजनबी के घर में रह जाना। (26) स्कन्दपुराण में आज्ञाकारी पत्नी के विषय में विस्तार से कर्त्तव्य पालन की सूची बनाई गई है, जैसे पत्नी को पति का नाम नहीं लेना चाहिए, इससे पति की आयु में वृद्धि होती है। पति उसे पीटे या अपराधी सिद्ध करे, उसे जोर से रोना भी नहीं चाहिए, बल्कि उसे हँसमुख ही रहना चाहिए। (27) इस प्रकार के उल्लेख निश्चित रूप से स्त्री की अपमानजनक दशा का सूचित करते हैं। स्त्रियों को वस्तुतः पुरुषों की इच्छाओं के दास बनकर रहना पड़ता था। उनकी इच्छा या स्वतंत्रता वही तक सीमित थी जब तक वे घर के वरिष्ठ पुरुष या पति के इच्छानुकूल रहती थी।

पति का पत्नी के प्रति प्रमुख कर्त्तव्य था कि वह ठीक से उसका भरण-पोषण करे लेकिन उसे यह स्थिति तभी प्राप्त होती थी जब वह ठीक से पतिव्रता धर्म का पालन करे। मनु ने उल्लेख किया है कि बूढ़े माता-पिता, पतिव्रतास्त्री, छोटे बच्चे का भरण-पोषण एक सौ निकृष्ट कार्य करके भी करना चाहिए। (28) याज्ञवल्क्य ने भी इस बात को स्पष्ट किया कि पतिव्रता पत्नी के भरण-पोषण पर ध्यान न देने वाला व्यक्ति पाप का भागी बनता है। (29) एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं कि आज्ञाकारी, परिश्रमी, पुत्रवती एवं

मधुरभाषिणी पत्नी को छोड़ देने पर सम्पत्ति का 1/3 भाग दे देना चाहिए तथा सम्पत्ति न रहने पर उसके भरण-पोषण का प्रबन्ध करना चाहिए। (30) अतः कहा जा सकता है कि जब तक पत्नी पति के इच्छानुकूल रहती थी तब तक सैद्धान्तिक रूप से उसे पति से भरण-पोषण पाने का अधिकार था।

मानव समाज में आर्थिक अधिकारों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। आर्थिक क्षमता के आधार पर ही व्यक्ति की क्षमता का प्रदर्शन अन्य क्षेत्रों में हो पाता है। अर्थ के प्रति भारतीय समाज में दोहरा दृष्टिकोण रहा है। एक ओर अर्थ को जीवन का मूल माना गया है तो दूसरी ओर अर्थ को प्राप्त करने में हमेशा संयमित रहने पर बल दिया गया है। भारतीय समाज में जीवन का मूल उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति माना गया है। ऐसे में अर्थ प्राप्ति और संग्रह से सीमित उद्देश्यों की पूर्ति ही मानी गई है। इस पर प्राचीन और आधुनिक दोनों ही विद्वानों में मतभेद रहा है। लेकिन व्यवहारिक जीवन में अर्थ की उपयोगिता निर्विवाद है। व्यक्ति के दैनिक क्रियाकलाप से लेकर वैयक्तिक विकास में अर्थ की केन्द्रीय भूमिका होती है। इस दृष्टि से देखते हैं तो स्त्रियों को प्राचीन भारतीय समाज में अत्यन्त सीमित आर्थिक अधिकार प्राप्त थे। पिता की सम्पत्ति में पुत्री को प्रायः उत्तराधिकारी नहीं माना गया है। (31) यदि माना भी गया है तो वह आपवादिक परिस्थितियाँ ही हैं। जैसे आपस्तम्ब ने उल्लेख किया है कि उत्तराधिकारी के अभाव में जब सपिण्ड या गुरु या शिष्य कोई न हो तब पुत्री उत्तराधिकारी हो सकती है, यद्यपि उन्होंने पुत्री को उत्तराधिकारी न स्वीकार करके सारी सम्पत्ति धर्म कार्य में लगा देने का निर्देश दिया है। (32) बाद के व्यवस्थाकारों ने पुत्री को सम्पत्ति का उत्तराधिकारी माना है। इनमें कौटिल्य, याज्ञवल्क्य, नारद उल्लेखनीय है। (33) नारद का तर्क है कि पुत्र और पुत्री समान रूप से पिता की संतान हैं, अतः दोनों ही सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हो सकते हैं। लेकिन इसकी भी एक शर्त थी। पुत्री अपने हिस्से की सम्पत्ति का उपयोग तो कर सकती थी लेकिन वह अपने साथ ले नहीं जा सकती थी। (34) इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामान्य रूप से पुत्री को पिता की सम्पत्ति में अत्यन्त सीमित अधिकार प्राप्त थे। स्त्रियों के आर्थिक पक्ष की दृष्टि से स्त्री-धन की अवधारणा को प्राचीन भारत में बहुत महत्व दिया जाता है। इस पर स्त्री का पूरा अधिकार होता था। इसके अन्तर्गत वह धन आता था जो स्त्री को विवाह के अवसर पर प्राप्त होता था। इसमें उत्तराधिकार में मिला हुआ धन भी शामिल माना जाता था। लेकिन प्रायः यह देखा जाता था कि स्त्रियों को स्त्री-धन के नाम पर आभूषण और कुछ चल सम्पत्ति ही प्राप्त हो पाती थी। अचल सम्पत्ति पर आपवादिक स्थितियों में ही उसे अधिकार प्राप्त हो पाता था।(35)

अब एक ऐसे प्रसंग का विश्लेषण कर लेते हैं जिसे भारतीय नारी के इतिहास का क्रान्तिकारी कदम माना जाता है। स्त्रियों का बौद्ध संघ में प्रवेश। यह प्रवेश तत्कालीन समय के अनुरुप निश्चय ही अभूतपूर्व था लेकिन यह प्रवेश भी कुछ सीमाओं में रहकर ही था। विनयपिटक में उल्लेख है कि बौद्ध संघ में प्रवेश

पाने वाली भिक्षुणियों को जीवन भर आठ नियमों का पालन करना पड़ता था। वे नियम हैं, प्रथम -कोई भिक्षुणी क्यों न सैकड़ों वर्षों से बौद्ध संघ में अभिषिक्त हो चुकी हो, उसे किसी भी बौद्ध भिक्षु के सामने जाने पर अभिवादन करना चाहिए, चाहे क्यों न वह बौद्ध भिक्षु संघ में मात्र एक दिन पहले अभिषिक्त हुआ हो। द्वितीय, एक भिक्षुणी को किसी ऐसे स्थान पर वर्षा ऋतु में प्रवास नहीं करना चाहिए, जिस क्षेत्र में एक भी बौद्ध भिक्षु न हो। अन्य शर्ते भी भिक्षुणी की स्थिति को कमजोर करने वाली ही थीं। जैसे किसी भी परिस्थिति में कोई भिक्षुणी किसी भिक्षु की निन्दा नहीं कर सकती या एक भिक्षु कभी भी किसी भिक्षुणी को डाँट सकता था या सलाह दे सकता था, जबकि भिक्षुणी किसी भिक्षु को ऐसा नहीं कर सकती थी। इसके अतिरिक्त भी पाराजिक, संघादिशेष, निस्सागीय, पच्चतिय आदि नियमों में भिक्षुणियों के दैनिक क्रियाकलापों पर नियंत्रण लगाए गए हैं जो बौद्ध भिक्षुओं की तुलना में अधिक है।(36)

इस प्रकार सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की दृष्टि से प्राचीन भारतीय समाज पुरुषों के पक्ष में झुका हुआ था। स्त्री को पुरुष के इच्छानुकूल ही व्यवहार रखना होता था। आपवादिक स्थितियों में ही स्त्रियों को स्वतंत्र रूप से अपनी क्षमता प्रदर्शित करने का अवसर मिल पाता था। भारतीय समाज में बौद्ध विचारों ने स्त्रियों के प्रति दृष्टि में कुछ उदारता लाने का प्रयत्न किया लेकिन व्यापक समाज पर इसका सीमित असर पड़ा क्योंकि बौद्ध दृष्टि प्राचीन भारतीय सामान्य समाज को सीमित स्तर तक ही प्रभावित कर पाया था। अतः प्राचीन भारतीय समाज पितृसत्तात्मक ढाँचे में रहकर पुष्पित और पल्लवित होता रहा।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

1. द बुक ऑफ ग्रेजुयल सेइंग्स,I,पृ .120.
2. थेरीगाथा -446.
3. आपस्तम्ब धर्मसूत्र -215/11/12-13.
4. 4.काणे, पाण्डुरंग वामन;धर्मशास्त्र का इतिहास, I, पृ .342-347.
5. नन्द जातक) 39)
6. सुसीम जातक) 163)
7. अंगुत्तर निकाय,III, पृ .295.
8. काणे, पाण्डुरंग वामन;धर्मशास्त्र का इतिहास, I, पृ .338-347.
9. अर्थशास्त्र -3/2.
10. आश्वलायन गृहसूत्र -3/8/11
11. आश्वलायन गृहसूत्र -3/4

12. रामायण, 2/20/15; 4/16/12
13. दीपवंश, भाग-18, संयुक्त निकाय, IV, पृ .374-80.
14. संयुक्त निकाय,I, पृ .212-13.
15. थेरीगाथा अट्ठकथा, पृ .99.
16. विमानवत्थु अट्ठकथा, पृ .131.
17. दीपवंश, भाग-15.
18. मनुस्मृति, 2/67.
19. ऋग्वेद, 1/72/5.
20. ऋग्वेद, 5/3/2
21. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/6/13/16-18
22. अष्टाध्यायी) 4/1/33)
23. मनुस्मृति 5/155; विष्णु धर्मसूत्र 25/25.
24. विष्णुधर्मसूत्र, 26/1-4
25. मनुस्मृति 5/150.
26. मनुस्मृति 9/13.
27. स्कन्दपुराण) ब्रह्मखण्ड, धर्मारण्य परिच्छेद, अध्याय 7)
28. मनुस्मृति 10/11.
29. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/74.
30. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/76.
31. मनुस्मृति 9/185; गौतम धर्मसूत्र 28/21.
32. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/14/2//4
33. अर्थशास्त्र, 315; याज्ञवल्क्य स्मृति, 21/135; नारद स्मृति, 13/50
34. नारद स्मृति, 13/27
35. काणे, पाण्डुरंग वामन;धर्मशास्त्र का इतिहास, II, 937-947.
36. तालिम, मीना;लाइफ ऑफ वूमेन इन बुद्धिष्ट लिटरेचर, दिल्ली, 2010, पृ .23-66.

***

13. भारत में स्त्री विमर्श की विकास प्रक्रिया : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

ऋचा सिंह*

आज़ादी के सात दशक बीत जाने के बाद जब हम वर्तमान भारतीय परिदृश्य पर नजर डालते हैं तो सबसे विरोधाभासी स्थिति महिलाओं की ही लगती है। एक ओर कोई ऐसा क्षेत्र नहीं हैं, जहाँ महिलाओं ने अपनी सफलता और श्रेष्ठता का परचम न लहराया हो, वहीं दूसरी ओर भारतीय समाज की आम महिला अभी भी स्वावलंबन और सशक्तीकरण के लिए संघर्षरत है, ऐसी विरोधाभासी स्थिति क्यों हैं? 'औरत जन्म नहीं लेती बल्कि बना दी जाती हैं। यह प्रसिद्ध नारीवादी लेखक सिमॉन द् बुअर की प्रसिद्ध उक्ति है। यह उक्ति सेक्स एवं जेंडर के बीच के मौलिक अंतर को रेखांकित करती है। इसमें मनोवैज्ञानिक एवं शारीरिक दोनों ही पक्ष अंतर्निहित है।[1] भारतीय संदर्भ में भी यह बिल्कुल सही है। इस सच्चाई को समझने के लिए हमें महिलाओं की स्थिति को ऐतिहासिक संदर्भों में परखना होगा।

प्राचीन काल से भारत में स्त्री को 'शक्ति' माना जाता रहा। स्त्री के प्रति उच्च सम्मान और श्रद्धा भारतवासियों के अंतर्मन में निहित उदात्त मूल्यों, आदर्शो, संस्कृति और मानवीयता की वजह से और प्रखर होती रही लेकिन मध्य युग के मुस्लिम व ब्रिटिश आक्रमणों ने भारतीय सामाजिक संतुलन को क्षत-विक्षत कर दिया। फलस्वरूप भारतीय समाज संक्रमित हुआ और महिलाओं की स्थिति में निरंतर गिरावट आती गई। बाल विवाह, बालिका वध, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, जौहर, विधवा विवाह निषेध जैसी कुरीतियाँ तेजी से पनपने लगीं और महिलाओं की गरिमा नकारात्मक रुप से प्रभावित हुई। ब्रिटिश औपनिवेशिक काल महिलाओं के लिए वरदान और अभिशाप दोनों रहा। स्वामी विवेकानंद का कहना था "यह समझना बड़ा कठिन है कि इस देश में स्त्रियों और पुरूषों के बीच इतना भेद क्यों रखा गया है जबकि वेदान्त की यह घोषणा है कि सभी प्राणियों में वही एक आत्मा (ईश्वर) विराजमान है। समृतियाँ आदि सीखकर और स्त्रियों पर कड़े नियमों का बंधन डालकर पुरूषों ने उन्हें केवल संतानोत्पादक यंत्र बना रखा है।[(2)]" ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में सामाजिक सुधार के कई कार्य किए गए। सती प्रथा निषेध अधिनियम, 1829 राजा राम मोहन राय के आंदोलन की देन है जो लॉर्ड विलियम बैंटिक के प्रयासों से कानूनी दर्जा हासिल कर सका। इसके अतिरिक्त हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856, बाल विवाह निरोधक अधिनियम 1929,

* सहायक प्रोफेसर जी.एल.ए. कॉलेज मेदिनीनगर, पलामू, झारखण्ड

अलग रहने एवं भरण पोषण हेतु हिन्दू विवाहित स्त्रियों का अधिकार अधिनियम 1946 प्रमुख कानून हैं, जो औपनिवेशिक काल में पारित हुए। थियोसोफिकल सोसाइटी, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, सत्यशोधक समाज, रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाओं ने महिला सशक्तीकरण और नवजागरण के लिए ब्रिटिश काल में संघर्ष किया। यह बेहद रोचक तथ्य है कि भारत में नारी सशक्तीकरण और स्वावलंबन के प्रयास 19वीं सदी में 'पुरूषों' द्वारा ही प्रारंभ किए गए। इन प्रयासों द्वारा जो चिंगारी उत्पन्न हुई उसने महिलाओं के मुद्दों से संबंधित बहस की पृष्ठभूमि तैयार कर दी। 19वीं सदी में सावित्री बाई फुले और पंडिता रमाबाई देश की प्रमुख महिला आंदोलन कर्ताओं में थीं। वैसे देखा जाए तो हजारों वर्षो की पुरानी भारतीय संस्कृति में कई अन्तर्विरोधी धाराएँ रही हैं। स्त्री दशा के संबंध में भी यही सत्य दृष्टिगत होता है। एक तरफ 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमंते तत्र देवता' कहकर स्त्री को महिला मंडित किया जाता रहा, तो दूसरी तरफ

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यं अर्हति

अर्थात् कौमार्यावस्था में पिता उसकी रक्षा करते हैं, युवावस्था में वह पति के संरक्षण में रहती है और वृद्धावस्था में पुत्र उसकी देखभाल करता है। इस प्रकार स्त्रियों का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, कहकर उसकी पराधीन दशा को स्थापित किया जाता रहा। पर 19वीं सदी के सुधारों के बाद से उनकी स्थिति में काफी बदलाव का सिलसिला चल पड़ा।

गाँधीजी ने दक्षिण अफ्रीका से लेकर भारत तक अपने सत्याग्रह संग्राम में स्त्रियों की सहभागिता को बहुत प्रोत्साहित किया और पुरूषों एवं स्त्रियों को कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ने वाले सत्याग्रह सेनानी बना दिया।[3] इस संबंध में आचार्य कृपलानी लिखते हैं,"

"गाँधीजी ने भारत की स्त्रियों को स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया था। ऐसा उन्होंने सिर्फ इसलिए नहीं किया कि वह उन्हें पुरूषों के समान मानते थे, बल्कि इसका कारण यह भी था कि सत्याग्रह जैसे संग्राम में अपार धीरज और कष्ट सहने की शक्ति आवश्यक होती है और ये ऐसे गुण हैं जो पुरूषों से ज्यादा स्त्रियों में ही होते हैं। गाँधीजी का कहना था - स्त्री अहिंसा का अवतार है। अहिंसा का अर्थ है - अनन्त प्रेम, यानी कष्ट सहन करने की असीम शक्ति। [4] महात्मा गाँधी द्वारा चलाए गए राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं ने अपनी सक्रिय एवं सार्थक भागीदारी का निर्वाह किया।

पश्चिमी देशों में जहाँ मताधिकार के लिए भी महिलाओं को संघर्ष करना पड़ा, स्वतंत्र भारत में स्त्री-पुरूष दोनों को बराबरी का दर्जा दिया गया और समान संविधानिक अधिकार मिले। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से स्त्रियों की आत्मनिर्भरता और विकास के लिए विभिन्न तरह की योजनाएँ बनाई गईं पर ये तभी

सफल हो सकती थीं यदि महिलाओं का दर्जा समाज और राज्य दोनों के स्तर पर समान होता। वस्तुतः विकसित देशों की परिपक्व राज्य व्यवस्था को थोप दिया गया - जिसके लिए भारतीय समाज तैयार नहीं था। यह भारतीय राजनीति के बड़े विरोधाभासों में से एक है-विकासशील समाज में विकसित शासन व्यवस्था के ढाँचे का थोपा जाना।

समाज में मौजूद पितृसत्ता अर्थात् पुरूष की सर्वोच्चता महिलाओं की असमान स्थिति का मुख्य कारण है। सेल्विया वल्बी अपनी किताब 'थ्योराईजिंग पेट्रियार्की'के अंतर्गत पितृसत्ता की व्याख्या करते हुए इसे सामाजिक संरचना एवं व्यवहार की एक ऐसी व्यवस्था के रूप में देखती हैं जिसमें पुरूष स्त्रियों के ऊपर शासन कर उनका दमन और शोषण करते हैं। समाज की अधिकांश संस्थाएँ चाहें राज्य हो या धर्म, शिक्षण संस्थाएँ, परिवार अथवा मीडिया सभी प्रकृति से पितृसत्तात्मक ही होती है।(5) उदाहरण के लिए धर्म के आधार पर महिलाओं के विभेद को ही ले लिया जाए। किसी भी राष्ट्र की संस्कृति के निर्माण में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका होती है पर इस धर्म के अंदर भी लिंग विभेद देखा जा सकता है। हिन्दू धर्म भी पितृसत्तात्मक प्रभुत्व को दर्शाता है। हिन्दू कर्मकांड महिलाओं के लिए निषिद्ध रहे हैं। हमारी अधिकांश हिन्दू पौराणिक कथाएँ महिलाओं के सहनशील रूप को ही चित्रित करती हैं। उदाहरण के लिए 'सीता' जिसने समाज के अत्याचार भी सहन किए, (6) महाभारत की द्रौपदी का उदाहरण भी ऐसा ही है।

ईसाई धर्म में भी महिलाओं की स्थिति संतोषजनक नहीं है। ऐसा बताया जाता है कि ईश्वर ने पहले आदम को बनाया तथा बाद में आदम की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ईव को बनाया। इस्लाम धर्म में भी बहु विवाह एवं पर्दा प्रथा की संस्कृति के द्वारा महिलाओं के वस्तुकरण का प्रयास किया गया है। बौद्ध धर्म के अंतर्गत भी ईसाई धर्म के ही समान महिलाओं को धर्मसंघिनी का काम ही सौंपा गया है।(7) इस प्रकार विविध धर्मों में पितृसत्तात्मक प्रभुत्व देखा जा सकता है।

वस्तुतः लिंग विभेद भारतीय पितृसत्तात्मक समाज के प्रत्येक क्षेत्र में दिखायी देता है –परिवार, शैक्षणिक संस्थाओं, कार्य स्थल, मीडिया में स्त्री की वस्तुवादी प्रस्तुति, साहित्य जैसे आदि इन्हीं कारणों से भारतीय समाज में महिला का दर्जा कमतर ही है। तीन तलाक विरोधी विधेयक पारित करके सरकार द्वारा महिला समानता की दिशा में एक सकारात्मक पहल की गई है क्योंकि आजादी के बाद से ही 'हिन्दू कोड बिल'और मुस्लिम शरीयत कानून के खाँचे में बाँटकर हिन्दू व मुस्लिम महिलाओं की सामाजिक प्ररिस्थिति अलग कर दी गई थी।

लिंग संस्कृति एवं परिवेश से संबंधित है फलतः धीरे-धीरे उसका समाजीकरण हो जाता है। अतः महिलाओं ने विभिन्न संस्थाओं में लिंग विभेद की संस्कृति को देखते हुए अपना दोयम दर्जा स्वीकार कर

लिया है। प्राचीन काल से ही ब्राह्मणवादी परंपरा के अंतर्गत महिलाओं को ज्ञान के विकास और प्रसार के अधिकार से वंचित रखा गया है। इसलिए हमें कोई आश्चर्य नहीं कि ऐसी परंपराओं के अंतर्गत और उनके द्वारा विकसित हुई एक धारा जेंडर पर आधारित असमानता की भी रही है। (8) मध्य युग में तो मुस्लिम शासकों के काल में स्त्रियों का 'मीना बाजार' लगना, महिलाओं को सैंकड़ों की संख्या में हरम में रखना और बहु विवाह, तथा पर्दा प्रथा के निकृष्टतम रूप ने उनकी स्थिति को दयनीय स्थिति में पहुँचाया। आधुनिक युग में गाँधीजी के बाद अम्बेडकर के स्त्री संबंधी विचारों में उन्होंने कहा कि महिला असमानता के लिए जिम्मेदार धर्म है जिसमें महिलाओं का दमन शूद्रों की तरह ही किया गया, चाहे वह कोई भी मजहब क्यों न हो।

महिलाओं के प्रति असमान स्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करने वाली पहली नारीवादी पंडिता रमाबाई को माना जाता है। ग्रामीण स्त्रियों की हालत में सुधार के लिए रमाबाई ने रानाडे तथा भंडारकर जैसे नेताओं की मदद से मई 1882 में पूना में एक महिलाओं का समाज स्थापित किया। इसे 'आर्य महिला समाज' कहा गया - यह पहला भारतीय महिला संगठन था जिसका लक्ष्य ग्रामीण स्त्रियों में शिक्षा का विकास करना तथा बाल विवाह जैसी कुरीतियों को रोकना था।(9) उनकी पुस्तक 'द हाई कास्ट हिन्दू वुमेन (उच्च जाति की हिन्दू स्त्री') को पहला नारीवादी मेनिफेस्टो कहा जाता है। यह एक साहसिक लेखन था जिसमें स्त्री के जीवन की मुख्य दशाओं पर काफी आलोचनात्मक रूप से जोर डाला गया जैसे हिन्दू स्त्री का बचपन, उसका वैवाहिक जीवन तथा उसका वैधव्य। आजादी के पूर्व पण्डिता रमाबाई के अतिरिक्त सावित्री बाई फुले, एनी बेसेंट, सिस्टर निवेदिता जैसी अनेक सुधारवादी स्त्रियों ने महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु प्रयास किए, महिलाओं की लामबन्दी और उनके मुद्दे उठाने में सबसे ज्यादा सक्रिय संगठन 'ऑल इंडिया वूमेन कांफ्रेंस' की स्थापना 1928 में की गई।

स्वतंत्र भारत में भारतीय संविधान ने महिलाओं को समानता का दर्जा दिया और ऐसी उम्मीद की गई कि संविधान लागू होने के पश्चात् महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक सुधार अवश्य जाएँगे पर दुर्भाग्यवश ऐसा हो न सका। महिलाओं की असमान स्थिति को देखते हुए अतः 70 के दशक से विभिन्न महिला संगठनों और आंदोलनों की सक्रियता बढ़ी। यह विरोधाभास ही है कि जहाँ ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति में आंशिक बदलाव ही आ पाए हैं, वहीं महानगरों में महिलाएँ पश्चिमी नारीवाद के प्रभाव से उच्छृंखलता की हद तक पहुँच रही हैं। प्रसिद्ध लेखिकाएँ स्त्री विमर्श को व्यापक रूप में देखती हैं। वे लिंग व स्त्री-विमर्श के ऐसे अनछुए पहलुओं की ओर संकेत करती हैं, जिन पर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। अलग-अलग वर्ग, जाति, धर्म, क्षेत्र, नगर, महानगर की स्त्रियों पर समान रूप से कैसे विचार किया जा सकता है। सबकी परिस्थितियाँ और समस्याएँ भिन्न हैं। उन्हें समान दृष्टि से नहीं देखा जा सकता है।(10)

मन्नू भंडारी बेबाकी से लिखती हैं, "कौन सी भारतीय स्त्री? किस भारतीय स्त्री की बात करते हैं हम, वह जो उत्तर प्रदेश, राजस्थान व बिहार के गाँवों में रहती है। एक औरत जो गाँव में रहती है और जो दक्षिणी दिल्ली में रहती है, क्या इन सबको एक ही गज से नापा जा सकता है? इनके लिए क्या एक विमर्श तैयार किया जा सकता है कि यह होना चाहिए या नहीं? जब हमारे देश में इतनी अधिक विविधताएँ हैं तो आप किस स्त्री के विमर्श की बात करते हैं? सबकी अपनी अलग-अलग समस्याएँ हैं।(11) इसीलिए भारत का महिला आंदोलन अनेक लड़ियों में पिरोया हुआ है। सरकारी संस्थाओं, स्वयं सहायता समूहों, गैर सरकारी संगठन ग्रामीण स्तर पर चल रहे शराबखोरी विरोधी आंदोलन, पर्यावरण आंदोलन जैसे चिपको व शहादा आंदोलनों में ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी एक तरफ है तो दूसरी तरफ शहरी महिलाएँ अनुसंधान, संगोष्ठियों, जागरूकता अभियानों के माध्यम से लिंग विभेद को जड़ से दूर करने हेतु कदम बढ़ा रही हैं। कितनी ही महिलाओं के खून-पसीने, आंसुओं, अंतरदृष्टि, सपनों, विचारों और शक्ति ने महिला आंदोलनों की नीव रखते हुए उन्हें आगे बढ़ाया है। "पर नारी विमर्श या नारी अधिकारवाद को एक स्वाधीन राजनीतिक सिद्धांत के रूप में मान्यता देना कठिन है। बहुत से बहुत यह एक विचारधारात्मक आंदोलन है जिसके साथ जुड़े हुए विचार को स्वतंत्रता, समानता और न्याय के सामान्य सिद्धांतों के अंग के रूप में पहचान सकते हैं। इन सामान्य सिद्धांतों के संदर्भ में यह पुरूष के मुकाबले नारी की स्थिति, भूमिका और अधिकारों से गहरा सरोकार रखता है।"(12)

स्त्री विकास को बाधित करने में एक अन्य उत्तरदायी कारक जाति व्यवस्था है। यदि दलित स्त्री के संदर्भ में देखा जाए तो भारत में जाति व्यवस्था के दुष्परिणामों के कारण दलित स्त्री की हालत तो और दयनीय रही है। दलित महिलाओं की समस्याओं को न तो महिला आंदोलनों में ही पर्याप्त जगह दी गई न ही दलित आंदोलनों में। इसीलिए उनकी हालत में ज्यादा सुधार नहीं हो पाया। दलित विचारक गोपाल गुरू अपने लेख में कहते हैं, दलित महिला समाज में दोहरी मार झेलती है, एक तो महिला होना, दूसरे दलित - यानी दोनों गालों पर थप्पड़। यह समाज की वीभत्स स्थिति है।(13) राजेन्द्र यादव के अनुसार, "दलित अस्मिता और अस्तित्व के प्रश्नों को सैद्धांतिकी के अमूर्त में ले जाकर डिफ्यूज और डायलूट करने की अद्भुत कला एलीट, बुद्धिजीवियों के पास है।" दलित प्रश्नों पर भी वे बार-बार रेशे फेंककर बहस की चुनौतियाँ देते हैं।.....यह एक प्रबुद्ध वर्ग की साजिश है कि किसी आंदोलन को गुमराह करने के लिए उसके समानान्तर कई रेखाएँ खींच दो। (14) नया अनुच्छेद इस प्रकार जाति, वर्ग, धर्म आदि कई विभाजक रेखाएँ हैं जिनमें बंटा हुआ भारतीय समाज स्त्री-पुरूष समानता के लिए प्रयासरत है। "नारीवाद या नारी विमर्श ने युग युगांतर से होने वाले अन्याय और अत्याचार की ओर ध्यान खींचकर इस अन्याय के निराकरण का रास्ता दिखाया है। पर जब नारी मुक्ति के नाम पर स्त्री-पुरूष संघर्ष का मुद्दा उठाया जाता

है, तब स्त्री-पुरूष की एक दूसरे के प्रति निष्ठा के बंधन टूटने लगते हैं।[15] ऐसी खतरनाक स्थिति से महिलाएँ बचना चाहती हैं। परिवार नाम की संस्था उन्हें कई बार यह भी देखा गया है कि सुरक्षित करती है जिससे वे समाज में असुरक्षित महसूस न करें। इस सुरक्षा के लिए वे निजी हक, न्याय और समानता की तिलांजलि देना ही बेहतर समझती हैं। विशेषकर मध्यम वर्ग की महिलाओं की यही स्थिति है। इसीलिए महिला आंदोलन और विमर्श या तो भारतीय अभिजात वर्ग में पनपा - पला है या फिर समाज के निचले तबके में। समान नागरिक संहिता का मुद्दा जो विचाराधीन है, हर धर्म, और समुदाय की महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने में मददगार साबित होगा पर इसके लिए सशक्त आंदोलन की कमी है। गाँधीजी के अनुसार महिला सशक्तीकरण से तात्पर्य एक ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भौतिक, शारीरिक व मानसिक सभी स्तरों पर महिलाओं में आत्मविश्वास पैदा करके उन्हें सशक्त बनाने पर बल दिया जाता है।[16]

1974 में महिलाओं की स्थिति पर संयुक्त राष्ट्र द्वारा 'टूवाड्र्स इक्वालिटी' प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया। इसका नवीनतम अधिवेशन मार्च 2019 में हुआ जिसका लक्ष्य 'महिला सशक्तीकरण' में सतत विकास को जोड़ना है। भारत सरकार द्वारा भी 2010 में राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण मिशन प्रारंभ किया गया। इसका उद्देश्य महिलाओं से जुड़े तमाम मुद्दों पर काम करना है।

यह एक विचित्र स्थिति है कि भारतीय समाज, राजनीति व संस्कृति विरोधाभासों पर टिकी हुई है। स्त्री मुद्दे पर भी विरोधाभास यह है कि एक ओर तो हम स्त्री को दुर्गा, काली अर्थात् 'शक्ति' का दर्जा दे देते हैं वहीं समाज में वह पुरूषों के 'आंतरिक उपनिवेशवाद' का शिकार हैं। साथ ही समाज में स्त्री के प्रति वस्तुवादी नजरिया बढ़ता ही जा रहा है। इसकी वजह समाज और राष्ट्र की बढ़ती बाजारीकरण की प्रवृत्तियाँ हैं। 90 के दशक के बाद की उदारीकरण, भूमंडलीकरण और निजीकरण की नीतियों ने राज्य के कल्याणकारी स्वरूप पर निरंतर प्रहार किया है जिससे राज्य द्वारा चलाई जाने वाली योजनाएँ व सुविधाएँ धीरे-धीरे कम हुई हैं। हालांकि उदारीकरण के सकारात्मक परिणाम भी है। भूमंडलीकरण के माध्यम से स्त्री विमर्श व आंदोलन अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जुड़ रहा है जिससे महिला सशक्तीकरण को नवीन दिशा मिलेगा। बाजारीकरण के इस दौर में विज्ञापनों व अन्य संचार माध्यमों में महिलाओं के शरीर को उनकी गरिमा के विरुद्ध वस्तुवादी छवि बनाकर प्रस्तुत किया जा रहा है। जिस पर सभ्य समाज के मंथन की आवश्यकता है।

स्त्री सशक्तीकरण व स्वावलंबन की दिशा में संविधान के 73वें व 74वें संशोधन द्वारा किए गए प्रावधान स्थानीय प्रशासन के स्तर पर महिलाओं को 33% आरक्षण के माध्यम से सम्मानजनक दर्जा दिला पाए हैं लेकिन देश की शीर्षस्थ राजनीतिक संस्था संसद में महिला आरक्षण बिल अभी तक लम्बित है।

इसका कारण महिला नेत्रियों व आंदोलनकारियों की 'कॉस्मेटिक लीडरशीप" है - वे पूर्ण प्रतिबद्धता से इन मुद्दों को उठाती ही नहीं। सच्चाई तो यह है कि भारत में अभी भी कई शताब्दियाँ एक साथ चल रही है। गाँवों में जाएँ तो अभी भी रूढ़िवादिता का बोलबाला है, दूसरी तरफ महानगरों में 'नारीवाद'के नाम पर उच्छृंखलता का जो वीभत्स प्रदर्शन किया जाता रहा है उसकी वजह से आम महिला खुद को नारीवादी कहलाने से डरती है क्योंकि इस तरह की महिलाएँ 'घरफोड़ू'व जमीन से कटी कुंठित प्रकार की स्त्रियाँ मानी जाती हैं, इनका अधिक ध्यान राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय योजनाओं से व्यक्तिगत लाभ कमाना रहता है। इसीलिए हम एक तरफ संपत पाल का 'गुलाबी गैंग' पाते हैं वहीं दूसरी तरफ महानगरों का 'पिंक चड्ढी' अभियान। नारी सशक्तीकरण आजादी के इतने वर्षो बाद भी चुनौती बना हुआ है समाज में संतुलन स्थापित करने के लिए देश की आधी आबादी: महिलाओं का सशक्तिकरण आवश्यक है। देश के पूर्व राष्ट्रपति ए0पी0जे अब्दुल कलाम ने महिलाओं के विकास को प्राथमिकता देते हुए कहा था कि "महिलाएँ राष्ट्रीय विकास में बराबर की भागीदार हैं। जब महिलाएँ सशक्त होती हैं तो समाज का स्थायित्व सुनिश्चित होता है।"

भारत में नारी सशक्तीकरण के लिए आवश्यक है कि प्रभावशाली रुप में सालैंगिक संवेदीकरण कार्यक्रमों को चलाया जाए क्योंकि अभी भी भारतीय समाज के एक बड़े हिस्से की मानसिकता महिलाओं के प्रति असंवेदनशील और लैंगिक पूर्वाग्रहों से ग्रस्त है। जब महिलाओं के प्रति समाज की दृष्टि परिवर्तित होगी तभी वे समाज में बराबरी का दर्जा पा सकेंगी। जब तक देश की आधी आबादी पीड़ित और संत्रस्त है तब तक हम पूर्ण आजादी के दावे करें भी तो वे महज किताबी होंगे। आवश्यकता तमाम कार्यक्रमों को अमली जामा पहनाने की है। संयुक्त राष्ट्र संघ का 2019 की महिला दिवस का विषय "बराबरी के लिए संतुलन" भारत जैसे विकासशील देश के लिए तात्कालिक आवश्यकता है, क्योंकि स्त्री-पुरूष के बीच बराबरी ही स्थानीय, राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर संतुलन ला पाएगी। भारतीय महिला विमर्श ने आंदोलन के रूप में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपना स्थान बनाया है। इस आंदोलन की नींव में दलित, कामकाजी, मजदूर, निम्न, मध्यम एव उच्च मध्यम वर्ग सबका योगदान है। उनकी अलग-अलग सामाजिक परिस्थितियाँ है। बिखरे रूप में ही सही लेकिन अनेक महिलाओं ने एक दूसरे के संघर्षों व प्राथमिकताओं को समझने की चुनौती स्वीकार की है। किसी भी समाज के सम्पूर्ण विकास के लिए सामाजिक संरचना के आधे वर्ग को समान स्थान देना होगा। लोकतंत्र की प्रक्रिया में हर उपेक्षित वर्ग की आवाज़ का प्रतिनिधित्व होना जहाँ जनतंत्र को मजबूत बनाता है वहीं दूसरी ओर उनकी उपेक्षाओं को, तकलीफों को कम करने का एक संविधानिक मंच भी देता है। विभिन्न संस्थाओं, व्यक्तियों और आंदोलन के माध्यम से स्त्री को भी अपना बराबरी का दर्जा मिलेगा ऐसी शुभाशंसाएँ यदि हर नागरिक करे तो समाज की तस्वीर बदल जाएगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. तपन बिस्वाल, मानवाधिकार जेंडर एवं पर्यावरण, वीवा बुक्स, कोलकाता, 2016, पृष्ठ संख्या - 215
2. पूनम, भारत में नारीवाद का विकास एक समीक्षा, भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका, जुलाई, दिसम्बर 2015, पृष्ठ संख्या - 259
3. भगवान सिंह, गाँधी और दलित भारत जागरण, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, दिल्ली 2011, पृष्ठ-139
4. जेबीकृपलानी, महात्मा गाँधी; जीवन और चिन्तन, पृष्ठ संख्या - 429, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1960
5. तपन बिस्वाल, उपरोक्त पृ. 229
6. वही पृ. संख्या - 231
7. वही, पृष्ठ- 233
8. सुनील कुमार एवं कमला, भारतीय राजनीतिक चिंतन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2010 पृष्ठ संख्या - 127
9. वही पृष्ठ संख्या - 409
10. बी.एन सिंह, नारीवाद, रावत पब्लेकेशन्स, दिल्ली, 2013, पृष्ठ संख्या -111
11. मन्नू भंडारी, आजकल, दिल्ली, मार्च 2008, पृष्ट संख्या - 15
12. ओपी गाबा, राजनीति चिंतन की रूपरेखा, मयूर पेपरबैक्स, दिल्ली 2016, पृष्ठ संख्या - 400
13. गोपाल गुरू, दलित विमेन टॉक डिफरेन्टली, www.dalitfeminism.in
14. राजेन्द्र यादव, 'हंस', नई दिल्ली, अगस्त 2004, पृष्ठ संख्या - 5
15. गाबा, उपरोक्त, पृष्ठ संख्या - 402
16. विक्रम सिंह, गाँधीजी और नारी सशक्तीकरण, भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका, जुलाई-दिसंबर 2018, पृ.-21

***

14. भारतीय महिलाएँ एवं मानव अधिकार

डॉ. प्रतिमा गुप्ता*

किसी भी परिवार, समाज व राष्ट्र का स्वरुप वहां की नारियों की स्थिति पर निर्भर करता है। यदि नारी की स्थिति सुदृढ़, सशक्त एवं सम्मानजनक है, तो परिवार, समाज व राष्ट्र की स्थिति भी सुदृढ़, सशक्त एवं सम्मानजनक होगी। यदि नारी को एक मानव के रूप में न मानकर उसे उसके अधिकारों से वंचित रखा जायेगा और पुरुषों से कम आंककर बुद्धिहीन समझा जायेगा, तो न कोई परिवार, न समाज और न ही राष्ट्र उन्नति कर पायेगा।[1] यह दुर्भाग्य है कि भारत सहित अधिकतर पितृसत्तात्मक समाजों में महिलाओं को पुरुषों के समान सम्मान कभी भी अपने वास्तविक अर्थों में प्राप्त नहीं हुआ है।

यदि मानवाधिकार की बात करें, तो एक मानव होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार प्रकृति प्रदत्त होते हैं। लेकिन यह एक विडंबना ही रही है कि लगभग आधी आबादी को मानव के रूप में स्वीकृति ही नहीं मिली; क्योंकि वह एक स्त्री है। स्त्री को सदैव ही पुरुषों से कम आँका गया और सदियों से इन अधिकारों पर पुरुषों का वर्चस्व स्थापित रहा है, जबकि स्त्री के बिना किसी समाज की रचना संभव नहीं है। समाज में स्त्री एक उत्पादक की भूमिका निभाती है। उसके बिना एक नए जीव की कल्पना भी नहीं की जा सकती, लेकिन विगत कुछ वर्षों में महिलाओं के मानवाधिकारों का इतना उल्लंघन हुआ है कि महिला अधिकारों की सुरक्षा आधुनिक समाज के चिंतन का केद्रींय विषय बन गया है। केंद्र एवं राज्य सरकार ने इस सम्बन्ध में कई प्रयास किए हैं। लेकिन महिलाएँ अभी भी अपने अधिकारो से वंचित हैं। समाज एवं राज्य की विभिन्न गतिविधियों में पर्याप्त सहभागिता के बावजूद उनके साथ अभद्र एवं व्यवहार, असमान होता रहा है। साथ ही घरेलू एँव अन्य सार्वजनिक क्षेत्रों में उनके प्रति होने वाली हिंसा में वृद्धि हुई है, जिसमें महिलाओं का शारीरिक एवं मानसिक शोषण शामिल हैं। महिला सुरक्षा से संबंधित संविधानिक प्रावधानों और कानूनों की उपस्थिति के बावजूद महिलाओं के उत्पीड़न की घटनाओं की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। और वे स्वय को पहले से भी कहीं ज्यादा असुरक्षित महसूस कर रही हैं।

मानवाधिकार – मानव अधिकार वे अधिकार हैं, जो मानव को मानव होने के कारण प्राप्त होते है। 10 दिसंबर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ की सामान्य सभा ने मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को स्वीकृत और घोषित किया। प्रत्येक राज्य का प्रथम लक्ष्य अपने नागरिकों का अधिकतम विकास करना होता हैं, जो तभी पूरा हो पाता है, जब सभी नागरिकों को वह कुछ सुविधाएँ उपलब्ध करा सकें। सुविधाओं की उपलब्धि हेतु मनुष्य समाज के सामने कुछ माँगें रखता हैं, जो स्वार्थपूर्ण भी हो सकती हैं और

* सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी.ए.वी. पी.जी. कॉलेज, वाराणसी

सार्वजानिक भलाई से सम्बंधित भी और समाज के द्वारा ऐसी माँगों को स्वीकार कर लिया जाता हैं, जो सार्वजानिक हितों की पूर्ति में सहायक होती है। ऐसे माँगों को ही राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त हो जाने पर अधिकार कहा जाता हैं।

मानवाधिकार से अभिप्राय मौलिक अधिकार एवं स्वतंत्रता से है, जिसके सभी मानव प्राणी

हक़दार हैं। अधिकार एवं स्वतंत्रता के रूप में जिनकी गणना की जाती है, उनमें नागरिक एवं राजनैतिक अधिकार सम्मिलित है, जैसे कि जीवन जीने और स्वतंत्र रहने का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और कानून के समक्ष समानता एवं आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के साथ ही साथ सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार, भोजन का अधिकार, काम करने का अधिकार एवं शिक्षा का अधिकार आदि।[2]

भारतीय समाज में महिला अधिकार - भारतीय समाज में महिला अपने जन्म से लेकर मृत्यु तक एक अहम् भूमिका निभाती है। पुरुष प्रधान समाज में महिला की योग्यता को पुरुष से कम आँका जाता है। वैदिक काल में महिलाएँ बिना किसी प्रतिबन्ध के सामाजिक गतिविधियों में भाग लेती थीं। सभी दृष्टियों से वे पुरुषों के समकक्ष थीं। उनके अधिकार पुरुषों से किसी भी प्रकार कम नहीं थे। उस युग में स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा की उत्तम व्यस्था थी। अध्ययन-अध्यापन, घर-परिवार, तथा सभाओं में और संघर्षमय युद्धों आदि सभी जगह स्त्रियों का समान रूप से योगदान रहता था। नारी को सभी क्षेत्रों व दिशाओं में उन्नति एवं प्रगति करने की स्वतंत्रता थी, इसलिए उस काल में नारी की प्रतिभा तथा ज्ञान अद्भुत एवं अपूर्व थी। उस युग में स्त्रियों को धन, शौर्य और ज्ञान की अधिष्ठात्री बताया गया है।[3]

उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की स्वतंत्रता एवं अधिकारों पर पुरुषों ने अंकुश लगाकर उनकी मर्यादाओं का हनन किया एवं समाज में उनके पद को लम्बे समय के लिए तुच्छ बना दिया। पुरुष और नारी के कार्य का विभाजन कर नारी का कार्यक्षेत्र घर के अंदर सीमित कर दिया तथा पुरुष का कार्यक्षेत्र घर से बाहर कर दिया। आगे महिलाओं की स्थिति धीरे-धीरे ख़राब होती गई।[4] मनु ने तो महिलाओं को पुरुषों की संपति से ज्यादा कुछ नहीं माना।

मध्य युग स्त्रियों की गिरावट का युग था। इसमें स्त्रियों की स्थिति में ह्रास हुआ। वे धीरे-धीरे साम्राज्ञी से आश्रिता बन गयीं। उनका मानसिक तथा आत्मिक विकास प्रतिबंधित कर दिया गया। पुरुषों ने स्त्री को अपनी भोग्या वस्तु बना लिया था, वह पशु के तुल्य पराधीन हो चुकी थी। उनका मुख्य कार्य घर के अंदर भोजन बनाना, बच्चों का पालन-पोषण करना तथा पति की सेवा करना हो गया। इस काल में धीरे-धीरे बाल विवाह, परदे की बेड़िया तथा अज्ञान का अंधकार नारी समाज के लिए अभिशाप बनने लगे।

ब्रिटिश काल में भी नारियों की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। इस दौरान भी स्त्रियों के लिए शिक्षा का विशेष प्रबंध नहीं था। महिलाओं से कम वेतन में काम लिया जाता था। महिलाओं को दोयम दर्जे का नागरिक समझा जाता था। घर, परिवार, समाज तथा शासन-प्रशासन में महिलाओं की रूचि, इच्छा एवं भावनाओं को थोड़ा भी महत्व नहीं दिया गया।[5]

नारी समाज को मानवाधिकारों के हनन से मुक्ति दिलाने हेतु सबसे महत्वपूर्ण कदम रानी लक्ष्मीबाई ने उठाया। महिलाओं के राज्य सम्बन्धी उत्तराधिकार की लड़ाई अंग्रेजों के विरुद्ध रानी लक्ष्मीबाई ने लड़ी और लड़ते हुए शहीद हो गयी। प्रथम प्रयास राजा राम मोहन राय ने अपने किया सुधार आंदोलन के माध्यम से बाल-विवाह, सती-प्रथा, एवं बहुपत्नी प्रथा को समाप्त करने हेतु आंदोलन प्रारम्भ कर दिया, जिसके चलते 1829 में लार्ड विलियम बेंटिक के समय सती-प्रथा को गैर कानूनी घोषित करते हुए इस पर रोक लगाने हेतु कानून बना दिया गया। आजादी की लड़ाई के क्रम में महात्मा गांधी ने महिलाओं को घर से बाहर निकालकर अपने हक़ की लड़ाई लड़ने हेतु प्रेरित किया और भारतीय जनता में यह सोच विकसित की कि महिलाओं को आत्मनिर्भर और अधिकार संपन्न बनाकर ही आजादी के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। इन सब प्रयासों के फलस्वरूप 19वीं सदीं में भारतीय महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन आने लगा।

भारत देश 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र हुआ तथा 26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान लागू हुआ। भारतीय संविधान में समस्त भारतीयों को संविधानिक अधिकार दिए गए हैं, जिनको मूल अधिकार कहा गया है तथा साथ ही नीति-निर्देशक तत्वों की भी व्यवस्था की गयी है। भारतीय संविधान में स्त्री-पुरुष, अमीर-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित सभी को समान सुरक्षा प्रदान की गयी है। स्त्री-पुरुष सभी को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय देने का आश्वासन दिए गया है।[6]

भारतीय महिलाओं के अधिकारों को संविधानिक प्रावधानों तथा संविधान प्रदत्त विधियों द्वारा सरंक्षण प्रदान किया गया है। इन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

अ- संविधानिक अधिकार - भारतीय संविधान के भाग-3 में अनुच्छेद 14 से 35 तक संविधानिक (मौलिक) अधिकारों का उल्लेख किया गया है, जो निम्नलिखित हैं-

1- समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14 -18)

2- स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19 -22)

3- शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)

4- धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)

5- संस्कृति एवं शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 29-30)

6- संविधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

वे अनुच्छेद जो महिलाओं को विशेष संरक्षण एवं अधिकार प्रदान करते हैं-

अनुच्छेद 15 के द्वारा यह व्यस्था की गई है कि "राज्य धर्म, जाति, मूल वंश, लिंग तथा जन्म स्थान के आधार पर नागरिको के बीच कोई विभेद नहीं करेगा।" अर्थात हमारे संविधान में यह व्यस्था स्पष्ट है कि पुरुष एवं महिला को समान अधिकार प्रदान किए जाये। इसी अनुच्छेद 15(3) में यह भी कहा गया है कि यदि सरकार की ओर से महिलाओं एवं बच्चों को कुछ विशेष सुविधा या सुरक्षा प्रदान की जाती है, तो उसे संविधान के विरुद्ध नहीं माना जायेगा।[7]

अनुच्छेद 21 के द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि किसी व्यक्ति को उसके प्राण व दैहिक स्वाधीनता से वंचित न किया जाए अर्थात् हमारे संविधान में यह व्यवस्था स्पष्ट है कि किसी भी व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या पुरुष उसे अपने प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य किसी प्रकार से वंचित नहीं किया जा सकता। इसी अनुच्छेद द्वारा महिलाओं के यौन शोषण प्रतिकार एवं पुनर्वास के लिए मार्गदर्शन सिद्धांत के प्रतिपालन के अतिरिक्त बलात्कार से पीड़ित महिला को अंतरिम प्रतिकार प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया गया है।[8]

अनुच्छेद 23-24 के द्वारा सभी नागरिकों को शोषण के विरुद्ध अधिकार प्रदान किया गया है। भारत में सदियों से किसी न किसी रूप में दासता की प्रथा विद्यमान रही है, जिसके अंतर्गत स्त्रियों पर अत्याचार किए जाते रहे हैं। इस अनुच्छेद के द्वारा जबरदस्ती काम करने पर रोक लगा दी गयी है। यह अनुच्छेद मानव दुर्व्यवहार एवं बलात श्रम का प्रतिषेध करता है तथा नारी के क्रय-विक्रय पर रोक लगाता है।

अनुच्छेद 39 के द्वारा समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था रखी गयी है।

अनुच्छेद 39(ड़) के अंतर्गत राज्य से यह अपेक्षा की गई है कि श्रमिक पुरुषों तथा स्त्रियों के स्वास्थ्य व शक्ति तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग न हो एवं आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर उन्हें ऐसे रोजगार में न जाना पड़े, जो उनकी आयु या शक्ति के प्रतिकूल हो।

अनुच्छेद 42 के द्वारा कार्य की न्यायोचित (उचित) दशाये सुनिश्चित की गई तथा महिलाओं को निःशुल्क प्रसूति सहायता उपलब्ध कराया गया।

अनुच्छेद 51 क के अंतर्गत उन सभी बातों का परित्याग करना सुनिश्चित किया गया है, जो नारी सम्मान के विरुद् हों।

अनुच्छेद 243(घ) में पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के एक तिहाई स्थान आरक्षण का प्रावधान किया

गया है।

ब - विधिक अधिकार - भारतीय संविधान एवं विभिन्न दंड संहिताओं में भी कई ऐसे नियम, विनियम एवं अधिनियम बनाये गए हैं, जिनकी सहायता से महिलाओं के हितों की रक्षा की जा सकती हैं।

महिलाओं से सम्बंधित कुछ प्रमुख अधिनियम निम्नलिखित हैं-

- **भारतीय दंड संहिता, 1960 :** इसमें महिलाओं पर होने वाले अत्याचार एवं निर्दयता के विरुद्ध सजा देने की व्यापक रूप से व्यस्था की गयी है।
- **दहेज़ प्रतिषेध अधिनियम, 1961 :** 1961 में तात्कालिक प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने दहेज़ को एक सामाजिक समस्या एवं मानव मात्र पर एक कलंक मानते हुए इस कानून को पारित करवाया था। इसके माध्यम से दहेज़ लेने, देन या इसके लेन-देन मे सहयोग जैसे गंभीर समस्या पर अंकुश लगाने की कोशिश की गयी।
- **हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 :** यह अधिनियम पुत्री को अपने माता-पिता की संपत्ति में पुत्र की भांति अधिकार प्रदान करता है।
- **दंड प्रक्रिया, 1973 :** यह भारत में आपराधिक कानून के क्रियान्वयव के लिए है। इस में किसी भी महिला की तलाशी या अन्य सम्बन्धी जांच के लिए महिला या महिला पुलिस के माध्यम से करना अनिवार्य होगा।
- **हिन्दू विवाह अधिनियम, 1956 :** इस अधिनियम में पति-पत्नी के वैवाहिक जीवन जैसे शादी, तलाक एवं सजा आदि के बारे में विस्तार से विवेचन किया गया है।
- **मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम, 1939 :** इस अधिनियम से पूर्व मुस्लिम महिलाओं की स्थिति अति दयनीय थी। लेकिन इस अधिनियम के बनने के बाद पत्नी को भी तलाक देने के कुछ अधिकार प्रदान कराये गए हैं।
- **हिन्दू अवयस्कता एवं संरक्षण अधिनियम, 1956 :** पति-पत्नी के बीच विवाह विच्छेद की स्थिति में अथवा अन्य परिस्थिति के कारण अगर पति-पत्नी अलग रहते हैं, तो इसका नुकसान महिलाओं को भुगतना पड़ता है। इससे भी ज्यादा दयनीय स्थिति उन बच्चों की हो जाती है, जिनके माता-पिता अलग रहते हैं, क्योंकि दोनों के बीच झगड़ा इस बात का रहता है कि अवयस्क बच्चे किसके पास रहें।
- **भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1982 :** साक्ष्य का असाधारण अधिनियम यह है कि सबूत का भार उस व्यक्ति पर होगा, जिसके द्वारा आक्षेप लगाया गया हो और ऐसी ही स्थिति में महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों के मामलो में भी था।
- **बाल विवाह अवरोध अधिनियम, 1929 :** इस अधिनियम में विवाह की आयु का निर्धारण एवं नियम का उल्लंघन करने पर सजा, जुर्माना आदि का प्रावधान किया गया है।

- **सती निवारक अधिनियम, 1987 :** इस अधिनियम द्वारा सती प्रथा एवं उसको महिमामंडित करने से रोकने के लिए सख्त कदम उठाये गए।
- **अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम, 1956 :** इस अधिनियम के अनुसार महिलाओं के प्रति यौन शोषण को संज्ञेय अपराध माना गया है।
- **महिलाओं और बच्चियों सम्बन्धी अनैतिक व्यापर निवारण अधिनियम, 1950 संशोधित व 1978 अनैतिक व्यापार संरक्षण अधिनियम, 1986 :** अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम 1956 से काफी समानता रखता है।
- **गर्भावस्था समापन चिकित्सा अधिनियम, 1979 :** प्रारंभ में हमारे देश में गर्भपात करना एवं करवाना दोनों ही भारतीय दंड संहिता 1860 के अनुच्छेद 312-316 के अनुसार अपराध थे।
- **चलचित्र अधिनियम, 1952 :** फिल्मों का समाज में गहरा असर पड़ता है। इसलिए सेंसर बोर्ड की जिम्मेदारी है कि वह ऐसी फिल्मों पर रोक लगाएगा, जिसमें महिलाओं को अश्लील रूप में दिखाया गया हो तथा जिससे महिलाओं कि मर्यादा भंग होती हो।
- **स्त्री अशिष्ट प्रतिबन्ध अधिनियम, 1986 :** इस अधिनियम के माध्यम से स्त्री के शरीर के अश्लील चित्रण पर पूर्णतया प्रतिबन्ध लगा दिया गया है।
- **विशेष विवाह अधिनियम, 1954 :** इस अधिनियम के माध्यम से महिलाओं को वैवाहिक स्वतंत्रता प्रदान की गई है।
- **कारखाना अधिनियम, 1948, संशोधित 1976 :** इस अधिनियम में कहा गया है कि यदि किसी कारखाने या उद्योग धंधे में महिलाओं की संख्या 30 से अधिक होगी, तो प्रबंधन को वहां एक शिशु गृह की व्यवस्था करनी होगी, ताकि काम के घंटो के दौरान महिलाएँ अपने बच्चों को शिशु गृह में छोड़ सकें।
- **मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 :** इस अधिनियम के तहत महिलाओं को ऐसे अधिकार एवं विशेष रियायतें दी गयी हैं कि महिला अपने मातृत्व की जिम्मेदारियों का निर्वहन कर सकें।
- **समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 :** इस अधिनियम द्वारा स्त्री व पुरुष कर्मकारों हेतु समान प्रकृति के कार्य के लिए समान वेतन की व्यस्था की गई।[9] महिलाओं के शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक शोषण से बचने और उनके हितों के लिए और भी कानून हैं, जो इस प्रकार है- कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984, अभद्र निरूपण निषेध अधिनियम, 1986, राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990, घरेलु हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005, पोक्सो अधिनियम, 2012, (लैंगिक उत्पीड़न से बच्चों के संरक्षण का अधिनियम) तथा महिलाओं का कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न अधिनियम, 2013 आदि।

यद्यपि भारतीय समाज में नारी को बहुत से संविधानिक एवं विधिक अधिकार प्राप्त हैं, इसके बावजूद वह सदियों से उत्पीड़ित रहीं हैं। इसका कारण हमारे पुरुष प्रधान समाज की संरचना है, जिसने

समस्त जन-मानस को प्रभावित कर रखा है। महिलाओं के उत्थान एवं उन्नयन के लिए राजकीय, अन्य गैर राजकीय संस्थाएँ व्यापक रूप से कार्यरत हैं। यद्यपि सैद्धांतिक दृष्टि से भारतीय परिवेश में महिलाएँ व्यापक रूप से अधिकार संपन्न हैं, परन्तु व्यवहारिकता में देखा जाये, तो यह सब निरर्थक सिद्ध होते हैं।

आज सही रूप में देखा जाये, तो महिला कही भी सुरक्षित नहीं हैं। महिला को उपभोग की वस्तु माना जा रहा है। असामाजिक तत्त्व महिलाओं के साथ गलत व्यवहार करते हैं। एक महिला जहाँ कार्य करती हैं, वहाँ तो अन्य लोगों से असुरक्षित हैं ही, वह अपने परिवार में भी सुरक्षित नहीं हैं। जब एक पिता अपनी बेटी से बलात्कार कर सकता है, तो सामाजिक परिवेश में उसकी सुरक्षा की आशा कैसे की जा सकती है? एक लड़की का पति, जो उसका संरक्षक है, वह किरोसिन तेल डाल कर उसे दहेज़ के लिए जिन्दा जला देता हैं। एक लड़की कॉलेज के लिए निकलती है और कुछ बदमाश लड़के तेजाब डाल कर उसे बदसूरत बना देते हैं या कुछ बदमाश सड़क से गाड़ी में डाल कर ले जाते हैं और उसके साथ सामूहिक बलात्कार करते हैं। यह हमारे समाज की वीभत्स तस्वीर है, जो महिला सुरक्षा के प्रश्न को आज आजादी के इतने वर्षों बाद भी महत्वपूर्ण बनाती हैं।

महिला अधिकारों के संरक्षण हेतु जो संस्थाएँ कार्यरत हैं, वे उस समय कहाँ चली जाती हैं, जब किसी स्त्री या बच्ची का जीवन तबाह होता है। कुछ लोग रैलिया निकलते हैं, कैंडिल मार्च करते हैं, लेकिन सच यह है कि भारतीय समाज में नारी आज भी असुरक्षित हैं। यदि वह अपने अधिकारों को समझ भी लेती हैं या इस क्षेत्र में अपने ज्ञान को बढ़ा भी लेती हैं, तो भी उसे न्याय की मांग करने के लिए न्यायालय में जाना ही पड़ता हैं। और कई बार वहां उसका मजाक भी उडाया जाता है। न्यायालय में उससे ऐसे सवाल पूछे जाते हैं कि वह बीच में ही आत्मसमर्पण कर देती हैं। अतः सत्य को समाज के द्वारा छुपा लिया जाता है और अनेक महिलाएँ रोज किसी-न-किसी हिंसा का शिकार होती हैं। समाज में स्थापित सभी आयोगों व संस्थाओं को सचेत किया जाना चाहिए, जिससे प्रत्येक महिला की गरिमा एवं अस्मिता संरक्षित रहे। सशक्त राष्ट्र के निर्माण के लिए आवश्यक है कि देश की आधी आबादी; महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति जागरुक बनें एवं सम्मान गरिमामयी जीवन यापन कर सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. कटारिया, सुरेंद्र; **मानवाधिकार, सभ्य समाज एवं पुलिस,** आर.बी.एस.ए पब्लिशर्स, जयपुर, 2003, पृ.सं. 110
2. राय, अरुण; **भारत में जनहित याचिका और मानव अधिकार,** राय पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2003, पृ.सं. 10

3. पांडेय, श्वेता, **मानवाधिकार एवं भारतीय नारी,** लोकतंत्र समीक्षा, संविधानिक तथा संसदीय अध्ययन संस्थान, देलही, 2003, पृ.सं. 26
4. अंसारी, एम.ए; **महिला और मानवाधिकार,** ज्योति प्रकाशन, जयपुर, 2010, पृ.सं. 193
5. शर्मा, रेखा; **भारतीय संविधान एवं संविधान प्रदत्त विधियों में महिला मानवाधिकार,** आशा कौशिक द्वारा सम्पादित, मानवाधिकार और राज्य, पॉइंटर पब्लिशर्स, जयपुर, 2004, पृ.सं.190
6. नाताणी, प्रकाश नारायण; **महिला जागृति और कानून,** अविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2002, पृ.सं. 76
7. राज कुमार; **इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ वीमेन एँड डेवलपमेंट सीरीज : वीमेन एँड नेशन,** अनमोल पब्लिकेशन्स प्रा. लि. नई दिल्ली, 2002, पृ.सं.10 -12
8. मंगलानी, डॉ. रूपा; **भारतीय शासन एवं राजनीति,** राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2005, पृ.सं.137
9. अंसारी, एम.ए; **महिला और मानवाधिकार,** ज्योति प्रकाशन, जयपुर, 2010, पृ.सं. 156

***

15. भारत में पंचायती राज और महिला सशक्तीकरण

डॉ. वैशाली देवपुरा*

भारत गाँवों का देश हैं। भारत की आत्मा गाँवों में बसती हैं। गाँवों की उन्नति पर ही देश का विकास निर्भर करता हैं। भारत में प्राचीन काल से ही किसी न किसी रूप में पंचायतों का अस्तित्व विद्यमान रहा हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् महात्मा गाँधी ने पंचायती राज की स्थापना को भारतीय लोकतंत्र के लिए महत्वपूर्ण माना था। भारत के संविधान निर्माता इस तथ्य से भली भांति परिचित थे कि स्थानीय संस्थाएँ ही सशक्त राष्ट्र का आधार हैं। अतः ग्रामीण शासन व्यवस्था की ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया। स्थानीय स्वशासन से तात्पर्य शासन की उस प्रणाली से हैं जिसमे जमीनी स्तर पर आमजन को शासन में भागीदार बनाकर लोकतांत्रिक विक्रेन्द्रीकरण को सुनिश्चित किया जाता है, जहाँ वे अपनी समस्याएँ स्वंय हल करने में सक्षम होते हैं। स्थानीय स्वशासन नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्र में शासन की लघुतम ईकाई है। 'स्थानीय स्वशासन' शब्द भारत को ब्रिटिश शासन से विरासत में प्राप्त हुआ हैं। स्थानीय स्वशासन को दो भागों में बांटा गया है- नगरीय स्वशासन एवं ग्रामीण स्वशासन।

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र हैं। लोकतंत्र के सफलतापूर्वक कार्य करने के लिए प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर जनता की संबद्धता एवं भागीदारी की आवश्यकता होती है। पंचायती राज अथवा लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण का उद्देश्य है स्थानीय स्तर पर आम जन को प्रशासन से जोड़ना जहाँ जनता स्वयं विकास की योजनाएँ बना सकें तथा उन्हें क्रियान्वित करने की जिम्मेदारी का निर्वाह कर सकें। हालांकि यह सब कार्य स्थानीय संस्थाओं को प्रशासन के निर्देशन और नियंत्रण के अंतर्गत करने होते हैं। स्थानीय जन के द्वारा अपने ऊपर किया गया शासन ही स्वशासन है। स्थानीय स्वशासन पंचायती राज व्यवस्था का ही एक रूप है। पंचायतें वे महत्वपूर्ण संस्थाएँ हैं जिनके माध्यम से भारत जैसे विशाल एवं विविधता वाले देश में। प्रशासन आम जन तक पहुँचता रहा है तथा स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति स्थानीय लोगों के द्वारा की जाती रही है। ग्राम पंचायते लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का सशक्त माध्यम है। लोकतांत्रिक राजव्यवस्था में पंचायती राज वह माध्यम है जो शासन को समान्य जन के दरवाजे तक लाता है। लोकतंत्र की संकल्पना को अधिक यथार्थ में अस्तित्व प्रदान करने की दिशा में पंचायती राज व्यवस्था एक ठोस कदम है जिसमें स्थानीय लोगों की स्थानीय शासन कार्यों में निरंतर रूचि बनी रहती है क्योंकि वे अपनी स्थानीय समस्याओं का स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप समाधान कर सकते हैं। इसके साथ ही

* **राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपूर, (राजस्थान)**

वे स्थानीय स्तर पर विकास के कार्यों का संपादन भी कर सकते है। इस अर्थ में पंचायती राज संस्थाएँ स्थानीय जनता को शासन कार्य में भागीदारी प्रदान कर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से शासन और प्रशासन को प्रशिक्षण प्रदान करती हैं।

भारत मे पंचायती राज की संकल्पना नई नहीं है। यह प्रारंभिक समय से ही अस्तित्व में रही हैं। प्राचीन भारतीय यथा ग्रंथों 'मनुस्मृति', 'महाभारत' तथा 'अर्थशास्त्र' में पंचायतों के उल्लेख मिलते हैं, जो इस बात के साक्ष्य हैं कि ग्राम प्रारंभिक काल से ही प्रशासन की मूलभूत इकाई रहे हैं। भारत में प्राचीन काल से ही पंचायतों का अस्तित्व किसी न किसी रूप में रहा है। 'पंचायत' शब्द की उत्पति संस्कृत भाषा के शब्द 'पंचायतम्' से हुई हैं जिसका अर्थ पाँच सदस्यों की एक ऐसी संस्था से है, जो गाँव के लोगों द्वारा निर्वाचित होती है। दूसरे शब्द में, पंचायतें लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का एक रूप हैं, जिसमें प्रशासन और सत्ता के अधिकारों को केन्द्र से गाँवों को हस्तांतरित किया जाता है। भारत में पंचायतों में पंच परमेश्वर की अवधारणा निहित है अर्थात् 'पंचों में ही परमेश्वर का निवास होता है।' प्राचीन समय की चौपाल, जाति, पंचायत और परिवार पंचायत में इसकी नींव दिखाई देती है। सिन्धु घाटी की सभ्यता में भी इसके प्रमाण मिलते हैं। वैदिक काल के प्राचीनतम उपलब्ध 'ऋग्वेद' में सभा एवं समिति के रूप में लोकतांत्रिक स्वायतशासी संस्थाओं का उल्लेख मिलता है। वैदिक सभ्यता के ग्राम्य जीवन और सिन्धु सभ्यता के नगरीकरण को अंगीकार करते हुए ये स्वशासन की ईकाईयाँ निरंतर विकास के सोपान पर चढ़ती गई। इस प्रकार भारत में प्राचीनकाल में वैदिक काल, उत्तर वैदिक काल, रामायण काल, महाभारत काल में पंचायतों का वर्णन किसी न किसी रूप में मिलता है। यहाँ तक कि बौद्धकाल, मौर्यकाल, गुप्तकाल और दक्षिण भारत के चोल साम्राज्य में भी पंचायतों का वर्णन मिलता है। पंचायती राज व्यवस्था का सबसे परिष्कृत और स्वर्णिम स्वरूप दक्षिण भारत के चोल शासन में ही दिखाई देता है, जहाँ पंचायत व्यवस्था अत्यधिक सुगठित, सुनियोजित, सशक्त और समृद्ध थी। पंच परमेश्वर की भावना न्यायानुकूल निर्णय देने हेतु प्रतिबद्ध थी। मुगलकाल में मुस्लिम शासकों के द्वारा यह व्यवस्था निर्बाध रूप से जारी रही थी। मुस्लिम शासक भी विवादित मामलों को स्वंय न सुनकर ग्राम पंचायतों के पास भेज दिया करते थे। आपसी मुकदमें एवं झगड़ों का समाधान चौधरी और पंचों के सहयोग से किया जाता था। जाति पंचायतें भी महत्वपूर्ण फैसले लेने का कार्य करती थीं। अधिकांशतया पंचायतें राज्य का समर्थन करती थीं। अतः मुस्लिम हितों को ध्यान में रखते हुए शासकों के द्वारा अधिकतर पंचायतों के फैसले मान लिये जाते थे।

भारत में अंग्रेजों के द्वारा सत्ता ग्रहण करने और 'ईस्ट इण्डिया कंपनी' के भारत में प्रवेश के साथ ही केन्द्रीकरण की नीति को अपनाने के साथ शासन में पंचायतों को अस्थायी गतिरोध का सामना करना पड़ा; क्योंकि अंग्रेजों को इन संस्थाओं के महत्व का पता नहीं था। कालान्तर में इन संस्था के महत्व का आभास होते ही विकेन्द्रीकरण आयोग ने 1907 में अपने प्रतिवेदन में इन संस्थाओं को शक्तिशाली बनाने की अनुशंसा की। ब्रिटिश काल में पंचायतों पर पाश्चात्य प्रभाव भी दिखाई देता है। इस काल में नगरों में

स्थानीय शासन पर बल दिया गया।

लार्ड रिपन को भारत में स्वायत शासन की संस्थाओं का जनक माना जाता है। उन्होंने भारत में स्थानीय स्वशासन को अनुप्राणित और निर्देशित किया। उन्होंने 1982 में एक प्रस्ताव पारित किया, जिसके द्वारा पूरे देश में उपखण्ड अथवा ताल्लुका बोर्ड तथा जिला बोर्ड स्थापित करने का सुझाव दिया गया। इस प्रस्ताव को 'स्थानीय स्वशासन का मैग्नाकार्टा' भी कहा जाता है। परन्तु रिपन अपने कार्यकाल में इस प्रस्ताव को मूर्त रूप नहीं दे पाये। लॉर्ड कर्जन भारतीयों को स्वशासन के नाम पर अधिकार सौपने के विरोधी थे। तत्पश्चात् 1907 के विकेन्द्रीकरण आयोग ने ग्राम पंचायत को स्थानीय शासन की आधारभूत ईकाई बनाने का सुझाव दिया। इस प्रकार ब्रिटिश काल में स्थानीय स्तर पर ग्रामीण संस्थाओं के लिए प्रयास निरंतर किए गए।

स्वतंत्र भारत में पंचायती राज

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में स्थानीय स्वशासन की दिशा में एक नई पहल प्रारंभ हुई। 26 जनवरी, 1950 को भारत में नवनिर्मित संविधान लागू हुआ। संविधान में स्थानीय स्वशासन के विषय को राज्य सूची में रखा गया और इस केवल अनुच्छेद 40 में नाम मात्र का स्थान दिया गया। संविधान के अंतर्गत राज्यों के नीति निर्देशक सिद्धांतों में कहा गया कि राज्य का कर्त्तव्य होगा कि वह ग्राम पंचायतों का इस प्रकार से संगठन करें कि वे स्थानीय स्वशासन की इकाई के रूप में कार्य कर सकें।

इस संबंध में प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, "स्थानीय स्वशासन लोकतंत्र का सच्चा आधार स्तम्भ है। अतः, हमें सच्चे लोकतंत्र की नींव, जो कि स्थानीय स्वशासन है, की ओर ध्यान देना चाहिए।" इसके साथ ही स्वतंत्र भारत में स्थानीय स्वशासन के लिए प्रयास प्रारंभ किए गए।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में विकास के तीन 'मॉडल' थे। पहला प्रारूप महात्मा गाँधी के ग्रामीण गणराज्य का था, जिसमें गाँव को विकास की प्रमुख ईकाई के रूप में देखा गया। दूसरा प्रारूप डॉ. भीमराव अम्बेडकर द्वारा प्रतिपादित था, जो गाँधी के दृष्टिकोण से एकदम विपरीत विकास की जिम्मेदारी गाँवों को देने के पक्ष में नहीं था; क्योंकि उनके अनुसार भारत के असंख्य गाँव अज्ञानता, अंधविश्वास और असमानता के गढ़ थे। पं. जवाहर लाल नेहरू ने गाँधी और अम्बेडकर के विचारों के मध्य का मार्ग अपनाया और उन्होंने विकास के लिए राज्य के साथ जनसाधारण की भूमिका को भी महत्वपूर्ण माना। नेहरू का मानना था कि भारत जैसे विशाल और विविधता वाले देश में केंद्रीकृत विकास का स्वरूप अपर्याप्त होगा। अतः, गाँवों को स्वायत्त विकास के लिए उचित अवसर, संसाधन और शक्तियाँ दी जाएँ। देश की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए सरकार ने ग्रामों की आवश्यकता के लिए योजनाएँ बनानी प्रारंभ

की। इसमें सबसे महत्वपूर्ण और प्रथम प्रयास के रूप में प. नेहरू द्वारा 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम का प्रारंभ किया गया जिसका ध्येय देश के आर्थिक विकास और सामाजिक उत्थान के कार्यक्रम में जन सहभागिता एवं सहयोग प्राप्त करना था। परन्तु यह सरकारी तंत्र तक सीमित रह गया। 2 अक्टूबर 1953 को राष्ट्रीय प्रसार सेवा कार्यक्रम प्रारंभ हुआ किन्तु वह अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो सका।

बलवंत राय मेहता समिति 1957

1952 में प्रारंभ हुए सामुदायिक विकास कार्यक्रम की प्रगति के मूल्यांकन हेतु बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया, जिसने 1958 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए बताया कि यह योजना जनता में स्वयं कार्य करने की भावना जाग्रत करने में असफल रही हैं। समिति ने सुझाव दिया कि जनता के दैनिक कार्यक्रमों को जनता द्वारा ही क्रियान्वित किया जाना चाहिए। सरकारी कार्यक्रम जनता की भागीदारी बिना सफल नहीं हो सकते हैं और सरकार को केवल स्थानीय निकायों को मार्गदर्शन एवं निरीक्षण तक सीमित रहना चाहिए। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि ग्रामीण विकास के समस्त कार्य पंचायती राज संस्थाओं को सौंप दिए जाने चाहिए। इस समिति ने सरकार के सम्मुख निम्नलिखित सिफारिशें प्रस्तुत की-

त्रिस्तरीय ढाचा ग्राम, ब्लॉक और जिला स्तर पर निर्वाचित हो।

ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, प्रखण्ड स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद् की अनुशंसा की गई।

सरकार केवल नियंत्रण और मार्गदर्शन का कार्य करेगी। समस्त आर्थिक सहायता सरकार के माध्यम से प्राप्त होगी।

सफाई, जल आपूर्ति, बिजली, सड़कों का रख-रखाव, भूमि प्रबंधन, ग्राम पंचायतों के अनिवार्य कर्तव्य के रूप में निर्धारित किए जाने चाहिए।

बलवंत राय मेहता समिति ने जो प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, उस पर लोकतांत्रिक विकेद्रीकरण की स्पष्ट छाप थी, इसलिए मेहता को पंचायत राज व्यवस्था का वास्तुकार कहा जाता है। इस अवधारणा को अपनाने में राजस्थान प्रथम राज्य रहा। राजस्थान के जिले नागौर में 2 अक्टूबर 1959 को पं. नेहरू ने त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था का प्रारंभ किया। इसके पश्चात् आंध्र प्रदेश राज्य ने भी 1959 में इस योजना को लागू किया। आंध्रप्रदेश पहला राज्य बना, जहाँ पंचायती राज संस्थाओं के लिए चुनाव हुए कालान्तर में शनैःशनैः देश के अधिकांश राज्यों में यह योजना स्वीकार कर ली गईं।

अशोक मेहता समिति, 1977

1977 में केन्द्र में जनता पार्टी के नेतृत्व वाली सरकार सत्तारूढ़ हुई जिसने दिसबंर 1977 में अशोक मेहता को अध्यक्षता में समिति की गठन किया। इस समिति ने पंचायती राज की द्विवस्तरीय संरचना की सिफारिश की, जिसमें प्रथम स्तर जिला एवं द्वितीय स्तर मंडल होना चाहिए।

अशोक मेहता समिति ने देश में पंचायती राज व्यवस्था के आकार और स्थायित्व के लिए कई वित्तीय एवं प्रशासनिक सिफारिशें प्रस्तुत की, परंतु प्रतिवेदन के क्रियान्वयन से पूर्व ही जनता सरकार के पतन हो जाने के कारण अशोक मेहता समिति प्रतिवेदन राजनीतिक दृष्टि से स्वीकार नहीं किया गया। जी.वी.के. राव की अध्यक्षता मे एक अन्य समिति 1985 में गठित की गई। इस समिति ने स्पष्ट किया कि देश के विभिन्न भागों में चल रही विकास योजनाओं के केंद्रीय स्वरूप के कारण ये योजनाएँ गरीबी निवारण में सफल नहीं हुईं। इसका प्रमुख कारण इस प्रकार से निर्मित योजनाओं में जनता की भागीदारी नगण्य है और एक चार स्तरीय संरचना के प्रारूप की अनुशंसा की गई।

एल. एम. सिंघवी समिति, 1986

भारत सरकार ने 16 जून, 1986 को एल. एम. सिंघवी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया, जिसे पंचायती राज के पुर्नजीवन के संदर्भ में सार्थक प्रयास हेतु विचार पत्र प्रस्तुत करना था। समिति ने 5 नवम्बर, 1986 को अपना प्रारूप रखा, जिसमें पंचायती राज के विकास में बाधक तत्वों की विवेचना की गई। समिति का मानना था कि पंचायती राज संस्थाओं को संविधानिक मान्यता देकर ही सशक्त बनाया जा सकता है। साथ ही पंचायती राज न्यायाधिकरण को भी राज्यों में स्थापित करने की अनुशंसा की गई।

इनके अतिरिक्त 1988 में पी. के. थुगन, वी. एन. गाडगिल 1988 ने भी पंचायती राज संस्थाओं को संविधानिक दर्जा देने की सिफारिश की। 1989 में 64 वां संविधान संशोधन स्व. राजीव गाँधी के समय प्रस्तुत किया गया, जिसमें पंचायती राज व्यवस्था का त्रिस्तरीय ढाँचा, पंचायतों में महिलाओं को 33% प्रतिशत आरक्षण, पंचायतों का कार्यकाल 5 वर्ष एवं अपने क्षेत्र में विकास की योजनाओं के निर्माण की जिम्मेदारी पंचायतों को सौंपने जैसे प्रावधान रखे गए, परन्तु यह विधेयक राज्य सभा में पारित न होने के कारण कानून नहीं बन पाया। इस विधेयक में ग्राम सभा की चर्चा न होना, इसकी सबसे बड़ी कमी थी।

पंचायतों को संविधानिक दर्जा

राजीव गाँधी सरकार द्वारा तैयार 64 वें संविधान संशोधन विधेयक के परिवर्द्धित रूप को दिसम्बर 1992 में पी. वी. नरसिम्हा राव सरकार ने 73 वें संविधान संशोधन के रूप में संसद से पारित करवाया। यह

73वां संविधान अधिनियम 24 अप्रैल, 1993 से लागू किया गया। इस संशोधन द्वारा संविधान में एक नया भाग IX जोड़ा गया, जो कि पंचायतों के विषय में है। इसके द्वारा अनुच्छेद 243 में पंचायतों से संबंधित प्रावधान किए गए हैं जिसमें 16 अनुच्छेद हैं। संविधान में 73 वां संविधान संशोधन अधिनियम एक क्रांतिकारी परिवर्तन है, जिसके माध्यम से भारत में न केवल पंचायती राज व्यवस्था को पुनर्जीवित किया गया, वरन् उन्हें स्थायित्व भी दिया गया। इस अधिनियम की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इससे पंचायतों के गठन में एकरूपता आ सकेगी और इनके निर्वाचन नियमित रूप से हो सकेंगे। वास्तव में, विगत कुछ वर्षों में ऐसा ही हुआ है। 73 वें संविधान संशोधन द्वारा समाज में सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की स्थापना करने का मुख्य उद्देश्य निर्धारित किया गया था। इस अधिनियम के द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को जनसहभागी लोकतंत्र के रूप में स्थापित किया गया हैं। 73 वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायतों को न केवल प्रशासनिक अधिकार प्राप्त हुए अपितु वित्तीय संसाधनों की गारण्टी भी प्राप्त हुई, जिससे ग्रामीण विकास में सहायता प्राप्त हुई हैं। इस प्रकार यह नया संशोधित पंचायती राज कानून पूर्णतः लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण, चुनाव की अनिवार्यता, आनुपातिक प्रतिनिधित्व, स्थानों का आरक्षण, पंचायतों की अवधि, सदस्यता के लिए योग्यताएँ, पंचायतों की शक्तियाँ, वित्त आयोग का गठन, पंचायतों की करारोपण की शक्तियाँ इत्यादि की व्यवस्था करता है। पंचायती राज व्यवस्था का नवीन परिवर्तित रूप आरक्षण के माध्यम से विशेषकर महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में मील का पत्थर साबित हुआ।

73वां सवैधानिक संशोधन और महिला सशाक्तिकरण

73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 में न केवल पंचायती राज व्यवस्था को नई दिशा मिली है, बल्कि यह महिलाओं को पंचायतों में 33 प्रतिशत आरक्षण प्रदान कर उसकी सहभागिता भी सुनिश्चित करता है। यह सर्वविदित है कि संसद ने पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत तक आरक्षण की व्यवस्था को स्वीकृति दे दी है और कुछ राज्यों जैसे मध्यप्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़ आदि ने इस व्यवस्था को स्वीकार भी कर लिया है। महिलाओं के लिए आरक्षण की इस व्यवस्था से महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि हुई, जिससे उनकी स्थिति में सुधार हुआ है।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् यद्यपि संविधान द्वारा सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान किए गए थे, किसी भी नागरिक के प्रति उसके लिंग के आधार पर भेद-भाव नहीं किया जा सकता है। इसमें महिलाओं को वही अधिकार प्राप्त है जो कि पुरुष को प्राप्त होते हैं। लेकिन संविधान द्वारा दिए गए इन अधिकारों के बावजूद भी लोकतांत्रिक प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी ने उनके सशक्तिकरण पर प्रश्नचिह्न लगाए रखा। श्रीमति इन्दिरा गाँधी ने इस संदर्भ में कहा भी था कि भारतीय समाज का पितृसत्तात्मक स्वरूप महिलाओं की राजनीतिक क्षेत्र में स्वतंत्रता और समानता को प्रतिबंधित कर देता है।

समाज की आर्थिक और सामाजिक संरचना ने महिलाओं को सदैव हाशिए पर रखा है। फलतः कुछ ही महिलाएँ हैं, जो सार्वजनिक जीवन में सामाजिक कार्यों में भाग लेती हुई दृष्टिगत होती हैं। वर्तमान लोकतांत्रिक युग में जहाँ महिलाएँ समस्त शक्तियाँ प्राप्त कर महत्वपूर्ण पदों पर आसीन होते हुए अपना महत्वपूर्ण स्थान बना रही हैं, वहीं भारत में महिलाएँ आज भी आपसी पहचान और मूल अधिकारों के लिए संघर्षरत हैं। महिलाओं का यह संघर्ष तब तक निरंतर रहेगा, जब तक वे पुरुषों के समान निर्णय निर्माण संस्थाओं में अपनी सक्रिय एवं आत्मनिर्भर सहभागिता सुनिश्चित नही करेंगी। महिलाओं के सशक्तिकरण की प्रक्रिया में पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण के माध्यम से स्थान सुनिश्चित करना एक महत्वपूर्ण कदम रहा है।

पंचायती राज संस्थाओं में महिला नेतृत्व का विकास वर्तमान भारत का एक महत्वपूर्ण विचारणीय प्रश्न हैं। चूंकि 73 वां संविधानिक संशोधन महिलाओं की समानता, स्वतंत्रता और उनके प्रति न्याय का पक्षधर है, इसलिए यह संपूर्ण मानव समाज की आधी जनसंख्या के विकास और सशक्तिकरण से जुड़ा हुआ है। इस विधेयक के माध्यम से जमीनी स्तर पर महिलाओं को लिए एक तिहाई और कई राज्यों में 50 प्रतिशत स्थान आरक्षित होने से काफी बदलाव आया है। आज भारत में 12 लाख से अधिक निर्वाचित महिला प्रतिनिधि है; जो दुनिया के अन्य किसी भी देश में नहीं है। पंचायतों में महिलाओं का बढ़ता हुआ नेतृत्व भारतीय लोकतंत्र को और स्वयं महिलाओं को मजबूत बना रहा है। पंचायत स्तर पर इतनी बड़ी संख्या में महिलाओं की भागीदारी ने स्थानीय स्तर पर सामाजिक जीवन, उसकी चेतना और संस्कृति में अहम् बदलाव किए हैं। इन निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों ने सत्ता के जातीय, समाजिक और आर्थिक समीकरणों को बदल दिया है। ग्राम सभा से लेकर संसद तक महिलाओं की भागीदारी बढ़ती जा रही हैं, जिससे जहाँ उनकी आत्मनिर्भरता बढ़ी हैं, वहीं उनमें जागरूकता भी आई हैं। महिलाएँ स्वयं सहायता समूहों के द्वारा स्वरोजगार की दिशा में आगे बढ़ रही हैं और देश के राष्ट्रीय विकास में अपना सहयोग दे रही हैं।

73वां संविधानिक संशोधन ने महिलाओं को जमीनी स्तर पर चुनाव लड़ने और निर्वाचित होने के क्रांतिकारी अवसर प्रदान किए हैं।

पंचायती राज संस्थाओं में कई राज्यों में महिलाओं के प्रतिनिधित्व को बढ़ता हुआ देखा जा सकता हैं। 1985 तक उत्तर प्रदेश मे 00 प्रतिशत, हरियाणा, कर्नाटक और केरल में 01 प्रतिशत, गुजरात, मध्यप्रदेश, पंजाब, राजस्थान और प. बंगाल में 02 प्रतिशत महिला प्रतिनिधित्व था। यह प्रतिनिधित्व 2005 में बढ़कर 33.5 प्रतिशत से बढ़कर 43 प्रतिशत तक हो गया। राजस्थान राज्य में 2015 में हुए चुनाव के अंतर्गत जिला

प्रमुख पद पर 19 महिलाएँ निर्वाचित हुई। प्रधान के पद पर 125 महिलाएँ निर्वाचित हुई एवं संरपंच के पद पर 4824 महिलाएँ निर्वाचित हुई। इनमें से कई महिलाएँ तो आनारक्षित पद पर भी चुनकर आई हैं। तालिका में दर्शाया गया कि महिला प्रतिनिधित्व पंचायती राज की त्रिस्तरीय संरचना के शीर्षस्थ पदों पर निर्वाचित महिलाओं की ओर इंगित करता है। स्पष्ट है कि भारतीय संविधान के 73वें संविधानिक संशोधन में दिए गए महिला आरक्षण ने जमीनी स्तर पर महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी को व्यापक स्तर पर सुनिश्चित किया हैं। पंचायतों में महिला प्रतिनिधित्व में संख्यात्मक संदर्भों में निरंतर वृद्धि देखी जा सकती है, लेकिन यह वृद्धि यह नहीं प्रदर्शित करती कि वास्तव में महिलाएँ सशक्त हुई हैं या नहीं; क्योंकि हमारे देश की सामाजिक संरचना में कई सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं लिंग आधारित अवरोध हैं; जो महिलाओं की सार्थक भागीदारी एवं उनकी क्रियाशीलता को बाधित करते हैं। यद्यपि महिलाओं के सशक्तिकरण एवं विकास की यह प्रक्रिया धीमी है, लेकिन महिलाओं का इन संस्थाओं में उपस्थिति दर्ज कराना, अपनी बात रखना, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होना, उनके सशक्तिकरण की दिशा में निश्चित ही बढ़ते हुए कदम हैं।

महिलाएँ, जो कि जनसंख्या में लगभग आधी आबादी हैं। आज भी अपनी सार्थक और न्यायोचित आवाज उठाने के लिए संघर्षरत हैं। इसके पीछे भारतीय समाज के मूल में व्याप्त पितृसत्तात्मक व्यवस्था महत्वपूर्ण रूप से उतरदायी कारक है। इसके अतिरिक्त ऐसे कई संरचनात्मक, संस्थात्मक एवं सांस्कृतिक कारक हैं, जो महिला विकास को बाधित करते हैं। महिलाओं का आर्थिक रूप से आश्रित होना, उनकी पुरुषों पर निर्भरता बढ़ाता है। साथ ही जैविक कारक भी महिलाओं के विकास को बाधा पहुँचाते हैं। एक सामान्य धारणा है कि महिलाओं का प्रमुख कार्य पारंपरिक रूप से घरेलू कार्य जैसे भोजन पकाना, बच्चों की देख-भाल एवं अन्य घरेलू कार्य करना है, ऐसे में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता को सकारात्मक रूप से पूर्ण निष्ठा के साथ संपादित करना एक अहम् चुनौती है। स्थानीय स्तर पर महिलाओं के लिए पारंपरिक रीति-रिवाज एवं धारणाएँ एक बाधा के रूप में कार्य करती हैं। महिलाएँ परिवार, बच्चे और घर तक ही सीमित हो कर रह जाती हैं और सार्वजनिक क्षेत्र पुरुषों के लिए एकाधिकृत हो जाते हैं। 'मनुस्मृति' में कहा गया है, "महिलाएँ बाल्यावस्था में पिता, युवावस्था में पति और पति की मृत्यु के पश्चात् पुत्र के अधीन रहती है।" इससे स्पष्ट है कि महिलाएँ पुरुषों के समान कभी भी स्वतंत्र नही हो पाती हैं। भारतीय समाज की परंपरावादी सोच आज भी इसी अवधारणा पर आधारित हैं। यदि कोई महिला समाज की इस पारंपरिक सोच को तोड़कर आरक्षण व्यवस्था का लाभ लेते हुए निर्वाचित हो भी जाती हैं, तो उसकी क्षमताओं को कम ही आंका जाता है। यदा-कदा ही किसी महिला की क्षमताओं में विश्वास करके उसे महत्वपूर्ण निर्णय निर्माण संस्थाओं में उतरदायित्व सौंपे जाते हैं। महिलाएँ स्वयं भी अपने उतरदायित्व एवं अधिकारों के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक नहीं हैं। इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि 73वें संविधानिक संशोधन ने महिलाओं को राजनीतिक प्रक्रिया में प्रतिनिधित्व के

महत्वपूर्ण अवसर प्रदान किए हैं, परंतु जब प्रश्न उनकी निर्णय निर्माण में भागीदारी का आता है, तब अधिकांशतया यह देखा गया है कि इन महिला प्रतिनिधियों के परिवार के कोई पुरुष सदस्य अथवा 'सरपंच पति' ही सक्रिय भूमिका निभाते हैं। ऐसे में तृणमूल स्तर पर महिला प्रतिनिधि नीति निर्माण में अपनी स्पष्ट भागीदारी नहीं निभा पाती हैं। इसका प्रमुख कारण पितृसत्तात्मक सोच वाले परंपरागत समाज में महिलाओं के शिक्षा स्तर में कमी, घरेलू कार्यों में उनकी व्यस्तता, बच्चों के पालन पोषण की जिम्मेदारी, रूढ़िगत परंपराएँ, आर्थिक पराधीनता, राजनीतिक गतिविधियों को नकारात्मक रूप से बाधित करती हैं।

कोई भी राष्ट्र तभी सशक्त और विकसित होगा, जब उस राष्ट्र की आधी आबादी, महिलाएँ सशक्त होगी। यह सशक्तिकरण न केवल राजनीतिक अपितु सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक क्षेत्र में भी आवश्यक है। 73 वें संविधानिक संशोधन ने महिलाओं की राजनीतिक स्तर पर भागीदारी तो सुनिश्चित की है, लेकिन यह भागीदारी तभी सार्थक होगी, जब महिलाएँ निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में स्वयं आगे रहगी। इसी से महिलाओं की भूमिका में संख्यात्मक भागीदारी में वृद्धि होगी। महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया को मजबूत करने की दिशा में निम्नलिखित सुझावों को कार्यरूप दिया जाना चाहिए-

शिक्षा एवं जागरूकता परस्पर अंतसंबंधित हैं। अतः, महिलाओं को शिक्षित करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है, जिससे कि वे अपने अधिकार एवं उतरदायित्वों के प्रति जागरूक बनें।

महिलाओं के लिए एक सकारात्मक वातावरण का निर्माण उनके सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण आवश्यकता है, जिससे कि वे उनके लिए उपलब्ध अवसरों का स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग कर अपनी क्षमताओं को विस्तार दे सकें।

भारतीय समाज की परंपरागत सोच को परिवर्तित करना होगा। महिलाओं की क्षमताओं का सही आकलन कर उनकी प्रबंधन एवं निर्णय क्षमता में विश्वास की मानसिकता को बढ़ावा देना होगा।

महिलाओं की स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का निराकरण आवश्यक है; क्योंकि कोई स्वस्थ महिला ही स्वस्थ मन एवं स्वस्थ तन के साथ समाज के विकास में अपना सकारात्मक योगदान देने के साथ स्वयं का विकास कर सकती हैं।

आरक्षण से महिलाओं की राजनीतिक पायदान पर उपस्थिति तो अंकित हो चुकी है, लेकिन पर्याप्त प्रशिक्षण एवं जानकारी के अभाव में वे स्वयं ही पुरुषों पर निर्भर हो जाती है। अतः, इसके लिए निर्वाचित होते ही इन महिलाओं के लिए कार्यप्रणाली की जानकारी देते हुए अनिवार्य प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए।

गैर सरकारी संगठन महिला जागरूकता की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं, जिससे कि महिलाएँ अपने अधिकारों एवं उतरदायित्व के प्रति जागरूक बनें।

चूँकि महिला प्रतिनिधियों की घरेलू जिम्मेदारियाँ अधिक होती हैं, जिससे वे संपूर्ण मनोयोग से काम करने हेतु समय नहीं निकाल पाती हैं। ऐसे में सरकार को कुछ इस प्रकार के प्रयास करने चाहिए, जिससे कि महिलाओं को पुरुषों के समान कार्य निष्पादन हेतु पर्याप्त समय मिल सक। जैसे डे केयर सेण्टर्स, ओल्ड एज होम, नर्सरी की व्यवस्थाएँ आदि।

गरीबी, अशिक्षा, आर्थिक पराधीनता, बेराजगारी से महिलाओं की मुक्ति हेतु सरकार द्वारा ऐसे कार्यक्रम चलाएँ जाने चाहिए, जिससे कि महिलाओं को सरकारी योजनाओं की जानकारी मिल सके। वे इनका पर्याप्त लाभ उठा सकें और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो सकें।

सरकार को महिला सुरक्षा की दिशा में ठोस कदम उठाने चाहिए, जिससे कि वे बिना किसी भय अथवा शोषण के दक्षतापूर्वक स्वतंत्र रूप से कार्य संचालन कर सकें।

इस प्रकार भारतीय संविधान के 73वें संशोधन ने तृणमल स्तर पर महिला भागीदारी को सुनिश्चित किया है। इस संशोधन ने महिलाओं को घर की चार दीवारी से बाहर निकालकर पंचायती राज संस्थाओं में भागीदारी के पर्याप्त अवसर दिए हैं, जिससे कि वे स्वयं कि क्षमताओं एवं दक्षताओं को पहचान पाने में सक्षम हुई है। एक तिहाई आरक्षण ने महिलाओं की उपस्थिति अवश्य बढ़ाई है, लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि यह भागीदारी गुणात्मक रूप में सार्थक बन सकें, तभी सही अर्थों में महिलाएँ सशक्त होंगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

अरूण चतुर्वेदी, मनोज राजगुरू, तृणमूल स्तर का विकासः मुद्दे एवं चनौतियां, हिमाशु पब्लिकेशन, उदयपुर, 2016.

तपन बिस्वाल, भारतीय राजव्यवस्था और शासन, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्रा. लि., तेलंगाना, 2017.

सुरेन्द्र कटारिया, ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज, आर.बी. एस. ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2003.

गिरवर सिंह राठौड़, भारत में पंचायती राज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर.

***

16.मानवाधिकारों की दार्शनिक और ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि व विकास: भारतीय संविधानिक परिप्रेक्ष्य और नारी-अधिकार दृष्टिकोण सहित

डॉ. नावेद जमाल*

डॉ. संजियो कुमार सिंह**

मानव अधिकार, किसी व्यक्ति के गरिमापूर्ण जीवन के लिए आवश्यक वे दावे है जो मनुष्य के अस्तित्वपरक या जन्मसिद्ध अधिकार के रूप में जाने जाते है। आज इन अधिकारों के लिए दुनिया भर में व्यापक स्वीकृति अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय औपचारिक-अनौपचारिक इकाईओं तथा सभ्य समाज और आम जन द्वारा दी गई है। आज हम मानवाधिकरों को जिस रूप में देख रहे है इसके पीछे हजारों वर्षों की दार्शनिक परम्परा रही है। प्राचीन दर्शन और मूल्यों तथा मानव अधिकारों की प्राप्ति के लिए मानव सभ्यता द्वारा किए गए संघर्ष और अधिकारों के लिए की गई क्रान्तिओं ने मानव अधिकारों को मूर्त रूप देने में अपना योगदान दिया है। पश्चिमी देशों में हुए दर्शनों और मानवाधिकार विकास की घटनाओं के साथ-साथ तृतीय विश्व के देशों में भी ऐसे बहुत से दार्शनिक परम्पराएँ और संघर्ष की घटनाए रही है जिसने मानवाधिकार के विकास में अतुलनीय योगदान दिए है परन्तु इन्हे व्यापक पश्चिमी प्रभाव और शिक्षा पद्धति के पूर्वाग्रहों के कारण झुटला दिए जाता है। भारत में भी मानवाधिकार एक लम्बी दार्शनिक परंपरा और स्वतंत्रता संघर्ष से होकर गुजरा है जिसके दौरान एक धीमी प्रक्रियाओं में भारतीयों को अधिकार प्राप्त हो सकें हैं। भारत में इन अधिकारों को संविधानिक संरक्षण प्राप्त है। मानवाधिकारों की विभिन्न उपलब्धिओं को समेकित करना और उनके सार्वभौमिक स्वीकृति दिलाने का कार्य संयुक्त राष्ट्र संघ ने पूरा किया। सार्वभौमिक अधिकारों में आज दर्ज 30 अनुच्छेद भी अचानक जोड़े गए नहीं है बल्कि धीरे धीरे इनका विकास हुआ है। मानवाधिकारों के इस विकास को अधिकारों की तीन पीढ़िओं के रूप में जाना जाता है। विश्व स्तर पर मानवाधिकारों को संस्थागत रूप से पाने के लिए कई प्रयास किए गए है जैसे 1948 की घोषणा के बाद भी यु एन समय समय पर वभिन्न सम्मेलनों द्वारा मानवाधिकारों लागू कराने का प्रयास करता रहा है। इन सब राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय प्रयासों के बावजूद दुनिया भर में आज भी मानवाधिकारों के

* **एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली**

** **शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली**

उल्लंघनों की घटनाए आ रही हैं। इन्हे रोकने के लिए और मानवाधिकारों के प्रोत्साहन तथा इन्हे जमीनी स्तर पर आम लोगों को सुलभ कराने के लिए विश्व स्तर और विभिन्न देशों में संस्थागत व्यवस्थाओं से अलग बहुत से गैर-सरकारी संगठन कार्य कर रहे है। देश सहित दुनिया भर में जो मानवाधिकारों का उल्लंघन सबसे अधिक महिलाओं और बच्चों के अधिकारों के साथ ही रहा है। वास्तव में इनके अधिकार अधिक भेद्य इसलिए है क्योंकि इनके अधिकारों का उल्लंघन राज्य और समुदाय के साथ साथ परिवार जैसे सुरक्षित माने जाने वाले सामाजिक संस्था के भीतर भी उल्लंघित होते है। मानव-अधिकार के समक्ष आज भी गरीबी और वैश्विक असमानता जैसी मुख्य चुनौती बनी हुई है। मानवाधिकारों की व्यापक प्रसार और प्राप्ति के लिए इन कदमों के साथ साथ सामाजिक वातावरण पर भी ध्यान देना होगा। मानवाधिकार स्वयं में प्रगतिशील है और गरिमापूर्ण मानव जीवन के लिए इनकी रक्षा और विकास सतत मानवीय प्रयास पर निर्भर हैं।

मानव अधिकार, किसी व्यक्ति के गरिमापूर्ण जीवन के लिए आवश्यक वे दावे है जो मनुष्य के अस्तित्वपरक या जन्मसिद्ध अधिकार के रूप में जाने जाते है।मानव अधिकार सभी व्यक्तिओं के लिए है चाहे उनकी जो भी राष्ट्रीयता, जन्मस्थान, लिंग, सजातीयता, धर्म, रंग, भाषा और स्थिति क्यों न हो। सम्पूर्ण मानव-जाती मानवअधिकारों को धारण करने की दृष्टि से बिना किसी भेदभाव के समान मानी जाती है। (ओ. एच. सी. एच. आर.)।

मानव अधिकार सभी व्यक्तियों द्वारा समान रूप से, सार्वभौमिक और हमेशा के लिए धारण किए माने जाते हैं।मानवाधिकार सार्वभौमिक हैं, वे दुनिया में हर जगह सभी मनुष्यों के लिए समान होते हैं। किसी व्यक्ति के पास मानव अधिकार इसलिए नहीं है क्योंकि की वो किसी भी देश के नागरिक हैं, बल्कि इसलिए है क्योंकि वो मानव परिवार के सदस्य हैं। मानवाधिकार न टाले जा सकने वाले अधिकार होते है। जीवित रहने तक ये अधिकार कायम माने जाते है। मानव अधिकार अविभाजित हैं, इन्हे 'कम महत्वपूर्ण' है या 'गैर जरूरी' बताकर वापस नहीं लिए जा सकता। मानव अधिकार एक दूसरे पर निर्भर हैंऔर बहुवचन या बहुत से अधिकारों के समुदाय के रूप में माने जाते है। एक साथ मानव अधिकार एक पूरक रूपरेखा तैयार करते हैं (ओ. एच. सी. एच. आर., ह्यूमन राइट्स :अ बेसिक हैंडबुक फॉर यु एन स्टाफ)।मानव अधिकारों को बुनियादी मानव की जरूरतों को पूरा करना के बुनियादी मानक के रूप में स्थापित किया गया है जिनके बिना लोग गरिमा पूर्ण जीवन नहीं जी सकते है (यूरोपीय परिषद के लोकतंत्र महानिदेशालय के भीतर कार्यरत डेमोक्रेटिक नागरिकता और सहभागिता निदेशालय की रिपोर्ट)।

आज मानव अधिकार की प्राप्ति और इनकी रक्षा के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर और राष्ट्रों तथा सभ्य समाजों द्वारा कारगर प्रयास किए जा रहे है।इन अधिकारों की रक्षा के लिए विभिन्न स्तरों पर

संस्थागत के साथ -साथ व्यावहारिक और जमीनी कार्य किए जा रहे है। हालां कि आज भी विश्व भर में मानवाधिकारों की प्राप्ति पूरी तरह से संभव नहीं हो पाई है, परन्तु इन अधिकारों के लिए दुनिया भर में व्यापक स्वीकृति अंतराष्ट्रीय और राष्ट्रीय औपचारिक-अनौपचारिक इकाईओं तथा सभ्य समाज और आम जन द्वारा दी गई है।जो मानव अधिकार के दावों और और उसकी प्राप्ति की दिशा में एक उपलब्धि है।

परन्तु आज हम मानवाधिकरों को जिस रूप में देख रहे है इसके पीछे हजारों वर्षों की दार्शनिक परम्परा रही है। वास्तव में प्राचीन धार्मिक पुस्तकों में ऐसी अनेक अवधारणाएँ है जिन्हें मानव के अधिकारों का समर्थन करते देखा जा सकता है। लेकिन प्राचीन आदर्शों और आज के मानव अधिकारों के दर्शन में एक मौलिक अंतर है। जहाँ प्राचीन आदर्शों का आधार ईश्वर है वहीं आज मानव अधिकार का आधार मानव स्वयं है, कहने का अर्थ है, मानव को ये अधिकार उसके जन्म के साथ ही प्राप्त माने जाते है। प्राचीन आदर्श जो मानव को तत्व मीमांसीय तर्कों के आधार पर अधिकार प्रदान करते थे ज्यादातर धर्म और आस्था की शक्ति पर आधारित थे, वहीं आज के मानव अधिकार अपना अस्तित्व प्राकृतिक अधिकार के सिद्धांत पर आधारित करते है। आज के अधिकार लागू किए जाने के लिए कानून की शक्ति पर आधारित है।

प्राचीन आदर्शों के साथ समस्या यह थी कि यदि कोई आस्थावान होने से मना करता है तो या तो उसके अधिकार का उल्लंघन संभव था या वह खुद ऐसे दूसरों के अधिकारों का उल्लंघन कर सकता था जो आस्था पर आधारित थे। जैसे धार्मिकदर्शनों में व्यक्ति को ईश्वर की संतानों या बन्दों के रूप में देखा जाता था और इसी अर्थ में उन्हें जीवन और समानता जैसे अधिकारों की प्राप्ति संभव हो पाती थी। परन्तु आज मानव के अधिकारों का आधार कोई और नहीं बल्कि स्वयं मानव को माना जाता है जिसका अर्थ है की आज अधिकारों की दृष्टि से केंद्र में ईश्वर नहीं बल्कि खुद मानव है। आज ये अधिकार व्यक्ति को उसके अस्तित्व और गरिमा के रूप में प्राप्त है न कि किसी अन्य शर्त पर आधारित।

आज अधिकारों को लागू करने के लिए कानून का सहारा लिया जाता है और कानून से पलायन संभव नहीं है। आज राष्ट्र-राज्यों में या तो क़ानून को माना जा सकता है या उनका उल्लंघन किया जा सकता है, पलायन नहीं। ईश्वर के आस्था और विश्वास का विषय होने के नाते इस पर आधारित अधिकार भी ईश्वर की अवधारणाओं के बदलने के अनुसार बदल जाते थे पर आज इनको एक सार्वभौमिक स्वीकृति मिल रही है। दूसरे आज अधिकारों को कानूनों और संविधानों पर आधारित करने से इन्हे लागू करने और न प्राप्त होने पर इन्हे लागू करवाने के लिए अपने अधिकारों का दावा पेश करने के लिए ठोस संस्थागत आधार प्राप्त हुआ है।

इसलिए बहुत से प्राचीन आदर्श आज की मूल्य व्यवस्था से मेल नहीं खाते है परन्तु इसका यह

मतलब नहीं है कि प्राचीन मानव-अधिकारपरक आदर्शों का आज के मानवाधिकारों के विकास में कोई योगदान नहीं है। बल्कि इन आदर्शों ने मानव सभ्यता को इन्हे प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया और एक विकास क्रम में हम यहाँ तक पहुंच पाए। भले ही ये आदर्श ईश्वर आधारित थे परन्तु इन्होने पहली बार मानवीय गरिमा को प्रकट किया और मानव जीवन के लिए आवश्यक कुछ शर्तों को स्वीकार किया। जैसे अद्वैत वेदांत ने सभी व्यक्तिओं को बह्म या ईश्वर तुल्य बताकर मानवीय गरिमा को उचित स्थान दिया इसी प्रकार इस्लाम में सबको खुदा के बन्दों के रूप में समान माना गया (त्यागी, 1981)।

दूसरे यह भी कि ऐसा नहीं है कि क़ानूनी स्तर अधिकार प्रदान करने का प्रयास आधुनिक युग से पहले नहीं हुआ है। भारत में बौद्ध-धर्म के उदय से पुरानी मूल्य व्यवस्था के स्थान पर नई व्यवस्था आई जिसने पुराणों और ईश्वर आधारित राजनीतिव्यवस्था के स्थान पर कानून व्यस्था आधारित राजनीती की शुरुआत की क्योंकि बौद्ध पुराणों का विरोध करते थे और ईश्वर के नाम पर मौन थे। इसलिए पहली बार संविदा आधारित राज्य का दर्शन सामने आया और प्राकृतिक क़ानून और लोकतंत्र जैसे मूल्यों की शुरुआत हुई(सिंह, 1986) जो कालांतर में पुनः धूमिल हो गई। इसी दौर में अशोक के शासन काल में लिखित कानूनों में व्यक्तियों के कुछ अधिकार का उल्लेख मिलता है (त्यागी, 1981)।

हालांकि कानूनों की प्रकृति में भी समय के साथ एक बदलाव आया है - आज ज्यादातर क़ानून किसी आस्था नहीं बल्कि मानवीय चेतना और प्रयास के विषय होते है। प्राचीन और आधुनिक मानव के अधिकार के आदर्शों में एक समानता यह है कि दोनों ही नैतिक बल के रूप काम कार्य करते हैं और सत्ता तथा प्राधिकारों पर अधिकार देने के लिए दबाव डालते है।

मानवाधिकारों की दार्शनिकऔर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्राचीनदर्शन और मूल्यों से अलग मानव अधिकारों की प्राप्ति में मानव सभ्यता के संघर्ष और अधिकारों के लिए की गई क्रान्तिओं ने मानव अधिकारों को मूर्त रूप देने में असल योगदान दिया है (निकल, 2013)। वास्तव में इस संघर्ष से ही आज के कई अधिकारों के का जन्म हुआ और वे धरातल पर उतर कर आम लोगों को सुलभ हो पाए हैं।

आधुनिक युग के मानवाधिकारों के विकास-क्रम में पहली ठोस उपलब्धि इंग्लिश चार्टर-"मैग्ना-कार्टा" के रूप में सामने आया। हालांकी यह पोप और तात्कालीन ब्रिटिश राजा के बीच की लड़ाई के कारण सामने आया परन्तु इसमें पहली बार राजा को भी कानून से बांधा गया। इसमें पहली बार गैर-कानूनी कारावास के खिलाफ अपील की सुनवाई जैसे अधिकार जनता को प्राप्त हुए। मैग्ना-कार्टा आगे चल कर ब्रिटेन में आये अधिकारों के प्रपत्र(बिल ऑफ़ राइट्स)का आधार बना जो वहां 1688 की गौरव पूर्ण क्रांति

के बाद 1689 में आया। अधिकारों के इस प्रपत्र ने लोगों के कुछ मूल नागरिक अधिकारों को निर्धारित किए।

बिल ऑफ़ राइट्स में ब्रिटिश राजा के अधिकारों को काफी सीमित किया गया जो जनता के बढ़ते अधिकारों और लोकतंत्र के तरफ बढ़ते कदम का सूचक था। इसने पहली बार व्यक्तियों को असामान्य सजा देने का विरोध किया गया जो अधिकारों की दिशा में बड़ी उपलब्धि बनी।

वास्तव में ब्रिटिश गौरवपूर्ण क्रांति यूरोप में हुए पुनर्जागरण और बौद्धिक उदय से बहुत प्रभावित थी (ईशाय, 2004)। गौरवपूर्ण क्रांति, जो एक रक्तहीन क्रांति थी, में जॉन लॉक के दर्शन का गहरा प्रभाव था। लॉक ने संविदा आधारित राज्य-व्यवस्था और प्राकृतिक अधिकारों का सिद्धांत सामने रखा था। उन्होंने जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति को व्यक्ति के जन्मसिद्ध अधिकार के रूप में मान्यता दी थी (लॉक,1689)।

इसी तरह फ्रेंच विचारक मांटेस्क्यू की स्वतंत्रता के सिद्धांत और 1765 से 1783 तक चलने वाले अमेरिकन क्रांति ने मानव अधिकार के रूप में स्वतंत्रता को स्थापित किया। जिसे बाद में ब्रिटिश विचारक जे. एस. मिल ने आगे बढ़ाते हुआ पराकाष्ठा पर पहुंचाया और स्वतंत्रता में अभियक्ति की स्वतंत्रता जैसे आयामों को सशक्त रूप से जोड़ा।

1789से 1799 तक चली फ्रांस की क्रांति ने समानता के आदर्श को मानव अधिकारों के इतिहास में जोड़ दिया। फ्रांस की क्रांति में जीन जैक्वेस रूसो के दर्शन ने वैचारिक आधारप्रदान किया और सब की समानता का आदर्श सामने रखा। इसके बाद 18 वीं और9 1 वीं शताब्दियों के दौरान थॉमस पेन, जॉन स्टुअर्ट मिल और जीडब्ल्यू.एफ .हेगेल जैसे दार्शनिकों द्वारा मानवाधिकार के दर्शन के क्षेत्र में विकास हुआ।

इसी क्रम में इमैनुअल कांट के दर्शन ने आधुनिक मानवधिकारों को सशक्त आधार प्रदान किया। कांट ने ही पहली बार स्थापित किया कि मानव स्वयं में साध्य है, कहने का अर्थ है कि, मानव किसी रूप में किसी आदर्श, संस्था, धर्म या व्यक्ति के लिए साधन नहीं है बल्कि मानव स्वयं में साध्य है। कांट मानते हैं कि आदर्श, संस्था या कोई धर्म व्यक्ति के लिए बने है व्यक्ति इनके लिए नहीं। कांट ने लॉक के प्राकृतिक अधिकार को आधार बना कर यह स्थापित किया कि मनुष्य अपने जन्म के साथ ही मानवीय गरिमा का अधिकार रखता है और इसलिए अधिकार उसे मनुष्य होने नाते मिलना चाहिए न की किसी अन्य कारण से। बाद में कई राष्ट्र-राज्यों ने इस आदर्श को अपने दंड-नीति का आधार बनाया।

मानवाधिकारों के विकास क्रम में कार्ल-मार्क्स के चिंतन ने मानव के अधिकारों में एक नया अध्याय जोड़ा जो स्वतंत्रता, समानता और लोकतंत्र के "अधिकारों के सेट "या समुदाय से अलग था।

मार्क्स ने, इस सेट से अलग, काम के अधिकार, सामान काम के लिए सामान वेतन का अधिकार, आराम का अधिकार और साम्यता के अधिकार जैसे नए अधिकारों को जोड़ा। इसी चिंतन का परिणाम था कि रूस की 1917 की क्रांति ने पहली बार उद्योगों में सबके मालिकाना हक़, स्त्री-पुरुष को बराबर मजदूरी और दोनों लिंगो के व्यक्तिओं के वोट के अधिकार जैसे अधिकारों को स्थापित किया। 1919 में अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन और नियत किए गए काम के घंटे इस चिंतन द्वारा मानवाधिकारों के लिए एक बड़ी देंन है।

मानवाधिकारों का उत्तर-उपनिवेशवादी परिप्रेक्ष्य

पश्चिमी देशों में हुए इन दर्शनों और मानवाधिकार विकास की घटनाओं से अलग तृतीय विश्व के देशों में भी ऐसे बहुत से दार्शनिक परम्पराएँ और संघर्ष की घटनाए रही है जिसने मानवाधिकार के विकास में अतुलनीय योगदान दिए है परन्तु इन्हे व्यापक पश्चिमीप्रभाव और शिक्षा पद्धति के पूर्वाग्रहों के कारण झुटला दिए जाता है। अक्सर ही मानवाधिकारों को पश्चिमी चश्मे से देखने की कोशिश की जाती है और इसे पश्चिमी धार्मिक पुनर्जागरण और बौद्धिक क्रांति तक ही सीमित कर दिए जाता है।

वस्तुतः, तृतीय विश्व के देशों ने उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए लम्बी लड़ाईयां लड़ी हैं और इन देशों में आयी मानवाधिकार की सच्चाई इन्ही संघर्षों से होकर जन्मी है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आजादी की लड़ाई लड़ रहे बहुत से नेताओं ने पश्चिमी विचारों से प्रेरणा प्राप्त की परन्तु साथ-साथ ही साथ महात्मा गाँधी, नेल्सन मंडेला, क्वामे-न्क्रूमा आदि ने अपने देश की परिस्थितियों के अनुसार अपने मौलिक विचारों का भी प्रतिपादन किया।

तृतीय विश्व के देश उस उपनिवेशवाद से जूझ रहे थे जो स्वयं में अमानवीय था, इसके बावजूद की सभी क्रान्तिओं के विचारों का प्रतिपादन तब तक हो चूका था पश्चिमी देश तृतीय विश्व के देशों के व्यक्तियों को स्वतंत्रता देने के लिए सहमत नहीं थे। और वैसे भी तृतीय विश्व के देश मानव-अधिकारों की बजाय" मानव होने के लिए आवश्यक अधिकारों " की आवश्यकता से जूझ रहे है (बक्सी, 1987)। इस प्रकार तृतीय विश्व के देशों के व्यक्तिओं ने जो भी अधिकार प्राप्त किए वे खैरात में नहीं मिले बल्कि इसके लिए उन्हें लम्बे स्वतंत्रता संघर्ष करने पड़े बल्कि कई देशों में तो आजादी की लड़ाई के बाद अपनी सरकारों से भी अधिकारों की लड़ाई लोगों को लड़नी पड़ी।वास्तव में किसी भी देश में जो अधिकार लोगों को मिलतें है वो उसमे उस देश की चिंतन शैली, विचारकों और स्थानीय परिस्थिति के अनुसार किए गए संघर्षों पर निर्भर करता है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकारों का उदभव

भारत में भी मानवाधिकार एक लम्बी दार्शनिक परंपरा और स्वतंत्रता संघर्ष से होकर गुजरा है

जिसके दौरान एक धीमी प्रक्रिआ में भारतीयों को अधिकार प्राप्त हो सकें हैं। हालांकी भारत में प्राचीन दार्शनिक परंपरा में सर्वे भवन्ति सुखिनः, सर्वे भवन्तु निरामयाः जैसे आदर्श, लोकतांत्रिक मूल्य तथा जीवन और संपत्ति के अधिकारों का वर्णन मिलता है परन्तु हम जानते है की यहाँ इन्हे व्यापक और संस्थागत रूप में लागू नहीं किया जा सका। भारतीय समाजों में जातिऔर और लिंग आधारित बहुत से विशेषाधिकार रहे हैं। वस्तुतः विशेषाधिकार मानवधिकारों के विरोधी होते है और दोनों साथ साथ नहीं चल सकते। भारत में राजा राम मोहन राय, ज्योतिबा फूले, विरसा मुंडा, महात्मा गाँधी और बी .आर .अम्बेडकर जैसे नेताओं और चिंतकों ने अलग अलग क्षेत्रों में अपनी लड़ाइयां लड़ी और विभिन्न समुदायों तथा लोगों के लिए मानवाधिकारों को सुरक्षित किया है। हमारे स्वंत्रता संग्राम में स्वतंत्रता के साथ साथ सामाजिक न्याय के लिए भी लम्बी लड़ाई लड़ी गई है और तब जाकर हमें जो अधिकार प्राप्त है वो हमें मिल सका है।

सार्वभौमिक मानवाधिकारों की घोषणा

इस प्रकार, विभिन्न राष्ट्रों में एक लम्बी प्रक्रिया के बाद प्राप्त किए गए मानवाधिकारों की विभिन्न उपलब्धिओं को समेकित करना और उनके सार्वभौमिक स्वीकृति दिलाने का कार्य मानव सभ्यता के लिए स्वयं में एक चुनौती रही थी क्योंकि कोई इसके लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक सर्वसम्मत संस्था का होना आवश्यक था। इसी आवश्यकता को संयुक्त राष्ट्र संघ) यु एन(, जो 1945 में बना, ने पूरा किया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बना यु एन एक बहु-स्तरीय और बहु-शाखित संस्था है। मानवाधिकारों की दिशा में यु एन की महासभा ने एक बड़ी पहल 10 दिसंबर 1948 में ही जब उसने मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा प्रपत्र सदस्य देशों की सहमति से जारी किया।

आज इस घोषणा में एक व्यक्ति के अधिकारों की पुष्टि करने वाले तीस अनुच्छेद हैं। अधिकारों का वर्णन करने वाले ये अनुच्छेद खुद में कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं हैं परन्तु यु एन इन अधिकाओं को अंतरराष्ट्रीय संधियों, आर्थिक साधनों व उपायों, क्षेत्रीय मानव अधिकारों के साधन, राष्ट्रीय संविधान और अन्य कानूनों में विस्तारित कराने का प्रयास करता है ताकि इसे प्रत्येक व्यक्ति को सुलभ कराया जा सके। मानवता के इस अंतरराष्ट्रीय विधेयक को तैयार करने के लिए इन अनुच्छेदों को घोषणा प्रपत्र में शामिल करने की प्रक्रिया 1966 तक चली और 1976 में यह सार्वभौमिक घोषणा प्रभाव में आई जब पर्याप्त संख्या में सदस्य देशों ने उन्हें स्वीकृति दे दी।

आज मानवाधिकारों की यह सार्वभौमिक घोषणा मानव सभ्यता के लिए उपलब्धि के रूप में जाने जाते है। ये घोषणा प्रपत्र दुनिया भर में लोगों को उनके अधिकारों के लिए नैतिक समर्थन प्रदान करता है। नैतिक अधिकारों के साथ साथ यह घोषणा अपनी व्यापक मान्यता और सदस्य देशों की दबावकारी

समर्थन के आधार पर विभिन्न देशों की सरकारों पर दबाव बना पाता है की वे इन्हे लागू करें और ऐसे किसी अधिकार का उल्लंघन न होने दें। यु एन इन अधिकारों के लिए कानून और संविधान समर्थित प्रावधानों की वकालत करता है ताकि इन्हे संस्थागत रूप में प्राप्त किया जा सके।

सार्वभौमिक अधिकारों में आज दर्ज 30 अनुच्छेद भी अचानक जोड़े गए नहीं है बल्कि धीरे धीरे इनका विकास हुआ है। मानवाधिकारों के इस विकास को अधिकारों की तीन पीढ़िओं के रूप में जाना जाता है।

तीन पीढ़ियों के मानवाधिकारों का एकीकरण

तीन पीढ़ियों में मानव अधिकारों का विभाजन प्रारंभिक रूप से 1979 में चेक ज्यूरिस्ट केरेल वसाक द्वारा स्ट्रासबर्ग में अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थान में प्रस्तावित किया गया था (वासक, 1977)।

प्रथम पीढ़ी के मानवाधिकार राजनीतिक जीवन में स्वतंत्रता और भागीदारी के साथ सम्बंधित हैं। ये मौलिक रूप से नागरिक और राजनीतिक हैं। ये राज्य की अधिकता से व्यक्ति की रक्षा के लिए नकारात्मक रूप से कार्य करते हैं अर्थात राज्य के विरूद्ध प्राप्त कहे जाते है। पहले पीढ़ी के अधिकारों में जो महत्व पूर्ण अधिकार शामिल हैं वे हैं - जीवन का अधिकार, कानून के समक्ष समानता, भाषण की स्वतंत्रता, निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार, धर्म की स्वतंत्रता और मतदान का अधिकार।इन्हे नीला अधिकार भी कहा जाता है। ये अधिकार 1215 के मैग्ना कार्टा 1969 में अंग्रेजी विधेयक नागरिक अधिकार प्रपत्र, 18 वीं सदी में नागरिक अधिकारों के प्रपत्र, संयुक्त राज्य अमेरिका और फ्रांस की क्रांति से निकल कर सामने आये है। उन्हें सार्वभौम घोषणा में अनुच्छेद 3 से 21 में और बाद में 1966 में नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय अभिसमय में स्थान दिया गया।

द्वितीय-पीढ़ी के मानव अधिकार समानता से संबंधित हैं। इन अधिकारों ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सरकारों द्वारा मान्यता प्राप्त करना शुरू किया था। ये मूल रूप से आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रकृति के हैं। ये समाज के विभिन्न सदस्यों के लिए समान शर्तों और उपचार की गारंटी देते हैं। इन अधिकारों में भोजन, आवास और स्वास्थ्य देखभाल के अधिकार के साथ -साथ सामाजिक सुरक्षा और अनुकूल स्थिति में रोजगार लाभ का अधिकार शामिल है। प्रथम-पीढ़ी के अधिकारों की तरह, वे मानव अधिकारों के सार्वभौमिक घोषणाओं में अनुच्छेद 22 से 28 तक शामिल किए गए हैं। बाद में इन्हे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय अभिसमय में भी शामिल किया गया। इन अधिकारों को लाल अधिकार भी कहा जाता है क्योंकि इन अधिकारों के विकास में कल्याणकारी राज्य के दर्शन के साथ मार्क्स के चिंतन और रूस की क्रांति का बड़ा योगदान रहा है।

तीसरी पीढ़ी के मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो नागरिक और सामाजिक से परे जाते हैं। ये अंतरराष्ट्रीय कानून के कई प्रगतिशील दस्तावेजों में व्यक्त है, जिसमें 1972 स्टॉकहोम मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन की घोषणा, पर्यावरण और विकास पर 1992 रियो घोषणा से निकले ऐसे अधिकार शामिल है जिसे आम तौर" नरम कानून "के रूप में जाना जाता है। क्योंकि अभी भी पर्यावरण अधिकार जैसे इन अधिकारों को कानूनी रूप से लागू करना मुश्किल है और इसमें जागरूकता बढ़ रही है तथा इनके लिए बहुत ही कम ठोस प्रयास हो पाए है।

तीसरी पीढ़ी के ये मानवाधिकार बड़े पैमाने पर अनौपचारिक हैं। इन्हे हरे अधिकारों के रूप में जाना जाता है। इसमें अधिकारों का एक अत्यंत व्यापक क्षेत्र शामिल हैं - इसमें सामूहिक अधिकार, आत्मनिर्णय का अधिकार, आर्थिक और सामाजिक विकास के अधिकार, एक स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार प्राकृतिक संसाधनों का अधिकार, संचार से सम्बंधित अधिकार, सांस्कृतिक विरासत में भागीदारी अंतरराष्ट्रीय साम्यता और संघातीय विकास जैसे अधिकार शामिल है।

मानवाधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संघ के विभिन्न अंतरराष्ट्रीय अभिसमय और संस्थागत प्रयास

विश्व स्तर पर मानवाधिकारों को संस्थागत रूप से पाने के लिए कई प्रयास किए गए है जैसे 1948 की घोषणा के बाद भी यु एन समय समय पर विभिन्न सम्मेलनों द्वारा मानवाधिकारों लागू कराने का प्रयास करता रहा है। इसी क्रम में ऐसे नौ विशेष अभिसमय यु एन द्वारा लाए गए है ताकि मानवाधिकारों की विस्तृत प्राप्ति मानवता के विविध क्षेत्रों में हो सके। इन अभिसमयों को लागू करने के लिए अलग अलग निगरानी समितिओं का भी गठन किया गया है-

1. नस्लीय भेदभाव के सभी रूपों के उन्मूलन के लिए 21 दिसंबर 1965 में अभिसमय आया जिसकी निगरानी के लिए सी ई आर डी) नस्लीय भेदभाव उन्मूलन समिति (कार्य कराती है।
2. नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रतिज्ञापत्र 16 दिसंबर 1966 को जारी हुआ और इसके प्रावधानों को लागू करने के लिए एक निगरानी निकाय सी सी पी आर) नागरिक तथा राजनीतिक अधिकार समिति (का गठन किया गया।
3. 16 दिसंबर 1966 को ही एक और प्रतिज्ञापत्र आर्थिक सामजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के लिए यु एन द्वारा जारी किया गया जिसकी निगरानी सी ई एस सी आर नाम की एक निकाय करती है।
4. नारिओं के विरूद्ध सभी भेदभाओं के उन्मूलन के लिए यु एन का एक अभिसमय 18 दिसंबर 1979 में आया जिसकी निगरानी सी ई डी ए डब्लू करती है।

5. इसी प्रकार अत्याचार, क्रूर, अमानवीय और अपमानजनक सजाओं के खिलाफ लिए एक अभिसमय 10 दिसंबर 1948 को यु एन द्वारा लाया गया इसकी निगरानी सी ए टी नाम की एक समिति करती है।

6. बच्चों के अधिकारों पर एक अभिसमय 20 नवम्बर 1989 में आया जिसकी देखरेख सी आर सी निकाय करता है।

7. विस्थापित मजदूरों एवं उनके परिवारों के अधिकारों की रक्षा के लिए एक अंतरराष्ट्रीय अभिसमय 18 दिसंबर 1990 में आया जिसकी निगरानी के लिए सी एम् बाब्लू नाम की एक समीति बनाई गई।

8. विकलांग व्यक्तिओं के अधिकारों लिए एक यु एन अभिसमय 13 दिसंबर 2006 को आया। इन अधिकारों की निगरानी के लिए सी आर पी डी नाम का एक निकाय कार्य करता है।

9. इसी वर्ष, 20 दिसम्बर 2006 को, जबरन और अपहृत या किसी भी प्रकार से गायब कर दिए व्यक्तिओं के अधिकारों की रक्षा के लिए एक अंतरराष्ट्रीय अभिसमय लाया गया। इसकी देखरेख एक समिति सी ई डी करती है।

इन मुख्यअभिसमयों के अतिरिक्त यु एन द्वारा मानवाधिकारों के विभिन्न क्षेत्रों पर आधारित अन्य नौ वैकल्पिक मसविदे भी जारी किए गए है। ये मसविदे विभिन्न विशेषित क्षेत्रों में मानवाधिकारों के उन्नयन के लिए आवश्यक दिशा निर्देश का काम करते है। इनकी निगरानी के लिए भी अलग अलग विशेषित निकाय बनाये गए है।

इन सभी प्रयासों की कड़ी में मानवाधिकारों की विश्व भर में विस्तृत निगरानीऔरकार्यान्यवयन-प्रोत्साहन के लिए एक विशेषित एजेंसी 'मानवाधिकारों के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ हाई कमिश्नर कार्यालय' का गठन 20 दिसंबर 1993 में किया गया। यह गठन इस वर्ष हुए विश्व मानवधिकार सम्मेलन के निष्कर्षो पर आधारित था। यह कार्यालय) ओ एच सी एच आर (मानवाधिकारों की निगरानी के साथ साथ विस्तृत अध्ययन भी करता है। ओ एच सी एच आर ने विश्व भर में विभिन्न देशों की सरकारों को प्रेरित किया है की वे अपने यहाँ ऐसे स्थायी आयोगों का गठन करें।

मानवाधिकारों का भारतीय संविधानिक परिप्रेक्ष्य संस्थागत प्रयास

यदि हम मानवाधिकारों की स्थिति भारत में देखे तो यहाँ इन अधिकारों को संविधानिक संरक्षण प्राप्त है। भारत में यु एन मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के पहले ही संविधान निर्माण की प्रक्रिया शुरू हो गई और अधिकारों को संविधानिक संरक्षण देने की बात कही गई थी और अंततः संविधान के

भाग तीन में अधिकारों का विस्तृत उपबंध किया गया (देष्टा,1995)। भारत में समानता, स्वतंत्रता, गरिमापूर्ण जीवन का अधिकार, शोषण के विरूद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता, सांस्कृतिक व शैक्षिक अधिकार और संविधानिक उपचारों का विस्तृत अधिकार प्राप्त है।

कुछ आदर्शों को जिनको तात्कालिक रूप से अधिकारों में शामिल नहीं किया जा सका उन्हें संविधान के भाग 4 में नीति-निदेशक तत्वों के रूप में शामिल किया गया। भारतीय संविधान में सार्वभौमिक घोषण पत्र के ज्यादातर प्रावधानों को शामिल किया है। साथ ही इन अधिकारों का उल्लंघन होने पर सीधे सर्वोच्च न्यायालय, जो संविधान का व्याख्याकार और इसका संरक्षक है, में अपील करने का अधिकार दिए गया है।

भारतीय सर्वोच्चन्यायालय ने इन अधिकारों के संरक्षक के तौर पर कार्य करते हुए लगातार इनको विकसित और विस्तृत करने का कार्य किया है। न्यायालय ने अधिकारों के उल्लंघन होने पर कई बार 'स्वयं ही संज्ञान' लिया है। अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालय ने जनहित याचिका) पी आई एल (की व्यवस्था की है जिसके माध्यम से शोषित व्यक्ति से अलग कोई अन्य व्यक्ति भी मामला दायर कर शोषित व्यक्ति के लिए न्याय मांग सकता है। अभी हाल ही में एक पी आई एल पर सुनवाई करते हुए निजता के अधिकार को उच्चतमन्यायालय ने मौलिक अधिकार का दर्जा दिया है।

भारत में मानवाधिकारों के उल्लंघन को रोकने, इन्हे लागू करने और व्यापक बनाने के कार्य को और ठोस संस्थागत आधार प्रदान करने की कड़ी में 12 अक्टूबर 1993 को) ओ एच सी एच आर के गठन से पहले ही (राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया। इसे सरकार से स्वतंत्र रखने का प्रावधान किया गया है तथा अर्ध-न्यायिक शक्तिआं दी गई है ताकि यह निष्पक्ष रूप से कार्य कर सके।

मानवाधिकारों के लिए विभिन्न गैर-सरकारी प्रयास

इन सब राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय प्रयासों के बावजूद दुनिया भर में आज भी मानवाधिकारों के उल्लंघनों की घटनाए आ रही हैं। इन उल्लंघनों में राज्य द्वारा किए गए उल्लंघनों के साथ साथ समुदायों द्वारा किए गए उल्लंघन भी शामिल है। आये दिन सेनाओं और विभिन्न पुलिस बलों द्वारा मानवाधिकार उल्लंघनों की ख़बरें आती है।

इन्हे रोकने के लिए और मानवाधिकारों के प्रोत्साहन तथा इन्हे जमीनी स्तर पर आम लोगों को सुलभ कराने के लिए विश्व स्तर और विभिन्न देशों में संस्थागत व्यवस्थाओं से अलग बहुत से गैर-सरकारी संगठन कार्य कर रहे है। जैसे विश्व स्तर पर एमेनेस्टी इंटरनेशनल लगभग 150 देशों में मानवाधिकार के

मुद्दों पर अध्ययन करता है और प्रकाशित करता है कि मानवाधिकारों का कहाँ-कहाँ उल्लंघन हो रहा है। यह उपाय बताने के साथ साथ जनसंचार और जागरूकता के माध्यम से सरकारों पर दबाव बनाने की भी कोशिश करता है। ऐसे ही ह्यूमन राइट्स विदाउट फ्रंटीयर्स, लोकतांत्रिक प्रक्रिया को मजबूत बनाने के लिए कार्य करता है और मानवाधिकारों पर शोध-कार्य करता है।इसीप्रकार ह्यूमन राइट्स वाच, एँटी-स्लेवरी इंटरनेशनल, इंटरनेशनल फेडरेशन फॉर ह्यूमन राइट्स और एबब ग्राउंड जैसे गैर सरकारी संगठन दुनिया भर में मानवाधिकार के लिए कार्य कर रहे है।

भारत में पीपल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज, पीपल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स, विजिल इंडिया मूवमेंट, नेशनल कॉन्फ़ेडरेशन ऑफ़ ह्यूमन राइट्स आर्गेनाइजेशन और ब्रेक थ्रू जैसे गैर सरकारी संगठन मानवाधिकारों के लिए कार्य कर रहें है।

मानवाधिकारों का नारी-अधिकार दृष्टिकोण

देश सहित दुनिया भर में जो मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है उसमे सबसे अधिक भेद्य महिलाओं और बच्चों के अधिकार माने जाते है। महिलाओं और बच्चों के अधिकारों को सुनिश्चित करने के उपायों पर आज दुनिआ भर में चर्चा हो रही है। वास्तव में इनके अधिकार अधिक भेद्य इसलिए है क्योंकि इनके अधिकारों का उल्लंघन राज्य और समुदाय के साथ साथ परिवार जैसे सुरक्षित माने जाने वाले सामाजिक संस्था के भीतर भी उल्लंघित होते है।

महिलाओं) मानव आबादी का लगभग आधा भाग (के इन अधिकारों की प्राप्ति के लिए यु एन के साथ साथ विभिन्न देशों में संस्थागत प्रयास हो रहे है। यु एन में इसके लिए यूनाइटेड नेशंस कमीशन फॉर वीमेन बनाया गया है। इसी प्रकार सी ई डी ए डब्लू और युएन-इंस्ट्रा भी इस दिशा में कार्य करने वाली विशेष एजेंसियों के रूप में बनाए गए है।

भारत में महिला अधिकारों की रक्षा के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन जनवरी 1992 में किया गया। संविधानिक प्रावधानों के साथ साथ महिलाओं को प्राप्त अन्य कानूनी प्रावधानों की रक्षा आयोग करता है। यह अर्ध न्यायायिक-न्यायालय की भांती कार्य करता है और यह एक स्वतंत्र निकाय के रूप में पर्याप्त अधिकार रखता है।

इनसे अलग विश्व स्तर पर महिला अधिकारों के लिए केयर, ऑक्सफेम, इक्वलिटी नाउ जैसे गैर-सरकारी संगठन भी प्रभावी ढंग से कार्य कर रहे है। भारत में मार्ग, समा, सी आर ई ए, उड़ान, नार्थ ईस्ट नेटवर्क और स्माइल फाउंडेशन जैसे गैर सरकारी संगठन महिला अधिकारों के लिए उल्लेखनीय कार्य कर रहे है।

इस प्रकार, मानवाधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोषणा और राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हो रहे विभिन्न संस्थागत तथा नागरिक समाज द्वारा हो रहे भिन्न प्रयास आज मानवाधिकारों को आम जन तक पहुँचाने के लिए हो रहे है परन्तु अभी भी इनके साथ बहुत सी अड़चने है।

मानवाधिकारों के समक्ष चुनौतियां

मानव-अधिकार के समक्ष आज गरीबी और वैश्विक असमानता मुख्य चुनौती बनी हुई है। दूसरे, आज भी दुनिया भर में विभिन्न भेदभाव बने हुए है चाहे वो रंग के आधार पर हो या धर्म, भाषा, जाती, लिंग और आर्थिक आधार पर हो। तीसरे, दुनिया में हो रहे सशस्त्र संघर्ष और हिंसा, चाहे उसका कारण जो भी हो मानवाधिकारों को भारी नुक्सान पहुँचा रहे है साथ ही शरणार्थी जैसी समस्याओं को भी पैदा कर रहे है। चौथे, मानव-अधिकार के उल्लंघन लिए उचित दण्ड व्यवस्था राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सतर पर न होने के कारण भी इन्हे लागू करने में मुश्किलें आती है। लोकतंत्र की कमी, कमजोर संस्थाएँ और कार्यान्वयन की देरी के कारण मानवाधिकारों को आम आदमी तक पहुंचाने में चुनौतियां और बढ़ जाती है।मानवाधिकारों के समक्ष जमीनी स्तर और जिन मुख्य चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है वह है विभिन्न समाजों में व्याप्त ज्ञान की खाई, क्षमता का अंतराल, सरकारों की वचनबद्धता की कमी और सामाजिक-सुरक्षा का भारी अभाव (ओ. एच. सी. एच. आर:*चैलेंजेज दे फेस*)।

मानवाधिकारों की प्राप्ति का निष्कर्ष" - प्रगतिशीलमानवीय दृश्टिकोण, सतत प्रयास"

वास्तव में, संस्थागत स्तर पर जो भी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय प्रयास हो रहे है वे जरूरी तो है पर पर्याप्त नहीं है। मानवाधिकारों की व्यापक प्रसार और प्राप्ति के लिए इन कदमों के साथ साथ सामाजिक वातावरण पर भी ध्यान देना होगा। वस्तुतः इन अधिकारियों की प्राप्ति की कुछ पूर्व शर्ते है - लोकतंत्र के मूल्य को सभी स्तरों पर लागू किया जाना चाहिए। इन अधिकारों की प्राप्ति के लिए लोकतंत्र को सामाजिक और आर्थिक निर्णय क्षमता और भगीदारी के रूप में प्राप्त करना आवश्यक है। विभिन्न भेदभाव से निपटने के लिए सामाजिक राजनीतिक जागरूकता का प्रसार समाज में अनवरत प्रक्रिया के रूप में होना चाहिए साथ सी हर प्रकार के विशेषाधिकारों को भी समाप्त किया जाना चाहिए। इसके लिए बहु-सांस्कृतिक और सहिष्णुता जैसे मूल्यों की समाज में सतत प्राप्ति आवश्यक है।

इन सबसे अलग लोगों में सार्वभौमिक घोषणाओं के लिए सम्मान जगाने के साथ साथ देशज मानव अधिकार के दर्शनों को वैज्ञानिक सोच के साथ विकसित करने की आवश्यकता है ताकि लोगों में मानवाधिकारों के प्रति समझ बढ़े और हर व्यक्ति एक दूसरे के अधिकारों का महत्व समझ पाए और इसके लिए समाज में लगातार रूढ़िवादिता, सामाजिक व धार्मिक कुप्रथाओं तथा पूर्वाग्रहों और प्रतिक्रियावादिता

जैसे तत्वों को दूर करना पड़ेगा क्योंकि मानवाधिकार स्वयं में प्रगतिशील है और गरिमापूर्ण मानव जीवन के लिए इनकी रक्षा और विकास सतत मानवीव प्रयास पर निर्भर हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- ईशाय, एम्, 2004 :द *हिस्ट्रीऑफ़ ह्यूमन राइट्स* फ्रॉम *अन्सिएँट टाइम्स* टू द *ग्लोबलाइजेशन एरा*, लॉसएँगेल्स, कैलिफ़ोर्नियायूनिवर्सिटी, कैलिफ़ोर्निया प्रेस.
- बक्सी, उपेंद्र :1987, *राइट्स टू बी ह्यूमन*, लैंसर्स बुक्स, नई दिल्ली।
- *चैलेंजेज दे फेस*: यूनाइटेड नेशंस, ऑफिस ऑफ़ द हाई कमिश्नर ऑफ़ ह्यूमन राइट्स.
- त्यागी, योगेश के, जनवरी-मार्च 1981: *थर्ड थर्ड वर्ल्ड रिस्पांस फॉर ह्यूमन राइट्स*, भारतीयजर्नल ऑफ इंटरनेशनल लॉ.
- देष्टा, सुनील और देष्टा, किरण, जुलाई-सितंबर 1995: फिलोसोफी ऑफ़ राइट तो लाइफ, अमूवमेंट फ्रॉम रिजिडीटी टू फ्लेक्सिबिलिटी .*सिविल एँड मिलिट्री लॉ जर्नल.*
- निकल जेम्स, 2013:, *स्टैनफोर्ड इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ फिलोसोफी-ह्यूमन राइट्स.*
- मानव अधिकारों के लिए उच्च कमिश्नर का कार्यालय द्वारा संयुक्त राष्ट्र स्टैफ़ कॉलेज प्रोजेक्ट: *ह्यूमन राइट्स -अ बेसिक हैंडबुक फॉर यु एन स्टाफ.*
- यूरोपीय परिषद के लोकतंत्र महानिदेशालय के भीतर कार्यरत डेमोक्रेटिक नागरिकता और सहभागिता निदेशालय की रिपोर्ट:*इंट्रोडसिंग ह्यूमन राइट्स.*
- लॉक, जे., :1689द *सेकंड ट्रीटी ऑन सिविल गवर्नमेंट*, न्यू यॉर्क : प्रोमिथेउस बुक्स, री-प्रिंटेड इन .1986
- वासक, करेल, 1977 :ह्यूमन राइट्स - अ थर्टी- ईयर स्ट्रगल: द सुस्तैनेड एफ्फोर्ट्स तो गिव ऑफ़ लॉ तो थे यूनिवर्सल डिक्लेरेशन ऑफ़ ह्यूमन राइट्स" , यूनेस्को.
- *व्हाट आर ह्यूमन राइट्स?* : यूनाइटेड नेशंस, ऑफिस ऑफ़ द हाई कमिश्नर ऑफ़ ह्यूमन राइट्स।

  सिंह, नागेंद्र 1986 :*इंफ़ोर्मेंट ऑफ़ ह्यूमन राइट्स*, कलकत्ता : ईस्टर्न लॉ हाउस.

17. ग्राम पंचायत और महिलाओं की सहभागिता: एक अध्ययन

डॉ. नावेद जमाल*

अनीता रानी**

भारत में पंचायती राज का इतिहास प्राचीन समय से ही अस्तित्व में है जिसके उदाहरण वैदिक काल, मौर्य काल, गुप्त काल, राजपूतों, चोल साम्राज्य तथा मुगल काल आदि में देखे जा सकते हैं। प्राचीन समय में इसे स्थानीय स्वशासन कहा जाता था। परंतु उस समय यह व्यवस्था अधिक सबल तथा सशक्त नहीं थी। इसे सशक्त बनाने तथा सवैधानिक दर्जा दिलाने हेतू भिन्न-भिन्न विचारकों की समितियों ने सिफारिशें प्रस्तुत कीं तथा इन व्यवस्थाओं को सुदृढ़ बनाने के प्रयास किए जिनमे मुख्य हैं 64वां संविधानिक संशोधन, 73वां संविधानिक संशोधन, बलवंत् राय मेहता समिति, अशोक मेहता समिति, जी.वी.के. राय समिति, एम. एल. सिंघवी समिति आदि। यह सभी प्रयास इस व्यवस्था को सबल बनाने हेतू एक मौन क्रांति थी जिसके पश्चात इन्हें संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में भी स्थान प्राप्त हुआ है जो कि इस व्यवस्था का मूल मंत्र माना गया है। पंचायती राज व्यवस्था में 73वें संविधानिक संशोधन की महत्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि इसके पश्चात पंचायती राज में त्रिस्तरीय व्यवस्था लागू की गई जिसके अंतर्गत 1) जिला स्तर (जिला परिषद) 2 खंड स्तर (पंचायत समिति) 3) ग्राम स्तर (ग्राम पंचायत) आती है। इस संशोधन में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं के लिए आरक्षण का विशेष प्रावधान सम्मिलित था जिसमें प्रत्येक वर्ग को पंचायतों में अपनी भूमिका निभाने का अवसर प्राप्त हुआ। साथ ही यह इन वर्गों के उत्थान का भी सुअवसर था।

पंचायती राज में भिन्न-भिन्न विचारकों के प्रयासों से बहुत बदलाव हुआ है तथा इसमें महिलाओं के लिए पंचायतों में 33 प्रतिशत आरक्षण महत्वपूर्ण प्रयास है। इस आरक्षण से उनकी स्थिति में जो बदलाव हुआ है, यह भिन्न-भिन्न राज्यों में देखने को मिलता है, जो कि सराहनीय है। आरक्षण के बाद महिलाओं की बढ़ती हुई सहभागिता का देखते हुए सरकार ने यह आरक्षण अब 50 प्रतिशत कर दिया है ताकि पंचायतों में महिला सहभागिता और बढ़ सके तथा वह सशक्त हो सकें। आधी आबादी कही जाने वाली महिलाएँ शनै-शनै ही सही किंतु राजनीति में अपनी सहभागिता बढ़ा रही हैं। यह बात और है कि इस सहभागिता का स्तर कहीं कम है और कहीं अधिक, जहां आऱ्क्षण के पश्चात राजनीति में महिला

* **एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली**

** **शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली**

सहभागिता के सकारात्मक पक्ष सामने आ रहे हैं तो इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि आज वर्तमान में भी महिला सहभागिता के नकारात्मक पक्ष भी हैं क्योंकि राजनीति में सशक्त महिलाओं की भागीदारी के उदाहरण केवल नाममात्र हैं, यदि ध्यान से देखा जाए तो अशिक्षा, सामाजिक बुराईयों आदि के अंधेरे कोने में बहुत सी महिलाएँ शोषित हो रही हैं जिनकी तरफ किसी का ध्यान नहीं जाता। उन्हें केवल एक उजाले की किरण की आवश्यकता है जो इन्हें इस अंधकार से बाहर निकाल सके, यह केवल आरक्षण से नहीं हो सकता।[2]

प्रस्तुत लेख में ग्राम पंचायत में पदासीन महिलाओं की सहभागिता की व्याख्या की गई है। इस लेख में बताया गया है कि आज महिलाओं को विशेष प्रावधान तथा आरक्षण के पश्चात भी वह क्यों पुरूषों पर आश्रित है साथ ही उनकी वर्तमान स्थिति का विश्लेषण किया गया है।

उद्देश्य :

प्रस्तुत लेख में ग्राम पंचायत में पदासीन महिलाओं की सहभागिता का स्तर आंकने हेतू निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं, जो इस प्रकार हैं -

1) सामाजिक पृष्ठभूमि

2) ग्राम पंचायत में महिला सहभागिता का व्यवहारात्मक अध्ययन

3) मगच्छर और मोहना ग्राम पंचायत में महिला सहभागिता का तुलनात्मक अध्ययन

पद्धतिः

लेख में ग्राम पंचायत में महिला सहभागिता को वैज्ञानिक रूप प्रदान करने हेतू वर्णानात्मक, विवरणात्मक तथा तुलनात्मक प्रविधियों का प्रयोग किया गया है। इसके लिए अध्ययन क्षेत्र के रूप में हरियाणा राज्य के जिला फरीदाबाद से मगच्छर तथा मोहना गांव का चुनाव किया गया है। अध्ययन की प्राथमिकता को सिद्ध करने हेतू अनुसूची साक्षात्कार द्वारा प्राथमिक स्रोत तथा पुस्तकों के लेखों, सरकारी रिपोर्टों के द्वारा द्वितियक स्रोत एकत्रित किए गए हैं। उत्तरदाताओं से प्राप्त समंकों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत न करके उन्हें तीन भागों में विभाजित किया गया है। तत्पश्चात इनका प्रस्तुतीकरण किया गया है। समंकों के प्रस्तुतीकरण का विभाजन इस प्रकार है -

1) समंकों का उपासादन

2) समंकों का वर्गीकरण

3) तथ्यों का सारणीयन

समंकों को तालिकाओं में प्रस्तुत करते समय ध्यान रखा गया है कि कोई भी समंक पुष्टि में भ्रम उत्पन्न न करे जिसके लिए समंकों को प्रतिशत में भी दर्शाया गया है और नीचे पूरी तालिका की पुष्टि भी की गई है। अध्ययन में निदर्शन के आधार को देखते हुए स्तरीत तथा दैव निदर्शन दोनों प्रवृत्तियों का प्रयोग किया गया है तथा तथ्य संकलन हेतू उपकरण के रूप में टेपरिकॉडर, मानचित्र, कैमरा आदि का भी प्रयोग किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र

मच्छगर गांव की झलकः

प्रथम अध्ययन क्षेत्र हरियाणा राज्य के फरीदाबाद जिले से मच्छगर गांव है, जो कि 111 गाँवों में से एक है। यह गांव बहुत पिछड़ा हुआ गांव है तथा बल्लभगढ़ तहसील से 35 किमी. दूर है। यहां अनुसूचित जाति के लोगों की प्रधानता है। 2010 में संपन्न हुए पंचायती राज चुनाव के अनुसार वर्तमान सरपंच श्रीमति अमिता हैं, यह बहुत साधारण महिला हैं जो कि महिलाओं को दिए जाने वाले आरक्षण द्वारा आरक्षित सीट से चयनित हुई हैं। गांव में यातायात संबंधी समस्या नहीं है लेकिन गांव वालों को शिक्षा, स्वास्थ्य संबंधित समस्याओं का सामना करना पड़ता है। मनोरंजन, प्रचार-प्रसार हेतू समाचार पत्र, दूरदर्शन, रडियो, केबल कनेक्शन संबंधी सुविधा तो है परंतु लोकप्रिय तथा उपयोगी इंटरनेट का अभाव है। इससे विद्यार्थियों को बहुत असुविधा होती है तथा गांव में जागरूकता का स्तर बहुत कम है। गेहूं, बाजरा, ज्वार तथा हरी सब्जियाँ इस गांव की मुख्य फसल हैं तथा कृषि ही रोजगार का मुख्य साधन है। चोरी, नशा आदि इस गांव की मुख्य समस्या हैं तथा भ्रष्टाचार से पूरा गांव पीड़ित है।

मच्छगर गाँव का जनसंख्यात्मक विवरण

विशेष	**कुल**	**पुरूष**	महिलाएँ
जनसंख्या	5214	2802	2412
अनूसूचित जाति	1069	580	489
अनूसूचित जनजाति	0	0	0
साक्षरता दर	74.42%	90.57%	64.76%

स्रोत: http://www.census2011.co.in/d lte/village/6352

मोहना गांव की झलक:

हरियाणा राज्य के फरीदाबाद जिले के 111 गावों में से मोहना गांव एक विकसित गांव है जो बल्लभगढ़ तहसील से 45 किमी. दूर है। इस गांव की कुल जनसंख्या 9843 है। 2010 के ग्राम पंचायत के चुनाव के अनुसार गांव की वर्तमान सरपंच श्रीमति सुषमा हैं जो कि एक शिक्षित महिला हैं। इस गांव में पिछड़ा वर्ग के लोगों की प्रधानता है। शिक्षा संबंधी की कोई समस्या नहीं है क्योंकि गांव में ही कई सरकारी और निजी स्कूल हैं परंतु उच्च शिक्षा के लिए गांव से बाहर जाना पड़ता है। मनोरंजन, प्रचार-प्रसार के लिए गांव में समाचार पत्रों, दूरदर्शन, रेडियो, केबल कनेक्शन की भी सुविधा है परंतु विद्यार्थियों की उन्नति हेतु इंटरनेट की सुविधा नहीं है। यहां पेय जल तथा जल निकासी सबंधी भी कोई समस्या नहीं है तथा दिन में 14 घंटे बिजली आती है। स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से निपटने के लिए गांव में सरकारी तथा निजी दोनों प्रकार के अस्पतालों की व्यवस्था है। कृषि उत्पादन बढ़ाने तथा भंडारन हेतू एक भंडार गृह भी है जहां किसानों के अनाजों की कम दरों पर सुरक्षा की जाती है। गेहूं, बाजरा, ज्वार तथा हरी सब्जियों की खेती की जाती है। गांव वालों को यातायात संबंधी भी कोई समस्या नहीं है। क्योंकि ऑटो रिक्शा तथा बस आदि की अच्छी व्यवस्था है जो गांव के अंदर तक आते हैं। सरकारी तथा निजी नौकरियाँ और कृषि रोजगार के प्रमुख साधन हैं। गांव में कच्ची तथा पक्की सड़कें हैं तथा यह गांव बहुत सुंदर है तथा विकास की ओर अग्रसर है।

मोहना गाँव का जनसंख्यात्मक विवरण

विशेष	**कुल**	**पुरूष**	महिलाएँ
जनसंख्या	9843	5233	4610
अनूसूचित जाति	2194	1153	1041
अनूसूचित जनजाति	0	0	0
साक्षरता दर	74.91%	86.93%	61.18%

स्रोत:www.census2011.co.in/d lt l/village/63582-mohn l-h lry ln l.html

महिला सहभागिता का साहित्य ऐतिहासिक तथा सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

साहित्य पुनरावलोकन:

प्राचीन समय से ही महिलाओं को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। वैदिक काल से आज तक वर्तमान में प्रत्येक क्षेत्र में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है तथा स्वतंत्रता संग्राम में भी महिलाओं ने सराहनीय भूमिका का प्रदर्शन किया है। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में उन्होंने प्राचीन समय से ही बढ़-चढ़ कर भाग लिया है तथा अपाला, घोषा, मैत्रेयी ऐसी विदूषियां हैं जिन्होंने वैदिक काल में ज्ञान प्राप्त किया तथा मंत्र उच्चारण, शस्त्र विद्या आदि में निपुणता प्राप्त की, इसलिए उन्हें उस काल में ज्ञान की देवी भी कहा जाता था। आधी आबादी कही जाने वाली स्त्रियों को त्याग, बलिदान, दया आदि की देवी कह-कह कर इनकी स्थिति पर कब और कैसे प्रहार होते रहे, और इनकी स्थिति कब सम्मानजनक से दयनीय बना दी गई, उनको भी पता नहीं चल पाया, एक समय ऐसा भी आया जब प्रत्येक क्षेत्र में अपनी सहभागिता का प्रदर्शन करने वाली महिलाओं से यह सहभागिता का अधिकार ही छीन लिया गया और उन्हें घर में उपभोग की वस्तु मात्र समझा जाने लगा। यह था मुगल काल अर्थात इस काल को महिलाओं के पतन का काल भी माना जाता है। परंतु संघर्षमयी महिलाओं ने हार नहीं मानी और धीरे-धीरे ही सही, उन्होंनें स्वयं के अस्तित्व को मरने नहीं दिया और फिर से उभर कर सामने आईं। रज़िया बेगम, रानी लक्ष्मीबाई, सरोजनी नायडु, इंदिरा गांधी, मायावती, शीला दीक्षित, जय ललिता आदि उनमें से प्रमुख महिलाएँ हैं जिन्होंने समाज को बता दिया कि वे किसी भी रूप से पुरूषों से कम नहीं, उन्हें समाज की कोई कुरीति या बंधन रोक नहीं पाए और नहीं तोड़ पाए तथा महिला सशक्तिकरण का परचम न केवल भारत में बल्कि विदेशों में भी लहराया जिस पर सभी को गर्व है।[3]

प्राचीन समय से ही राजनीति समाज का महत्वपूण हिस्सा रहा है। कहा जाता है कि राजनीति एक ऐसा अखाड़ा है जहां प्राचीन समय में महाभारत से आज तक की संसद तक बहुत सी जानें गईं तथा विनाश हुआ है तथा माना जाता है कि ऐसे क्षेत्र में केवल बलवानों के काम हैं इसलिए महिलाओं को दुर्बल, कमजोर और शोषित मान कर राजनीति में इनकी सहभागिता पर हर बार प्रश्न उठे हैं तथा इन्हें प्रवेश करने से रोका गया है। इसके कारण उनकी सहभागिता का स्तर कम रहा है। राजनीति में महिलाओं की सहभागिता का स्तर शहरों में तो ठीक है परंतु पूर्व के अध्ययनों तथा शोधों व वर्तमान स्थिति पर ध्यान दिया जाए तो ग्रामीण महिलाओं की सहभागिता का स्तर ना के बराबर है, उनकी स्थिति बहुत ही दयनीय है, क्योंकि यदि कोई ग्रामीण वो भी महिला और महिला भी अनुसूचित जाति की हो तो उसकी स्थिति दयनीय नहीं बल्कि बहुत दयनीय हो जाती है। वह पंचायतों में पदासीन ही क्यों न हो, क्योंकि एक तो वह ग्रामीण है, अशिक्षित है तथा पुरूष प्रधान समाज में है जिसके कारण उसके उपर भिन्न-भिन्न प्रकार से शोषण होता आ रहा है जिसका गहरा प्रभाव उसकी सहभागिता पर पड़ता है। यह दयनीय स्थिति हर उस ग्रामीण महिला की है जो पंचायत में आ तो जाती है किंतु अशिक्षा और आत्मविश्वास व जागरूकता की कमी के कारण

अपनी शक्ति, सत्ता व अधिकारों का न तो प्रयोग कर पाती है और न ही समझ पाती है कि उसे क्या करना है और कैसे करना है और कब करना है?[4]

जैसा की उपरोक्त पंक्तियों में बताया गया है कि प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका सराहनीय तथा महत्वपूर्ण रही है, बिना उसके राजनीति ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। महिलाओं की अनुपस्थिति में तो एक घर भी पूर्ण नहीं माना जाता फिर कैसे कहा जा सकता है कि राजनीति में उनके लिए स्थान नहीं है, इसी धारणा को अपनी शक्ति मान कर आज महिलाएँ राजनीति में आगे बढ़ रही हैं जिसके उदाहरण राजस्थान, हरियाणा, आंध्र प्रदेश तथा गोवा आदि राज्यों में देखे जा सकते हैं। यह सत्य है कि राजनीति में महिलाओं की गिनती बहुत कम है परंतु यह भी सत्य है कि कम से कम सहभागी तो हैं, यह एक ऐसा दीप है जो धीरे-धीरे और कई दीपों को प्रज्वलित करेगा और कम सहभागिता को अधिक में परिवर्तित करेगा, इस दीप में निरंतर ज्वाला को बढ़ाने के लिए तेल है। महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण दिया गया है जिसके द्वारा वह आज पंचायत से संसद तक के चुनाव लड़ रही है तथा विजयी हो कर उच्च पदों पर पदासीन हो रही है, ऐसी महिलाएँ सशक्त देश का निर्माण करती हैं तथा सरकार ने उनकी सहभागिता को बढ़ाने के लिए+ 33 प्रतिशत का आरक्षण ही नहीं दिया बल्कि स्वास्थ्य, रोजगार तथा शिक्षा संबंधी कई प्रोत्साहन योजनाएँ भी लागू की हैं ताकि वे आर्थिक रूप से स्वावलंबी हो सकें। शहरों तथा गाँवों में महिला बैंकों की स्थापना भी की गई है, यह सभी प्रयास उनके लिए वरदान साबित हुए हैं जिससे वह सशक्त हो रही है।[5]

पंचायतों में पदासीन महिलाओं की सहभागिता का स्तर कम होने के कारण :

भारतीय पंचायतों में पदासीन महिलाओं की सहभागिता का स्तर कम होने के बहुत से कारण सामने आते हैं जिनके द्वारा वह न तो सशक्त हो पाती है और न ही जागरूक, उनकी स्थिति दयनीय क्यों हो रही है? प्राचीन समय में सम्मान पाने वाली महिलाएँ क्यों आज भिन्न-भिन्न प्रकार से शोषण का शिकार हो रही है? इन सब प्रश्नों का उत्तर स्वयं स्त्री है, यदि पूर्व में किए गए कुछ अध्ययनों और शोधों पर ध्यान दिया जाए तो ऐसे बहुत से आंकड़े मिलते हैं जहां एक महिला ने दूसरी महिला का शोषण किया है तथा आपसी द्वेष, भेदभाव आदि बातों के कारण एक-दूसरे पर कटाक्ष भी किए हैं। ग्रामीण समाज में ऐसी बहुत सी महिलाएँ हैं जो न तो स्वयं राजनीति में आना चाहती हैं और न ही अपने घर से किसी ओर महिला को आने देना चाहती हैं। यह संकीर्ण सोच पंचायतों में महिला सहभागिता को कम करती है परंतु यह तो एक छोटा सा कारण है। इसके अतिरिक्त और भी बहुत से कारक हैं जिनमें पदासीन महिलाएँ पंचायतों में भाग नहीं ले

पातीं और अशक्त रह जाती हैं।[6]

अशिक्षा केवल महिला को ही नहीं बल्कि प्रत्येक मानव को भी अपाहिज मात्र बना देती है जिसके बिना न तो वह कुछ कर पाता है और न ही कुछ समझ पाता है, इसी प्रकार पंचायतों में भी अशिक्षित महिला न तो कुछ कह पाती है और न ही कुछ समझ पाती है, वह केवल दूसरों के हाथों की कठपुतली मात्र बन जाती है। वैसे तो अधिकतर भारतीय महिलाओं की यही स्थिति हैं परंतु ग्रामीण महिलाओं की स्थिति बहुत ही दयनीय है, चाहे वह पंचायत में पदासीन ही क्यों न हो, इसका कारण है कि उसे घर के कार्यों को अधिक महत्व देना होता है तथा वह बच्चे संभालने, बर्तन, झाड़ू-पोछा, सफाई आदि के बाद पंचायत के लिए समय नहीं निकाल पाती। ग्रामीण महिलाएँ खेतों में पुरूषों के बराबर काम करती हैं, फिर भी उन्हें कहा जाता है कि तुम कामचोर हो और कुछ नहीं करती हो आदि। वह यह सब सन कर कुछ नहीं कहती लेकिन इन सब सामाजिक तानों से मानसिक रूप से प्रताड़ित होती है तथा ग्राम में पुरूष प्रधान समाज में कभी भी महिलाओं को पंचायत में भाग नहीं लेने देते क्योंकि उन्हें जो कहा जाता है, वे वही करती हैं। यह सभी कारण उन्हें कमजोर बना देते हैं जिस कारण वह चाह कर भी पंचायतों से अपनी सहभागिता नहीं बढ़ा पाती हैं। [7]

फरीदाबाद जिले के मच्छगर तथा मोहना गांव की ग्राम पंचायत में पदासीन महिलाओं की सहभागिता का तुलनात्मक अध्ययन :

उत्तरदाताओं के अनुसार विवरण

तालिका-1

आयु	संख्या (मगच्छर)	प्रतिशत	संख्या (मोहना)	प्रतिशत
18-30	0	0	0	0
31-50	6	100	9	100
50 से अधिक	0	0	0	0
कुल	**6**	**100**	**9**	**100**

स्रोत : अनुसूची द्वारा प्राप्त समंक

तालिका-1 में उत्तरदाताओं की आयुनुसार विवरण दर्शाया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि गांव के

सभी उत्तरदाता 31-50 वर्ष के हैं।

उत्तरदाताओं की साक्षरता दर

तालिका-2

शिक्षा	संख्या (मगच्छर)	प्रतिशत	संख्या (मोहना)	प्रतिशत
अशिक्षित	0	0	0	0
दसवीं से कम	3	50	3	33.33
दसवीं	2	33.33	3	33.33
बारहवीं	1	16.66	3	33.33
स्नातक	0	0	0	0
कुल	**6**	**100**	**9**	**100**

स्रोत : अनुसूची द्वारा प्राप्त समंक

तालिका-2 में उत्तरदाताओं की साक्षरता दर को दर्शाया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि मगच्छर गांव में कुल 6 उत्तरदाताओं में से 3 दसवीं से कम, 2 दसवीं तथा 1 बारहवीं तथा दूसरी तरफ मोहना गांव के कुल उत्तरदाताओं में से 3 दसवीं से कम, 3 दसवीं और 3 बारहवीं पढ़ी हुई हैं। इन सबसे स्पष्ट होता है कि मोहना के उत्तरदाताओं की साक्षरता दर मगच्छर गांव से अधिक है जिसे प्रतिशत में भी दिखाया गया है।

उत्तरदाताओं का जातिनुसार वर्गीकरण

तालिका-3

जाति	संख्या (मगच्छर)	प्रतिशत	संख्या (मोहना)	प्रतिशत
अनु. जाति	2	33.33	2	22.22
अनु. जनजाति	0	0»	0	0»
पिछडा वर्ग	4	66.66	5	55.55
सामान्य वर्ग	0	0»	2	22.22»

कुल	6	100»	9	100»

स्रोत : अनुसूची द्वारा प्राप्त समंक

तालिका-3 में उत्तरदाताओं का जातिनुसार वर्गीकरण दर्शाया गया है। इससे स्पष्ट है कि मगच्छर गांव के कुल 6 उत्तरदाताओं में से 2 अनु. जाति तथा 4 पिछड़ा वर्ग से हैं तथा मोहना गांव में कुल 9 उत्तरदाताओं में से 2 अनु0 जाति, 5 पिछड़ा वर्ग तथा 2 सामान्य वर्ग से हैं जिससे स्पष्ट होता है कि मगच्छर की अपेक्षा मोहना में पिछड़ा वर्ग तथा सामान्य वर्ग के उत्तरदाता अधिक हैं। इसे प्रतिशत में भी दर्शाया गया है।

उत्तरदाताओं का धर्म के अनुसार विवरण

तालिका-4

धर्म	संख्या (मगच्छर)	प्रतिशत	संख्या (मोहना)	प्रतिशत
हिंदू	6	100	9	100
मुस्लिम	0	0	0	0
अन्य	0	0	0	0
कुल	6	100	9	100

स्रोत : अनुसूची द्वारा प्राप्त समंक

तालिका-4 में उत्तरदाताओं का धर्मानुसार वर्गीकरण किया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि दोनों गाँवों के कुल उत्तरदाता हिंदू हैं जिन्हें प्रतिशत में भी 100 दर्शाया गया है।

उत्तरदाताओं की अपने पद, कार्यों, शक्तियों तथा अधिकारों के प्रति जागरुकता

तालिका-5

जागरुकता	संख्या(मगच्छर)	प्रतिशत	संख्या (मोहना)	प्रतिशत
73वां संविधानिक संशोधन	0	0	0	0
अपने कार्यों के प्रति	0	0	2	22.22
अपनी शक्तियों के प्रति	4	66.66	4	44.44

ग्राम पंचायत बैठकों के प्रति	3	50	5	55.55
कुल	**7**	**100**	**9**	**100**

स्त्रोतः अनुसूची द्वारा प्राप्त समंक

तालिका-5 में उत्तरदाताओं के जागरुकता स्तर को भिन्न-भिन्न चरों पर दर्शाया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि मगच्छर गांव के कुल 7 उत्तरदाताओं में से 4 को अपनी शक्तियों तथा 3 को पंचायत बैठकों तथा मोहना गांव के कुल 9 उत्तरदाताओं में से 2 को अपने कार्यों, 4 को अपनी शक्तियों तथा 5 को पंचायत की बैठकों के प्रति जागरुकता है। इससे स्पष्ट होता है कि मगच्छर गांव की अपेक्षा मोहना गांव के उत्तरदाताओं में जागरुकता का स्तर अधिक है।

उत्तरदाताओं के ग्राम पंचायत में कार्यों के संपादन के दौरान होने वाली समस्या

तालिका-6

समस्याएँ	**संख्या (मगच्छर)**	**प्रतिशत**	**संख्या (मोहना)**	**प्रतिशत**
पुरुष प्रधानता	1	16.66	3	33.33
घूंघट प्रथा	1	16.6	1	11.11
अशिक्षा	4	66.66	5	55.55
कुल	6	100	9	100

स्रोत : अनुसूची द्वारा प्राप्त समंक

तालिका-6 के उत्तरदाताओं की ग्राम पंचायत के कार्यों के समय आने वाली समस्याओं को दर्शाया गया है। मगच्छर गांव के कुल 6 उत्तरदाताओं में से 1 पुरुष प्रधानता, 1 घूंघट प्रथा व 1 अशिक्षा तथा मोहना गांव के कुल 9 उत्तरदाताओं में से 3 पुरुष प्रधानता, 1 घूंघट प्रथा तथा 5 अशिक्षा जैसी समस्या के कारण कार्य नहीं कर पाती। इससे स्पष्ट है कि दोनों गाँवों में उत्तरदाताओं को अशिक्षा का अधिक सामना करना पड़ता है।

उत्तरदाताओं की ग्राम पंचायतों के प्रति कार्यों के लिए निर्भरता

तालिका-7

माध्यम	**संख्या (मगच्छर)**	**प्रतिशत**	**संख्या (मोहना)**	**प्रतिशत**

स्वयं	0	0»	0	0»
पति	6	100»	9	100»
प्रधान	0	0»	0	0»
अन्य	0	0»	0	0»
कुल	**6**	**100»**	**9**	**100»**

स्रोत : अनुसूची द्वारा प्राप्त समंक

तालिका-7 में उत्तरदाताओं की ग्राम पंचायत के कार्यों के संपादन के दौरान निर्भरता को दर्शाया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि दोनों गाँवों की उत्तरदाताओं को अपने पतियों पर निर्भर होना पड़ता है।

उपरोक्त तालिकाओं के अध्ययन के उपरांत हमने यह पाया है कि 1) दोनों गाँवों के उत्तरदाताओं में शिक्षा का स्तर बहुत कम है। 2) उत्तरदाता 73वें सवैधानिक संशोधन के प्रति बिलकुल जागरूक नहीं हैं। वह पदों पर आसीन तो है परंतु अपने कार्यों, शक्तियों तथा पंचायत संबंधी बैठकों के बारे में ना के बराबर जानती हैं। 3) पंचायत संबंधी कार्यों के संपादन के समय जिस समस्या का उन्हें सबसे अधिक सामना करना पड़ता है वह है अशिक्षा। 4) अध्ययन में यह भी पाया गया है कि पंचायतों में पदासीन महिलाएँ प्रत्येक कार्यों के लिए पूरी तरह से अपने पतियों पर आश्रित हैं। वह केवल नाम की सरपंच है। वह वही करती है जो उनसे उनके पति करने को कहते हैं।

अध्ययन में उत्तरदाताओं से प्राप्त समंकों के वर्गीकरण तथा सारणीयन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि मगच्छर गांव की अपेक्षा मोहना गांव की महिला सरपंच तथा महिला पंच सदस्यों की ग्राम पंचायत में सहभागिता का स्तर अधिक है। अध्ययन में भिन्न-भिन्न तालिकाओं तथा गाँवों की झलक से यह स्पष्ट होता है कि पदासीन महिलाओं की सहभागिता ही नहीं मोहना गांव प्रत्येक क्षेत्र में मगच्छर गांव से अधिक विकसित है, परंतु यह सत्य भी सामने आया है कि मोहना में मगच्छर की अपेक्षा उत्तरदाताओं की अधिक सहभागिता होने के बाद भी दोनों गाँवों में महिला सहभागिता तथा जागरुकता का स्तर बहुत कम है तथा यह बहुत चिंतनीय मुद्दा है, क्योंकि आधी आबादी होने के बाद भी महिलाओं की राजनीति में सहभागिता तथा जागरुकता व आत्मविश्वास का स्तर केवन नाममात्र का है। लेख में दोनों गाँवों की ग्राम पंचायत के तुलनात्मक अध्ययन से यह तो पता चलता है कि मगच्छर गांव में कम तथा मोहना गांव में महिलाओं की सहभागिता अधिक है परंतु इतनी भी अधिक नहीं कि संतुष्टि हो सके तथा इसलिए आज भी कुछ प्रयासों की आवश्यकता है, जिससे वह प्रत्येक क्षेत्र में अपनी पूर्ण सहभागिता का प्रदर्शन कर सके जैसे:

1) महिलाओं का शिक्षा स्तर बढ़ाना

2) पंचायत में पदासीन महिलाओं को अपने पद, शक्ति, अधिकारों के प्रति प्रशिक्षण देना।

3) ग्रामीण महिलाओं को, महिला संघ, स्वयं सहायता समूहों आदि के द्वारा जागरुक करना।

4) महिलाओं को राजनीति ही नहीं वरन् आर्थिक, सामाजिक आदि सभी क्षेत्रों में सशक्त बनाना।

इन सभी प्रयासों के द्वारा उन्हें एक ऐसा मंच प्राप्त होगा जहां उन्हें प्रत्येक क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का प्रदर्शन करने का सुअवसर प्राप्त होगा, परंतु यह अवसर ही प्राप्त होना ही काफी नहीं है, उन्हें स्वयं भी आगे आना होगा तथा स्वयं को मजबूर, असहाय व कमजोर न मान कर पूरे विश्व में आधी आबादी कही जाने वाली विश्व को सशक्त बनाने वाली समझना होगा क्योंकि जब तक नारी स्वयं को नहीं समझेगी, तब तक वह किसी को भी नहीं समझा पाएगी कि वह भी किसी से कम नहीं।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

1) शर्मा डॉ. के. के., *भारत में पंचायती राज,* विश्व भारती पब्लिकेशन, 2009, पृष्ठ-1

2) सिंह डॉ. निशांत, *महिला राजनीति और आरक्षण,* ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ-110

3) वशिष्ठ प्रो. सरिता, *महिला सशक्तिकरण,* कल्पना पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010, पृष्ठ-163

4) सामारिया संदेश, राजनीति में महिलाएँ : बढ़ती भागीदारी, *कृतिका* 7-8 जनवरी, दिसंबर 2011, पृष्ठ-231, 232

5) वही, पृष्ठ-233

6) सिंह सीमा, *पंचायती राज और महिला सशक्तिकरण,* विद्या विहार, नई दिल्ली, 2010 पृष्ठ-8

7) मोदी डॉ. अनीता, महिला शिक्षा : ग्रामीण विकास की आधारशिला, *कुरूक्षेत्र.,* ग्रामीण शिक्षा, सिंतंबर 2012, पृष्ठ 12-20

8) त्रिवेदी डॉ. जायश्री, भारतीय राजनीति और महिलाएँ : चिंतन के विविध सरोकार, *कृतिका,* जनवरी-दिसंबर, 2014, पृष्ठ 144-146

9) यादव संगीता, महिला हितों की रक्षा को समर्पित एक संस्था, *कुरूक्षेत्र* ग्रामीण स्वास्थ्य, 2012, पृष्ठ-44-48

10) **विकास नंदल,** पंचायती राज संस्था में महिलाओं की भागीदारी :हरियाणा का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)भारत,(*अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका सामाजिक विज्ञान*, खंड ,2 संख्या 12, दिसंबर, 2013.

***

18. मध्य प्रदेश की राजनीति में महिला विधायकों की भूमिका

डॉ. नियाज अहमद अन्सारी*
रईस अहमद खान**

आज भारतीय राजनीति में महिला जनप्रतिनिधित्व एक विशिष्ट मुद्दा बना हुआ है। सामान्यतः इसका कारण आधुनिक लोकतंत्रों में विधानमंडलों के अंदर महिला जनप्रतिनिधियों की उपस्थिति अत्यंत कम एवं विभिन्न मामलों मे उनकी चिंताजनक भूमिका का होना है। विशेष रूप से भारत जैसे विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र में जहां स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर अब तक संसद के दोनो सदनों लोकसभा एवं राज्य सभा सहित राज्य विधान सभाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व लगभग 10 प्रतिशत से कम ही रहा है। भारत की संसद में मात्र 10 प्रतिशत और राज्य विधानसभाओं में 8 से 10 प्रतिशत ही महिलाएं ही जनप्रतिनिधि के रूप में विधायक बन सकी हैं।[1]

भारत में जहां एक और स्थानीय शासन के अन्तर्गत पंचायतीराज व्यवस्था में 1992 में हुए 73 एवं 74वें संविधान संशोधन के द्वारा महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत स्थान आरक्षित किये गये है, वहीं दूसरी ओर संसद एवं राज्य विधानमंण्डलों में महिलाओं को आरक्षण न होने से महिलाओं का प्रतिनिधित्व उचित एवं सन्तोषजनक नही हो सका है। [2] इसके बावजूद महिलाओं ने स्थानीय, प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय स्तर की राजनीति में अपना विशिष्ट स्थान बनाया। अतः यह उपयुक्त अवसर है कि इन महिला जनप्रतिनिधियों की भूमिका का अध्ययन किया जाये। भारतीय समाज में नारी को अब मात्र करूणामयी, सेविका, त्यागी, गृह प्रबंधक एवं मातृवत्सला के रूप में ही नही देखा जा रहा है, वरन् वे आधुनिक तकनीकों का प्रयोग करते हुए मानसिक, बौद्धिक, राजनीतिक, आर्थिक व वैज्ञानिक दृष्टि से भी सशक्त हो रहीं हैं। भारतीय समाज में इस नव परिवर्तन से शोषित व प्रताड़ित नारीवर्ग की सुधरती प्रस्थिति को *महिला सशक्तिकरण* की संज्ञा दी जा रही है।

सन् 1919 में मुबंई में हुए महिला सम्मेलन में **महात्मा गांधी** ने कहा था, *"जब तक भारतीय महिलायें आर्थिक व राजनीतिक मामलों में पुरूषों के साथ बराबरी की हिस्सेदारी नही निभाती है तब तक भारत का*

---

* **सहा. प्रोफेसर : राजनीति विज्ञान, शासकीय आदर्श महाविद्यालय, उमरिया (*म. प्र.*)**
** ***शोधार्थी* : राजनीति विज्ञान विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म. प्र.)**

सितारा बुलंद नही होगा।[3]" वस्तुतः समाज के विकास में महिला जनप्रतिनिधियों की भूमिका का विवेचन उनकी उपलब्धियों, समस्याओं व इनके उज्जवल भविष्य के निर्धारण करने जैसे बिन्दुओं के अन्तर्गत करना उचित होगा। इससे वे आधुनिक तकनीकों का लगातार प्रयोग करते हुए समाज में अपनी अति सशक्त भूमिका का निर्वहन कर सकेंगी। सन 2001 में म. प्र. से छत्तीसगढ़ बन जाने के बाद भी म. प्र. क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान के बाद दूसरा और जनसंख्या की दृष्टि से भारत का 6वां बड़ा राज्य है। म. प्र. में एक सदनीय विधानमंडल है। म. प्र. की विधानसभा में 230 सदस्य हैं जिसमें 6 से 7 प्रतिशत महिलाएं ही पहुंच सकीं हैं जिसे लोकतंत्र के लिये संतोषजनक नहीं माना जा रहा है। पूर्व उपराष्ट्रपति कृष्णकांत की पत्नी श्रीमती सुमन कृष्णकांत ने यूनाइटेड वूमन फ्रंट नामक राजनीतिक दल बनाया था जिसमें केवल महिलाओं को ही टिकट दिये जाने की बात कही गई थी किंतु यह दल अपने शैशवकाल में ही समाप्त हो गया।[4]1956 से 2018 तक म. प्र. में 15 विधानसभाएं गठित हुईं हैं। इसमें आदिवासी महिलाएं न केवल विधायक, बल्कि मंत्री, उपमुख्यमंत्री एवं नेता प्रतिपक्ष के रूप में भी कार्य कर चुकी हैं। इन आदिवासी महिला नेत्रियों में उल्लेखनीय हैं-गंगाबाई, जगवा देवी, गिरिजा कुमारी, उर्मिला सिंह, अनुसुईया उईके, जमुना देवी, विजय लक्ष्मी साधौ, मीना सिंह, गीता रामजी उइके, गंगाबाई उरैती, रंजना बघेल, नन्दिनी सिंह मरावी, इमरती देवी, शशि ठाकुर, सरस्वती सिंह, हिना कांवरे, झूमा सोलंकी, निर्मला भूरिया आदि। हिना कांवरे वर्तमान में म. प्र. विधान सभा की उपाध्यक्ष हैं।

सामान्य वर्ग, अनुसूचित जाति एवं पिछड़ा वर्ग की महिला विधायकों में उल्लेखनीय हैं- चन्द्रकली सहाय, सुशीला देवी, गायत्री देवी, विद्यावती चतुर्वेदी, सरला देवी, सुमन जैन, गिरिजा कुमारी, नारायणी देवी, कांता पारेख, रामरानी जौहर, विमला कृष्णा, प्रभा भार्गव, सविता वाजपेयी, डॉ. लालती, मंजू राय, लीला देवी चौधरी, कांता बेन पारेख, यशोधरा राजे सिंधिया, श्रीमती अर्चना चिटनिस, डॉ. कल्पना पारुलेकर,सुधा जैन, साधना स्थापक, डॉ. विनोद पंथी, ललिता यादव, रेंखा यादव, मीरा दीपक यादव, उमादेवी खटीक, मालिनी गौड़, पन्नाबाई प्रजापति, प्रतिभा सिह , इमरती देवी, नीता पटैरिया (पूर्व सांसद) आशारानी एवं लक्ष्मी देवी खराड़ी आदि। श्रीमती एल. बी. लोबो वर्तमान में एंग्लों इंडियन समुदाय से 2003 से अबतक नामित विधायक के रूप में कार्यरत हैं।

विधानसभा चुनाव में दलों की स्थिति-

चुनाव वर्ष	कुल सीटें	कॉग्रेस	जनसंघ/ भाजपा	अन्य दल	कुल महिला विधायक
1957	288	232	10	46	34

1962	288	142	41	115	16
1967	296	167	78	51	11
1972	296	220	48	28	17
1977	320	84	230	6	10
1980	320	246	60	14	19
1985	320	250	58	12	32
1990	320	56	220	54	13
1993	320	174	117	29	13
1998	320	172	119	29	22
2003	230	38	173	19	19
2008	230	71	143	16	25
2013	230	60	162	8	30

लोकतंत्र और विकास के क्षेत्र में विगत कुछ दशकों की उल्लेखनीय प्रगति के परिणामस्वरूप राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी को विशेष महत्व मिलना इस बात का परिचायक है कि हम सच्चे अर्थे में महिला सशक्तिकरण की दिशा में आगे बढ़ रहें हैं। इसमें चुनाव के प्रचार-प्रसार एवं सोशल मीडिया के जरिए सरकार एवं मतदाताओं तक पहुंचने में आधुनिक तकनीकों एवं संचार साधनों की महती भूमिका रही है। उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र ने अपने सहस्राब्दि विकास लक्ष्य (*मिलेनियम डेव्लपमेंट गोल-एमडीजी) में भी* महिला सशक्तिकरण की दिशा में आगे बढ़ने का संकल्प रखा था। [5]

अतः म. प्र. की राजनीति में महिला विधायको को भी समुचित प्रतिनिधित्व और आधुनिक तकनीकों से संबंधित आवश्यक प्रशिक्षण देकर महिला एवं बाल विकास की योजनाओं एवं कार्यक्रमों को समुचित ढ़ग से क्रियान्वित किया जा सकता है, तभी इनका चहुमुखी विकास संभव हो सकेगा। डॉ. बी. आर. अंबेडकर ने राजनीतिक शक्ति को अति महत्वपूर्ण मानते हुये लिखा-" राजनीतिक शक्ति वह मास्टर

चाबी है जिसके द्वारा समाज की समस्याओं रुपी तालों को खोला जा सकता है। " [6]

सामाजिक जीवन का आधार परिवार को माना गया है। परिवार में जितनी सहजतायें होती है, उतनी ही जटिलताये भी। परिवार रुपी गाड़ी नर और नारी रुपी पहियों से ही चलती है। नारी तो मायके एवं ससुराल में बहुमुखी भूमिका का निर्वहन करती है, वह दो परिवारों या कुलों को मिलाने के लिये सेतु के रुप में कार्य करती है। अतः नारी द्वारा मायके एवं ससुराल में किया जानेवाला कार्य एवं व्यवहार दोनो ही उन्हे मान-सम्मान एवं उचित प्रतिनिधित्व दिलाते है, वहीं दूसरी ओर वे शोशित एवं प्रताड़ित भी होती है। इस प्रकार नारी को अपने परिवार एवं समाज में अपनी जिम्मेदारियों कों निभाने हेतु उचित समानतामूलक प्रतिनिधित्व देना नितांत आवश्यक है। 24 में से 20 महिला विधायकों द्वारा प्रश्नावली द्वारा दी गई जानकारी से ज्ञात हुआ है कि सबसे कम शिक्षित/साक्षर दो ही महिला विधायक हैं- मनगवाँ, रीवा से श्रीमती पन्नाबाई प्रजापति मात्र 5 वीं तक ही शिक्षा प्राप्त की हुई हैं। रतलाम ग्रामीण सीट के लिए निर्वाचित श्रीमती लक्ष्मीदेवी खराडी केवल साक्षर हैं।

दो महिला विधायक सदस्य दसवीं पास, एक बारहवीं पास, छः स्नातक और आठ महिला सदस्य स्नातकोत्तर तक शिक्षा प्राप्त किए हुए हैं जबकि महेश्वर की विधायक डॉ. विजय लक्ष्मी साधौ और महिदपुर की विधायक डॉ. कल्पना पारूलेकर डाक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त किए हुए हैं। अतः शैक्षिक दृष्टि से इनकी स्थिति संतोषजनक मानी जा सकती है। 13वीं विधानसभा की महिला विधायकों की शैक्षणिक योग्यता इस ग्राफ में प्रदर्शित है- [7]

महिला विधायकों की शैक्षणिक स्थिति-

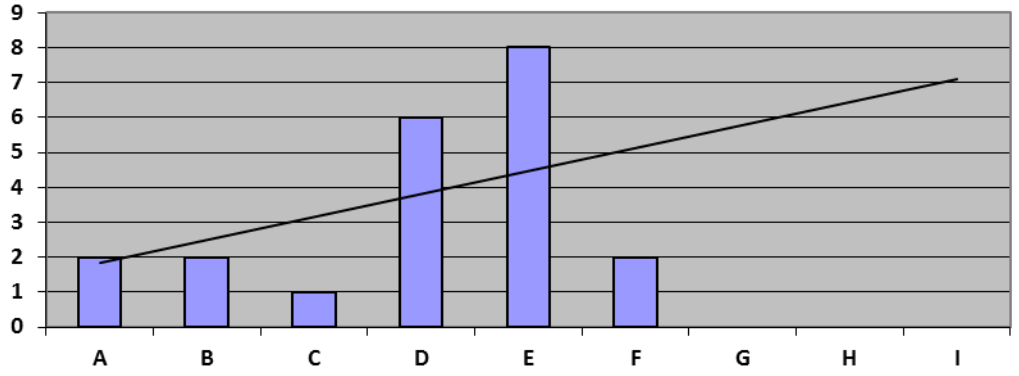

जब स्वतंत्र भारत की पहली लोकसभा चुनाव में 43 महिला उम्मीदवारों में से मात्र 14 ही विजयी हुईं तो नेहरु जी ने इस दयनीय स्थिति पर अपने उद्गार व्यक्त करते हुये लिखा है, "मुझे अफसोस है कि इतनी

कम महिलाएँ चुनाव जीत सकीं हैं। इन्हें जिताना हम सबकी जिम्मेदारी होनी चाहिये क्योंकि हमारे समाज में सर्वत्र पुरुषों का ही वर्चस्व है। वास्तव में महिलाएँ ही भारत के भविष्य की निर्मात्री होंगी।"[8] स्त्री और पुरुष के बीच व्याप्त अंतर को समाप्त करने हेतु मिल ने अपनी पुस्तक सब्जेक्शन ऑफ वूमन में लिखा है- " जब तक महिलाओं को पुरुषो के समान पूर्ण स्वतंत्रता और समानता नहीं दी जाती, तब तक शक्ति हमेशा पुरुष के पक्ष में ही रहेगी और स्त्री उसकी अधीन बनी रहने के लिये बाध्य रहेगी। "[9]

अतः भारतीय लोकतंत्र को और अधिक सफल एवं विश्व के लिये अनुकरणीय बनाने हेतु ठोस कदम उठाने हेतु निम्नवत सुझाव उपयोगी हो सकते हैं-

1. लोकतंत्र और विकास के क्षेत्र में 70 वर्षों की उल्लेखनीय प्रगति के बाद भी राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी को विशेष महत्त्व न मिलना इस बात का परिचायक है कि हम अभी महिला सशक्तिकरण के प्रति प्रतिबद्ध नहीं हैं। अब तक मंत्री परिषदों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व नाममात्र का रहा है। इनके प्रतिनिधित्व को सार्थक बनाने हेतु आवश्यक है कि एक तिहाई मंत्री पद महिलाओं के लिये आरक्षित किये जाने चाहिये। इससे महिलाओं में राजनीतिक महत्त्वकांक्षा जागृत होगी और वे अधिक समर्पण भाव से अपने दयित्वों को पूरा कर सकेंगी।

2. राजनीतिक पार्टियों में भी महिलाओं को संगठन में अधिकतम जिम्मेदारी दी जाय जिससे की महिलाओं को पार्टी और सरकार के कार्यें के बीच सामंजस्य बनाये रखने में सहायता एवं प्रोत्साहन मिल सके। यह अनुभव उन्हें मुख्यमंत्री एवं प्रधानमंत्री के रूप कार्य करने पर उपयोगी होगा।

3. महिलाओं को पर्याप्त राजनीतिक प्रतिनिधित्व देकर ही उन्हें निर्णय प्रक्रिया से जोड़ना संभव होगा, तभी वे सशक्त एवं प्रभावी भूमिका का निर्वहन कर सकने में सक्षम होंगी। जिस प्रकार स्थानीय स्वशासन अर्थात पंचायती राज्य की संस्थाओं में एक तिहाई पद महिलाओं के लिये आरक्षित किये गये हैं, उसी प्रकार संसद एवं राज्य विधानसभाओं में भी महिलाओं को एक तिहाई सीट आरक्षित किया जाना आज की नितांत आवश्यकता है। इस दिशा में म.प्र. में तो 50 प्रतिशत स्थान स्थानीय निकायों के लिए आरक्षित कर म.प्र. शासन ने महिला जनप्रतनिधित्व को एक नया आयाम प्रदान किया है।[10]

4. महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में वास्तविक सफलता पाने के लिये भी जरुरी है कि महिलाओं से संबंधित नीतियों, योजनाओं व कार्यक्रमों के निर्माण और उनके क्रियान्वयन में अधिकतम महिलाओं को निचले स्तर से उच्चतम राजनीतिक स्तरों पर पदस्थ किया जाय तकि इन योजनाओं और कार्यक्रमों के लक्ष्यों को सच्चे अर्थों में पाया जा सके।

5. जब तक निर्णय प्रक्रिया में मानव आबादी के आधे भाग अर्थात महिलाओं को राजनीतिक क्षेत्र में

शामिल नहीं किया जायेगा तब तक हमारी निर्वाचित संस्थाओं एवं कार्यपालिका की निष्पक्षता और सफलता पर प्रश्नचिन्ह लगा रहेगा। यहाँ राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का यह कथन उल्लेखनीय है " महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता को मात्र एक नारे के रुप में ही नहीं, बल्कि राष्ट्रहित में एक बड़े लक्ष्य की पूर्ति का सशक्त माध्यम के रुप में देखा जाना चाहिये।"[11]

6. महिलाओं की राजनीति में आने की वर्तमान स्थिति संतोषजनक न होने के कारण राजनीतिक दलों को स्वयं इस दिशा में सतत् एवं न्यायपूर्ण व्यवहार करते हुये अधिकतम महिला उम्मीदवारों को चुनाव में टिकट दिया जाना चाहिए , तभी अधिकतम महिलाओं को दिया जाने वाला या उनको प्राप्त जनप्रतिनिधित्व एवं जनादेश सही दिशा में आगे बढ़ सकेगा। इसके परिणामस्वरूप राजनीति विज्ञान एवं भारतीय शासन व्यवस्था को निश्चित लाभ होगा।

म. प्र. की राजनीति में महिला विधायकों को अधिकतम प्रत्याशी एवं विजयी बनाकर ही महिला एवं बाल-विकास की योजनाओं एवं कार्यक्रमों को समुचित ढ़ग से क्रियान्वित किया जा सकता है, तभी समाज की आधी आबादी का चहुमुखी विकास संभव हो सकेगा। इसी संदर्भ में नोबल पुरस्कार विजेता व अर्थशास्त्र के प्रोफेसर अमर्त्य सेन ने अपनी पुस्तक ***' India-Economic Development & Social Opportunity '*** में लिखा है," महिलाओं के सशक्तिकरण से न केवल महिलाओं के जीवन में निश्चित रूप से सकारात्मक असर पड़ेगा, बल्कि पुरूषों और बच्चों को भी इससे लाभ होगा। "

स्टगर्स विश्वविद्यालय के महिला नेतृत्व केन्द्र के प्रोफेसर शार्ल व्रान ने भी दृढ़ता से यह तथ्य स्थापित करने की कोशिश की है कि जब तक हमारी महिलाएँ समाज में बराबरी का स्थान प्राप्त नहीं कर लेतीं, तब तक उनके खिलाफ अत्याचार, हिंसा, उत्पीड़न आदि की घटनाएँ होती रहेंगी। अतः महिलाओं को सशक्त और समानता के अधिकार देने के लिये आवश्यक है कि महिलाओं की राजनीति में भागीदारी सुनिश्चित की जाये।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. मल्होत्रा, गुरुदीप चंद, भारतीय संसद के 50 साल, 2002, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, पृष्ठ-617

2. आलम, गजनफर, ज्ञान गरिमा सिंधु , अप्रैल-जून 2018 (अंक : 58), वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव विकास संसाधन मंत्रालय , नई दिल्ली , पृष्ठ-93

3. योजना, अपैल 2012, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, प्रकान विभाग, नई दिल्ली, पृष्ठ -40

4. प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त 2012 (वार्शिक अंक) उपकार प्रकाषन, आगरा पेज - 191

5. संयुक्त राष्ट्र : सहस्राब्दि विकास लक्ष्य http://www.un.org/millenni lmgo lls

6. गाबा, ओम प्रकाश, भारतीय राजनीतिक चिंतन, 2007, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, (उ.प्र.) पृष्ठ-168

7. अन्सारी, नियाज अहमद, मध्य प्रदेश की 13वीं विधानसभा में महिला विधायकों की भूमिका का अध्ययन, (अप्रकाशित शोध प्रबंध) , 2014, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म. प्र.)

8. मध्य प्रदेश संदर्भ, 2018, मध्य प्रदेश जनसंपर्क संचालनालय, भोपाल, पृष्ठ-349

9. मिल, जॉन स्टुअर्ट, महिलाओं की पराधीनता, 2002, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

10. रजनी तिवारी,विधानसभाओं में महिलाएँ : समस्याएँ एवं संभावनाएँ, 2018, ए.पी.एच. पब्लीशिंग कार्पोरेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-137

11. मोदी, सरोज, विधानसभाओं में महिला विधायक, 1991, मित्तल पब्लीकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-

www.mpvidhansbha.com / विधायनी (त्रैमासिक शोध पत्रिका) म. प्र. विधनसभा सचिवालय, भोपाल

***

19. भारतीय गणतंत्र के सात दशक : एक समीक्षा

मो. खलिकुर रहमान*

हम लोग संविधान लागू होने के 70वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। इन सात दशकों में तमाम उपलब्धियाँ हमारे हिस्से आई हैं। यह कतई आसान नहीं था कि करीब 200 वर्षो तक पराधीन रहने और ब्रिटिश राज में तमाम तरह के दमन झेलने वाला यह देश इतनी जल्दी दुनिया की उभरती हुई ताकतों में शुमार हो जाए। आजादी के समय तो हमारी जीवन प्रत्याशा महज 32 वर्ष थी और साक्षरता दर नाममात्र, लेकिन आज हमारी औसत उम्र बढ़कर 65 वर्ष हो गई है और देश की करीब 75 फीसदी आबादी साक्षर है। इन तमाम सफलताओं का आधार निश्चय ही हमारा संविधान है। दरअसल, हमारे संविधान में स्वतंत्रता संग्राम की मूल भावनाओं को ही समेटा गया है। आज़ादी की जंग इस सोच के साथ लड़ी गई थी कि हमें अपनी पसंद का भारत बनाना है। संविधान में इस सोच को बखूबी शामिल किया गया।[1]

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में ही भारत को एक ऐसा संप्रभुतासंपन्न, धर्मनिरपेक्ष गणराज्य बनाने का लक्ष्य साफ कर दिया गया था, जिसमें सभी नागरिकों को न्याय, समानता और जीने के अधिकार हासिल हो। इस आलेख में संविधान की इन्हीं मूल भावनाओं के आलोक में यह जानने और समझने की कोशिश की गई है कि तय लक्ष्यों में से हम अब तक कितना हासिल कर पाये। आगे हमारी रणनीति क्या हो, कैसे हमारी कमियाँ दूर हो और कैसे हम एक ऐसे बहुमुखी विकास की ओर अग्रसर हों।

वास्तव में देखा जाए तो सात दशक का वक्त अगर भारत जैसे विशाल और बहुलतावादी देश के इतिहास में बहुत ज्यादा नहीं होता, तो बहुत कम भी नही होता है। इसलिए अब हम 'क्या पाया, क्या खोया' - इस पर पक्के तौर पर कुछ, नतीजे निकालने की स्थिति में आ चुके हैं।

सकारात्मक पक्ष :

यह कबूल करना होगा कि कई गंभीर चिंताओं के बावजूद बीते सात दशक में देश के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक वातावरण में आमूलचूल परिवर्तन हुए है। मंजिल अभी दूर है लेकिन इस दिशा में भारत के कदम मजबूती से बढ़े हैं, जिनके दम पर आज भारत दुनिया की प्रमुख उभरती हुई अर्थव्यवस्था में शामिल हो गया है।[2]

ज्ञान-विज्ञान और प्रतिभा के मामले में भारत दुनिया के पटल पर तेजी से अपनी जगह बना रहा है। खासकर

* **शोधार्थी राजनीति विज्ञान विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।**

सूचना प्रौधोगिकी और अभियांत्रिकी के क्षेत्र में आज समूची दुनिया भारत का लोहा मान रही है। भारत दुनिया के परमाणु संपन्न देशों में से है और अब तो भारतीय वैज्ञानिक चाँद तक पहुँच चुके है। चाँद पर भारत के दूसरे मिशन चंद्रयान-2 का प्रक्षेपण 22 जुलाई, 2019 को अपनी धरती से इसरो द्वारा भेजा गया है। जो भारत की अंतरिक्ष शक्ति को बताता है।[3]

इन सात दशकों में हमारा लोकतंत्र भी मजबूत हुआ है और संविधान में व्यक्त भावना के अनुरुप देश को एक संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए, हमने कई ऐसे कदम उठाये हैं, जिनसे लोगों में समानता और आत्मसम्मान की भावना पैदा हो।[4] आज लोगों में इस बात का भरोसा जगा है कि देश के सभी नागरिकों को समान अधिकार हासिल हैं और यही वजह है कि जहाँ भी उन्हें लगता है कि उनके मौलिक अधिकारों का हनन हो रहा है तो वे इसके खिलाफ आवाज उठाते हैं।

संविधान में सभी नागरिकों को दिए गए समानता के अधिकार का ही नतीजा है कि आज तमाम तबकों से लोग आगे आ रहे हैं और सर्वोच्य पदों पर आसीन हो रहें हैं। चाहे देश के सर्वोच्च संविधानिक पद राष्ट्रपति का पद हो या उपराष्ट्रपति या फिर सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का पद- अल्पसंख्यकों और वंचित तबकों के लोगों का भी उन तक पहुँचना इस बात को साबित करता है कि भारतीय गणतंत्र अपने नागरिकों को बराबरी दिलाने की दिशा में मजबूती से आगे बढ़ा है।[5] लोगों की आबादी के हिसाब से सत्ता और व्यवस्था में उनकी भागीदारी के अनुपात पर सवाल उठाया जा सकता है लेकिन तमाम विरोधाभासों के बावजूद अगर अलग-अलग भाषाओं, धर्मों, जातियों और क्षेत्रों के लोग इकट्टा होकर देश के विकास के लिए एकजुटता से काम कर रहें है तो यह हमारी बड़ी उपलब्धियों में से एक है।

उल्लेखनीय है कि पिछले सात दशक से भारतीय गणतंत्र जिस तरह से लोगों को सोचने-विचारने और लिखने-बोलने की स्वतंत्रता देने में कामयाब रहा है, वह बेमिसाल है। आपातकाल के दौर को छोड़ दिया जाए तो आज अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मामले में हमारे देश का रिकॉर्ड दुनिया के किसी भी दूसरे देश से कमतर नहीं है। समाज के वंचित लोग पूरे भरोसे के साथ अपनी आवाज़े बुलंद कर रहे हैं। कोई भी व्यक्ति सत्ता और व्यवस्था की आलोचना कर सकता है, विरोध-प्रदर्शन कर सकता है, इंसाफ के लिए अदालतों का दरवाजा खटखटा सकता है। दूर-दराज़ के इलाकों में आर्थिक और सामाजिक रुप से कमज़ोर लोगों को थोड़ी दिक्कतें ज़रुर पेश आती हैं, लेकिन आम तौर पर कानून उनके साथ ही खड़ा रहता है। जहाँ तक हमारे लोकतंत्र के चौथे खंभे यानी मीडिया का सवाल है तो उसे भी यथोचित स्वतंत्रता हासिल है। जनता को सूचना का अधिकार दिया जाना हमारे लोकतंत्र को मजबूत करने की दिशा में एक और अहम कदम है।[6]

उपरोक्त संदर्भ में नोट करने लायक है कि सामाजिक तौर पर भी पिछले सात दशक में हमारा लोकतंत्र ग्रामोन्मुखी हुआ है और पंचायतो को विशेष अधिकार दिए गए हैं; जिससे समाज के निचले तबको तक विकास पहुँचाने में मदद मिल रही है। दलितों, पिछड़ों, अल्पसंख्यकों और महिलाओं की अलग-अलग क्षेत्रों में भागीदारी बढ़ी है। एक तरफ महिलाएँ घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर तमाम क्षेत्रों में अपना लोहा मानव रहीं है, तो दूसरी तरफ अलग-अलग जातियों के लोग भी अब अपने-अपने परम्परागत कामों के दायरों से बाहर निकलकर सभी क्षेत्रों में अपना योगदान दे रहे हैं। जो समुदाय सामाजिक और आर्थिक तौर पर अब भी पिछड़े हैं, उन्हें आरक्षण का लाभ देकर आगे लाने की कोशिश की जा रही है।[7] रोज़गार गारंटी योजना के जरिए भी कमजोर लोगों के सामाजिक और आर्थिक उत्थान की कोशिशें चल रही हैं। आदिवासियों के हितों की कुछ अनदेखी ज़रूर हुई है, लेकिन अब उनके हक में ज़ोर-शोर से आवाजें उठ रही हैं।

स्पष्ट है कि संविधान में किए गए तमाम इंतजामों की बदौलत देश पिछले सात दशक में विकास के पहिए पर सवार होकर हर क्षेत्र में आगे बढ़ा है। बिजली और सड़कों की स्थिति मजबूत हुई है। अमूमन हर इलाके में उद्योग धंधे पहले की तुलना में बढ़े हैं और संपन्नता के चिन्ह अब हर जगह दिखाई देने लगे हैं। विगत वर्षो की विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के दौरान भारत ने साबित कर दिया कि उसकी अर्थव्यवस्था की बुनियाद दुनिया के कई मजबूत माने जाने वाले देशो से कहीं ज्यादा पुख्ता है। भारत की अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संबंध अनुसंधान परिषद् के एक अध्ययन के अनुसार[8], आर्थिक विकास की रफ्तार के मामले में अगर अगले दस साल में भारत चीन को भी पछाड़ दें तो हैरानी की बात नहीं। भारत का विशाल घरेलू बाज़ार, उन्नत तकनीक के बूते घटती उत्पादन लागत और कृषि पैदावार बढ़ाने की रणनीति इसमें कारगर साबित हो सकता है।

नकारात्मक पक्ष

इन सुनहरी तस्वीरों का मतलब यह भी नही है कि सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा है। हम आगे जरूर बढ़े है लेकिन अब तक वहाँ नहीं पहुँच पाये है, जहाँ हमें होना चाहिए था। लगातार जागरूकता द्वारा जनता की बदौलत लोकतंत्र की जड़ें ज़रूर मजबूत हुई हैं, लेकिन पिछले सात दशक में राजनीति लगातार विकृत होती गई है। खासकर भ्रष्टाचार, सम्प्रदायवाद, अपराधीकरण और वंशवाद ने इसे पूरी तरह जकड़ लिया है। चुनाव से अच्छे लोग लगातार दूर होते गए हैं। प्रमुख राजनीतिक दल या तो पूंजीपतियों और बाहुबलियों को टिकट दे रहे हैं या फिर पहले से स्थापित नेताओं के नाते-रिश्तेदारों को। देश की ज्यादातर पार्टियों के प्रमुख नेतागण अब अपने पूरे परिवार के साथ संसद और विधानसभाओं में सीटें

कब्जाकर बैठे हुए हैं। चुनाव में सांप्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद और भाई-जातिवाद का बोलबाला है।

2014 के लोकसभा चुनाव से विकास एक प्रमुख मुद्दा बनकर उभरा है लेकिन राजनीति और व्यवस्था की नस-नस में फैल चुका भ्रष्टाचार इस विकास के रास्ते में भी रोड़े अटका रहा है। खुद पूर्व प्रधानमंत्री स्व0 राजीव गाँधी को भी कबूल करना पड़ा था कि भ्रष्टाचार की वजह से एक रूपये में सिर्फ 15 पैसा ही आम आदमी तक पहुँच पाता है।[9] राजीव गाँधी के वक्त से अब तक तो हालात और भी बिगड़े हैं। आज सरकार बनाने और गिराने के लिए पैसे का खुला खेल चलता है। आलम यह है कि नेताओं और मंत्रियों पर भ्रष्टाचार के आरोप अब जनता को तनिक भी हैरान नहीं करते। कहीं न कहीं लगता है कि राजनीति येन-केन प्रकारेण अब सत्ता पर काबिज होने का हथियार और बेहिसाब संपत्ति इकट्ठा करने का धंधा बन गई है। यह भारतीय लोकतंत्र के लिए एक खतरनाक संकेत है। चूँकि संसद और विधानसभाओं मे देश के लिए सोचने वाले जन-प्रतिनिधियों की संख्या लगातार कम हुई है, इसलिए सदन में बहस का स्तर भी गिरता चला गया है।[10] दुर्भाग्य से संसद और विधानसभाओं का बहुत सारा वक्त हंगामों, शोर-शराबों और कभी-कभी तो जूतम-पैजार तक में खराब हो रहा है। ज़ाहिर है, जिन संस्थाओं की बदौलत हमारा लोकतंत्र बुलंद है, वहाँ राजनीति का स्तर लगातार गिरा है और जनता की चिंता करने वाले लोग लगातार कम हुए हैं।

इसी का नतीजा है कि देश को 'राजनीतिक आजादी' मिले भले 73 साल बीत चुके हैं, लेकिन 'आर्थिक सामाजिक' आजादी का बापू का सपना अभी भी अधूरा है। गरीबी और भूखमरी आज इतने साल बाद भी देश के सामने गंभीर समस्या के तौर पर मुँह बाए खड़ी है। कई जानकार सकल घरेलु उत्पाद (GDP) के चमकदार आंकड़ों को पूरी सच्चाई नहीं मानते। सामाजिक कार्यकर्ता वंदना शिवा की अध्यक्षता वाली संस्था 'नवदान्य ट्रस्ट' की एक रिपोर्ट के मुताबिक देश का हर पाँचवा शख्स भूखा है। यहाँ 21 करोड़ से अधिक जनसंख्या को भरपेट भोजन नहीं मिल पाता है। इस रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि बढ़ती मंहगाई और सार्वजनिक वितरण प्रणाली में विसंगतियो की वजह से पिछले दस साल में प्रति व्यक्ति अनाज की खपत भी 34 किलो से कम हो गई है।

रिपोर्ट में इस बात पर हैरानी जताई गई है कि एक तरफ लोग भूखे हैं, दूसरी तरफ खाने-पीने की चीजों पर सरकारी सब्सिडी घट रही है।[11] भयावह गरीबी का ही नतीजा है कि दुनिया में सबसे ज्यादा बाल-मजदूर भी भारत में ही है। बच्चों के लिए काम करने वाली संस्था 'क्राई' के अनुमान के मुताबिक भारत में इस वक्त करीब 1 करोड़ 70 लाख बच्चे पढ़ने-लिखने और खेलने-कूदने की उम्र में मजदूरी करके अपना और परिवार का पेट चलाते हैं। इनके अलावा बड़ी संख्या में बच्चे सड़कों, रेलवे स्टेशनों, बाजारों और मंदिर-मस्जिद जैसी जगहों पर भीख माँग रहे हैं, जिनका आंकड़ा तक किसी के पास नहीं है। शिक्षा के

मोर्चे पर भी हमारी रफ्तार बिल्कुल संतोषजनक नहीं कही जा सकती। गौरतलब है कि साक्षरता का मतलब कोई विद्वान होना भी नहीं है। इसका मतलब सिर्फ रोजमर्रा की जरूरतों के मुताबिक लिखने-पढ़ने का बुनियादी ज्ञान भर है। हम 21वीं सदी का चाहे जितना शोर मचा लें और महानगरीय रंगीनियों और शहरी विकास पर चाहे जितना गुमान कर लें। लेकिन हर व्यक्ति तक शिक्षा की रोशनी पहुँचाये बिना लोगों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय तथा प्रतिष्ठा और अवसर की बराबरी दिलाने का संविधान में लिया गया संकल्प पूरा करना संभव नहीं है।

स्वास्थ्य के मामलें में यही कहना है कि **"आयुष्मान भारत योजना"** 5 लाख रू. तक स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने के लिए व्यवस्था की गई है। लेकिन मई, जून, जूलाई 2019 के महीने में बिहार के मुजफ्फरपुर जिला में चमकी बुखार से हजारों बच्चो की जान चली गई। व्यवस्था सिर्फ मानसून आने की इंतजार कर रहा थी ताकि गर्मी कम हो तो बच्चों की मरने की संख्या भी कम हो जायेगी। अभी तक उचित चिकित्सीय व्यवस्था इस संदर्भ में नहीं हो पाई है।

भारतीय गणतंत्र एक कृषि प्रधान देश है लेकिन यहाँ किसानों की कमर क्यों टूटी हुई है ? खेती-बाडी का क्षेत्र क्यों लगातार उपेक्षा का शिकार हो रहा है ? क्यों किसानों की मकई 10 रू0 किलो भी नहीं बिकती, जबकि महानगरों में पूंजीपति उसे पॉपकॉर्न के रूप में 50 रूपये में 50 ग्राम बेच रहे हैं। खेती महंगी होती जा रही है। महंगे होते खाद-बीज किसानों को बेहाल किए हुए हैं। सिंचाई की समुचित व्यवस्था और बिजली के अभाव की वजह से मॉनसून पर उसकी निर्भरता लगातार बनी हुई है। ज्यादातर छोटे और सीमांत किसान कर्ज में डूबे हुए हैं और लाचार होकर हर साल बड़ी संख्या में आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहे हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि सरकार की कर्ज माफी योजना के बावजूद महाराष्ट्र के विदर्भ, तेलंगाना और आन्ध्रा के रायलसीमा के इलाके में किसानों की आत्महत्या की खबरें इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। जाहिर है, आर्थिक उदारीकरण के दौर में कहीं-न-कहीं खेती किसानो से जुड़ी चिंताए हमारी प्राथमिकता से पिछड़ गई हैं।[12]

जहाँ तक भारतीय संविधान में वर्णित सामाजिक आर्थिक समानता का सवाल है तो संविधान बराबरी के वादे के बावजूद अब तक सामाजिक आर्थिक बराबरी और उन्नति के मौके भूमिहीनों और आदिवासियों को नहीं मिल पाए हैं। जिसका विस्फोट देश के कई हिस्से में नक्सलवादी हिंसा के तौर पर दिखाई दे रहा है। हालांकि 1967 में पश्चिम बंगाल के नक्सलबाड़ी इलाके में जिस नक्सलवाद का बीज एक सामाजिक-आर्थिक समस्या की प्रक्रिया के तौर पर पड़ा।[13] आज वह सिर्फ सामाजिक-आर्थिक समस्या भर नहीं रह गया है बल्कि कानून-व्यवस्था से जुड़ी एक ऐसी गंभीर समस्या बन चुका है, जिसकी

चपेट में बिहार, झारखण्ड, उड़िसा, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ समेत देश के तेरह राज्यों के करीब 125 जिले आ चुके है। पिछले 73 साल में भारतीय राज व्यवस्था ने लगातार इस समस्या को गंभीर होने दिया, इसीलिए आज नक्सलियों के हाथ-पाँव इतने लंबे हो चुके हैं कि वह खुद को सरकार मानते हैं।

भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में ऐसी किसी हिंसा से सहानुभूति कतई नहीं रखी जा सकती, जो बेगुनाहों की ज़िन्दगी से सरेआम खून की होली खेलती हो। इसलिए तो बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार का कहना है कि नक्सली समस्या के समाधान के लिए जरूरत इस बात की है कि नक्सलियों से बातचीत की जाए और उन्हें मुख्यधारा में शामिल हाने का मौका दिया जाए। भूमि-सुधार कानूनों को गंभीरता से लागू करके भूमिहिनों को तरक्की का मौका मुहैया कराया जाए। जहाँ तक जनजातियों का प्रश्न है तो जंगलो में रहने वाली जनजातियों को जंगल की उपज पर अधिकार दिया जाए।[14]

एक तरफ देश के अंदर नक्सलवाद को बल मिला है तो बाहर से आतंकवाद का खतरा हमारे लोकतंत्र को चुनौती दे रहा है। पिछले सात दशक में पाकिस्तान तीन-चार युद्ध छेड़ चुका है। सीधी लड़ाइयों में चूँकि वह टिकता नहीं, इसलिए बेहद शातिराना अंदाज में उसने भारत के खिलाफ लगातार एक छद्म युद्ध छेड़ रखा है। भारत के अभिन्न अंग कश्मीर को मुद्दा बनाकर वह हिंसा का ऐसा तांडव रच रहा है, जिसके जरिये उसकी मंशा न सिर्फ पूरे देश में दहशत का माहौल पैदा करने की है, बल्कि भारत को सांप्रदायिकता की आग में झोंककर इसकी एकता और अखंडता को खतरा पहुँचाने की भी है। 26/11 मुंबई पर हमले के बाद से तो पाकिस्तान पूरी तरह से बेनकाब हो चुका है।[15] आतंकवाद के अलावा पूर्वोत्तर के अलगाववादियों से निपटना भी भारत के लिए लगातार चुनौती बना हुआ है। ज़ाहिर है आने वाले वक्त में आतंकवाद और उग्रवाद समेत दूसरे मुल्कों की साजिशों से निपटने में भारतीय लोकतंत्र की ताकत का और इम्तेहान होगा।

किसी भी लोकतंत्र की मजबूती में न्याय-प्रणाली का बहुत बड़ा योगदान होता है। लोगों को जितनी जल्दी सही न्याय मिलेगा, लोकतंत्र में उनकी आस्था उतनी बढ़ेगी। लेकिन दुर्भाग्य से भारतीय लोकतंत्र अब-तक इस मामले में करीब-करीब नाकाम रहा है। अदालतों में मामले सालों-साल चलते है। इंसाफ की आस में पीढ़ियाँ खत्म हो जाती हैं लेकिन इंसाफ नहीं मिलता। न्यायिक व्यवस्था मजबूत होने के बावजूद दुनिया में भारत में सबसे अधिक मामले न्यायालय में लंबित है और इस कारण मामलों के निपटारे मे यहाँ समय भी अधिक लगता है। हमारी न्याय व्यवस्था की एक और बड़ी विसंगति यह है कि एक तरफ जहाँ बड़ी संख्या मे विचाराधीन कैदी बिना जुर्म साबित हुए लंबे समय तक जेलों में सड़ते रहते हैं, वहीं दूसरी तरफ कई मामलों में निचली अदालतों से सजा होने के बावजूद ताकतवर लोग उपरी अदालतों से सजा पर

स्टे ले लेते हैं और खुलेआम घूमते रहते हैं।[16]

अन्त में, कहा जा सकता है कुछ खामियों के बावजूद भारतीय गणतंत्र की जड़ें काफी मजबूत हैं। यहाँ जनता अपने मताधिकार का प्रयोग करके सरकारें बदलती रहती है। न्यायालय स्वतंत्र होकर निर्णय देते हैं। विधायिका जनकल्याण से जुड़ी नीति को प्रमुखता देती है। सरकारें जन सरोकार से जुड़े कार्यक्रम चलाती हैं। अभी 05 अगस्त 2019 को केन्द्र की मोदी सरकार ने ऐतिहासिक फैसला लेते हुए जम्मू-कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा देने वाले अनुच्छेद 370 को खत्म कर दिया। राज्य को दो हिस्सो में बाँट दिया। जिसे संसद की मंजूरी मिल चुकी है। अब देखना होगा कि जम्मू-कश्मीर का विकास के जरिए स्थाई हल निकलता है कि नहीं। आज भारत 70 साल गणतंत्र के रूप में सफलतापूर्वक बिता चुका है। 21वीं सदी मे भारत नये-नये कीर्तिमान स्थापित कर रहा है। वास्तव में, भारत एक विकसित राष्ट्र की ओर अग्रसर हो रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. संपादकीय, हिन्दुस्तान - मुजफ्फरपुर, 26 जनवरी 2019, पृ.-14
2. राय, सुरनजीता, "एक्सपेरिएसिंग इंडियन डेमोक्रेटिक स्टेट" मेनस्ट्रीम- नई दिल्ली, वॉल्यूम XLVIII, नं.-18, अप्रैल 24, 2010 पृष्ठ-16-19.
3. हिन्दुस्तान- मुजफ्फरपुर, 31 अगस्त 2019, पृ.-18.
4. शिवाच, जे. आर., इंडियन गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स, स्टर्लिंग, न्यू दिल्ली, 1986, पृ.-08.
5. नीरजा गोपाल (सम्पादक) डेमोक्रेसी इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2001, पृ.-76-79.
6. ब्रास, पॉल आर., "इंडियाज डेवलपमेंट स्टेट" इन लायड आई. रूडोल्फ एण्ड जॉन कर्ट जैकब्सन (सं.) एक्सपिरियंसिंग द स्टेट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली, 2006, पृ.-102-106.
7. श्रीवास्तव, सीमा, भारतीय राजनीति की परिवर्तनकारी प्रकृतिः एक अध्ययन, न्यू रॉयल कम्पनी, लखनउ, 2005.
8. देखें, भारत की अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संबंध अनुसंधान परिषद् का अध्ययन (2008).
9. सिंह, महेश्वर, भारतीय लोकतंत्रः समस्या व समाधान, साहित्यागार, जयपुर, 2000, पृ.-22-26.
10. उपरोक्त
11. नवदान्य ट्रस्ट की रिपोर्ट, 2009.
12. राय, सुरनजीता, मेनस्ट्रीम, 2010

13. मोहंती, मनोरंजन, रिवोल्यूशनरी वायलेंस : ए स्टडी ऑफ माओइस्ट वायलेंस, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1977, पृ.-82-85.
14. राजा, डी0, "प्रोटेक्ट द ट्राईबल पिपल टू टैकल माओईज्म" मेन्स्ट्रीम, नई दिल्ली, वॉल्यूम-XLVIII, नं.-18 अप्रैल 24,2010, पृ.-4-8.
15. वर्मा, जगदीश प्रसाद, " इस्लामिक टेर्ररिज्म एण्ड द इंडियन एक्सपेरियंस" साउथ एशिया पॉलिटिक्स, नई दिल्ली, वॉल्यूम-7, नं.-08, दिसम्बर 2008, पृ.-21-24.
16. पालानिथुराई, जी0 " इंडियन डेमोक्रेसीः- ए रिथिंकिंग साउथ एशिया पॉलिटिक्स, वॉल्यूम-6, नं.-5, सितम्बर 2007, पृ.-20-24.

***

20. अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक संस्थाएँ और तकनीकी शब्दावली

डॉ मयंक कुमार सिंह*

1776 ई अर्थशास्त्र के स्वतन्त्र विषय के रूप में स्थापित होने से लेकर वर्तमान समय तक अन्तरराष्ट्रीय व्यापार किसी भी विकसित या विकासशील देश के समावेशी विकास की कुँजी साबित हो रहा है। अधिकाशतः यूरोपीय देशों, अमेरिका व सोवियत रूस ने अर्थशास्त्र के अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के विकास मॉडल को अपने अध्ययन के केन्द्र बिन्दु में रखा। विकास के इस मॉडल ने यूरोप व अमेरिका महाद्विप के देशों को पर्याप्त मात्रा में लाभान्वित किया, परन्तु इस विकास की इस अन्धी दौड़ ने धन को साधन की जगह साध्य का पर्याय बना दिया और व्यक्ति को साधन के रूप में स्थापित कर दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान विकसित देशों को यह महसूस हुआ कि विकासशील देशों के सहयोग और सामन्जस्य के बिना अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के लिए अनुकूल वातावरण को लम्बे समय तक स्थापित नही किया जा सकता है। अतः इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विश्व के अधिकांशत देशों ने एक मंच पर आकर विश्वशांति व अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के अनुकूल वातावरण तैयार करने की योजना बनाई और यहीं से अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं के उदय एवं विकास की यात्रा शुरू हुई। वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक जगत में बहुत सारी संस्थाएँ काम कर रही हैं। इनमे से कुछ संस्थाएँ द्विपक्षीय व्यापार को प्रोत्साहित करने का काम करती है और वहीं कुछ क्षेत्रीय व्यापार के लिए परन्तु कुछ ऐसी संस्थाएँ भी हैं जो पूरे विश्व के समस्त देशों के समावेशी विकास व उनके नागरिकों के जीवन स्तर को उन्नत बनाने के लिए कार्यरत हैं। विश्व बैंक समूह, अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व व्यापार संगठन उन्हीं संस्थाओं में से एक है जो एक तरफ आर्थिक विकास के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिए प्रतिबद्ध है, वहीं दूसरी तरफ आर्थिक वातावरण के अस्थायित्व के लिए भी प्रयासरत है।

अन्तरराष्ट्रीय संस्थाएँ सिर्फ अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के विकास के लिए ही काम नही करती हैं, वरन् इनका उद्देश्य सामाजिक उन्नति व मानव कल्याण भी है, क्योंकि अर्थशास्त्र की मूल प्रकृति वास्तविक न होकर आदर्शात्मक है। कार्ल मार्क्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक '**दास कैपिटल**' में उल्लेख किया है कि सामाजिक संघर्ष का मूल कारण आय का असमान वितरण है। जिससे धनी और गरीब वर्ग के बीच की दूरी निरन्तर बढ़ती रहती है, और अपर्याप्त प्रशासनिक हस्तक्षेप के कारण उनकी एकाधिकारी प्रवृति में वृद्धि होती रहती है, जिससे विकास दीर्घकाल तक स्थापित नहीं हो पाता है और सामाजिक क्रान्ति का दौर शुरू हो जाता है। जिससे विकास की प्रक्रिया पूरी तरह समाप्त हो जाती है और पुनः नए सिरे से उसे

* **सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कालेज, वाराणसी।**

स्थापित करना पड़ता है। इन्हीं समस्याओं के कारण अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं की मांग शुरू हुई। अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक संस्थाएँ अपने स्थापना काल से लेकर अब तक इन्हीं आर्थिक एवं व्यापारिक समस्याओं को लेकर अपने नियमों में संशोधन करती रही हैं, ताकि अन्तरराष्ट्रीय समरसता, समावेशी विकास व अधिकतम सामाजिक उन्नति को दीर्घकाल तक स्थापित किया जा सके।

अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं की अपनी आर्थिक नीतियां व तकनीकी शब्दावली होती है, जो किसी भी देश के व्यक्तिगत नियमों से भिन्न होती हैं, क्योंकि इन संस्थाओं के उद्देश्यों और कार्यक्षेत्र का दायरा, व्यक्तिगत देशों की अपेक्षा बहुत बड़ा होता है, इसे हम एक उदाहरण से समझ सकते है, एक देश अपने विकास के मापन के रूप में प्रति व्यक्ति आय या सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि की दर को देखता है। जबकि अन्तरराष्ट्रीय संस्थाएँ विश्व के देशों की आर्थिक दरों का निरपेक्ष नहीं वरन् सापेक्ष अध्ययन करती हैं। जिसके लिए या तो वह मानव विकास सूचकांक या क्रय शक्ति समता सिद्धान्त का प्रयोग करतीं हैं। क्रय शक्ति समता से तात्पर्य यह है कि किसी देश की अपनी मुद्रा की कितनी इकाई के द्वारा लगभग 650 वस्तु समूह का क्रय व उपभोग किया जा सकता है और इसी आधार पर विनिमय दर का निर्धारण भी किया जाता है, जो वास्तविक विनिमय दर से भिन्न होती है। जैसे भारत की मुद्रा **रूपया** की 65 इकाई के द्वारा अमेरिका की मुद्रा **डॉलर** की एक इकाई खरीद सकती है, यह विनिमय की वास्तविक दर है परन्तु अगर 650 वस्तुओं के समूह को भारत में 1000 रूपये से क्रय व उपभोग किया जा सके और इन्ही वस्तुओं को अमेरिका में 200 डॉलर के द्वारा क्रय व उपभोग किया जा सके तो क्रय शक्ति समता सिद्धान्त पर विनिमय दर वास्तविक विनिमय दर से अलग होगी और डॉलर की एक इकाई रूपया के पांच इकाई के बराबर होगी जो विश्व अर्थव्यवस्था के वास्तविक स्थिति का ज्ञान ही नहीं कराता बल्कि इससे इन देशों में रह रहे नागरिकों के बीच की उपभोग प्रवृत्ति व जीवन स्तर की तुलनात्मक स्थिति को भी समझा जा सकता है। इसी प्रकार विकास के मापन की प्रक्रिया की भी व्याख्या की जा सकती है। अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं ने घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर को वरीयता न देते हुए मानव विकास सूचकांक को विकास का आधार बनाया है क्योंकि घरेलू उत्पाद के मापन की प्रक्रिया अलग-अलग देशों में अलग-अलग प्रकार की होती है, वही पर मानव विकास सूचकांक सिर्फ प्रतिव्यक्ति आय ही नहीं बल्कि जीवन प्रत्याशा व शिक्षा के स्तर को भी सम्मिलित करता है, जो किसी भी देश के वास्तविक आर्थिक व सामाजिक परिदृश्य का भान कराता है। मानव विकास सूचकांक के आधार पर कोई भी देश किसी भी देश से अपनी तुलना करके यह समझ सकता है कि अन्तरराष्ट्रीय बिरादरी में उसकी जगह कहां है और विकास का उच्चतम मापदण्ड कहां है? इसी मापदण्ड को रोस्टोव के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कौन सा देश विकास की किस अवस्था से गुजर रहा है। विश्व बैंक व अन्य संस्थाएँ अपने-अपने मंच से समस्त विश्व

के समावेशी विकास के लिए निरन्तर प्रयासरत है। विश्व बैंक की स्थापना 1944 में हुई, वर्तमान समय में विश्व बैंक में 187 देश सदस्य हैं और विश्व बैंक द्वारा समय-समय पर इन देशों पर कृषि, सिंचाई, शहरीकरण संबंधी मदों में अनुदान, सरल ऋण और ठोस ऋण प्रदान किया जाता है। अनुदान से तात्पर्य उस राशि से है, जिस पर कोई ब्याज नहीं लगता और उस देश को उस राशि की एक तय सीमा का भुगतान एक तय समय के अन्दर करते रहना होता है। जबकि **सरल ऋण** वह राशि है जिस पर विश्व बैंक बहुत ब्याज वसूल करता है,व ठोस ऋण विकसित देशों को उच्चतम ब्याज दर पर प्रदान की जाने वाली राशि को कहा जाता है। विश्व बैंक भी एक अनुषंगी संस्था है जिसे अन्तरराष्ट्रीय विकास संस्थान कहा जाता है। जिसकी स्थापना 1960 में की गई जिसमें अब तक 173 देश सदस्य हैं, जो 17 अलग-अलग सामाजिक मापदण्डों के लिए 77 विकासशील देशों को सरल ऋण प्रदान करता है। इसलिए इस संस्था को अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक शब्दावली में सरल ऋण की खिड़की भी कहा जाता है। अन्तरराष्ट्रीय विकास संस्थान जिस मानक पर ऋण प्रदान करता है उसमें सबसे पहला जो मानक है वह है गरीबी मानक अर्थात् किसी विशेष देश में गरीबी का स्तर क्या है? तथा दूसरा व तीसरा मानक क्रमशः **कार्य_कुशलता** और **परियोजना मानक** है।

विश्व बैंक समूह की तीसरी इकाई जिसे हम अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय निगम कहते हैं, जिसकी स्थापना 1956 में हुई यह विश्व बैंक समूह की एक व्यक्तिगत संस्था है जो अपने 184 सदस्य देशों के मध्य उद्यमी प्रोत्साहन व उनके कार्य विस्तार के लिए प्रयास करती है। यह ऋण जाल में फंसे निगमों के लिए एक वरदान साबित हो रही है, **ऋण जाल** से तात्पर्य यह है कि कोई देश या निगम अपने पुराने ऋणों के भुगतान के लिए अगर नए ऋण ले रही है, तो वह ऋण जाल से ग्रसित है। ऋण जाल की यह स्थिति तब उत्पन्न होती है, जब कोई देश या निगम प्राप्त किए गए ऋणों का उपयोग उत्पादकीय कार्यों में न करके किसी अन्य कार्यो में करता है, और इस सन्दर्भ में यह भी जानना महत्वपूर्ण है कि किसी भी देश के व्यय की चार मदें होती हैं, पहली मद **प्रशासनिक व्यय** होती जिसमें सरकार प्रशासनिक संरचना का पोषण व संरक्षण करती है, दूसरा **आर्थिक व्यय** है जिसमें सरकार उत्पादकीय कार्यों पर व्यय करती है, जो उक्त देश के आय के स्रोत का माध्यम बनती है और सरकार की आय की महत्वपूर्ण मद होती है। तीसरी व चौथी क्रमशः **सामाजिक एवं सामुदायिक** व्यय है जिसमें सरकार अपने आदर्श व्यय स्वरूप के उद्देश्य की पूर्ति करती है और अधिकतम सामाजिक कल्याण को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहती है, परन्तु विकासशील देशों के पास व्यय के लिए आय के पर्याप्त साधन न होने के कारण ऐसी संस्थाओ की उपयोगिता और बढ़ जाती है।

इसी क्रम में विश्व बैंक समूह की चौथी संस्था, बहुपक्षीय निवेश गारण्टी एजेन्सी है, जो 1988 से

लेकर अब तक सदस्य देशों के बीच विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को प्रोत्साहित करके उनके आर्थिक वृद्धि को अनुकूलतम स्तर पर बनाये रखने के लिए पर्याप्त मदद प्रदान करता है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, किसी देश में किसी दूसरे देश की सरकार या नागरिकों के द्वारा किया जाने वाला निवेश कहलाता है। वर्तमान परिदृश्य में चीन विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के मामलें में विश्व में पहले पायदान पर है। विश्व बैंक की पाँचवी व अन्तिम संस्था वह है, जो सदस्य देशो के बीच उत्पन्न हुए निवेश विवाद के निपटारे का काम करता है।

अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक संस्थाएँ अपने कार्य का निष्पादन अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए करती है, जिसका सबसे पहला उद्देश्य सदस्य देशों के मध्य होने वाले अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के बीच सहयोग व सामन्जस्य बनाये रखना है अर्थात् किसी भी देश के भुगतान सन्तुलन के प्रतिकूल होने पर उन्हें उचित व जरूरी सलाह और सहयोग देना। भुगतान सन्तुलन किसी भी देश के द्वारा विश्व के समस्त देशों के साथ होने वाले आर्थिक लेन-देन का व्यवस्थित अभिलेख होता है। जो राजस्व व पूँजीगत खातों में विभाजित होता है। व्यापारिक उदारीकरण नीति भी इन संस्थाओं का एक प्रमुख उद्देश्य है, व्यापारिक उदारीकरण नीति से तात्पर्य सदस्य देशों के मध्य बिना किसी आर्थिक बाधाओं के व्यापार के अनुकूल माहौल तैयार करने वाले नियम व शर्तों से है, जिसका सदस्य देशों को पालन करना ही पड़ता है।

ये संस्थाएँ विश्व के विभिन्न देशों के बीच विनियम की वास्तविक दर को समायोजित करने का भी कार्य करती हैं। अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के नियमन की सर्वोच्च संस्था अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष है, जिसकी मुद्रा को कागजी सोना भी कहते हैं क्योंकि इसकी सर्वग्राहता विश्व के समस्त देशों के लिए है। जिसे 1969 मे बनाया गया, जिसे तकनीकी रूप से विशेष आहरण अधिकार (SDR) कहा जाता है, जो विश्व के पाँच विकसित देशों की मुद्राओं को मिलाकर बनाया गया है। यह एक कागजी मुद्रा है, जिसका भौतिक रूप से कोई अस्तित्व नही हैं। इन पाँच मुद्राओं में अमेरिकी डॉलर, यूरो, चाइनीज युआन, जापानी येन व पौण्ड सम्मिलित हैं। अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का प्रमुख कार्य विश्व अर्थव्यवस्था के लिए अनुकूल वातावरण तैयार कर उचित आकार प्रदान करना व अन्तरराष्ट्रीय मौद्रिक तन्त्र में स्थिरता बनाये रखना है। यह संरचनात्मक समायोजन सुविधा के तहत गरीब व विकासशील देशों को भुगतान संतुलन के प्रतिकूल प्रभाव से निपटने के लिए सरल ऋण या अनुदान की व्यवस्था करता है, जिसकी प्रवृति दीर्घकालीन होती है। इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य अन्तरराष्ट्रीय तरलता को बढ़ाना है जिससे सदस्य देशो के बीच भुगतान संतुलन की कोई समस्या न आये। 1970 के दशक मे उत्पन्न हुए ऋण संकट से विश्व के विकासशील देशो को उबारने का महत्वपूर्ण कार्य इसी संस्था के द्वारा किया गया।

अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं के क्रम में अगला स्थान विश्व व्यापार संगठन का है। जो 1995 में अस्तिव में आया। यह संस्था विश्व व्यापार की रूकावटों के हल के रूप में कार्य करती है और स्वतन्त्र

व्यापार के लिए उचित वातावरण तैयार करती है क्योंकि स्वस्थ प्रतियोगिता व्यापार को परिष्कृत करती है और यह संसाधनों के दुरूपयोग को भी रोकता है। यह संस्था अपने सदस्य देशों के बीच सामूहिक व एकीकृत नीतियों का निर्माण करता है जो विश्व व्यापार को प्रोत्साहित करता है और पालन न करने कि स्थिति में किसी भी देश के साथ उचित दण्डात्मक कार्यवाही भी करता है। संरक्षणात्मक व्यापार को व्यापारिक उदारीकरण की तरफ ले जाना ही इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य है।

इन वैश्विक आर्थिक संस्थाओं से अलग विश्व में कई महत्वपूर्ण क्षेत्रीय आर्थिक व व्यापारिक संस्थाएँ भी वजूद में रहती है, जो विश्व शांति व अन्तरराष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाने का कार्य करती है। जिसमे एक यूरोपीय यूनियन है जो सदस्य देशों के बीच आर्थिक नीतियों को ही एकीकृत नहीं करती वरन् मौद्रिक नीतियों के केन्द्रीकृत प्रणाली लागू करने में भी सफलता पाती है। यूरोपीय यूनियन के समस्त सदस्य देश एक ही मुद्रा का प्रयोग करते हैं, जिसे यूरो कहा जाता है। अन्तरराष्ट्रीय सहयोग की यह एक आदर्श संस्था मानी जाती है। इसके अलावा ब्रिक्स, नाफ्टा एवं आशियान प्रमुख क्षेत्रीय आर्थिक व्यापारिक संगठन है जो सदस्य देशों के बीच सहयोग और सामन्जस्य स्थापित करते हैं तथा उनके बीच उत्पन्न आर्थिक विवादों का निपटारा भी करते हैं, जिससे सदस्य देशों के बीच व्यापार का स्वस्थ माहौल तैयार हो सके।

हम कह सकते हैं कि विश्व में सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति में इन संस्थाओं का अलग-अलग व विशेष महत्व है, जो अपने आर्थिक नीतियों और शब्दावलियों के आधार पर अपने उद्देश्यो को पूरा करने के लिए कार्यरत है। इन संस्थाओ के सफलता का आकलन इसी बात से लगाया जा सकता है कि विश्व के अधिकांशतः सभी देश इन संस्थाओं के सदस्य हैं, और अपने देश की प्रगति व अपने नागरिकों के जीवन स्तर में अनुकूलतम सुधार के लिए इनके सहयोग के आकांक्षी बने रहते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

World Bank and the International Monetary Fund. 2004. Global Monitoring Report 2004. Washington DC.

Mallaby, Sebastion. 2004. The World's Banker: a story of failed States, Financial Crisis, and the Wealth and Poverty of nations. New York: Penguin Press.

World Bank. 2003. a Guide to the World Bank. Washington D.C.

Buira, ariel, ed. 2003. Challenges to the World Bank and IMF: Developing Country Perspectives.

Londen: anthem Press.

Stiglitz, Joseph E.2002. Globalization and its Discontents New York: Norton.

Easterly, William. 2001.The Elusion Quest for Growth. Cambridge, Ma: MIT Press.

***

21. अंतरराष्ट्रीय राजनीति और राष्ट्रवाद की अवधारणा

डॉ. शिव बहादुर सिंह *
विमल कुमार यादव**

जब हम साधारण शब्दों में बात करते हैं तो अंतरराष्ट्रीय राजनीति का अर्थ होता है, राज्यों के मध्य राजनीति। यदि हम सिर्फ राजनीति की बात करें तो कुछ प्रमुख तत्व सामने आते हैं, जैसे - समूहों का अस्तित्व, समूहों के बीच असहमति तथा समूहों द्वारा अपने हितों की पूर्ति। यदि इसी प्रकार से हम अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आकलन करें तो तीन प्रमुख तत्व है - राज्यों का अस्तित्व, राज्यों के बीच संघर्ष तथा राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के लिए राज्यों द्वारा शक्ति का प्रयोग। सूक्ष्म अवलोकन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अंतरराष्ट्रीय राजनीति के अंतर्गत राज्य का प्रमुख उद्देश्य अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति करना होता है और जब हम राष्ट्रीय हितों की पूर्ति की बात करते हैं तो स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि आखिर राष्ट्र क्या है ? जिसके हितों की पूर्ति ही अंतरराष्ट्रीय राजनीति का साध्य है।

समकालीन परिदृश्य में अंतरराष्ट्रीय राजनीति का स्थान इससे व्यापक अवधारणा अंतरराष्ट्रीय संबंध ने ले लिया है। अंतरराष्ट्रीय संबंध के अंतर्गत राज्यों के परस्पर संघर्ष के साथ साथ सहयोगात्मक पहलुओं को भी अब अंतरराष्ट्रीय राजनीति के अंतर्गत रखा जाता है। इसके अतिरिक्त वर्तमान में राज्यों के अलावा अन्य कई कारक भी अब अंतरराष्ट्रीय राजनीति का विषय क्षेत्र बन गए हैं। इसके अंतर्गत आज व्यक्ति, संस्था, संगठन व कई अन्य गैर राज्यकर्ता भी सम्मिलित हो गए हैं। जिससे अंतरराष्ट्रीय संबंध का विषय क्षेत्र काफी व्यापक हो गया है। अंतरराष्ट्रीय संबंध के व्यापक स्वरूप में अब सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक पहलुओं को भी शामिल किया गया है तथा इन्हें अब विमर्श का केंद्र भी बनाया जा रहा है अर्थात अब प्रत्येक राष्ट्र के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तत्वों का अध्ययन करना आवश्यक है। ये सभी तत्व किसी भी राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। राज्यों के मध्य आपसी संबंध किसी न किसी रूप में हमेशा से विद्यमान रहे हैं। चाहे हम यूनानी नगर राज्य की बात करें या रोमन साम्राज्य की, प्राचीन काल से ही वैदेशिक संबंधों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। धर्मसुधार आंदोलन व पुनर्जागरण के कारण एक नवीन चेतना का विकास हुआ और तार्किकता को बढ़ावा मिला जिससे लोगों में वैज्ञानिक चेतना आई। वैज्ञानिक चेतना के परिणामस्वरूप यंत्रों का आविष्कार हुआ और मानव को महत्व दिया जाने लगा जिसे हम व्यक्तिवादी प्रवृत्त कहते हैं। व्यक्तिवाद से उदारवाद की धारा का आरंभ होता है

* **एसोसिएट प्रोफेसर,राजनीति विज्ञान विभाग, डीएवी पीजी कॉलेज, वाराणसी**

** **शोधार्थी, डीएवी पीजी कॉलेज (बीएचयू), वाराणसी।**

और इसी के माध्यम से पूंजीवाद का विकास होता है। वैज्ञानिक क्रांति और पूंजीवादी विचारधारा के माध्यम से ही औद्योगिक क्रांति होती है और औद्योगिक क्रांति ही आधार बनती है उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का। उपनिवेशवाद के परिणाम स्वरूप वैश्विक स्तर पर व्यापार का तेजी से प्रसार हुआ और प्रभुत्व जमाने के उद्देश्य से ही एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से जुड़ने लगे और यहीं से वैदेशिक संबंधों में व्यापक परिवर्तन देखने को मिलता है। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि राष्ट्र-राज्य के उदय व क्रमिक विकास के साथ राष्ट्रों के मध्य परस्पर अंतरनिर्भरता बढ़ी है और इस अंतरनिर्भरता को पूरा करने के लिए विदेश नीति सबसे महत्वपूर्ण साधन के रूप में विकसित हुई जिसने अंतरराष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में व्यापक प्रसार किया।

20वीं शताब्दी के इतिहास को विदेशी संबंधों की नजर से देखने पर यह ज्यादा स्पष्ट दिखाई देता है। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ही राष्ट्रों के मध्य आपसी गुटबाजी दिखाई देती है। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात विचारधारा के आधार पर राष्ट्रों की गुटबाजी तेजी से बढ़ती चली गई। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात राष्ट्र संघ का गठन भी अंतरराष्ट्रीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण पहलू को शामिल करता है। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात अधिनायकवाद का प्रभाव पड़ता है जिसके परिणाम स्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध लड़ा गया। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भी अपने हितों और विचारधाराओं के अनुसार राष्ट्र एक दूसरे के करीब आए। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात विश्व व्यवस्था की संरचना और अंतरराष्ट्रीय संबंधों में तेजी से बदलाव हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के बहुत सारे देश उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद से स्वतंत्र हुये हैं। नव स्वतंत्र देशों की अपनी महत्वाकांक्षाएँ और राष्ट्रीय हित थे और इसी कारण इन देशों ने अंतरराष्ट्रीय संबंध के मसलों पर नए तत्वों को अपनाया और अंतरराष्ट्रीय संबंध में नए मानकों का निर्धारण किया अर्थात् जैसे जैसे ऐतिहासिक और सामाजिक परिवर्तन होते हैं उसी अनुसार वैदेशिक संबंधों में बदलाव देखने को मिलता है। शीत युद्ध के दौरान वैदेशिक संबंधों में नए तत्वों का समावेश होता है और नई प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। शीत युद्ध के अंत और वैश्वीकरण की प्रक्रिया के इस दौर में अंतरराष्ट्रीय संबंध का महत्व सबसे ज्यादा है क्योंकि अब पूरे संसार को एक "ग्लोबल विलेज" की संज्ञा दी जा रही है जो कि पारस्परिक निर्भरता को दिखाता है।

समकालीन विश्व में अंतरराष्ट्रीय संबंधों का महत्व बढ़ता जा रहा है। वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में ज्यादातर राज्य आर्थिक सुधारों, उदारवाद, मुक्त व्यापार के दौर से गुजर रहे हैं। ऐसी स्थिति में आर्थिक गतिविधियों का अध्ययन अति महत्वपूर्ण हो गया है। आज संयुक्त राष्ट्र की राजनीतिक इकाइयों की बजाय विश्व व्यापार संगठन, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, क्षेत्रीय संगठन आदि अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं। अब राजनीतिक विचारधाराओं के स्थान पर नई अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, उत्तर दक्षिण संवाद,

विकासशील देशों में कर्ज की समस्या, व्यापार में भुगतान संतुलन, आर्थिक सहायता, जलवायु परिवर्तन, आतंकवाद जैसे मुद्दे ज्यादा महत्वपूर्ण हो गए हैं। यह वर्तमान में इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि अब विकेंद्रीकरण के इस दौर में वैदेशिक संबंधों के निर्धारण में आम नागरिक की भूमिका और विचार का महत्व बढ़ता जा रहा है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया व सोशल मीडिया के व्यापक प्रभाव के फलस्वरुप प्रत्येक नागरिक विदेश नीति जैसे मुद्दों पर भी अपने आप को अभिव्यक्त कर रहा है। ऐतिहासिक विश्लेषण के माध्यम से हमने देखा है कि वैदेशिक संबंधों में हमेशा से बदलाव होता रहा है और नए तत्व और प्रवृत्तियाँ शामिल हुए हैं। ऐतिहासिक परिवर्तन के साथ ही अंतरराष्ट्रीय संबंध के क्षेत्र में राष्ट्र की प्रवृत्तियों और राष्ट्रवाद की अवधारणा का अध्ययन महत्वपूर्ण होता जा रहा है।

अंतरराष्ट्रीय संबंध में नए पहलुओं के समावेश से न सिर्फ इसका स्वरूप व्यापक हुआ है बल्कि इसके अध्ययन में जटिलता भी आ रही है जिसको सरलीकृत करने के लिए बहुआयामी प्रयासों की जरूरत है। जिससे अंतरराष्ट्रीय संबंध का अध्ययन अनुशासकीय आधार पर अधिक कुशलता पूर्वक किया जा सके, क्योंकि अंतरराष्ट्रीय राजनीति का स्वरूप परिवर्तनशील है इसलिए इसके अध्ययन के दृष्टिकोणओं में भी परिवर्तन की आवश्यकता है। आज अंतरराष्ट्रीय राजनीति के सुचारू अध्ययन के लिए बहुत ही स्पष्ट तर्कसंगत व व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है और इसमें राष्ट्रवाद की अवधारणा एक महत्वपूर्ण पहलू है।

समकालीन विश्व में राष्ट्रवाद चर्चा में है। राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति भारत में ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में कई जगहों पर और कई तरह से सामने आ रही है। कहीं व्यापारिक प्रतिबंधों के रूप में तो कहीं दूसरे देश के नागरिकों को वीजा न देने के रूप में और कहीं एक राष्ट्र के दो टुकड़े करने की मांग के रूप में भी। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के पश्चात वर्तमान में पूरी दुनिया में संरक्षणवाद की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है और राष्ट्रवादी विचारधारा के रूप में सामने आ रही है। इसलिए राष्ट्रवाद की अवधारणा को समझना न सिर्फ प्रासंगिक है बल्कि जरूरी भी है। राष्ट्रवाद का अध्ययन करना इसलिए भी जरूरी है कि वैश्विक मामलों में यह बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

राष्ट्रवाद का अर्थ -

पिछली दो शताब्दियों के दौरान राष्ट्रवाद एक ऐसे राजनीतिक सिद्धांत के रूप में उभरा है जिसने इतिहास रचने में योगदान किया है। राष्ट्र-राज्य के उदय के साथ ही राष्ट्रवाद की अवधारणा सामने आती है। हैन्स कोन के अनुसार, "राष्ट्रवाद राष्ट्र राज्य की मांग करता है और राष्ट्र राज्य का निर्माण राष्ट्रवाद को मजबूत करता है।" लेखकों में राष्ट्रवाद शब्द के अर्थ के बारे में बहुत असहमति है। "राष्ट्र" शब्द से तात्पर्य

एक ऐसे राजनीतिक समुदाय से है जिसके सदस्य नजदीकी रूप से एक दूसरे से जुड़े हुए हों साथ ही इस राजनीतिक समुदाय के सदस्य सांस्कृतिक, भाषाई, जाति और यहां तक कि नस्लीय आधार पर भी समरूप जनसंख्या के रूप में रहते हैं। इस तरह के राजनीतिक समुदाय के सदस्यों का इतिहास भी एक ही होता है। इस आधार पर राष्ट्रवाद को इस तरीके से परिभाषित किया जा सकता है कि राष्ट्रवाद एक ऐसा विश्वास है जो यह मानता है कि यदि लोगों का एक समूह में सभी लोग समान इतिहास, परंपरा, भाषा और संस्कृति के आधार पर एक दूसरे से जुड़े हैं तो उन्हें अपने एक प्रभुता संपन्न राजनीतिक समुदाय बनाना चाहिए और यह प्रभुतासंपन्न राजनीतिक समुदाय ही राष्ट्र है।

इस प्रकार से राष्ट्रवाद साझा इतिहास, परंपरा,भाषा, जातीयता और संस्कृति के आधार पर एकजुटता का भाव दर्शाता है। साथ ही यह एक राष्ट्रीय समुदाय से संबद्ध लोगों के बीच जुड़ाव की भावना और उनकी आत्मनिर्णय के अधिकार को भी प्रदर्शित करता है लेकिन ऐसे निश्चित विशिष्ट गुण वास्तव में है ही नहीं जो सभी राष्ट्रों में समान रूप से मौजूद हों। कई राष्ट्रों की अपनी कोई एक सामान्य भाषा नहीं है। बहुत से राष्ट्रों में उनको जोड़ने वाला कोई समान धर्म भी नहीं है। नस्ल या कुल जैसी अन्य विशिष्टताओं के लिए भी यही कहा जा सकता है। तब प्रश्न उठता है कि वह क्या है जो राष्ट्र का निर्माण करता है ? राष्ट्र बहुत हद तक एक काल्पनिक समुदाय होता है जो अपने सदस्यों के सामूहिक विश्वास, आकांक्षाओं और कल्पनाओं के सहारे एक सूत्र से बंधा होता है। यह कुछ खास मान्यताओं पर आधारित होता है जिन्हें लोग उस समग्र समुदाय के लिए गढ़ते हैं जिससे वे अपनी पहचान कायम करते हैं।

यदि हम कुछ मान्यताओं की बात करें तो उसमें पहला है विश्वास,कोई राष्ट्र विश्वास के जरिए ही बनता है। राष्ट्र पहाड़, नदी या भवनों की तरह नहीं होते जिन्हें हम देख सकते हैं और जिनका स्पर्श महसूस कर सकते हैं। वह ऐसी चीजें भी नहीं है जिनका लोगों के विश्वासों से स्वतंत्र अस्तित्व हो। राष्ट्र की तुलना किसी टीम से की जा सकती है अर्थात लोगों का एक ऐसे समूह जो एक साथ काम करते हो और स्वयं को एकीकृत मानते हो। दूसरा, जो लोग अपने को एक राष्ट्र मानते हैं उनके भीतर अपने बारे में बहुधा ऐतिहासिक पहचान की भावना होती है। सदस्यों के भीतर एक इतिहास बोध होता है तथा एक साझी ऐतिहासिक विरासत को मानने वाले होते हैं। तीसरा, बहुत सारे राष्ट्रों की पहचान एक खास भौगोलिक क्षेत्र से जुड़ी हुई है। किसी खास क्षेत्र पर लंबे समय तक साथ साथ रहना और उससे जुड़ी साझे अतीत की यादें लोगों को एक सामूहिक पहचान का बोध कराती हैं। यह उन्हें एक होने का एहसास भी कराता है। इसलिए जो लोग स्वयं को एक राष्ट्र के रूप में देखते हैं एक मातृभूमि की बात करते हैं। एक राष्ट्र के रूप में संगठित लोगों के अपने साझे राजनीतिक आदर्श और साझी राजनीतिक पहचान भी होती है।

पिछले तीन-चार दशकों में जिन विद्वानों ने राष्ट्र और राष्ट्रवाद को समझने में प्रमुख योगदान दिया

है, उनमें हॉब्सबाम, अर्नेस्ट गेलनर और बेनेडिक्ट एँडरसन प्रमुख हैं। 1983 में बैंडिट एँडरसन ने राष्ट्रवाद की अवधारणा की उत्पत्ति और प्रसार पर अपनी पुस्तक 'इमेजिंग कम्युनिटी रिफ्लेक्शन एँड ओरिजिन एँड स्प्रेड आफ नेशनलिज्म' लिखी। एँडरसन ने अपनी किताब में राष्ट्र को एक 'कल्पित समुदाय' (इमेजिंग कम्युनिटी) के रूप में देखा। उनके अनुसार राष्ट्रवाद के अंतर्गत एक दूसरे से सर्वथा अपरिचित लोग उस राष्ट्र के प्रति जुड़ाव का अनुभव करते हैं जिसके सदस्य होते हैं या स्वयं को मानते हैं, उसके सभी सदस्यों को देखे जाने बगैर राष्ट्र के प्रति जुड़ाव का अनुभव करते हैं। पर उल्लेखनीय है कि इस कल्पना में भी राष्ट्र को एक संप्रभु पर सीमित राष्ट्र के रूप में ही कल्पित किया जाता है। इस तरह एक राष्ट्र के लोग खुद को दूसरे राष्ट्र के लोगों से अलग भी देखते हैं।यहां तक कि कई बार एक राष्ट्र के लोग दूसरे लोगों को अन्य के रूप में देखते हैं।

एंडरसन ने इस बात का विश्लेषण भी किया कि कैसे लोग राष्ट्रीयता के विचार के द्वारा जुड़ाव का अनुभव करते हैं। उनके अनुसार पत्रकारिता, साहित्य, स्कूली शिक्षा और पाठ्यक्रम आदि राष्ट्रवाद के विकास में उल्लेखनीय भूमिका निभाते हैं। जनगणना, मानचित्र और संग्रहालय भी राष्ट्रवाद के निर्माण में उत्तरदायी होते हैं।

एरिक हॉब्सबॉम ने कहा कि राष्ट्रवाद कोई कालातीत और प्राकृतिक धारणा नहीं है बल्कि यह एक आधुनिक और मानव निर्मित धारणा है। राष्ट्रवाद के अंतर्गत अक्सर 'राष्ट्रीय मिथकों ' का निर्माण किया जाता है, जो राष्ट्र के गौरवशाली अतीत की बात करता है और राष्ट्रीयता को एक साझी तथा स्वाभाविक अस्मिता बताता है। उसने स्पष्ट कहा कि "राष्ट्र, राष्ट्रवाद और राज्य का निर्माण नहीं करते बल्कि राष्ट्रवाद और राज्य मिलकर राष्ट्र का निर्माण करते हैं।"

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट होता है कि राष्ट्रवाद के विकास में 'राष्ट्रीय चेतना' का महत्वपूर्ण योगदान होता है। परंतु हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि किसी राष्ट्र में ' राष्ट्रीय चेतना ' का विकास सभी क्षेत्रों और सामाजिक समूहों के बीच एक जैसा नहीं होता है। राष्ट्रीय चेतना के विकास में क्षेत्रीयता और सामाजिक समूह के आधार पर अंतर होना स्वाभाविक है। सामाजिक संदर्भ में बात करें तो इतिहासकारों का मत है कि आम जनता के बीच जिसमें मजदूर, किसान आदि शामिल है में राष्ट्रीय चेतना का विकास सबसे अंतिम चरण होता है। एरिक हॉब्सबॉम ने यूरोपीय राष्ट्रवाद के विकास का विश्लेषण करते हुए बताया कि इसके प्रमुख रूप से तीन चरण है - पहला चरण जब राष्ट्रवाद शुद्ध रूप से सांस्कृतिक साहित्यिक स्तर तक सीमित होता है जिसके कोई गहरे राजनीतिक अथवा राष्ट्रीय निहितार्थ नहीं होते। दूसरा चरण जब कुछ खास व्यक्ति अथवा नेताओं का समूह राष्ट्र के विचार को फैलाने का जिम्मा उठा

लेते हैं और इस तरह राष्ट्र के विचार के लिए राजनीतिक अभियान की जमीन तैयार होती है। तीसरा और अंतिम चरण राष्ट्रवादी आंदोलन और उसके कार्यक्रमों को व्यापक जनसमर्थन मिल जाता है।

राष्ट्रवाद के विचार का इतिहास-

विश्व का मानचित्र देखने पर पता चलता है की भूमि का हर एक भाग राष्ट्रवाद के सिद्धांत के अनुसार विभाजित है। जब हम वर्तमान राष्ट्र के बारे में सोचते हैं तो ऐसा लगता है कि यह एक स्वाभाविक, ऐतिहासिक और स्थाई राजनीतिक संगठन है। लेकिन इतिहास का अध्ययन करने पर या ज्ञात होता है कि राजनीतिक समुदाय हमेशा राष्ट्र- राज्यों के रूप में संगठित नहीं थे। प्राचीन यूनान, नगर- राज्यों से बना था। प्राचीन भारत गणतंत्र और राजतंत्र से बना था। इसी तरह रोमन साम्राज्य के समय से ही यूरोप के विकेंद्रीकृत सामंती व्यवस्थाओं और साम्राज्यों में विभिन्न शासकों या वंश का शासन था। राष्ट्रवाद की यह अवधारणा 200 वर्ष से ज्यादा पुरानी नहीं है। लेकिन मुख्य सवाल यह है कि इतने कम समय में ही राष्ट्रवाद इतना मजबूत और सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया जाने वाला सिद्धांत कैसे बना ? राष्ट्रवाद कब और कहां उत्पन्न हुआ और पूरी दुनिया में इसका प्रसार कैसे हुआ ? क्या पूर्वी और पश्चिमी राष्ट्रवाद एक ही है या इनके मध्य कोई अंतर है?

आमतौर पर इतिहासकार यह मानते हैं कि राष्ट्रवाद की शुरुआत यूरोप, विशेष तौर पर पश्चिमी यूरोप से हुई थी। यही से यह दुनिया के दूसरे भागों में फैला। राष्ट्रवाद का उभार 18वीं सदी के आखिरी दशकों और 19वीं सदी में हुआ लेकिन यूरोप के कुछ खास राजनीतिक और सैनिक घटनाक्रमों के कारण 14वीं सदी से ही राष्ट्रवाद के उभार की परिस्थितियां बननी शुरू हो गई थी। इस तरह के घटनाक्रमों में पवित्र रोमन साम्राज्य का पतन और इंग्लैंड और फ्रांस के बीच 100 वर्षीय युद्ध प्रमुख हैं। राष्ट्रवाद के उद्भव और विकास के लिए 17वीं सदी के यूरोप में विद्यमान राजनीतिक- सामाजिक परिस्थितियां बहुत हद तक जिम्मेदार थी। इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय है 1618 ई. से लेकर 1648 ई. तक चले 30 वर्षीय युद्ध के बाद हुई 'वेस्टफेलिया की संधि'। संधि की अन्य शर्तों के अतिरिक्त राष्ट्र के संदर्भ में जो महत्वपूर्ण बात इस संधि में हुई वह थी राष्ट्रों की संप्रभुता के सिद्धांत को इस संधि में दी गई मान्यता। जिससे अंतरराष्ट्रीय संबंध के संदर्भ में धारणा विकसित हुई कि हर एक राष्ट्र - राज्य अपने भूभाग और घरेलू मामलों के विषय में संप्रभु है और राष्ट्र - राज्य की क्षेत्रीय अखंडता का दूसरे राज्यों को सम्मान करना चाहिए। राष्ट्रवाद के उभार में सबसे महत्वपूर्ण कारक यह था की 16वीं और 17वीं सदियों के आसपास यूरोप में केंद्रीकृत आधुनिक राज्य का उभार हुआ। पुनर्जागरण के कारण यूरोपीय समाज में सामंती और धार्मिक शक्तियां कमज़ोर हुई और उनका पतन हुआ और इस वजह से यूरोप में निरंकुश राजाओं का उभार होने लगा। निरंकुश राजाओं ने उभरते व्यापारिक वर्गों की मदद से अपनी राजनीतिक स्थिति मजबूत की।

इन व्यापारिक वर्गों को व्यापारिक पूंजीवादी भी कहा जाता है । अब राजाओं की निर्भरता सामंतों पर कम हो गई और धीरे-धीरे पूंजीवाद ने पूरी तरह से सामंतवाद का स्थान ले लिया। 15 वीं सदी में हुए धर्मसुधार आंदोलनों ने धार्मिक शक्तियों को भी कमजोर किया। राजा अपने शासन क्षेत्र की पूरी जनसंख्या पर सीधा, प्रभावकारी और पूर्ण शासन स्थापित करने में समर्थ हो गए। उन्होंने क्षेत्रीय सीमाओं को कठोरता से लागू किया और धर्म, शिक्षा और भाषा के संदर्भ में जनसंख्या का मानकीकरण किया अर्थात उन्होंने अपनी सुनिश्चित सीमा के भीतर धर्म, शिक्षा और भाषा के बारे में सुनिश्चित नियम बनाए। उन्होंने अपनी सेना बनाई और नागरिकों के बसने या एक जगह से दूसरी जगह जाने के संदर्भ में भी कड़े नियम बनाए। इन सबके पीछे मुख्य लक्ष्य था कि नागरिक अपने शासकों के प्रति ज्यादा से ज्यादा निष्ठा रखें। इस तरह से यह स्पष्ट होता है निरंकुशवाद के कारण ही आधुनिक राज्य के शुरुआती रूपों का निर्माण हुआ। लुई 14वें के कथन "मैं ही राज्य हूँ" से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रवाद का राज्य से एक संरचनात्मक जुड़ाव है दरअसल राज्य के अस्तित्व में आने से पहले राष्ट्रवाद का उभार नहीं हो सकता था। शुरुआती चरण में राष्ट्रवाद पश्चिमी यूरोप में उभरते अभिजनों अर्थात बुर्जुआ वर्ग का दर्शन बन गया क्योंकि निरंकुश राजाओं के उभार में बुर्जुआ वर्ग शामिल था। बाद में इसमें औद्योगिक पूंजीपतियों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । कुछ समय बाद इस बुर्जुआ वर्ग ने प्रतिनिधित्व की मांग की और धीरे-धीरे पश्चिमी यूरोप में प्रतिनिधि संस्थाओं की स्थापना हुई जिस पर बुर्जुआ वर्ग का ही प्रभुत्व था। इसके पश्चात ज्यादा अधिकारों की मांग के लिए क्रांतियां हुई और 19वीं सदी के अंत तक निरंकुश राज्य सीमित या संविधानिक राज्य में बदल गए और आगे चलकर यही राज्य लोकतांत्रिक राज्यों में तब्दील हुए।

प्रबोधन काल के दौरान यूरोप में बीज रूप में शुरू हुआ राष्ट्रवाद का विचार औद्योगिक क्रांति के दौरान अधिक तेजी से विकसित हुआ। 17 वीं सदी के यूरोपीय देशों में पूंजीवाद और उपनिवेशवाद के विस्तार और मध्यवर्ग के उदय ने राष्ट्रवाद की अवधारणा की उत्पत्त में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 18वीं, 19वीं सदी में राष्ट्रवाद का विचार यूरोप से होते हुए दुनिया भर में तेजी से फैला इस दौरान राष्ट्रवाद की धारणा अनेक चरणों से होकर गुजरी और उसके स्वरूप में भी काफी बदलाव भी हुआ।

19वीं सदी के अंत तक यूरोप के भीतर राष्ट्रवाद का प्रसार हुआ। अभिजन और आम जनता दोनों ही राष्ट्रवाद की भावना से परिचित हो गए। इस समय यूरोप से दुनिया के दूसरे भागों में भी राष्ट्रवाद का प्रसार होने लगा। इस संदर्भ में व्यापार और उपनिवेशवाद ने सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 18वीं सदी से ही यूरोपीय शक्तियां दुनिया के विभिन्न भागों में अपने व्यापार का प्रसार कर रही थी। यूरोपीय शक्तियों ने अपने फायदे के लिए एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के आंतरिक क्षेत्रों पर कब्जा किया। लेकिन इसका एक नतीजा यह हुआ कि इन क्षेत्रों की जनसंख्या का परिचय इस दुनिया की विचारों से हुआ। इससे

इन क्षेत्रों में राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्ष को आगे बढ़ाने में मदद मिली। इस संदर्भ में इतिहासकार बेनेडिक्ट एँडरसन का मानना है कि यूरोपीय शक्तियों के द्वारा लैटिन अमेरिका, अफ्रीका और एशिया में भूलवश ही राष्ट्रवाद के विचारों को लाया गया। जिस तरह आम जनता के विद्रोह ने यूरोप में निरंकुश शासन का विरोध किया उसी तरह राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों ने पश्चिमी देशों की मनमानी और नीतियों का विरोध किया। शुरुआती दौर में औपनिवेशिक देशों में चलने वाले राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों का नेतृत्व उपनिवेशों के बुर्जुआ वर्ग के सदस्यों के हाथों में था। अमूमन इन सदस्यों ने विदेश से शिक्षा हासिल की थी और यह मध्य वर्ग से संबंधित थे। इन लोगों ने साम्राज्यवादी यूरोपीय राष्ट्रों खिलाफ चलने वाले संघर्षों का नेतृत्व किया धीरे-धीरे उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रवाद में आम जनता का प्रभाव भी कायम होने लगा और यह जन आंदोलन में बदल गया।

राष्ट्रवाद समकालीन विश्व में सबसे चर्चित अवधारणाओं में से एक है और इसने पिछली सदियों का इतिहास रचने में योगदान दिया है। इसने तीव्र निष्ठाओं के साथ साथ गहरे विद्वेषों को भी प्रेरित किया है। इसने जनता को जोड़ा है तो विभाजित भी किया है। इसने अत्याचारी शासन से मुक्ति दिलाने में मदद की तो इसके साथ है विरोध,कटुता और युद्धों का कारण भी रहा। साम्राज्यों और राष्ट्रों के ध्वस्त होने का भी एक कारण रहा है। राष्ट्रवादी संघर्षों ने राष्ट्रों और साम्राज्यों की सीमाओं के निर्धारण -पुनर्निर्धारण में योगदान किया है। आज भी दुनिया का एक बड़ा भाग विभिन्न राष्ट्र-राज्यों में बंटा हुआ है। हालांकि राष्ट्रों की सीमाओं के पुनरसंयोजन की प्रक्रिया अभी खत्म नहीं हुई है और मौजूदा राष्ट्रों के अंदर भी अलगाववादी संघर्ष आम बात है।

राष्ट्रवाद कई चरणों से गुजर चुका है इसका सकारात्मक पक्ष यह रहा है कि 19वीं शताब्दी के यूरोप में इसने कई छोटी-छोटी रियासतों के एकीकरण से बृहत राष्ट्र-राज्यों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। आज के जर्मनी और इटली का गठन, एकीकरण और सुदृढ़ीकरण भी इसी प्रक्रिया के जरिए हुआ था। लैटिन अमेरिका में बड़ी संख्या में नए राज्य स्थापित किए गए थे। राज्य की सीमाओं के सुदृढ़ीकरण के साथ स्थानीय निष्ठा और बोलियाँ भी उत्तरोत्तर राष्ट्रीय निष्ठा व सर्वमान्य जनभाषाओं के रूप में विकसित हुई। नए राष्ट्रों के लोगों ने एक नई राजनीतिक पहचान अर्जित की जो राष्ट्र-राज्य की सदस्यता पर आधारित थी। पिछली शताब्दी में हमने अपने देश को सुदृढ़ीकरण की ऐसी प्रक्रिया से गुजरते देखा है।

राष्ट्रवाद बड़े बड़े साम्राज्य के पतन में हिस्सेदार रहा है। यूरोप में बीसवीं शताब्दी के आरंभ में ऑस्ट्रियाई - हंगेरियाई और रूसी साम्राज्य तथा इनके साथ एशिया और अफ्रीका में ब्रिटिश फ्रांसीसी, डच और पुर्तगाली साम्राज्य के विघटन के मूल में राष्ट्रवाद ही था।भारत तथा अन्य पूर्व उपनिवेशों के औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्र होने के संघर्ष भी राष्ट्रवादी संघर्ष थे। यह संघर्ष विदेशी नियंत्रण से स्वतंत्र राष्ट्र-राज्य स्थापित करने

की आकांक्षा से प्रेरित थे।

बहुत से ऐसे सिद्धांतकार हैं जो राष्ट्रवाद को अनुदारवादी और पीछे ले जाने वाली परिघटना के रूप में देखते हैं। दूसरी ओर बहुत से ऐसे सिद्धांतकार हैं जो इसे प्रगतिशील और वांछनीय मानते हैं। इन दोनों ही तरह के सिद्धांतकारों के बीच हमेशा ही राष्ट्रवाद की प्रकृति के संबंध में गहरा वाद- विवाद रहा है। बहुत से लोगों ने इस आधार पर राष्ट्रवाद की आलोचना की है कि यह संकुचित विशिष्टतावाद को बढ़ावा देता है। पाल गिलोरी ने अपनी किताब 'द ब्लैक अटलांटिक' में हमारा ध्यान इस बात की ओर दिलाया है कि दुनिया में हर जगह का अनुभव बताता है कि राष्ट्रवाद विविध परंपराओं और अनुभवों को हाशिए पर डाल देता है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रवाद को एक सार्वभौमिक और समकालीन राजनीतिक परिघटना के रूप में समझना उपयोगी हो सकता है। यह किसी खास समय पर सामने आने वाली देशभक्ति की विशिष्ट भावना नहीं है। दरअसल यह आधुनिक राज्य के इतिहास का एक भाग है। राष्ट्रवाद ने अक्सर लोकतांत्रिक राजनीति और उदारवादी राजनीतिक गठजोड़ कायम किया है।भारत में गांधी - नेहरू के नेतृत्व में सामने आया राष्ट्रवाद यही दिखाता है और तीसरी दुनिया के दूसरे देशों के अनुभव से भी यही बात सामने आती है। राष्ट्रवाद एक शक्तिशाली और बदलाव लाने वाली शक्ति के रूप में भी काम कर सकता है। खासतौर पर,यह वंचित और पिछड़े हुए समाजों में बहुत ज्यादा बदलाव ला सकता है। राष्ट्रनिर्माण का विचार राष्ट्रवाद की इन्हीं संभावनाओं को अभिव्यक्त करता है। राष्ट्रवाद ने उत्तर - औपनिवेशिक समाजों के बड़े और विविधतापूर्ण समाजों में एकता लाने में विशेष भूमिका निभाई है।साथ ही, इसने इन समाजों के लिए असमान पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर विकास का लक्ष्य हासिल करने में मददगार की भूमिका निभाई है। इसके अलावा यह बहुत सारी खतरनाक विचारधाराओं जैसे हर तरह के धार्मिक अतिवाद, कट्टरपंथ और यहां तक कि फासीवाद से भी जुड़ा रहा है। राष्ट्रवाद का कोई रूप प्रगतिशील या प्रतिगामी या शक्तिशाली या सीमित क्यों होता है? इसे समझने के लिए यह जानना महत्वपूर्ण है कि किसी खास राष्ट्रवाद का उभार किन ऐतिहासिक परिस्थितियों में हुआ। आधुनिक राज्य के साथ इसके जटिल ऐतिहासिक संबंधों पर भी ध्यान देने की जरूरत है। असल में दुनिया के हर हिस्से में राष्ट्रवाद की सबसे प्रमुख विशेषता यह रही है कि इसमें एक साथ सार्वभौमिक और विशिष्ट, आम और खास तथा तार्किक और अतार्किक पहलू पाए जाते हैं। दरअसल यह बताता है कि इस बात की पूरी संभावना है कि 21वीं सदी में भी यह विचारधारा शक्तिशाली बनी रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. बिस्वाल, तपन (2018) : अंतरराष्ट्रीय संबंध,ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
2. कुमार, महेंद्र, नंदलाल : अंतरराष्ट्रीय राजनीति के सैद्धांतिक पक्ष,शिवलाल अग्रवाल एँड कंपनी, आगरा।
3. फड़िया, बी एल (2012) : अंतरराष्ट्रीय राजनीति,साहित्य भवन, आगरा।
4. भार्गव, राजीव, आचार्य, अशोक (2013) : राजनीतिक सिद्धांत एक परिचय,पियर्सन, दिल्ली।
5. बिस्वाल, तपन (2016) : तुलनात्मक राजनीति, संस्थायें और प्रक्रियाएँ, ओरियंट ब्लैकस्वान।
6. मिश्रा, राजेश (2018) : भारतीय विदेश नीति भूमंडलीकरण के दौर में, ओरियंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद।
7. रविकांत (2018) : आज के आईने में राष्ट्रवाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. सिन्हा, मनोज (2012) : समकालीन भारत : एक परिचय,ओरियंट ब्लैकस्वान
9. राजनीतिक सिद्धांत, कक्षा 11 (2011) : एनसीइआरटी
10. समयांतर (अंक जनवरी,2018) : मासिक पत्रिका

22. ब्रेक्जिट और उसका भारत पर प्रभाव

सोहन लाल*

23 जून 2016 को कराए गए जनमत संग्रह में ब्रिटेन के 51.89 प्रतिशत लोगों ने ब्रिटेन के यूरोपीय समुदाय से अलग होने के पक्ष में मत दिया था। 48.1 प्रतिशत लोगों ने विपक्ष में मतदान किया। यूरोपीय संघ से वापसी की वकालत वाम-दक्षिणपंथी और दक्षिणपंथी दोनों द्वारा की गई थी दूसरी ओर यूरोपीय समर्थक जो कि राजनीतिक परिदृश्य भी रखते हैं, वे निरंतर सदस्यता और सीमा शुल्क संघ और एकल बाजार को बनाए रखने की वकालत की है। 1973 में कराये एक जनमत संग्रह में ब्रिटेन यूरोपीय समुदाय का सदस्य बना था। एक ऐसे समय में जबकि यूरोपीय समुदाय में आर्थिक विकास दर अपने निचले स्तर पर है और यूरोजोन में आर्थिक मंदी व्याप्त है, ऐसे समय में ब्रिटेन का यूरोपीय संघ से अलग हो जाना यूरोप और ब्रिटेन दोनों के लिए एक अनिश्चित भविष्य की ओर संकेत करता है।

ब्रिटेन कैसे यूरोपीय समुदाय का भाग बनाः दूसरे विश्व युद्ध के बाद यूरोप की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो चुकी थी, आर्थिक व्यवस्था चरमरा गई थी। इसी संदर्भ में अमेरिका, रूस और अन्य देशों ने अपना व्यापार बढ़ाना शुरू कर दिया। व्यापार में पिछड़ता देख 1956 में 6 यूरोपीय देशों (फ्रांस, इटली, बल्जियम, नीदरलैंड, लक्सेमवर्ग और पश्चिमी जर्मनी) ने मिलकर रोम पैक्ट हस्ताक्षर किया। इसी समझौते के अंतर्गत यूरोपीयन इकोनॉमिक कम्यूनिटी बनाई गई। इसके अंतर्गत यूरोपीय देशों में एक 'सांझा बाजार' निर्मित करना था।

इसी समय के दौरान ब्रिटेन इस सारी प्रक्रिया को देखता रहा किन्तु उसने समुदाय में शामिल होने में दिलचस्पी नहीं दिखाई। धीरे-धीरे ब्रिटेन यह समझने लगा कि यूरोप के साथ रहकर ही उसका हित सध सकता है। सर्वप्रथम ब्रिटेन ने यूरोपीय समुदाय में प्रवेश के लिए प्रयास 1961 में किया लेकिन फ्रांस ने 1963 में इस पर वीटो कर दिया 1967 में दोबारा फिर फ्रांस ने ब्रिटेन के आवेदन पत्र पर वीटो कर दिया। 1969 में ही ब्रिटेन को शामिल करने हेतु वार्ता आरंभ हुई।[1]

यूनाइटेड किंगडम 1 जनवरी 1973 को डेनमार्क और आयरलैंड के साथ यूरोपीय आर्थिक समुदाय में सम्मिलित किया गया। हालांकि यह भी विवादित था क्योंकि मजदूर दल सदस्यता पर पुनः वार्ता चाहता था। इसके लिए 1975 में जनमत संग्रह करवाया गया जिनमें 67 प्रतिशत लोगों ने सदस्यता बरकरार रखने के पक्ष में मतदान किया।

---

* **शोधार्थी (पीएच.डी) राजनीति विज्ञान विभाग, हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय महेन्द्रगढ़, (हरियाणा)**

यूरोपीय समुदाय से ब्रिटेन का अलगाव न केवल राजनीतिक मतभेद बल्कि गहन भावुक और मनोवैज्ञानिक तत्वों से संबंधित भी है। वहीं यूरोपीय समुदाय के साथ रहने का समर्थन करने वालों जिन्हें रिमेनर्स (Remainers) कहा गया था, में गहन द्वेष, गुस्सा और निराशा विद्यमान है। एक आंग्ल महिला जो कि योर्क शहर से थी, इंस्टाग्राम पर अपने परिवार की एक फोटो सांझा की जिसमें वह कह रही है, "मैं एक ब्रिटिश माँ हूँ यह एक पोलिश पिता है और हमारी संतान यूरोपीयन है।" ये सब ये दर्शाने के लिए काफी है कि उनके परिवार का भविष्य ब्रेक्ज़िट के बाद क्या होगा। जनमत संग्रह का फैसला आने के बाद भारत समेत दुनियाभर के शेयर बाजार में इसका असर देखने को मिला।

जनमत संग्रह के अंतर्गत ब्रिटेन द्वारा यूरोपीय संघ को छोड़ने का समय मार्च 2019 निर्धारित किया गया था हालांकि समय सीमा पूरी नहीं हो सकी और अब यह समय सीमा 31 अक्टूबर 2019 तक बढ़ा दी गई है। यह भी सत्य है कि ब्रिटेन को यूरोपीय समुदाय से अलग होने के लिए अनुच्छेद 50 को लागू करना होगा।

अनुच्छेद 50 लिस्बन संधि (Lisbon Treaty) का एक खंड है जो स्वेच्छा से ब्लॉक छोड़ने की मांग करने वाले देश द्वारा उठाए जाने वाले कदमों की रूपरेखा तैयार करता है। अनुच्छेद 50 को लागू करने से औपचारिक निकास प्रक्रिया शुरू होती है और देशों के लिए यूरोपीय संघ छोड़ने के लिए अधिकारित तौर पर अपने इरादे की घोषणा करने का एक तरीका है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री थेरेसा में 29 मार्च 2017 को अनुच्छेद 50 को लागू करने वाली पहली नेता बन गई। लिस्बन संधि के अनुच्छेद 50 में जो प्रावधान है वे निम्न हैं-

1. कोई भी सदस्य राज्य अपनी संविधानिक आवश्यकताओं के अनुसार संघ से हटने का निर्णय ले सकता है।
2. एक सदस्य राज्य जो सदस्यता वापस लेने का फैसला करता है, वह इसकी सूचना यूरोपीय परिषद को देता, यूरोपीय परिषद द्वारा प्रदान किए गए दिशानिर्देशों के आलोक में, संघ उस राज्य के साथ एक समझौते पर बातचीत करेगा तथा निष्कर्ष निकालेगा, जो अपनी वापसी की व्यवस्था की स्थापना करेगा, संघ के साथ अपने भविष्य के संबंधों के लिए रूपरेखा का ध्यान रखेगा। इस समझौते पर यूरोपीय संघ के कामकाज पर संधि के अनुच्छेद 218(3) के अनुसार बातचीत की जाएगी। यह यूरोपीय संसद की सहमति प्राप्त करने के बाद, एक योग्य बहुमत द्वारा कार्य करने वाले परिषद् द्वारा संघ की ओर से सम्पन्न होगा।
3. संधि आहरण समझौते के बल में प्रवेश की तारीख से विचाराधीन राज्य को लागू करने या असफल होने के दो वर्ष बाद, जब तक कि पैराग्राफ 2 में निरदिष्ट अधिसूचना के दो वर्ष बाद तक यूरोपीय परिषद् द्वारा संबंधित राज्य के साथ संबंधित नहीं होगा, सर्वसम्मति से इस अवधि का

विस्तार करने का निर्णय लेता है।

4. पैराग्राफ 2 और 3 के प्रयोजनों के लिए यूरोपीय काउंसिल का सदस्य या वापस लेने वाले सदस्य राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाला यूरोपीय काउंसिल या काउंसिल की चर्चा में या उसके विषय में निर्णयों में भाग नहीं लेगा। एक योग्य बहुमत को यूरोपीय संघ के कामकाज पर संधि के अनुच्छेद 238(3)(B) के अनुसार परिभाषित किया जाएगा।
5. यदि कोई राज्य जो संघ से अलग हो गया हो और फिर से जुड़ने का प्रयत्न करें तो उसके अनुरोध को अनुच्छेद 49 में वर्णित प्रक्रिया के अधीन रखा जाएगा।

ब्रिटेन द्वारा यूरोपीय संघ को छोड़ने के कारण: ब्रिटेन के लिए यह सर्वथा आसान नहीं था कि वह यूरोपीय संघ को छोड़े। 1973 से लेकर 2016 तक ब्रिटेन यूरोपीय संघ का हिस्सा रहा। यूरोपीय संघ का हिस्सा रहते हुए ब्रिटेन ने भी आर्थिक प्रगति की और उसका लाभ भी उसे मिला। बदलते भू-आर्थिक और भू-सामरिक परिप्रेक्ष्य में ब्रिटेन व यूरोपीय समुदाय दोनों शक्ति के नए केन्द्र बनकर उभरे। परन्तु अब हमें यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि क्यों बहुमत ब्रिटेन वासियों ने यूरोपीय संघ से अलग होने का निर्णय किया।

- आर्थिक कारण: यूरोपीय समुदाय के विरोधियों का मानता है, कि ईयू एक दूषित (Dysfunctional) आर्थिक समुदाय है। यह 2008 के आर्थिक संकट की समस्याओं के समाधान में विफल रहा है। आर्थिक संकट के दौरान दक्षिण यूरोप में बेरोजगारी दर 20 प्रतिशत तक पहुँच गई थी जिसका समाधान ईयू नहीं कर सका। दक्षिण यूरोपीय लोगों की जीवन प्रत्याशा और जर्मनी के लोगों की जीवन प्रत्याश में अंतर है। कुल मिलाकर यूरोप एक स्थिर अर्थव्यवस्था बन चुकी थी। एक स्थिर अर्थव्यवस्था से यह आशा करना कि वह ब्रिटेन की समस्याओं का समाधान करेगा, प्रासंगिक प्रतीत नहीं होता।[7] ब्रिटेन का यह भी आरोप है कि ईयू ने व्यापार से जुड़े कई सख्त नियम खड़े कर दिए थे और कई करोड़ पाउंड की सालाना सदस्यता फीस देने के बदले ब्रिटेन को कुछ खास हासिल नहीं हो पा रहा था। ईयू से अलग होने वाले नेताओं ने दलील दी कि यूरोपीय संघ से हटने के बाद ब्रिटेन, ब्रसेल्स पहुँच चुका अपना सारा धन वापस ला सकेगा। दूसरा ये भी कहा गया कि यूरोपीय संघ की अड़चनों से मुक्त होकर ब्रिटेन दुनिया भर के साथ कारोबार कर सकेगा।

संप्रभुता: ब्रेक्जिट का दूसरा कारण विश्व में बढ़ती राष्ट्रीयता की भावना है?

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् बनाई गई बहुराष्ट्रीय आर्थिक, व्यापारिक व रक्षा संस्थाओं में लोगों का अविश्वास बढ़ रहा है। इसी संदर्भ में यूरोपीय संघ, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और नाटो जैसी संस्थाए इसके उदाहरण हो सकते हैं। बहुत से लोग जो यूरोपीय संघ के विरूद्ध है, ऐसा मानना है कि ये संस्थाएँ अपने उद्देश्य को पूरा करने में विफल सिद्ध हुई है। इन संस्थानों ने व्यक्तिगत देशों पर नियंत्रण स्थापित

कर लिया है। अविश्वास और नियंत्रण खोने का डर भी ब्रेक्जिट का कारण बना है। वहीं दूसरी ओर यूरोपीय संघ के समर्थकों का विश्वास है कि ये संस्थाएँ मूल्यवान है। इनमें सुधार की आवश्यकता है किन्तु इन्हें त्यागना विचार-विमर्श का विषय नहीं हो सकता। ब्रिटिशर्स के मन में एक बात घर करने लग गई थी कि वे अपनी संप्रभुता खोते जा रहे हैं और सभी निर्णय ब्रसेल्स में लिए जाते हैं। इसलिए लीव कैंप (वे जो ईयू से अलगाव चाहते थे) ने ये तर्क दिया कि यदि वे यूरोपीय संघ से पृथक हो जाएँगे वो अपने निर्णय स्वयं ले सकते हैं।

- राजनैतिक उत्कृष्टता: ब्रिटेन के राजनीतिक नेतृत्व ने गहन क्षति का सामना किया। 'लीव' समर्थकों ने 'कंजरवेटिव' और 'लेबर' दोनों दलों को अस्वीकृत कर दिया। इससे एक असहज स्थिति उत्पन्न हो गई। दोनों ही स्थापित पार्टियां यूरोपीय संघ में बने रहना चाहती थी या चाहती थी कि ब्रिटेन ईयू का भाग बना रहे। जबकि तीसरे धड़े ने इसका विरोध किया। तीसरे धड़े में सम्मिलित लोगों ने दोनों पार्टियों को विरोधी के रूप में देखा। ब्रेक्जिट की संभावना ने आर्थिक बाज़ार को भी संशंकित कर दिया। 'लीव' कैंपेनर्स ने इसी बात के पक्ष में प्रचार भी किया कि ईयू के साथ बने रहने से कोई लाभ नहीं है। वास्तव में ब्रेग्जिट ब्रिटिश उत्कृष्ट वर्ग के विरूद्ध मत था। मतदाताओं ने समझा कि राजनेताओं, व्यापारिक नेताओं और बौद्धिक वर्ग ने व्यवस्था को नियंत्रण करने का अपना अधिकार खो दिया है।

- यूरोपीय समुदाय का ब्रिटेन के प्रति सख्त विनियमन: जो लोग चाहते हैं कि ब्रिटेन यूरोपीय संघ से बाहर आ जाए उनका मानना है कि ईयू ब्रिटेन के विकास में एक बाधा उत्पन्न कर रहा है। ईयू व्यापार के लिए बहुत सारी शर्तो थोपता है और कई बिलियन पाउंड सालाना मेम्बरशिप शुल्क वसूलता है। इसके बदले में लाभ होता नही। यह अनुमान लगाया गया है कि ईयू के रेगूलेसन से प्रति सप्ताह ब्रिटेन को लगभग 880 मिलियन पाउंड का घाटा हो रहा है।[8]

- यूरो: वर्ष 2008-09 की यूरोपीय संघ में आई मंदी का कारण साझा मुद्रा यूरों को माना गया। इसके कारण ग्रीस, स्पेन, पुर्तगाल, इटली और आयरलैंड में बेरोजगारी दर उच्च सीमा तक पहुँच गई। इतना ही नहीं, वर्तमान में भी बेरोजगारी दर उच्च बनी हुई है तथा विकास दर निम्न स्तर पर है। हालांकि ब्रिटेन ने यूरो को नहीं चुना, वह अपनी आर्थिक गतिविधियाँ पाउंड में ही चलाता रहा किन्तु 'लीव' कंपेनर्स को इसमें भी तथ्य खोज लिए। कमजोर देशों की अर्थव्यवस्थाओं को पुन: पटरी पर लाने के लिए एक मजबूत राजकोषीय एकीकरण की आवश्यकता होती है, जैसे कि एक सांझी कर व्यवस्था, जिसकी आवश्यकता ईयू को थी। ब्रिटेन कभी भी ऐसे तंत्र में शामिल होना नहीं चाहेगा।

- आप्रवासन: 2008 की आर्थिक मंदी तथा उच्च बेरोजगारी दर ने ब्रिटेन को भी प्रभावित किया। आगे यूरोजोन वित्तिय संकट का प्रभाव भी दिखा। ग्रीस, स्पेन, पुर्तगाल और आयरलैंड के लोग रोजगार की तलाश में ब्रिटेन की ओर अप्रवासन करने लगे। 2015 में यूके ने 330,000 लोगों का ब्रिटेन में आने की

अनुमति दी। आर्थिक मंदी के कारण ब्रिटेन में भी बेरोजगारी दर व्याप्त थी इससे स्थिति और भयावह हो गई। ईयू सदस्यता का प्रमुख सिद्धान्त है "मुक्त आवाजाही" जिसका अर्थ है कि किसी दूसरे ईयू देश में आने या रहने के लिए वीजा की आवश्यकता नहीं पड़ती। वो 'सबसे करीबी संघ' का विरोध करते हैं। उन्हें लगता है कि "यह यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ यूरोप" बनाने की ओर कदम है।

- ब्रिटेन के धन की निकासी ईयू को: प्रत्येक सदस्य राज्य को एक निश्चित धनराशि ईयू को जमा करवानी पड़ती है। ब्रिटेन प्रत्येक वर्ष 19 विलियन अमेरिकी डॉलर की धनरशि जमा करवाता है। यह लगभग 300 डॉलर प्रति व्यक्ति है। इतना धन स्वयं के लिए बचाकर ब्रिटेन अपनी जनता के कल्याण के लिए खर्च कर सकता है।[9]
- ईयू की अफसरशाही से मुक्ति: यूरोपियन यूनियन में जारी अफसरशाही ब्रिटेन के लोगों को बिल्कुल भी पसंद नहीं है। ब्रेक्जिट का समर्थन कर रहे लोगों का कहना है कि ईयू तानाशाही रवैया अपनाती है। केवल कुछ ब्यूरोक्रेट मिलकर ब्रिटेन सहित 28 देशों के लोगों के भविष्य तय करते है। एक अनुमान के अनुसार ईयू के लिए करीब 10 हजार अधिकारी कार्य करते है। ब्रेक्जिट की मांग कर रहे लोगों का दावा है कि ईयू में काम करने वाले ज्यादातर अधिकारियों की सैलरी ब्रिटेन के प्रधानमंत्री से भी ज्यादा है। अफसरों को सुविधाएँ जनता के पैसे से दी जा रही है जबकि आम जनता से फैसले लेने का अधिकार छीन लिया गया है।
- ब्रिटेन अपने व्यापारिक निर्णय खुद ले सकेगा: यूरोपीय यूनियन से अलग होने के बाद अब ब्रिटेन को अमेरिका और भारत जैसे देशों से मुफ्त व्यापार करने की छूट मिल जाएगी। ब्रिटेन में वर्तमान में 50 प्रतिशत कानून ईयू के लागू हैं। ईयू के मुकाबले ब्रिटेन बाकी दुनिया को करीब दो गुना ज्यादा निर्यात करता है।
- ब्रिटेनवासियों की पृथक पहचान: ब्रिटेन में लोग सामान्यत: स्वयं को एक यूरोपीय नागरिक के रूप में नहीं देखते। 'लीव' कैम्पेन का मनना है कि वे ब्रिटिश संस्कृति और पहचान को बनाए रखना चाहते हैं।

ब्रेक्जिट यूरोपीय इतिहास में एक बड़ी घटना है। 'रिमेन' कैम्पेन के अपने तर्क है। उनका मानना है कि यूरोपीय संघ से अलग होने पर ब्रिटेन को यूरोपीय संघ में व्यापारिक वरीयता समाप्त हो जाएगी, ब्रिटेन के लिए सिंगल मार्केट सिस्टम खत्म हो जाएगा, पूरे यूरोपियन यूनियन पर ब्रिटेन का दबदबा समाप्त हो जाएगा।

ब्रेक्जिट का भारत पर प्रभाव: ब्रिटेन का यूरोपिय संघ से अलग हो जाने वाला जनमत संग्रह, एक अभूतपूर्व घटना है। इसके सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक प्रभाव आने वाले समय में ही स्पष्ट हो पायेंगे। एक अनुमान के अनुसार 1300 जर्मन कंपनियां ब्रिटेन में कार्यरत है, जबकि 2600 ब्रिटिश लघु कंपनियां जर्मनी में कार्यरत है। संभवत:इनपर प्रभाव पड़ेगा। ब्रेक्जिट के द्वारा ब्रिटेन अधिक समय तक यूरोपिय संघ द्वारा प्राप्त व्यापार वरीयताओं का लाभ नहीं ले पाएगा।

फाइनेंशियल टाइम्स के सर्वे के अनुसार जनमत संग्रह के परिणामों ने राष्ट्रीय ब्रिटिश आय में 0.6 प्रतिशत और 1.3 प्रतिशत की कमी की है। निवेश में भी कमी आई है। हालांकि ब्रेक्जिट का प्रभाव यूरोपिय समुदाय पर पड़ना भी स्वाभाविक है। यूके, ईयू के अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान करता है। यूके के संघ से बाहर हो जाने से यह हिस्सा कम हो जाएगा। यूरोपीयन यूनियन का तीसरा सबसे अधिक जनसंख्या वाला राज्य होने के कारण, ब्रिटेन का प्रभाव यूरोपीयन संसद में निर्विवाद है। इसकी अनुपस्थिति यूरोपीय संस्थाओं में वैचारिक संतुलन को प्रभावित करेगी। विदेश मामलें तथा रक्षा क्षेत्र में

ब्रिटेन यूरोपीय संघ में एक प्रभावकारी शक्ति है। ब्रिटेन के बिना यूरोपीयन विदेश नीति कम प्रभावकारी हो सकती है। अमेरिका ब्रिटेन को यूरोप और अमेरिका के मध्य एक पुल की भांति देखता है। अमेरिकी प्रभाव प्राप्त करने में ब्रिटेन ने यूरोपीयन संघ की मदद की है।

भारत पर ब्रेक्जिट के प्रभावों को निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है:

- विदेशी निवेशकों के लिए भारत सबसे आकर्षित बाजारों में से एक है इसलिए हम विश्व स्तर पर ध्यान आकर्षित करते हैं। दुनिया में होने वाला कोई भी बदलाव चाहे वह आर्थिक हो या राजनीतिक भारत पर इसका प्रभाव पड़ना तय है। ब्रिटेन ने हमेशा यूरोपीय संघ के लिए एक प्रवेश द्वार का काम किया है। कई भारतीय कंपनियों के कार्यालय ब्रिटेन में है ताकि वे लाभ उठा सके और यूरोपीय संघ का हिस्सा बन सकें। लेकिन ब्रेक्जिट के साथ यह लाभ दूर हो जाएगा। कंपनियों को अपने व्यवसायों को स्थानांतरित करना पड़ेगा। ब्रेक्जिट का सकारात्मक प्रभाव भी हो सकता है लेकिन ये प्रभाव तुरंत नहीं दिख सकते।
- ऑटोमोबाइल, फार्मा और आईटी सबसे अधिक प्रभावित हो सकते है। नैस्काम ने भविष्यवाणी की है कि ब्रेक्जिट का असर शार्ट टर्म में $108 बिलियन इंडियन आईटी सेक्टर पर महसूस किया जाएगा। पांउड के मूल्य में अवमूल्यन के कारण सभी चल रही परियोजनाओं के लिए पुनर्मिलन की संभावना है। इसको अगले कुछ वर्षों में कवर किया जा सकता है जिससे देशों के बीच वैकल्पिक व्यवस्था की जा सकती है।
- भारत की 146 बिलियन अमेरिकी डॉलर की आईटी इंडस्ट्री के लिए यूरोप दूसरा बड़ा बाजार यूरोप में भी ब्रिटेन आईटी सेक्टर के लिए सबसे बड़ा बाजार है। कुल निर्यात का 17 प्रतिशत ब्रिटेन को निर्यात किया जाता है। ब्रेक्जिट से इनपर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।[13]
- जहां तक भेषज (Ph lrm l) उद्योग का प्रश्न है, रेटिंग एजेंसी ICRA का मानना है कि इस पर कम प्रभाव पड़ेगा क्योंकि यूरोपीय संघ को अमेरिका द्वारा सबसे अधिक निर्यात किया जाता है।
- ब्रिटेन भारतीयों के लिए शिक्षा की सबसे अधिक मांग में से एक है। ब्रेक्जिट से पहले, ब्रिटिश विश्वविद्यालयों को ब्रिटेन और यूरोपीय संघ के नागरिकों को छात्रवृत्ति और सब्सिडी देने के लिए मजबूर किया गया था। ब्रेक्जिट अन्य छात्रों के लिए धन मुक्त करता है और अधिक भारतीय छात्रों को छात्रवृत्ति

प्राप्त करने में सक्षम हो सकता है। पाउंड मूल्य में कमी से ब्रिटेन की यात्रा लागत कम हो जाएगी और यह अच्छा गंतव्य बना देगा। हालांकि यह भी कहा जा सकता है कि जैसे ब्रेक्जिट पर अनिश्चितता के बादल मंडरा रहे है। भारतीय छात्र अन्य गंतव्यों की और रूख करेंगे जिनमें चीन, न्यूजीलैड मुख्य होंगे।

- टाटा स्टील, भारती एयरटेल (यूके) जैसी कई भारतीय कंपनियों ने ब्रिटेन में परिचालन स्थापित किया है और यूरोपीय परिचालन से राजस्व प्राप्त किया है। जगुआर लैंड रोवर, पीएलसी, टाटा मोटर्स के स्वामित्व में है। ब्रेक्जिट के कारण बिक्री मंदी और चीनी मांग को धीमा करने के जवाब में 4500 नौकरियों पर अनिश्चिता की तलवार लटक जाएगी।
- यूरोजॉन भारत के लिए बड़ा व्यापारिक भागीदार है। 2017 में भारत ने 85 बिलियन यूरो का सामान निर्यात किया। इसलिए, ब्रेक्जिट के बाद, भारत सरकार को अपनी रणनीति को फिर से बनाने की आवश्यकता है और ईयू के साथ मुक्त व्यापार समझौते पर फिर से विचार करना चाहिए।

भारत को यूके के साथ भी एक मुक्त व्यापार समझौते पर भी बातचीत करने की आवश्यकता होगी क्योंकि यह उसी सामान और सेवाओं के शेड्यूल पोस्ट ब्रेक्जिट को बनाए रखने का प्रस्ताव करता है। डब्ल्यूटीओ (WTO) के सदस्यों के पूर्व ब्रेक्जिट द्वारा सहमत होने वाली रियायतें उसी मूल्य को धारण नहीं कर सकती जब ब्रेक्जिट होता है। सभी अतिरिक्त लागतों और शुल्कों पर सहमति व्यक्त की जानी चाहिए, जिन्हें पुननिर्धारित किया जाना चाहिए। भारत ब्रिटेन को 9.6 बिलियन अमेरिकी डॉलर का निर्यात करता है। हालांकि, अन्य कारकों में कमी हो सकती है, ब्रेक्जिट एक और कारण हो सकता है कि 2017 के USD 4.6 बिलियन का व्यापार अधिशेष 2018 में लगभग आधे से 2.5 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक गिर गया।

ब्रेक्जिट पर वर्तमान स्थिति: जैसा कि विदित है कि ब्रिटिश प्रधानमंत्री श्रीमति थेरेसा मे ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया है। श्रीमती थेरेसा उस समझौते को लागू करने के लिए आवश्यक संसदीय सहायता प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रही थी जिसे उन्होंने यूरोपीय संघ के साथ सहमति व्यक्त की थी कि ब्रिटेन इस ब्लॉक को कैसे छोड़ेगा। उसके सौदों को संसद ने तीन बार खारिज कर दिया। विपक्षी लेबर पार्टी के साथ समझौता करने का प्रयास विफल रहा। 24 मई 2019 को श्रीमती मे ने आधिकारिक रूप से कंजर्वेटिव नेता के रूप में अपने इस्तीफे की घोषणा की। उन्होंने कहा, "यह मेरे लिए हमेशा गहरा खेद का विषय रहेगा कि ब्रेक्जिट देने में सक्षम नहीं हूँ।"

10 अप्रैल 2019 को यूरोपीय संघ ने यूरोपीय संघ से यूके की वापसी की समय सीमा के दूसरे विस्तार को मंजूरी दे दी है। अब नवीनतम समय सीमा 31 अक्टूबर 2019 है। नवनिर्वाचित प्रधानमंत्री बोरिस जॉनसन ने स्पष्ट किया है कि समय सीमा समाप्त होने पर यूके, यूरोपीय संघ से बाहर हो जाएगा। ब्रिटेन की वापसी को लेकर अनिश्चितताएँ बनी हुई है और बिना सौदे के वापसी की संभावनाएँ लगातार बढ़ती जा रही है। नो-डील ब्रेक्जिट की तैयारी जारी है।

नो-डील ब्रेक्जिट (No-Dell) का अर्थ है कि ब्रिटेन यूरोपीय संघ को छोड़ देना और भविष्य में ब्रिटेन और यूरोपीय संघ के बीच क्या संबंध होंगे, इस बारे में कोई समझौता नहीं होगा। यदि नो-डील ब्रेक्जिट होता है तो ब्रिटेन और यूरोपीय संघ के बीच परिवहन और व्यापार प्रभावित हो सकता है, बिना ड्राइविग लाइसेंस के यूरोपीय संघ के देशों में परिचालन संभव नहीं होगा, कुछ सीमा जाँचों को फिर से पेश किया जा सकता है। ब्रिटेन और ईयू पर ब्रेक्जिट का प्रभाव क्या होगा, यह तो भविष्य की बात है किन्तु इतना तय है कि यह एक सरल प्रक्रिया नहीं होगा।

ब्रेक्जिट के भविष्य पर अभी अनिश्चितता के बादल मंडरा रहे, है, भविष्य की तस्वीर क्या होगी यह किसी को भी पता नहीं। यद्यपि ब्रिटेन एक बड़ी अर्थव्यवस्था है तथापि वह एक बड़ा आयातक देश भी है। घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु यह चीन, भारत और यूरोपीय देशों पर निर्भर है। यूरोपीय संघ से बाहर निकलने का अर्थ है कि ये अपनी घरेलू व व्यापारिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु चीन व भारत जैसे देशों से संबंधों को मजबूत करने के लिए अग्रसर होगा। यह भारत जैसे उभरती हुई अर्थव्यवस्था के साथ अपने व्यापारिक संबंधों को मजबूत करेगा तथा भारत के पास भी एक अवसर है कि वह ब्रिटेन व यूरोपीय संघ के साथ अलग-अलग व्यापार वार्ताएँ सम्पन्न करे। यूरोपीय संघ के साथ भारत की मुक्त व्यापार समझौते पर वार्ताएँ जारी है, ऐसा ही वह ब्रिटेन के साथ भी कर सकता है। ब्रेक्जिट का भविष्य चाहे जो हो भारत पर पड़ने वाले प्रयास अस्थायी या स्थायी होंगे, यह एक भविष्य का प्रश्न है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. When did Britain decide to Join the European Union? https://Ukandeu.uk/fact-figure/ when-did Britain decide to join the european union Retrieved on 3rd March 2019.
2. Ibid.
3. Browning, Chrirstopher's (2018) Brexit, Existential anxiety and Ontological (in) Security European Security. Vol. 27, No. 3, p. 337.
4. article 50. http://www.investopedia.com/terms/a/article-50.asp&ved. Retrieved on 15 March 2019.
5. Groenedigikg Nico (2012) Enhanced Cooperation Under the Lisbon Treaty in Dasenrode, Soren (Ed.) The European Union after Lisbon. ashgate. England. page 99.
6. Ibid, p. 100.
7. Mauldin, John (2016) 3 Reasons Brits Voted for Brexit. www.forbes.com. Retrieved on 2 april 2019.
8. Brexit. all you need to know about the UK leaving the EU. www.bbc.com/news/uk-politics-

32810887. Retrieved on 2 april 2019.

9. Gupta, Ujjwal (2016) Why did the British People vote to leave he EU? What factors led to the Brexit Outcome? www.quora.com. Retrieved on 5 april 2019.
10. 5 Reasons why Britain Left European Union and Stand with Brexit. http://m.livehindustan.com/news/international/article. Retrieved on 15 april 2019.
11. Brexit to impact Indian IT Sector in short term NASSCOM (2016) www.firstpost.com Retrieved on 20 april 2019.
12. Ibid.
13. Chanda, Rupa and Gupta, Pralok (2015) India-EU People Mobility, Historical, Economic and Regulatery Dimension. Cambridge University Press. p. 188-192.
14. Singh, Rajiv (2019). Brexit and its impact on India Economy www.the finapolis.com. Retrieved as 25 april 2019.
15. Stewart, Healther (2019). Theresa May announces She will resign on 7 June https://www.theguardian.com/politics/2019/may/24/theresa-may-steps-down-resign-tory-leader conservative Brexit & Ved. Retrieved on 3 May 2019.
16. Current State of Brexit Process. https://www.government.se/governmentpolicy/brexit/ current-state-of-the-brexit-process/&ved. Retrieved on 10 May 2019.

23. भारतीय विदेश नीति में कूटनीति के नए आयाम

डॉ. नावेद जमाल*

अंतरराष्ट्रीय संबंध में यथार्थवादी सिद्धान्तियों ने राष्ट्रीय हित की अवधारणा को अपने केंद्रीय विचार के रूप में रखा है। राष्ट्रीय हित की अवधारणा, अंतरराष्ट्रीय सिद्धांत में सबसे अधिक आकर्षण, आलोचना और शैक्षिक बहस का विषय रहा है। अंतरराष्ट्रीय सिद्धांत में विभिन्न वैचारिक विचार धाराएँ स्कूल और सिद्धांत मुख्य और वैकल्पिक सिद्धांतों के रूप में सामने आए जिन्होंने राष्ट्रीय हित की अवधारणा को विदेश नीति के मुख्य निर्धारक तत्व मानने से इंकार किया।[1] परन्तु, इन सिद्धांतों का बल, प्रमुख रूप से, इस बात पर रहा विश्व को कैसा होना चाहिए और उसके लिए देशों को किस प्रकार की विदेश नीति रखनी चाहिए। जबकि, किसी मान्य स्थापित अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के अभाव और राष्ट्रों के बीच विभिन्न प्रतियोगितात्मक भावनाओं के कारण आज भी राष्ट्रहित की अवधारणा से अलग सोच पाना विदेश नीति-निर्माताओं के लिए बहुत कठिन है। यही कारण है कि आज भी राष्ट्रीय हित केंद्रित नीतिगत निर्णयों की ही प्रमुखता विदेश नीति में होती है।[2]

परन्तु यह भी सत्य है की राष्ट्रीय हित कोई स्थिर चर या अवधारणा नहीं है। जैसे जोसेफ फ्रेंकल कहते है कि" राष्ट्रीय हित की धारणाएँ अब अधिक धुंधली हो गई हैं, जितना वे पहले स्पस्ट हुआ करते थे)जोसेफ, 1970)।[3] वस्तुतः, आज राष्ट्रीय हित अधिक जटिल हो गए हैं और इसका एक कारण यह भी है कि विश्व अब भू-राजनीतिक से ज्यादा अर्थ-राजनीतिक हो गए हैं और व्यापार तथा अर्थतंत्र की जटिलता ने राष्ट्रीय हित की अवधारणा को भी जटिल बना दिया है। दूसरी तरफ, राष्ट्रीय हित प्राप्ति का कोई एक तय, सुसंगत या पूर्व-निश्चित तरीका नहीं है और विभिन्न देश अपनी स्थिति और क्षमता के अनुसार ही अपने हितों के लिए भिन्न-भिन्न युक्तियाँ और राजनय की विभिन्न रणनीतियां चुनते हैं। इसे हम 19 वीं शताब्दी में उल्लिखित हेनरी जॉन टेंपल की युक्ति से भी समझ सकते हैं जिसमें उन्होंने राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति के मार्ग में यह स्पस्ट किया कि" हमारे पास न तो कोई शाश्वत सहयोगी है, और न ही हमारा कोई शाश्वत दुश्मन। हमारे हित अनन्त हैं, और उन हितों का पालन करना हमारा कर्तव्य है)" हेनरी जॉन टेंपल का सभा में भाषण कॉमन्स के, 7 अगस्त 1844)।[4]इस प्रकार, यह तो तय है कि हमारे राष्ट्रीय हित परिवर्तनशील हैं और धीरे-धीरे वे जटिल होते गए हैं। परन्तु इसमे परिवर्तन बहुत तेजी से नहीं होता है और एक लम्बा समय या क्रांतिकारी घटना इसके परिवर्तन का कारक बनती है। वस्तुतः राष्ट्रीय हित से अधिक परिवर्तनशील है राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के लिए अपनाए जाने वाली कूटनीति की शैली, गति और

* **एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली**

यंत्ररचनायें। कई बार किसी देश में सरकारों के बदलने के बावजूद राष्ट्रीय हित में कोई खास परिवर्तन देखने को नहीं मिलता परन्तु राजनय और कूटनीति के शैली और गति में स्पस्ट परिवर्तन दृटिगोचर होता है जो कूटनीति की सफलता पर सीधा असर डालता है और विदेश नीति की सफलता के लिए निर्णायक साबित होता है। जैसे भारत में मोदी सरकार और अमेरिका में ट्रम्प की सरकार की विदेश नीति की शैलियों में दृष्टिगोचर होता है। कोई देश अपने विदेश नीति में किस तरह की शैली अपनाएगा यह उस देश के आर्थिक स्थिति, सैन्य शक्ति, राष्ट्रीय स्तर परलोगों के समर्थन के स्तर, सरकार के दृष्टिकोण और विचारधारा तथा अंतरराष्ट्रीय समर्थन जैसे बहुत से कारकों पर निर्भर करता है।

आज भारतीय विदेश नीति में जो पैनापन और सटीकता दिखती है और जिस प्रकार विश्व मामलों में भारत योगदान दे पाता है और सक्रिय भागीदारी कर पाता है उसके पीछे लोकतान्त्रिक शासन का सतत प्रयास और तारतम्यता का बड़ा योगदान है। प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू ने देश की विदेश नीति को एक दिशा और आधार दिया वहीँ इंदिरा गांधी ने विदेश नीति को ठोस यथार्थवादी रूप दिया। पी .वी .नरसिम्हा राव का काल विदेश नीति में आर्थिक तत्वों के प्रधानता के काल का प्रारम्भ-काल था जिसमे शीत-युद्ध के बाद की परिस्थियों से निपटने की रणनीतियों को शामिल किया गया। अटल विहारी वाजपेई का नेतृत्व जहाँ भारत को अंतरराष्ट्रीय नेतृत्व के लिए तैयार करने काल था वहीं मनमोहन सिंह की सरकार ने अपनी विदेश नीति में इस नेतृत्व देने के उत्तरदायित्व को निभाया और भारत के बढे सामर्थ्य से विश्व को परिचित कराया। परन्तु विदेश नीति निरन्तरता के साथ-साथ एक निरंतर परिवर्तन का भी विषय है। मोदी सरकार में इस निरंतरता के साथ साथ विशिष्ट गतिशीलता भी दिखती है। आज मोदी सरकार में विदेश नीति में "फ़ास्ट एन्ड प्रोएक्टिव ट्रैक" की बात की जा रही है।[5] एन. डी. ए.- 2014 के कार्यकाल में हालांकि सभी ट्रैक्स को प्रोऐक्टिवली) सक्रियता से (विदेश नीति में शामिल किया गया परन्तु इसमें भी भारतीय सॉफ्ट ट्रैक कूटनीति का बड़ा प्रयोग और उसकी सफलता देखने को मिली।

वर्तमान भारतीय विदेश नीति पहले से कहीं अधिक यथार्थवादी भी हुई है। आज जहाँ भारतीय नेतृत्व राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति के लिए अधिक आक्रामक रुख अपना रहा हैं वहीं सांस्कृतिक और अन्य मृदु कुटनीति के तरीकों को बृहद स्तर पर प्रयोग किया जा रहा है।भारत द्वारा हाल ही में बांग्लादेश के साथ सीमाओं की वर्षों पुरानी समस्या को समाप्त करना, भारतीय विदेश नीति द्वारा अफ्रीकी और प्रशांत द्विप समूह के साथ सांस्कृतिक संपर्क स्थापित करना और दक्षिण एशियाई देशों, शोषित तीसरी दुनिया के देशों की आवाज अंतरराष्ट्रीय मंचों पर उठाने के कार्यों को बराबर महत्व देना इस बात का उदहारण है कि भारत ने अपनी कूटनीति को बहुत समृद्ध बनाया है।

यदि भारतीय विदेश नीति के तीन प्रमुख बिंदुओं विषय-वस्तु, दूसरा नेतृत्व का प्रभाव और तीसरा राजनय का तरीकेपर प्रकाश डाला जाये तो कूटनीति में शामिल नए आयामों को देखा जा सकता है। विषय-वस्तु के स्तर पर, भारत, अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में, जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ, सुरक्षा परिषद अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष) I.M.F.) में, अपनी दावेदारी मजबूत करना चाहता है वहीँ जलवायु परिवर्तन, विश्व व्यापार संगठन, विश्व बैंक, परमाणु ऊर्जा के विषयों में यह सक्रिय सहभागिता के साथ-साथ मजबूत सौदेबाजी की स्थिति में है जिसमे वह अपने हितों को ठीक ढंग से आगे रखने का इच्छुक है।

विषय-वस्तु के स्तर पर भारत अब आतंकवाद से निपटने, ऊर्जा सुरक्षा और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश जैसे विषयों को और अधिक विविधता के साथ आगे बढ़ा रहा है।आज भारत जहाँ क्षेत्रीय सहयोग को नई भौगोलिक सीमाओं में प्रसारित कर रहा है वहीं पहले से स्थापित सहयोग और गहरे हो रहे है। जैसे - भारत ने, एन डी ए सरकार के अंतर्गत पडोसी देशों को और अधिक महत्व देने और पुराने मामलों को शीघ्र निपटाने पर ध्यान दिया है।[6]नेतृत्व का प्रभाव हम भारतीय प्रवासियों की सक्रिय भागीदारी में भली भातिं देख सकते हैं। दुनिया भर में हूस्टन के" हौडी मोदी"[7] जैसे आयोजनों ने आज प्रवासी भारतीयों का देश के साथ सम्बन्ध तो गहरा किया ही है साथ ही भारत के द्विपक्षीय संबंधों को भी प्रगाढ़ बनाने में मदद की है। राजनय के स्तर पर भारतीय विदेश नीति में एक नया शब्द फ़ास्ट ट्रैक शामिल हुआ है। फ़ास्ट ट्रैक विदेश नीति की निरन्तरताओं को और अधिक गहरा करने और राष्ट्रीय हित के लक्ष्यों की प्राप्ति की सक्रियता को दिखाता है।

मोदी सरकार की विदेश नीति के बारे में, पूर्व विदेश सचिव और अमेरिका और चीन में भारत की राजदूत निरुपमा राव ने अपने लेख" न्यू, स्ट्रांग एँड क्लियर आउटरीच " में लिखा है कि किसी देश की विदेश नीति भूगोल और इतिहास दोनों की उपज होती है। नेतृत्व या सरकार में परिवर्तन अनिवार्य रूप से इसके मूल में परिवर्तन नहीं करते हैं। श्री मोदी ने जो कुछ किया है वह उनके उत्साह और व्यक्तित्व पर मुहर लगाता है) द हिंदू, 2016)।[8] वास्तव में नेतृत्व के सक्रिय होने से न सिर्फ नीतियाँ प्रभावित होती हैं बल्कि इस प्रक्रिया को और अधिक तेजी प्रदान करतें हैं।

मोदी सरकार के पहले कार्य-काल में बहुत से नवाचार भी विदेश नीति में देखने को मिले। सी राजा मोहन) निदेशक, कार्नेगी इंडिया(, ने अपने लेख" पीएम मोदीज फॉरेन पालिसी :मेकिंग इंडिया अ लीडिंग पावर "में कहा कि प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी का केंद्रीय योगदान है -अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में देश को 'प्रमुख शक्ति' के रूप में मान कर भारतीय विदेश नीति का सञ्चालन।[9] भारत ने शीत युद्ध की समाप्ति के बाद से जानबूझकर विश्व मामलों में कम हिस्सा लिया है अंतरराष्ट्रीय प्रणाली में खुद को लो प्रोफ़ाइल रखा और अपनी ताकत से कम ही वह विश्व व्यवस्था में सक्रिय रहा।सी राजा मोहन का कहना है की प्रधानमंत्री

मोदी ने अपने कार्यकाल में इस दृष्टिकोण से दूर जाने की कोशिश की हैऔर वैश्विक मुद्दों पर अधिक सक्रिय दृष्टिकोण अपनाया है।

मोदी सरकार की पहल जिसमें दक्षिण एशिया में भारत ने अपने निकटवर्ती पड़ोसियों को महत्व देने और भरोसा बढ़ाने के लिए प्रयास किया, एक सराहनीय कदम माना गया। पहले शपथ ग्रहण समारोह में पडोसी राष्ट्राध्यक्षों को बुलाना इस बात को प्रतिबिंबित करता है कि भारत अपने पड़ोसियों के साथ संबंधों को बेहतर बनाना चाहता है।

भारत की एक्ट ईस्ट पालिसी के नवाचार के माधयम से भारत अपने आर्थिक और सुरक्षा सहित कई हितों को एक साथ साधने की कोशिश कर रहा है।[10] भारतीय उत्तर-पूर्व विकास के अलावा सुरक्षा-सहयोग के लिए भी भारत को पूर्वी और दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों के सहयोग की आवश्यकता है। प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ने म्यांमार की राजधानी नय पेई तव में पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन को संबोधित करते हुए 14 नवंबर 2014, दुनिया के नेताओं को बताया कि उनकी सरकार की सबसे बड़ी प्राथमिकता भारत की "पूर्व की ओर देखो "नीति को सिर्फ चालू रखना नहीं बल्कि इसे और प्रगाढ़ करना है। इस नीति को और अधिक महत्व देने के लिए ही इसे" एक्ट ईस्ट पालिसी "के रूप में लाया गया। इस विषय पर प्रधानमंत्री मोदी ने म्यांमार में कहा कि उनकी सरकार ने" कार्यालय में प्रवेश के बाद के ही महीनों में 'लुक' शब्द को बदलने पर प्राथमिकता दी ताकि संबंधों में एक नई गति और सहयोग की भावना लायी जा सके। आज, एक्ट ईस्ट पालिसी ने इन देशों में भारत से सहयोग का वातावरण बनाया है। आज, भारत की एक्ट ईस्ट पालिसी एशिया-प्रशांत क्षेत्र को अपने विस्तारित पड़ोस के रूप में देख रहा है। भारत ने इंडोनेशिया, वियतनाम, मलेशिया, जापान, कोरिया गणराज्य, ऑस्ट्रेलिया, सिंगापुर और दक्षिण पूर्व एसोसिएशन एशियाई देशों (आसियान) और एशिया- प्रशांत क्षेत्र में सभी देशों के साथ अपने घनिष्ठ संबंध को रणनीतिक साझेदारी के स्तर पर विकसित किया है। भारत, आसियान, आसियान क्षेत्रीय मंच (ए.आर.एफ.) और पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन (ई.ए.एस.) के अलावा, अन्य बहुपक्षीय मंचों बंगाल की खाड़ी तकनीकी और आर्थिक सहयोग (बि.म्स.टे.क.), एशिया सहयोग वार्ता (ए.सी.डी), मेकांग गंगा सहयोग (एम्. जी. सी.) और हिंद महासागर रिम एसोसिएशन (आई. ओ. आर. ए.) पर भी सक्रियता दिखाई है और और इस क्षेत्र में अपनी स्थिति पहले से कहीं अधिक सुदृढ़ की है।

एक और उल्लेखनीय कदम विदेश नीति में जो इस सरकार में लिए गया है वह है भारतीय प्रवासी जन समूह के साथ सम्बन्ध गहरा करने का सक्रिय और वृहद् प्रयास। इस माध्यम से विदेश नीति निर्माताओं को दोहरा लाभ मिला है - पहला डायस्पोरा द्वारा देश के विकास और निवेश में भूमिका और दूसरा भारत

और उनके निवास के देश के बीच में उनकी जन-राजनयिक की भूमिका से द्विपक्षीय संबंधों में प्रगाढ़ता।

पिछले कार्य काल में न्यूयॉर्क में, एक विशाल प्रवासी भारतीय जन सभा को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री मोदी ने कहा, प्रवासी भारतीय, भारत की एक सकारात्मक छवि बनाने मेंअमेरिका में ही नहीं, बल्कि दुनियाभर में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इस विषय पर विदेश नीति की एक वरिष्ठ पत्रकार सुहासिनी हैदर ने लिखा है की प्रवासी भारतीय से सम्बन्ध का विषय कूटनीति में एक नया आयाम बन के उभरा है और प्रधानमंत्री मोदी की विदेश नीति में भारतीय प्रवासी जन समूह भी एक महत्वपूर्ण कारक बन गया है।

सुलभ मार्गीय राजनय, जिस में भारत ने जन से जन सम्बन्धों को महत्व देने और सांस्कृतिक कूटनीति के वृहद्प्रयोग का कार्य किया है, इस सरकार का एक अन्य नवाचार है जिसको दुनिया भर में पहचान मिली है। विश्व योग दिवस वह है इस दिशा में भारतीय सुलभ शक्ति का एक बड़ा उदहारण है। योग दिवस को संयुक्त राष्ट्र संघ के स्तर पर मनाने, नेपाल में मंदिर की यात्रा और संयुक्त अरब अमीरात में मस्जिद में यात्रा, जापानी प्रधानमंत्री को गीता भेंट करना और सारनाथ की यात्रा पर ले जाना और मध्य एशिया में इस्लामिक विरासत पर बल दिया जाना भारतीय विदेश नीति की सुलभ मार्गीय राजनय और सक्रिय राजनय का प्रतीक है।

साथ ही साथ विदेश नीति निर्माताओं द्वारा हर संभव अंतरराष्ट्रीय मंच पर अपनी विकासात्मक पहलों पर ध्यान केंद्रित करना, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ.डी.आई.), एफ.पी.आई. और व्यापार को आकर्षित करने का प्रयास, यह दिखाता है कि भारतीय विदेश नीति राष्ट्रीय हितों को साधने के लिए हर प्रकार की कूटनीति का प्रयोग सक्रियता से कर रही है। आज भारतीय विदेश नीतियों ने घरेलु नीतियों को भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बहुत महत्व दिया है। जैसें भारत ने आज हर मत्तवपूर्ण अंतरराष्ट्रीय मंच पर 'मेक-इन-इंडिया', 'स्किल इंडिया', 'ईज आफ बिजनेस' और 'बुनियादी ढाँचे के विकास' जैसे पहलुओं को जोर शोर से उठाया है।

'पंचशील' के साथ-साथ 'पंचामृत' की नीति का भारतीय विदेश नीति में समावेश एक नए आयाम जोड़ने के साथ एक नया प्रतिमान भी प्रस्तुत करता है। पंचामृत के पाँच विषय है - सम्मान, समृद्धि (साझा समृद्धि), सुरक्षा (क्षेत्रीय और वैश्विक), संस्कृति (साझा विरासत) और सभ्यतागत संबंध की पुर्नस्थापना और विकास।उदाहरण के लिए, जापान, चीन, श्रीलंका में बौद्ध समुदाय धर्म के कारण भारत से एक सांस्कृतिक जुड़ाव महसूस करते हैं।

हालांकि पंचामृत एक आधिकारिक संस्करण नहीं है और यह अप्रैल 2015 को राष्ट्रीय भाजपा

कार्यकारिणी की बैठक में शामिल हुआ[11] लेकिन यहाँ देखा जा सकता है कि यह किस प्रकार भारत की विदेश नीति को प्रभावित कर रहा है और आकार दे रहा है। पंचामृत का तत्व, सम्मान भारत के छवि से जुड़ा है और देश हित की सिद्धि के लिए अंतरराष्ट्रीय मंचों पर मान्यता प्राप्त करने की कोशिश को परिलक्षित करता है। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में स्थायी सीट की मांग सामर्थ्य से ज्यादा राष्ट्र की छवि से जुड़ा है। यह भारत की शक्ति वृद्धि करेगा और इसके साथ ही यह अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य पर भारतीय गरिमा को भी बढ़ाएगा। उसी तरह से भारत की आर्थिक ताकत, भारत में जनसांख्यिकीय लाभांश की बड़ी संभावनाएँ और भारत की सूचना प्रौद्योगिकी (आई.टी.) शक्ति का विभिन्न मंचों पर प्रचार-प्रसार राष्ट्र की गरिमा को बढ़ाने के लिए किया जा रहा है। प्रधान मंत्री ने अपने कई आधिकारिक संबोधन और भाषणों में तथा विभिन्न भारतीय प्रवासी सभाओं में भारतीय ताकत का विज्ञापन किया है और देश की छवि को ऊपर उठाने का प्रयास किया है। इसी प्रकार भारतीय नौसेना द्वारा ओमान से 40 से अधिक देशों के लोगों को निकालने के उदाहरणों ने देश का सम्मान अंतरराष्ट्रीय जगत में बढ़ाया है।

अगर हम संवाद की बात करें तो यह गहरे जुड़ाव के लिए आवश्यक के साथ साथ अपनी राष्ट्रीय हित की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी जरूरी है। भारत अपनी विदेश नीति में वृहद् स्तर पर बेहतर संवाद को अपनी कूटनीति में शामिल कर रहा है। यही कारण है कि प्रधान मंत्री और विदेश मंत्री ने अपने पहले कार्यकाल के शुरूआती सालों में ही दुनिया के लगभग आधे हिस्से का दौरा किया। वर्तमान सरकार अब उन देशों को भी संवाद में शामिल करने का प्रयास कर रही है जहाँ पहुंच बहुत कम थी। इस पहल में, यहां तक कि उन देशों को भी शामिल किया जा रहा है जो कभी भी भारत संवाद में शामिल नहीं रहे। इस प्रकार संवाद भारत की पहुंच को सुदृढ़ करने के साथ साथ विस्तारित भी कर रहा है।

समृद्धि, भारत के लिए प्राथमिकता का विषय है और तब विशेष कर जब भारत गरीबी उन्मूलन को प्राथमिक विषय से लेकर आगे बढ़ रहा है। भारत अब दुनिया में सब से तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था है जो अधिक व्यापार और निवेश को आकर्षित करने का अवसर दे रहा है। भारत ने अपनी समृद्धि के विषय पर अगले पांच सालों में पांच ट्रिलियन डॉलर की अर्थअवस्था बनाने का लक्ष्य रखा है। वस्तुतः यह लक्ष्य निवेश आधारित समृद्धि की बात करता है जो एक गहन कूटनीति की मांग करता है। आर्थिक महाशक्तियों और विकसित बाजारों के साथ-साथ, भारत अन्य विकासशील देशों और संसाधन संपन्न देशों के साथ सहयोग कर रहा है। भारत अपनी बढ़ी हुई क्षमता के साथ अपने व्यापार में बढ़त के अतिरिक्त निवेश आकर्षित करने और देश से बाहर निवेश करने, दोनों, पर ध्यान कर रहा है। जैसे अभी हाल ही में रूस के सुदूर पूर्व में निवेश की संभावनाओं को देखते हुए उस क्षेत्र के विकास के लिए भारत ने एक बिलियन डॉलर की 'लाइन–ऑफ़-क्रेडिट' दी है। आज समृद्धि के लिए विकसित और विकासशील दोनों

अर्थव्यवस्थाओं के साथ सहयोग की आवश्यकता है विशेष रूप से तब जब वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धा बढ़ी है। मंदी की इस अवधि में किसी अर्थव्यवस्था को आज द्विपक्षीय और बहुपक्षीय दोनों स्तर पर बेहतर आर्थिक संबंध बनाने की जरूरत है। इस सन्दर्भ में, हाल के वर्षों में, भारतीय विदेश नीति में बढ़ती आर्थिक कूटनीति को स्पस्ट देखा जा सकता है। भारत जी-20, इब्सा, ब्रिक, संघाई को आपरेशन जैसे बहुत से बहुपक्षिय संगठनों में सक्रीय भागीदारी भी कर रहा है। भारत यूरोपीय संघ, ए.पेक. और मेरकोसुर जैसे बहुत से आर्थिक मंचो पर भी सहयोग कर रहा है जिस से व्यापार और निवेश को गति दी जा सके।

सुरक्षा, हमेशा से राष्ट्रीय हित का प्रमुख कारक रहा है चाहे पारम्परिक अंतरराष्ट्रीय संबंधों का काल हो या वर्तमान में 21वीं सदी। आज के परिदृश्य में विशेष रूप से जब आतंकवाद का भय सामने हो, कोई भी राज्य सुरक्षा के महत्व को कम नहीं कर सकता। बेहतर सुरक्षा के लिए, आंतरिक और बाह्य घरेलु सुरक्षा के अलावा आज क्षेत्रीय और वैश्विक मंचों के साथ सहयोग भी आवश्यकता बन गया है। भारत इस दिशा में, सेना के आधुनिकीकरण केसाथ-साथ, सूचना-आसूचना को मजबूत करने, उच्च गुणवत्ता के हथियारों के खरीद और स्वदेशी रक्षा तकनीकी विकास जैसे सभी पहलुओं पर एक साथ काम कर रहा है। वर्तमान शासन में भारत प्रयास कर रहा है कि स्वदेशी रक्षा प्रौद्योगिकी को अधिक से अधिक प्रोत्साहन मिले।

आज दुनियाभर में लगभग दो सौ मिलियन (दो करोड़) भारतीय देश के बाहर रहते हैं। वास्तव में, यह एक भारतीय ताकत है जो भारत कि सांस्कृतिक विरासत के प्रसार में बड़ी भूमिका निभा रहे हैं। वहीं भारत के समृद्ध इतिहास में ऐसा बहुत कुछ है जिसके कारण भारत के सम्बन्ध एक समय से कई देशों और क्षेत्रों के साथ रहे परन्तु समय के साथ और विशेष रूप से औपनिवेशिक काल में यह ब्रिटिश हितों के अनुसार बदल दिए गए। आज भारतीय सांस्कृतिक और सभ्यता की विरासत को एक बार फिर उभरने और कूटनीति का वृहत हिस्सा बनाने का प्रयास नीति-निर्माता कर रहे हैं।

भारतीय नेतृत्व की विदेश नीति में एक और नई पहल देखने को मिल रही है और वह है राजनय में संचार और लोगों तक बात पहुंचाने के लिए नई मीडिया का कारगर उपयोग। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने सोशल मीडिया की पहुंच का लाभ उठाया है और इस नवीनीकरण के माध्यम से देश और विदेश में भारतीय छवि को ऊँचा उठाने का प्रयास किया है। पहले कार्यकाल में तात्कालिक अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा और डोनाल्ड ट्रम्प के साथ ट्विटर पर विभिन्न विषयों को लेकर मौजूदगी इस बात को दर्शाती है कि कैसे सोशल मीडिया का प्रयोग राजनय में किया जा सकता है। पूर्व विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने भी मंत्रालय को परोपकारी रूप देने और मदद के लिए ट्विटर, इंस्टाग्राम आदि का अच्छा प्रयोग किया और मंत्रालय को एक नई छवि दी।

वस्तुतः, मोदी सरकार की विदेश नीति में जो नई चीजें देखी जा रही हैं, वह इसकी शैली है जिसे ऊर्जावान, प्रोएक्टिव और 'फास्ट-ट्रैक डिप्लोमेसी' के संदर्भ में अभिव्यक्ति दी जा रही है। आज कूटनीति में एक नई ऊर्जा देखी जा रही है जहां सक्रियता से और नियमित रूप से निर्णय लेने पर जोर दिया है, जिस से भारत अपने "स्लोमूवर"[12] का टैग हटा सका है। इस विषय पर पूर्व विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने भी सितंबर 2014 को अपनी पहली मीडिया ब्रीफिंग में कहा गया कि मोदी सरकार का कैचफ्रेज़ है "फास्ट-ट्रैक डिप्लोमेसी" और कहा कि इस के तीन चेहरे है - सक्रिय, मजबूत और संवेदनशील। स्वयं सुषमा स्वराज ने भी विदेश नीति के संचालन में सराहनीय ऊर्जा दिखाई। सी. राजामोहन मोदी सरकार की विदेश नीति को आत्मविश्वासी, ऊर्जावान और केंद्रित मानते है। भारत आज अपने राष्ट्रीय हितों को इस प्रकार आगे ले जाने का प्रयास कर रहा है कि भारत एक महाशक्ति के रूप में उभर सके साथ ही अंतरराष्ट्रीय समुदाय का सहयोग और सम्मान भी प्राप्त हो सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वाल्तेरस, रोसिए; स्केंनपफलोग, क्रिस्चियन.*इंटरनेशनल रिलेशन थ्योरी.* लंदन:इ-इंटरनेशनल रिलेशन पब्लिकेशन. 2017.
2. मेसक्विटा, ब्रूसबेनोडी. *प्रिंसिपल्स ऑफ़ इंटरनेशनल पॉलिटिक्स.* लॉस एँजेलेस: सेज. 2014.
3. फ्रैंकल, जोसेफ. *नेशनल इंटरेस्ट.*लंदन: मैकमिलन पालग्रेव. 1970.
4. टेम्पल, हेनरीजॉन. *हाउस ऑफ कॉमन्स में भाषण.* लंदन: हाउस ऑफ कॉमन्स रेफरेंसेज.7 अगस्त 1844.
5. चौलिए, डा. श्रीराम. *मोदी डॉक्ट्रिन: दफॉरेन पालिसी ऑफ़ इंडिआज प्राइम मिनिस्टर.* नई दिल्ली: ब्लूम्सबरी. 2016.
6. प्रेस इनफार्मेशन ब्यूरो. *अईयर ऑफ़ स्मार्ट डिप्लोमेसी.* नई दिल्ली. 2015. http://pib.nic.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=133723
7. प्रेस इनफार्मेशन ब्यूरो.*पी एम् एड्रेसेज द इंडियन कम्युनिटी इवेंट हौडी मोदी.* नई दिल्ली. 2019.https://pib.gov.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=193339
8. राव, निरुपमा. *न्यू, स्ट्रांग एँड क्लियर आउटरीच.* दहिन्दू. 4 मार्च 2016. https://www.thehindu.com/opinion/op-ed/narendra-modi-new-strong-and-clear-outreach/article8310200.ece
9. मोहन, सीराजा. 'पीएम मोदीज फॉरेन पालिसी: मेकिंग इंडियाअ लीडिंग पावर'. द *हिंदुस्तान.* 5 अप्रैल 2016. https://www.hindustantimes.com/analysis/pm-modi-s-foreign-policy-making-india-a-leading-power/story-SMXx2543j1uPgcHCb0QmJJ.html

10. प्रेस इनफार्मेशन ब्यूरो. *एक्ट ईस्ट पालिसी.* नई दिल्ली 23 दिसंबर 2015. https://pib.gov.in/newsite/printrelease.aspx?relid=133837

11. 'पंचशील गिव्स वेटू पंचामृत'. *दटेलीग्राफ.* 4 अप्रैल 2015. https://www.telegraphindia.com/india/panchsheel-gives-way-to-panchamrit/cid/1510952

12. मोहन, सीराजा. द *हिंदुस्तान.* 5 अप्रैल 2016.

***

24. भारत-बांग्लादेश सम्बन्ध और चीन

डॉ. अली इमाम*

भारत, बांग्लादेश का साझा इतिहास साझी विरासत, साझी भाषा संस्कृति स्वाधीनता संघर्ष एवं स्वतंत्रता की साझी विरासत दोनों देशों को आपस में जोड़ती है। भारत के प्रयासों से ही पूर्वी पाकिस्तान को पश्चिमी पाकिस्तान के जुल्म से निजात मिली और 1971 में बांग्लादेश नाम देश का उदय हुआ। भारत के प्रयास से ही बांग्लादेश को 1974 में संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता प्राप्त हुई। मार्च 1972 के भारत बांग्लादेश के बीच मैत्री और शांति संधि तथा 29 मार्च को अल्पासिल व्यापार समझौता से सम्बंधों की शुरूआत हुई। मैत्री संधि तथा व्यापार समझौता दोनो ही समानता, मित्रता और पारस्परिक लाभ की भावना से सम्पन्न किये गये थे। लेकिन बाद की बांग्लादेश में ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गई जिसके कारण दोनों देशों के बीच सम्बन्ध सामान्य नहीं रहे।

अप्रैल 1993 में ढाका में सार्क शिखर सम्मेलन आयोजित होना था। भारतीय प्रधानमंत्री ने इसमें शामिल होने की अपनी रजामंदी दे दी थी। इससे दोनों देशों के बीच उत्पन्न तनावों को पिघलने में मदद मिली और इससे सम्बन्धों का ग्राफ ऊपर की ओर बढ़ा भी। ढाका में 10 अप्रैल को बेगम खालिदा के साथ भेंट में नरसिंहा राव ने पानी में हिस्सेदारी के लिए उठाये जाने वाले अपने देश की ओर से प्रयासों का प्रस्ताव दिया और सभी द्विपक्षीय मामलों पर व्यापक विचार-विमर्श शुरू करने की उम्मीद जताई।

कुल तीन विशेष प्रकार के प्रमुख मामलों - नदियों के जल में हिस्सेदारी अवैध प्रवासियों की वापसी तथा चकमा शरणार्थियों के संदर्भ में, तीसरे पर कुछ सकारात्मक पहल शुरू हुई। बांग्लादेश से 5 सूत्री समझौता हुआ जिसके तहत इन चकमा शरणार्थियों की सुरक्षित स्वदेश वापसी, वहां उनकी जानमाल की हानि का लेखा-जोखा तैयार कर उनके रहने लायक बनाने, राहत देने, उनकी नष्ट हुई वैध सम्पति का कुछ मुआवजा देने सहित वहाँ उनकी सुरक्षा पूर्वक रहने की व्यवस्था की गारंटी दी गई। 15 फरवरी 1994 को चकमा शरणार्थियों की स्वदेश वापसी शुरू हुई और करीब 1841 चकमा शरणार्थी प्रथम चरण में और द्वितीय चरण में 13763 शरणार्थी स्वदेश वापस गये। इस प्रकार चकमा शरणार्थियों की स्वदेश वापसी से दोनों देशों के बीच सम्बन्ध सामान्य बनाने की दिशा में पहला कदम माना जाता है।

तीस वर्ष के लिए पानी के विभाजन का समझौता- 14 दिसम्बर 1996 को प्रधानमंत्री के रूप में शेख हसीना की पहली विदेश यात्रा के दौरान यह ऐतिहासिक समझौता दोनों पक्षों की सहमति से हस्ताक्षरित

* **एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी.ए.वी. पी.जी.कॉलेज, सीवान (बिहार)**

हुई। तीस वर्ष के लिए इस समझौता के तहत 50-50 प्रतिशत् तक कम पानी के मौसम (Lean Season) में एक निश्चित स्तर का गंगा जल में हिस्सेदारी तय हुई तथा यदि जल का स्तर घटा तो एक तकनीकी सलाहकार समिति द्वारा दोनों पक्षों में व्यवहारिक संधि करने के लिए उपाय ढूंढ़ने पर सहमति का प्रस्ताव रखा गया।

बांग्लादेश की प्रधानमंत्री ने विश्वास व्यक्त किया कि व्यापार एवं वाणिज्य से संयुक्त उद्यम शुरू करने, सामान्य संसाधनों का सहकारिता पूर्वक उपयोग करने के लिए अवसरों की खिड़कियां खुलने की प्रतीक्षा में है। उन्होंने गरीबी और यथास्थितिवाद से ऊपर उठने की जरूरत पर बल देते हुए कहा कि हमें भूतकाल का बंदी नहीं बने रहना चाहिए, हमें उस तेजी से बदलती हुई दुनिया में आगे बढ़ना चाहिए जहां अर्थव्यवस्था और परिस्थिति की विज्ञान, राजनीति और संघर्ष से आगे निकल गये हैं। 1971 की भावना को याद करते हुए उन्होंने भारत की जनता को हमारे मुक्ति संग्राम के दौरान किये गये उनके बलिदानों के लिए धन्यवाद दिया।

थोड़े समय के लिए ही सही भारत बांग्लादेश के बीच सम्बन्धों में तनाव खत्म हो गए। बांग्लादेश में इस समझौते को लेकर जश्न मनाया गया। इस तीस वर्षीय समझौते को शेख हसीना और देवगौड़ा, दोनों ने दोनों देश के लिए न्यायिक और सही बताया। इस प्रकार हम देखते हैं कि चकमा शरणार्थियों की स्वदेश वापसी तथा गंगा जल का बंटवारा आदि समझौतों से दोनों देशों को और नजदीक आने में मदद मिली।

दिसम्बर 2008 में वहाँ हुए आम चुनावों में अवामी लीग की प्रचंड जीत के बाद भारत - बांग्लादेश सम्बन्धों में एक नये अध्याय की शुरूआत हुई। प्रधानमंत्री शेख हसीना ने भारत के प्रति सकारात्मक रूख अपनाने में बहुत तेजी दिखाई। जनवरी 2010 में शेख हसीना ने दिल्ली आईं और यह अपने समकक्ष प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह से मुलाकात की। सितम्बर 2011 में भारत के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने ढाका की यात्रा की। इस यात्रा का मकसद 2010 में जो सकारात्मक पहल हुई थी उसे और आगे ले जाना था। इन दो उच्च स्तरीय यात्राओं की सकरात्मक उपलब्धियों को संक्षेप में नीचे रखा जा सकता है।

राजनीतिक सहयोग- दोनों प्रधानमंत्रियों ने भविष्य के लिए द्विपक्षीय क्षेत्रीय और विश्व स्तर पर एक साझा दृष्टि की खोज पर सहमति प्रदान की। उन्होंने यह माना कि दोनों ही देशों के लोगों के कल्याण और विकास के लिए क्षेत्र में शांति और स्थिरता जरूरी है। दोनों प्रधानमंत्रियों ने भविष्य में उनके साझा पारस्परिक दृष्टिकोण और मजबूत हों, इसके लिए भी दोनों देशों के बीच विकास के लिए एक व्यापक सहयोग फ्रेमवर्क तैयार करने पर सहमति जताई। इस सहयोग में जल संसाधन, विद्युत, परिवहन, कनेक्टिविटी, पर्यटन और शिक्षा भी शामिल है। साथ ही दोनों देशों के बीच राजनयिक और वाणिज्यिक संबंधों को मजबूत करना लोकतंत्र के प्रति प्रतिबद्धता, बहुलवाद और कानून का शासन द्विपक्षीय संबंधों

को बढ़ावा देने के लिए संस्थागत तंत्र के नियमित आयोजन पर भी सहमति बनी।

सुरक्षा सहयोग दोनों ही देशों के प्रधानमंत्रियों ने आतंकवाद के सभी रूपों की आलोचना की और इस आश्वासन को दोहराया कि वे अपनी धरती का इस्तेमाल दूसरे देशों में संचालित होने वाले आतंकवादी गतिविधियों के लिए नहीं होने देंगे, घरेलू या विदेशी/आतंकवादी और विद्रोही संगठनों और उनके संचालकों द्वारा अभयारण्य और अन्य ऑपरेशन के रूप में भी अपनी धरती का इस्तेमाल नहीं होने देंगे। दोनों ही प्रधानमंत्रियों ने द्विपक्षीय सुरक्षा सहयोग के लिए कानूनी ढांचे को शीघ्र तैयार करने और दोनों देशों के बीच एक प्रत्यर्पण संधि पर भी सहमति जताई। आपराधिक मामलों पर आपसी कानूनी सहायता पर समझौता, सजायाफ्ता व्यक्तियों के हस्तांतरण और अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद का मुकाबला करने पर समझौते, संगठित अपराध और अवैध ड्रग तस्करी के खिलाफ भी जनवरी 2010 में हस्ताक्षर किए।

क्षेत्रीय और समुंद्री विवाद दोनों प्रधानमंत्रियों ने लंबे समय से लंबित सीमा विवाद को 1974 को भू सीमा समझौते के तहत समाधान पर सहमति जताई। इस संदर्भ में प्रधानमंत्रियों ने 1974 के भू सीमा समझौते के प्रोटोकोल पर गहरी संतुष्टि जताई, जो कि सीमा विवाद के समाधान के रास्ते प्रशस्त करता है। इसमें अपरिवर्तनीय इलाकों, प्रतिकूल कब्जे वाले इलाकों और एन्क्लेव के आदान-प्रदान सहित क्षेत्र शामिल है। प्रधानमंत्री शेख हसीना ने भारत में बांग्लादेशी नागरिकों के तीन बीघा कारीडोर से निर्बाध आवागमन की सुविधा प्रदान करने के फैसले की प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि सीमा विवाद के निपटारे से अंगारपोटा और दाहाग्राम के लोगों के लिए काफी राहत मिलेगी, क्योंकि इसके कारण उन्हें काफी परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है।

यातायात और संचार के क्षेत्र में सुगमता की महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल हुई है। भारत ने बांग्लादेश से रेल रूट रोहनपुर-सिंगबाद (मालदा, पश्चिम बंगाल) से नेपाल उर्वरक भेजने की अनुमति दी है। उन्होंने चिलाहाती-हल्दीबारी और कुलौरा-महिषाशन के बीच रेलवे सम्पर्क फिर से स्थापित करने पर भी सहमति व्यक्त की। दोनों देशों के बीच पुराने संबंधों और परिवहन मार्गों के पुनरूद्धार को प्रोत्साहित करने की भावना के तहत ऐसा किया गया है। कोलकाता और ढाका के बीच मेत्री एक्सप्रेस शुरू किया जाना दूसरा मील का पत्थर है।

इसके अलावे भारत ने बांग्लादेश को एक बिलियन अमेरिकी डालर की लाइन आफ क्रेडिट विस्तार की सुविधा दी है, जो कि बांग्लादेश के संरचनात्मक ढांचे को मजबूती प्रदान करेगा। मसलन खुलना-मांगला रेल लाइन और तितास और भैरव नदी पर रेल पुल बनने की संरचनात्मक परियोजना के पूरा होने से बांग्लादेश के रेलवेज को मजबूती मिलेगी। इससे बांग्लादेश ढाका में सार्वजनिक परिवहन के लिए

बसों की खरीद कर सकेगा। वह बांग्लादेश की नदियों की तल सफाई के अलावा राजधानी में भी ड्रेजिंग की सुविधाएं बढ़ा सकेगा।

जल विवाद - संयुक्त नदी आयोग (जेआरसी) के सचिव और तकनीकी स्तर की बैठकों में तीस्ता, मनु, मुहुरी, खोवाई, गुमटी, धारला और दुधकुमार नदियों के जल के वितरण से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर विचार विमर्श जारी है।

उर्जा सहयोग- भारत के प्रधानमंत्री ने इस आश्वासन को दोहराया कि भारत टिपैमुख परियोजना पर कदम नहीं उठाएगा, क्योंकि यह बांग्लादेश पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। भारत के प्रधानमंत्री ने अपने ग्रिड से 250 मेगावाट बिजली बांग्लादेश को आपूर्ति करने पर सहमति व्यक्त की।

आर्थिक सहयोग- तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने 46 टेक्सलाइल लाइनें हटाने के भारत सरकार के फैसले की घोषणा की। जो साफ्टा के प्रावधानों के तहत एलडीसी के लिए भारत की नकारात्मक सूची से बांग्लादेश के लिए हित में है। शुल्क दर भी तत्काल प्रभाव से शून्य कर दिया गया। दोनों प्रधानमंत्रियों ने बांग्लादेश और भारत के बीच द्विपक्षीय व्यापार के लिए बांग्लादेश खोले जाने का स्वागत किया। साथ ही बालियामारी (कुरीग्राम), कलाईचर (पश्चिम गारो हिल) में बार्डर हाट खोले जाने का भी स्वागत किया तथा बलात (ईस्ट खासी हिल्स) में प्रस्तावित हाट का भी दोनों नेताओं ने स्वागत किया, क्योंकि इससे स्थानीय लोगों की लंबे समय से चली आ रही मांग पूरी हो जाएगी। इसके कारण सीमा के आसपास क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधि बढ़ेगी और क्षेत्रों के लोगों के आर्थिक उत्थान में योगदान करेगी।

सांस्कृतिक सहयोग व्यक्ति से व्यक्ति सम्बन्ध को मजबूत करने के लिए दोनों प्रधानमंत्रियों ने छात्रवृत्ति कार्यक्रम, संयुक्त शोध परियोजनाओं और वैज्ञानिकों के आदान प्रदान पर सहमति जताई। रविन्द्रनाथ टैगोर की 150वीं जयंती संयुक्त रूप से मनाने के फैसले ने दोनों तरफ की लोगों को काफी उत्साहित किया। इससे न केवल साझा सांस्कृतिक विरासत और संबंध को सहेजने का अवसर मिला बल्कि टैगोर के विशेषज्ञों के बीच आदान-प्रदान को बढ़ावा मिला। साथ ही कलाकारों, गायकों, नर्तकियों, नाटककारों, कवियों, लेखकों, अभिनेताओं आदि लोगों को भी आपस में किलने जुलने का अवसर मिला। इससे दोनों तरफ के लोगों में एक दूसरे को समझने की भावना का भी विस्तार हुआ। सांस्कृतिक आदान प्रदान और सूचनाओं के प्रसार के लिए टेलीविजन चैनलों के महत्व को स्वीकार करते हुए दोनों प्रधानमंत्रियों ने दूरदर्शन और बांग्लादेश टेलीविजन के परस्पर ब्रॉडकास्ट के लिए एमओयू पर हस्ताक्षर का भी स्वागत किया।

क्षेत्रीय सहयोग- दोनों प्रधानमंत्रियों ने क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देने में सार्क की भूमिका पर जोर दिया।

दोनों नेताओं ने सार्क को और उदेश्यपूर्ण संगठन बनाने पर सहमति जताई। जो कि इस क्षेत्र को सकारात्मक उपायों से पुनर्जीवित कर सकता है। ठोस कार्यवाही और पारस्परिक सहयोग को मजबूत कर सकता है। दोनों नेताओं ने बिम्सटेक के तहत क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देने के लिए उठाए गए कदमों की भी तारीफ की। इस संदर्भ में बांग्लादेश ने ढाका में बिम्सटेक सचिवालय की मेजबानी के लिए अपनी इच्छा का समर्थन करने के लिए भारत से भी अनुरोध किया। हालांकि इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि इतना सबकुद होने के बावजूद दोनों देशों के बीच कुछ मुद्दे अनसुलझे रह गए। फिर भी शेख हसीना के सत्ता ग्रहण करते ही भारत और बांग्लादेश के बीच द्विपक्षीय संबंधों ने आपसी समझ और सहयोग की दिशा में आगे बढ़ना शुरू कर दिया। यहाँ ध्यान देने वाली बात है कि वास्तविकता में पिछले कुछ सालों से बांग्लादेश के प्रति भारत का उदार दृष्टिकोण ढाका में भारतीय शासन के बदलाव का नतीजा नहीं है। राजनीतिक, सुरक्षा, उर्जा और विशेष रूप से कनेक्टिविटी मुद्दों पर उच्च स्तरीय राजनयिक यात्राओं और द्विपक्षीय समझौतों की श्रृंखला नई दिल्ली और ढाका के बीच आत्मविश्वास निर्माण के उपायों को बढ़ाने के लिए लगे हुए हैं ताकि भारत की पूर्व की ओर देखो नीति एक ठोस आकार ले सके।

लुक ईस्ट पॉलिसी में बांग्लादेश का बढ़ता महत्व

उतरपूर्व कॉरिडोर के माध्यम से भारत और दक्षिण पूर्व एशिया के बीच कनेक्टिविटी पर आशाजनक परियोजनाओं का अनुमान लगाने के बावजूद 2005 तक कम से कम लुक ईस्ट की पहल में बांग्लादेश कहीं शामिल नहीं था। लुक ईस्ट के एक अनिवार्य घटक के रूप में बांग्लादेश पर तब विचार होना शुरू हुआ, जब ढाका से भारत-म्यांमार-बांग्लादेश गैस पाइपलाइन परियोजना के लिए बांग्लादेशी क्षेत्र का उपयोग करने के भारतीय प्रस्ताव से इन्कार कर दिया। जैसा कि ऊपर बताया गया है।

यह इस संदर्भ में है कि बांग्लादेश के साथ कनेक्टिविटी और आर्थिक एकीकरण महत्वपूर्ण हो जाता है। इसके अलावा अगर बांग्लादेश को पूर्वोत्तर के लिए एक एक्जिट कॉरिडोर के रूप में उपयोग किया जए तो दक्षिण पूर्व एशिया की ओर पारगमन और ट्रांसशिपमेंट की लागत बेहद कम हो सकती है। इस विचार को आगे ले जाते हुए मोदी सरकार ने बांग्लादेश - पूर्वोत्तर गलियारे को एक्ट ईस्ट पॉलिसी के धुरी के रूप में रखते हुए आसियान और पूर्वी एशियाई देशों के साथ अपने संबंधों में सुधार पर अधिक ध्यान देने का फैसला किया है। यह लुक ईस्ट पॉलिसी को एक नए रूप में प्रस्तुत करता भी था। यह मोदी सरकार के पड़ोस पहले नीति के प्रति भारत की वर्तमान दृष्टिकोण का भी एक हिस्सा है। यह नीति अधिक से अधिक संम्बन्ध मजबूत सहयोग और व्यापक संपर्कों पर केन्द्रित है, और भारत का दृष्टिकोण परामर्शदायी, गैर पारस्परिक और परिणाम उन्मुख है। पड़ोसियों के साथ संबंधों में उच्च प्राथमिकता मोदी

सरकार के पहले ही दिन से इस बात का सुबूत है, जब उन्होंने पड़ोसी देशों के नेताओं को अपने शपथ ग्रहण समारोह में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने आमंत्रित किया था। विदेशनीति की पहली रणनीति का मुख्य आधार पड़ोसी देशों में लोकतांत्रिक ढंग से चुनी गई सरकारों की स्थिरता को मान्यता देना और पड़ोसी देशों के आंतरिक मामलों में गैर-हस्तक्षेप के प्रति प्रतिबद्धता जाहिर करना है। 2014 के बाद से भारत-बांग्लादेश के द्विपक्षीय संबंध असाधारण ऊंचाईयों पर पहुँचे हैं। एक विस्तृत श्रृंखला के क्षेत्रों में निकट सहयोग के साथ विकास सहयोग, गरीबी उन्मूलन, क्षमता निर्माण और शिक्षा और सभी से अधिक संम्बन्धों को रफ्तार मिली है। नरेन्द्र मोदी की व्यावहारिक विदेश नीति बांग्लादेश के प्रति दृष्टिकोण को और उदार बनाती है। ऐसे में लुक ईस्ट पॉलिसी को नई उँचाइयां मिलना लाजिमी है। मौजूदा समय में भारत और बांग्लादेश के बीच भेरामारा-बहरामपुर और त्रिपुरा-दक्षिण कोमिला दो इंटरकनेक्शन के माध्यम से 600 मेगावाट बिजली प्रवाहित हो रही है। इसके अलावा भेरामोरा-बहरामपुर इंटरकनेक्शनके माध्यम से 500 मेगावाट बिजली और बांग्लादेश को दी जा रही है। बोरानगर (असम, भारत) पार्वतीपुर (बांग्लादेश), कटिहार (बिहार, भारत) के बीच अतिरिक्त इंटरकनेक्शन के प्रस्ताव पर भी सहमति बनी है। इसके माध्यम से बांग्लादेश असम-बिहार के ट्रांसमिशन से 1000 मेगावाट बिजली प्राप्त कर सकता है। पार्बतीपुर इसके लिए उपयुक्त टैपिंग प्वांइट है। जैसोर-खुलेना क्षेत्र में संभावित मांग केंद्रों पर आरएलएनजी की आपूर्ति पर बातचीत के तत्काल निष्कर्ष पर भी चर्चा चल रही है। भारत और बांग्लादेश के जेनाईदाह-खुलना पाइपलाइन के माध्म से गैस ग्रिड इंटरकनेक्टिविटी की संभावना पर भी विचार चल रहा है। कुतुब्दिया में आईओसीएल द्वारा एलपीजी आयात टर्मिनल की स्थापना पर और एक एलपीजी पाइपलाइन का निर्माण करना है जो बांग्लादेश की जरूरतों के साथ-साथ भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र की भी जरूरतों को पूरा करेगा। भू विज्ञान के क्षेत्र में भारत के भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण ओर बांग्लादेश के भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण के बीच एमओयू पर हस्ताक्षर इस क्षेत्र में सहयोग में एक सकारात्मक कदम के रूप में देखा गया था। इसके अलावा बांग्लादेश को एचएसडी की आपूर्ति के लिए सिलीगुड़ी से पार्बतीपुर तक इंडो-बांग्ला मैत्री पाइप लाइन के निर्माण के लिए उतर-पूर्व में रिलायंस रिफाइनरी लिमिटेड (एनआरएल) और बांग्लादेश पेट्रोलियम कॉरर्पोशन (बीपीसी) के बीच लगातार प्रगति हुई है। उर्जा क्षेत्र में सहयोग के अलावा, हाल के वर्षों में व्यापार के आंकड़े देखें तो यह लगातार बढ़ा है। 2002 में जहॉ यह 1 अरब डालर था, वहाँ अब बढ़कर 6 अरब डालर से अधिक हो गया है। राधिकापुर (भारत) और विरोल (बांग्लादेश) के बीच नए बहाल हुए रेलवे लिंक से दोनों देशों के बीच कार्गो आवागमन की सुविधा होगी। कोलकाता-ढाका मैत्री एक्सप्रेस के यात्रियों की सुविधा में सुधार के लिए अब सेवा के फेरे में वृद्धि के लिए ध्यान दिया जा रहा है। कोलकाता के चितपुर में अंतर्राष्ट्रीय रेलवे टर्मिनल की स्थापना द्वारा इस क्षेत्र पर पूरी तरह से वातानुकूलित सेवा की शुरूआत और शुरू से लेकर अंत तक सीमा शुल्क और आब्रजन स्वीकृति दिए जाने पर ध्यान दिया जा रहा है। पंचागढ़ (बांग्लादेश) से सिलीगुड़ी

(भारत) के बीच एक नया रेल लिंक स्थापित करने की पहल चल रही है। फरवरी 2016 में फुलवारी-बांग्लादेश के आब्रजन चेकपोस्ट का उद्धघाटन लोगों से लोगों के सम्पर्को को बढ़ाने और माल की आवाजाही बढ़ाने में एक और महत्वपूर्ण कदम है। अंत में दोनों देश बिजली, जल संसाधन, व्यापार, पारगमन और पारस्परिक लाभ के लिए कनेक्टिविटी के क्षेत्रों में उप क्षेत्रीय सहयोग के फायदे को भलीभाँति जानते हैं। वे दोनों देशों के सभी लोगों के जीवन और आजीविका में सुधार के लिए विभिन्न क्षेत्रीय/उप-क्षेत्रीय सहकारी/सहयोगी पहल जैसे बिम्सटेक और बीसीआईएम के महत्व को पहचानते हैं। इस संदर्भ में जल संसाधन प्रबंधन और पावन/जल विद्युत पर बांग्लादेश, भूटान, भारत और नेपाल (बीबीआईएन) के बीच उप क्षेत्रीय सहयोग पर संयुक्त कार्यदल और व्यापार, पारगमन (मोटर वाहन करार) पर महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। दोनों प्रधानमंत्रियों ने हितों की पारस्परिक आजादी को अधिकतम करने, व्यापार, परिवहन और उर्जा सहित सभी क्षेत्रों में पारस्परिक लाभ के समान हिस्से को सुनिश्चित करने के लिए क्षेत्रीय सहयोग को मजबूत करने के लिए अपनी साझा प्रतिबद्धता की पुष्टि की।

भारत-बांग्लादेश के बीच बढ़ता संबंध दोनों ही देशों के लिए अति लाभकारी स्थिति है। जहाँ तक भारत की बात है प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के बांग्लादेश के प्रति विशिष्ट विदेश नीति दृष्टिकोण को लेकर कहा जा सकता है कि यह एक तीर से दो शिकार करने जैसा हैं पहला, बांग्लादेश से भारत पूर्वोत्तर क्षेत्र के माध्म से बढ़ती संम्बन्ध केवल दक्षिण पूर्व एशियाई बाजार में भारत की पहूँच की आसान नहीं बनाएगी और एक्ट ईस्ल दृष्टिकोण को और आगे नहीं बढ़ाएगी, बल्कि पूर्वोत्तर का अभी जो लैंडलाक स्थिति के कारण आर्थिक विकास रूका हुआ है, उसमें भी तेजी से इजाफा होगा। मिसाल के तौर पर वहाँ के व्यापारियों को बांग्लादेश से होते हुए भारत में कोलकाता में बंदरगाह तक पहुँचने के लिए छह सौ किलोमीटर की दूरी तय करनी पड़ती है, लेकिन बांग्लादेश में ही उन्हें यह सहुलियत मिल जाने पर बांग्लादेश के चितगाँव बंदरगाह वह केवल 200 किमी की दूरी तय कर पहुँच जाएंगे। इसके अलावा बांग्लादेश के आशूगंज बंदरगाह के माध्यम से पूर्वोत्तर भारत में ट्रांसशिपमेंट की सुविधा प्रदान करने की पहल, पूर्वोत्तर भारत से शेष भारत और दोनों देशों के बीच रेल लिंक का विस्तार, बीबीआईएन मोटर व्हीकल समझौता निश्चित रूप से पूर्वोत्तर भारत से शेष भारत में परिवहन व्यय घटाने में काफी मददगार साबित होगा। वस्तुओं की कीमतों में कमी आने से पूर्वोत्तर के उपभोक्ताओं को न केवल काफी फायदा होगा, बल्कि गरीबी उन्मूलन में भी सहायता मिलेगी। दूसरे, दोनों देशों के बीच कनेक्टिविटी और सहयोग बढ़ने से म्यांमार के रास्ते आसियान से जुड़ने की काफी सारी संभावनाएं प्रबल हो जाएंगी। मिसाल के तौर पर मिजोरम और मणिपपुर क्रमशः बांग्लादेश और म्यांमार के बीच परस्पर कनेक्टर का काम कर रहे हैं। यह एक्ट ईस्ट पालिसी को आगे बढ़ाने में काफी मददगार है। भारत और बांग्लादेश के बीच द्विपक्षीय

व्यापार जहाँ 2013-14 मे छह बिलियन अमेरिकी डालर पहुँच गया था, जिसमें निर्यातर 6.1 बिलियन अमेरिकी डालर और आयात 462 मिलियन अमेरिकी डालर था। जबकि उससे पाँच साल पहले यह कारोबार महत 2.7 बिलियन अमेरिकी डालर तक ही सिमटा हुआ था। जहां तक बांग्लादेश की बात है तो ब्लू इकोनामी के तहत सयुक्त निवेश और सहयोग के माध्यम से आर्थिक सहयोग मजबूत कर ढाका काफी फायदे में रहेगा। क्योंकि इसके माध्यम से पनबिजली, समुद्री संसाधन, गहरे समुद्री जल में फिशिंग, समुद्री ईकोलाजी का संरक्षण और आपदा प्रबंधन में काफी सहुलियत हो जाएगी। लैंडलाक पूर्वोत्तर भारत प्राकृतिक संसाधनों के मामले में काफी समृद्ध है और यह बांग्लादेश के बिलकुल मुहाने पर स्थित है। सीमा व्यापार के माध्यम से बांग्लादेश उन संसाधनों तक आसानी से पहुँच बना सकता है। इससे उसके विकास और वृद्धि में काफी तेजी आएगी। इतना ही नहीं यदि भारत-बांग्लादेश-म्यांमार गैस पाइपलाइन परियोजना सफल रही तो बांग्लादेश अपनी घरेलू उर्जा जरूरतों को काफी हद तक पूरा करने में सफल होगा। इसलिए रणनीतिक और आर्थिक दोनों नजरिये से भारत-बांग्लादेश के बीच संबंध दक्षिण एशिया के जटिल सत्ता राजनीति में सहयोग और समझ का नया अध्याय शुरू कर सकते हैं।

2015 में भारतीय प्रधानमंत्री मोदी की यात्रा के उपरान्त लम्बे समय से जमीन व समुद्री सीमा विवाद के मुद्दों को हल करने में सफलता मिली है। द्विपक्षीय व्यवसाय से संबंधित समझौता 7 बिलियन डालर से बढ़कर 9 बिलियिन डालर जिसमें 28.5 प्रतिशत् की वृद्धि हुयी है। इस तरह 90 प्रकार के समझौते को किया गया है। बांग्लादेशी सामान जो भारत के बाजार में आते हैं उन्हें भारत ने सेवाकर से युक्त कर दिया है। बांग्लादेश से भारत में आने वाले रेडीमेड कपड़ों के निर्यात में पिछले वर्ष 115 प्रतिशत की वृद्धि देखी गयी। यह 130 मिलियन डालर से 280 मिलियन डालर तक पहुँच गया है। भारत के निवेश में बढ़ोतरी 3 बिलियन डालर से 10 बिलियन डालर तक पहुँच गयी है। आकाउरा-अगरतल्ला रेल प्रोजेक्ट से पूर्वी बांग्लादेश और उतर पूर्वी भारत के विकास को बढ़ावा तथा आर्थिक स्थिति को मजबूत करने का अवसर मिलेगा। ढाका व कोलकाता के बीच की दूरी 1650 किमी0 है जो इसके बनने से 550 किमी0 की हो जायेगी। भारत सरकार ने इस रेलवे ट्रैक को बनाने की सहमति दे दी है। जिसमें 10 किमी0 का ट्रैकबांग्लादेश की सीमा में होगा। इस रेल प्रोजेक्ट के द्वारा भारत के प्रधानमंत्री ने एकट-इस्ट पालिसी को आगे बढ़ाने का अवसर दिया है। 18 सितम्बर 2018 को दोनों पड़ोसी देशों के नेताओं ने सिलीगुड़ी (पश्चिम बंगाल) और प्रभातीपुर (दिनाजपुर में) के बीच 130 किमी0 का बांग्लादेश-भारत फेंडशीप पाईपलाइन की आधारशिला रखी गयी। तीसरे और चौथे दोहरे गेज रेल लाईन जो ढाका और टोंगी व जोदेवपुर (बांग्लादेश का भाग) को जोड़ने का काम करेगी। फ्रेंडशीप पाइपलाइन 125 किमी0 बांग्लादेश में और 05 किमी0 भारत में होगी। इस पाइपलाईन से एक वर्ष में 10,00,000 टन इंधन का सप्लाई होगी । हमेशा दोनों देशों के बीच

उच्चस्तरीय यात्रा व आदान-प्रदान दोनों देशों के बीच होते रहते हैं प्रधानमंत्री शेख हसीना अप्रैल 2017 में भारत की यात्रा पर आयी। यात्रा के दौरान 36 द्विपक्षीय दस्तावेजों पर हस्ताक्षर हुए। इसमें सिविल न्यूमिलियर एनर्जी के लिए उच्चस्तरीय तकनीकि अंतरिक्ष सूचना तकनीकि रक्षा, क्षमता निर्माण आदि विषयों को सम्मिलित किया गया है। एक तीसरा लाईन ऑफ क्रेडिट जिसकी धनराशि 4.5 बिलियन अमेरिकी डालर है, बांग्लादेश को दिया गया। बांग्लादेश की स्वतंत्रता में भारतीय शहीदों को स्मरण करने के लिए जो आयोजन किया गया था उसमें दोनों देशों के प्रधानमंत्री सहभागिता किये। भारतीय विदेशमंत्री सुषमा स्वराज 2018 में अपने बांग्लादेश यात्रा के समय घोषणा की कि भारत 15 बड़े विकास कार्यों हेतु प्रोजेक्ट को बांग्लादेश में लायेगा जिस पर 8.5 मिलियन डालर का खर्च होगा। बांग्लादेश एकमात्र ऐसा देश है जो इतनी प्रचुर मात्रा में भारत का सहयोग प्राप्त किया है। ऐसे अन्य भी दो देश हैं लेकिन 4.5 बिलियन डालर से ज्यादा नहीं दे पाए हैं। ढाका व नई दिल्ली की घनिष्टता के बाद भी बांग्लादेश का सबसे बड़ा व्यापारिक पार्टनर भारत नहीं है बल्कि चीन है। चीन ने अपने विकासकारी प्रोजेक्टों को बांग्लादेश बार्डर के पास 133 मिलियन डालर खर्च किया जायेगा। भारत के द्वारा बांग्लादेश निवेश से स्वास्थ्य, शिक्षा, सूचना तकनीकी, जल वितरण आदि में सुधार होगा। बांग्लादेश के जिरोपपुर जिले में 11 नये जल संवर्धन प्लांट लगाए जायेंगे, 36 सामुदायिक केन्द्र बनेंगे और रामकाली मंदिर बनाया जायेगा जिसको 1971 में पाकिस्तानी सेना ने ध्वस्त कर दिया था। यदि दोनों देशों के द्विपक्षीय संबंधों में सुधार होगा तो दक्षिण एशिया में भारत के रणनीतिक हितों को भी फायदा मिलेगा। भारत-बांग्लादेश का संबंध अच्छे दौर से गुजर रहा है लेकिन इसका यह अर्थ वहीं है कि दोनों का संबंध हमेशा अच्छा ही रहेगा। तीस्ता नदी का जल बंटवारा का मुद्दा दोनों देश अभी नहीं सुलझा पाए हैं। बांग्लादेश का भारत के साथ व्यापारिक घाटा बड़ता जा रहा है और दोनों देशों के बीच सीमा रेखा दुनिया के सबसे खतरनाक स्थानों में से एक है।[12]

मई 2018 को शांति निकेतन में बांग्लादेश भवन के उद्घाटन के अवसर पर प्रधानमंत्री मोदी ने कहा, भारत-बांग्लादेश संबंध अपने स्वर्णिम काल में पहुँच चुका है। विगत कुद वर्षों में दोनों देशों के बीच रोड व रेल सम्पर्क मे काफी सुधार हुआ है। हम अपने पड़ोसी को गरीबी उन्मूलन के लिए करने वाले प्रयासों की सराहना करते हैं। हम इस देश को पहला सेट लाईट लांच करने की भी बधाई देते हैं। विवादित विषय जमीनी बाउन्ड्री और समुद्री बाउन्ड्री जो अभी सुलझना असम्भव लग रहा है। एक दिन सुलझा लिया जायेगा। बांग्लादेशी प्रधानमंत्री शेख हसीना ने कहा, भारत बांग्लादेश ने पहले ही कई मुद्दों का हल निकाल लिया है। हमारा पड़ोसी हमारा बड़ा मित्र है जो हमारे साथ हमेशा खड़ा रहता है। दोनों पड़ोसी देश साथ मिलकर आगे बढ़ेंगे। वे जब आप पड़ोसी देश है तो कुछ न कुछ मुद्दे रहेंगे ही। लेकिन हम सभी मुद्दों को एक-एक करके हल कर लेंगे। हो सकता है कि अभी कुछ ऐसे विषय रह गये हों जो अनसुलझे

हों, लेकिन हमें आशा है कि हम किसी प्रकार के मुद्दे को मित्रतापूर्ण वातावरण में हल कर लेंगे।[13]

हाल में पांचवी भारत बांग्लादेश संयुक्त सलाहकार कमीशन (JCC) की मीटिंग के चेयर परसन भारत की विदेशमंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज और अब्दुल मोमेन बांग्लादेश के विदेशमंत्री थे। दोनों मंत्रियों ने कहा कि भारत-बांग्लादेश का संबंध रणनीतिक पार्टनरशीप से भी आगे बढ़ गया है। हमारे संबंधों में ऐतिहासिक एकरूपता, संस्कृति, भाषा, लोकतांत्रिक मूल्य धर्मनिरपेक्षता, विकासपरक सहयोग और अनगिनत समानताएँ उपलब्ध है। दोनों मंत्रियों ने इस बात पर संतुष्टि व्यक्त की कि दोनों देश इतने करीब पहले कभी नहीं आये थे। आज हर क्षेत्र में सुरक्षा, सीमा प्रबंधन, पारस्परिक लाभ के व्यवसाय, निवेश की गति, विद्युत व उर्जा वही जल वितरण, विकास सहभागिता, यातायात सम्पर्क संस्कृति व जन से जन का सम्पर्क आदि क्षेत्रों में दोनों देश मिलकर काम कर रहे हैं। दोनों देशों का संबंध अब नयी व उंची तकनीकि क्षेत्र में सहभागिता जैसे अंतरिक, परमाणु उर्जा, सूचना तकनीकि और इलेक्ट्रानिक्स के क्षेत्रों में भी बढ़ रही है। परमाणु उर्जा के बीच तीन तरह के MOUS के उपर हस्ताक्षर किये गये।

1. 1800 बांग्लादेशी नागरिक सेवकों के प्रशिक्षण के लिए MOUS.
2. एंटी-करप्सन कमीशन ऑफ बांग्लादेश व भारत के बीच MOUS.
3. आयुष और बांग्लादेश के स्वास्थ्य मंत्रालय के बीच मेडिकल प्लांटस के लिए सहयोग हेतु MOUS.

भारत-बांग्लादेश रक्षा सहयोग के लिए एक संयुक्त सैन्य अभ्यास सम्प्रति 2019 बांग्लादेश के टांग्याल में 2 मार्च से 15 मार्च 2019 तक होने वाला है। सम्प्रति का आठवां एडिशन बोंगोंबंधु कैन्टोमेण्ट, टेनजियाल बांग्लादेश में शुरू किया जायेगा। 3 मार्च 2019 को भागीदार लोग मार्च पास्ड करेंगे और दोनों देशों के ध्वजों को सलामी देंगे। 'जन गण मन' तथा अमग सोवार बंगला' का उद्घोष भी होगा। इस अभ्यास का उदेश्य परस्पर सहयोग को बढ़ाना है और दोनों देशों की सेनाओं के बीच भी सहयोग की भावना विकसित करना है। बांग्लादेश आर्मी का एक कम्पनी ग्रूप तथा इतनी ही संख्या भारतीय आर्मी के लोग को सप्ताह का अभ्यास करेंगे जिसमें वे आपदा से निपटने की टेकनिक को सीखेंगे। आतंकवाद को खत्म करने के उपायों को, डिस्साटर मैनेजमेंट और संयुक्त राष्ट्र के शांति स्थापित करने की तरीकों की जानकारी हासिल करेंगे।

चीनी राष्ट्रपति जीं जिनपिंग ने भी नयी प्रधानमंत्री को बधाई दी। इससे स्पष्ट है कि चीन 21वीं सदी उषाकाल में भी बांग्लादेश के साथ अपने रिश्तों को बनाए रखेगा। इससे उसको अपने द्विपक्षीय संबंधों को मजबूती भी मिलेगी। दूसरी तरफ मोदी ने बिना पूरा चुनाव परिणाम आये ही परिणाम के औपचारिक घोषणा से पहले की बधाई से देश भेज दिया। ऐसा करने वाले मोदी पहले विदेशी नेता थे। उन्होंने कहा "हम बांग्लादेश में सफलतापूर्ण चुनाव सम्पन्न होने की बधाई देते हैं। भारत बांग्लादेश के लोगों को विशेष बधाई

दुबारा लोकतंत्र विकास व शेख मुजविर रहमान के विश्वास प्रकट करने के लिए भी दे रहा है।" उन्होंने विश्वास जताया कि भारत बांग्लादेश के बीच उनके नेतृत्व में, पार्टनरशीप और बढ़ती जायेगी। प्रधानमंत्री ने यह बताया कि बांग्लादेश को भारत के लिए वरियता पड़ोसी होने के कारण क्षेत्रीय विकास में घनिष्ट पार्टनर होने के कारण सुरक्षा, सहयोग और भारत का मुख्य पिलर पड़ोसी पहले" के कारण प्राप्त है।[18] यह आतंकवाद का विरोध करने वाला पार्टनर है, सम्पर्क प्रस्ताव, उप क्षेत्रीय सहयोग के लिए बांग्लादेश महत्वपूर्ण है। शेख हसीना की मुख्य भूमिका बंगाल की खाड़ी और उतर पूर्व में चीन की दृष्टि दक्षिण एशिया पर नजर बनाए रखने की इन विषयों पर महत्वपूर्ण होगी। भूटान की तरह बांग्लादेश में स्थायीत्व भारत के लिए अच्छा होगा क्योंकि अन्य पड़ोसी देशों जैसे श्रीलंका और अफगानिस्तान की अनिश्चितता का दुष्प्रभाव हमारे उपर आता है। दक्षिण एशिया के पूर्वी क्षेत्र में होने का फायदा बांग्लादेश को मिलता है। यह विभिन्न क्षेत्रों का केन्द्रीय बिन्दु बनकर उभरा है। यह बांग्लादेश, भूटान, भारत व नेपाल को ASIAN और पूर्वी एशिया के देशों के साथ जोड़ता है। व्यापार निवेश सम्पर्क सूत्र के नए बाजार से नये निवेश के स्त्रोतों से अच्छे उत्पादों से यातायात के साधनों के विस्तार से और लाजिस्टिक सेवाओं से बांग्लादेश्ज्ञ का प्रभाव व फायदा इस उपक्षेत्र में बढ़ेगा।[19]

बांग्लादेश के प्रधानमंत्री शेख हसीना चार दिवसीय सरकारी यात्रा पर 03 अक्टूबर, 2019 को भारत पहुँची। भारत और बांग्लादेश ने अपने संबंधों को विस्तार देते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और बांग्लादेशी प्रधानमंत्री शेख हसीना के बीच वार्ता के बाद शनिवार को सात समझौतों पर हस्ताक्षर किए। इस दौरान एलपीजी निर्यात समेत तीन परियोजनाओं का शुभारम्भ भी किया गया। इनमें से एक परियोजना बांग्लादेश से एलपीजी के आयात से संबंधित है। आयातित एलपीजी का भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में वितरण किया जाएगा। प्रधानमंत्री मोदी और हसीना के बीच वार्ता के बाद दोनों देशों ने सात समझौतों पर हस्ताक्षर किये जो जल संसाधन, युवा मामलों, संस्कृति, शिक्षा और तटीय निगरानी से संबंधित है। इस अवसर पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा, "आज की वार्ता भारत और बांग्लादेश के बीच संबंधों को और मजबूत करेगी।" मोदी ने कहा "मुझे खुशी है कि प्रधानमंत्री शेख हसीना के साथ तीन और द्विपक्षीय परियोजनाओं का उद्घाटन करने का मौका मुझे मिला है। पिछले एक साल में हमने विडियों लिंक से 9 परियोजनाएँ पेश की है। आज की तीन परियोजनाओं समेत एक साल में हमने एक दर्जन संयुक्त परियोजनाएँ शुरू की हैं। इस उपलब्धि पर मैं दोनों देशों के अधिकारियों और सभी नागरिकों को बहुत-बहुत बधाई देता हूँ।"

प्रधानमंत्री ने कहा कि आज की ये तीन परियोजनाएँ तीन अलग-अलग क्षेत्रों- एलपीजी आयात, व्यावसायिक प्रशिक्षण और सामाजिक सुविधाओं से जुड़ी है लेकिन इन तीनों का उदेश्य है नागरिकों के

जीवन को बेहतर बनाना। उन्होंने कहा "यही भारत-बांग्लादेश संबंधों का मूल मंत्र भी है। भारत-बांग्लादेश साझेदारी का आधार है कि हमारी मित्रता से हर नागरिक का विकास सुनिश्चित हो।" मोदी ने कहा कि बांग्लादेश से एलपीजी की आपूर्ति दोनों देशों को फायदा पहुँचायेगी। इससे बांग्लादेश में आयात, आय और रोजगार बढ़ेगा। यातायात एवं परिवहन दूरी पन्द्रह सौ किलोमीटर कम हो जाने से आर्थिक लाभ भी होगा और पर्यावरण को भी नुकसान कम होगा। उन्होंने कहा कि दूसरी परियोजना, बांग्लादेश-भारत पेशेवर कौशल विकास संस्थान, बांग्लादेश के औद्योगिक विकास के लिए कुशल मानव संसाधन और तकनीकि टेक्निशीयन तैयार करेगी। प्रधानमंत्री ने कहा कि ढाका के रामकृष्ण मिशन में विवेकाननद भवन की परियोजना अपने आप में अहम है। उन्होंने कहा कि बांग्ला संस्कृति की उदारता और खुली भावना की तरह ही इस मिशन में भी सभी पंथों को मानने वालों के लिए स्थान है और यह मिशन हर सम्प्रदाय के उत्सव को समान रूप से मनाता है। भवन में 100 से अधिक यूनिवर्सिटी छात्रों और शोधार्थियों के रहने की व्यवस्था की गई है। मोदी ने कहा, "भारत बांग्लादेश के साथ अपनी साझेदारी को प्राथमिकता देता है। हमें गर्व है कि भारत - बांग्लादेश संबंध दो मित्र पड़ोसी देशों के बीच सहयोग का पूरी दुनिया के लिए एक बेहतरीन उदाहरण है। मुझे खुशी है कि हमारी आज की बातचीत से हमारे संबंधों को और भी उर्जा मिलेगी।"

बांग्लादेशी पीएम से द्विपक्षीय वार्ता के दौरान मोदी ने कहा कि विस्थापित रोहिंग्याओं की म्यांमार के रखाइन राज्य में वापसी के लिये बांग्लादेश को और अधिक काम करने की जरूरत है। और इस समस्या का समाधान के लिए मैं पूरा सहयोग दुंगा। अभी तक भारत ने रोहिंग्याओं की मदद के लिए एक सौ बीस करोड़ रूपैया दे चुका है। हसीना ने दोनों देशों के बीच 2011 से लंबित तीस्ता नदी समझौते का भी मुद्दा उठाया। इस संबंध में प्रधानमंत्री मोदी का कहना है कि जल्द ही इस सम्बन्ध में समझौता होने की सम्भावना है। हसीना ने असम में एनआरसी का मुद्दा भी उठाया। पीएम मोदी ने इसे भारत का आंतरिक मुद्दा बताया। पर साथ ही हसीना को आश्वस्त किया कि यह सतत् प्रक्रिया के तहत यह कवायद सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर हुई है। बांग्लादेश के विदेश सचिव शहीदुलहक ने भी कहा है कि भारत की तरफ से एनआरसी को अपने देश का आंतरिक मामला बताया गया है, लेकिन उनका देश इससे जुड़े घटना क्रम पर पुरी नजर बनाये हुये है।

वास्तव में भारत और दूसरे दक्षिण एशियाई देश ड्रेगन की दोहरी चाल को बखूबी समझते हैं, वे जानते हैं कि भारत जैसा सच्चा और स्वाभाविक मित्र चीन कभी हो ही नहीं सकता है। इसीलिए शेख हसीना दिल्ली के साथ अपने सम्बन्धों को आंगिक कहा है। भारत को कूटनीति की विशात पर सधी चाल से चलना होगा और दक्षिण एशिया के देशों के साथ संतुलन बनाकर चीन की छद्म दोस्ती के दावे को

दक्षिण एशियाई क्षेत्र में मजबूती से उजागर करना होगा। यह भी सच्चाई है कि बांग्लादेश की व्यापारिक और सैनिक साझेदारी का झूकाव चीन के प्रति अभी भी झूका हुआ है, जो भारत के लिए चिन्ता की बात है। यही बात नेपाल के साथ भी है। एक्ट इस्ट पॉलिसी के तहत मोदी सरकार अपने पड़ोसियों खासकर बांग्लादेश के साथ विदेश नीति के नये रूप का सफलतापूर्वक निर्माण सकारात्मक तरीके से तथा सकारात्मक दिशा में किया है।

संदर्भ सूची :-

1. Khalida Zia's press consfrence, Bangladesh Obserber, 13 April 1993.
2. Hindustan Times, 22 may 1993, Zonal Abedeen's essay.
3. Times of India, 24 Jan, and Hindustan Times, 21 July, 1994.
4. The Hindu, 15 Dec, 1996.
5. Times of India, 14 Dce, 1996.
6. Joint Communique issued on the occasion of the visit to india of her Excellency Sheikh hasina, Prime Minister of Bangladesh, January 12, 2010 and Joint Statement on the occasion of the visit of the PM of India to Bangladesh, September 07, 2011, http:/www.mea.gov.in (accessed on 25/12/2017)
7. India-Bangladesh trade may almost double to $10 billion by 2018: CH, The Economic Times, 24 June cleshow/371267. cms?_source =contentofinterest&utm_ medium= text&utm_campaig n=cppst(accessed on 23/10/2014).
8. https://economictimes.indiatimes.com/news/defence/etanalysis- indo-bangla-relations-enjoy-golden-period/articleshow/66118543.cms
9. https://economictimes.Indiatimes.com/news/defence/et-analysis-indo-bangla-relations-enjoy-golden-period/atricleshow/66118543.
10. http://mea.gov.in/portal/ForeignRelation/Bangladesh_September2017_en.pdf.
11. https://www.worldfinance.com/strategy/china-vs-india-the-battle-for-supremacy
12. https://www.worldfinance.com/strategy/china-vs-india-the-battle-for-supremacy
13. https://indianexpress.com/article/india/pm-narendramodi-sheikh-hasina-bangladesh-bhawan-5191560/
14. https://mea.gov.in/bilateral-documents.htm?dtl/31015/Joint+press+Release+ on+Joint+ consultative+Commission+between+India+and+Bangladesh
15. https://mea.gov.in/bilateral-documents.htm?dtl/31015/Joint+press+Release+ on+Joint+

consultative+Commission +between+India+and+Bangladesh

16. https://www.newdelhitimes.com/opening-ceremony-india-bangladesh-joint-military-exercise-sampriti-2019/
17. https://moderndiplomacy.eu/2019/01/19new-government-in-bangladesh-implications-for-china-bangladesh-relations/
18. https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/sheikh-hasina-massive-victory-boosts-indias-act-cast-and-s-asia-strategies/articleshow/67323031.cms
19. https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/sheikh-hasina-massive-victory-boosts-indias-act-cast-and-s-asia-strategies/articleshow/67323031.cms
20. Amar Ujala, Delhi edition, 06 oct, 2019

***

25. आतंकवाद का पारिभाषिकीय विवाद : मुद्दे एवं दुविधाएँ

सोनाली सिंह*

आतंकवाद की समस्या एवं उसके प्रति यथोचित प्रतिक्रिया क्या हो- यह इक्कीसवीं सदी में राष्ट्र एवं समाज के समक्ष बड़ी चुनौती है। आज आतंकवाद का स्वरूप अन्तरराष्ट्रीय है एवं ज्यादातर राष्ट्र किसी न किसी रूप में इससे पीड़ित है। आतंकवाद की समस्या सिर्फ व्यवहारिक स्तर पर ही नहीं वरन् सैद्धान्तिक स्तर पर भी दृष्टिगोचर है। सैद्धान्तिक में आतंकवाद की परिभाषा एवं व्याख्या शामिल है एवं इस स्तर पर स्पष्टता आवश्यक है क्योंकि इसके अभाव में आतंकवाद के प्रति प्रभावशाली प्रतिक्रिया सम्भव नहीं है। किसी भी समस्या का समाधान निकालने के लिए उसको समझना आवश्यक है, समझने की प्रक्रिया का एक मूलभूत तत्त्व है- परिभाषा। परिभाषा के द्वारा समस्या को चिन्हित कर उसके बुनियादी स्वरूप को समझने का प्रयास किया जाता है, ताकि राष्ट्र के साथ-साथ सामान्य जन भी उसे समझ सके। परन्तु सामाजिक विज्ञान में शायद ही कोई ऐसा सिद्धान्त है जिसे परिभाषित करना सरल हो या फिर विशेषज्ञों में एक मत हो। यही हाल आतंकवाद के संदर्भ में देखने को मिलता है जहाँ राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर इसका मुकाबला करने एवं स्थायी समाधान निकालने के लिए तो अनेक प्रयास किए गए परन्तु अफसोस यह कि अभी तक आतंकवाद की परिभाषा पर आम सहमति नहीं बन पाई है। यह तब है जब आतंकवाद की एक लम्बी पृष्ठभूमि है- फ्रांस के आतंक युग (1793-94) से लेकर समकालीन इस्लामिस्ट आतंकवाद तक। वह विभिन्न विचारधाराओं चाहे वामपंथी हो या दक्षिणपंथी, विभिन्न धर्मों जैसे ईसाई, इस्लाम, हिन्दू, बौद्ध एवं नास्तिक विचारों के साथ जुड़ा रहा है एवं इसका स्वरूप भी समय के साथ परिवर्तित होता गया। इसकी वजह से लाखों लोगों की जान गईं, करोड़ों की सम्पत्ति का नुकसान हुआ तथा हर वर्ष राज्य की राजस्व का एक बड़ा हिस्सा आतंकवाद-निरोधी नीतियों के क्रियान्वयन पर खर्च हो जाता है। समस्या की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, व्यापक परिधि एवं बहुस्तरीय स्वरूप को देखा जाए तो यह एक चिन्ता का विषय है कि अभी तक इसकी सर्वसम्मत परिभाषा नहीं है।

व्यवहार में 'आतंकवाद' शब्द का प्रयोग निन्दात्मक बोध से किया जाता है। इसका प्रयोग इस तरह से किया जाता है कि चीजें स्पष्ट होने की बजाय और धुंधली एवं जटिल हो जाती है। आतंकवाद को विभिन्न विशेषज्ञों, राज्यों, अन्तरराष्ट्रीय संगठनों ने परिभाषित करने का प्रयास किया है। परिभाषाओं में

* **प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, बी.एच.यू. वाराणसी**

प्रतिस्पर्धात्मकता है और यह न सिर्फ राज्यों के बीच वरन् अन्त:राज्यीय स्तर पर भी देखने को मिलता है। इसलिए सी. गीयरटी ने कहा कि आतंकवाद, "पारिभाषिकीय शब्दावली विषयक भ्रम" में लिप्त हो गया है।"[1] उदाहरण के तौर पर अमेरिका में यू.एस. राज्य विभाग, एफ.बी.आई. एवं यू.एस. रक्षा विभाग द्वारा दी गई आतंकवाद की परिभाषाओं में विविधता देखने को मिलती है। इसके अलावा आतंकवाद के अन्तरराष्ट्रीय विशेषज्ञों द्वारा दिए गए परिभाषाओं का विश्लेषण करें तो पाएँगे कि इसमें अनेक तत्व विद्यमान हैं और प्रत्येक परिभाषा कुछ तत्वों को दूसरों की अपेक्षा ज्यादा महत्व देती है। जैसे ब्रूस हॉफमैन के अनुसार, "आतंकवाद हिंसा या हिंसा के डर का इस्तेमाल कर लोगों में जानबूझकर डर का सृजन करना या डर का इस्तेमाल कर, राजनीतिक बदलाव लाने का प्रयास है। सभी आतंकी क्रियाओं में हिंसा या हिंसा के इस्तेमाल की धमकी या डर शामिल होता है।"[2] उपरोक्त परिभाषा में हिंसा, डर एवं राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति पर बल दिया गया है।

पाउल विलकिन्सन के अनुसार, "आतंकवाद राजनीतिक उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु व्यवस्थित तरीके से बलपूर्वक धमकाना है। इसका इस्तेमाल हिंसा के तात्कालिक शिकार के साथ, विस्तारित लक्षित समुदाय में डर के वातावरण का सृजन तथा शोषण के लिए किया जाता है एवं अपने उद्देश्यों के प्रसारण तथा लक्षित समुदाय से बलपूर्वक अपने उद्देश्यों को मानने के लिए बाध्य किया जाता है। आतंकवाद का इस्तेमाल अपने आप में या एक वृहत् गैर-पारम्परिक युद्ध के हिस्से के रूप में किया जाता है। इसका प्रयोग उग्र एवं कमजोर अल्पसंख्यकों द्वारा किया जाता है या फिर राज्य इसका इस्तेमाल गृह एवं विदेश नीति के साधन की तरह करते हैं या युद्ध के सभी प्रकार एवं चरणों में योद्धाओं द्वारा सहायक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।"[3]

इस परिभाषा में बल, हिंसा, तात्कालिक एवं विस्तारित लक्षित समुदाय, आतंकवाद का युद्ध के हिस्से के रूप में प्रयोग तथा लोगों एवं राज्य द्वारा आतंकवाद के प्रयोग पर प्रकाश डाला गया है।

लुइस रिचार्डसन के अनुसार, आतंकी वे उप-राज्य कर्त्ता है जो हिंसा के द्वारा, गैर लड़ाकुओं को निशाना बनाकर, तृतीय पाटब को राजनीतिक संदेश संप्रेषित करते हैं। आतंकवादी न पागल है और न नीतिहीन है। वे विश्व के सभी हिस्सों से आते हैं। वे जीवन के बहुत से मार्गों से आते हैं। वे विभिन्न प्रकार के उद्देश्यों के लिए लड़ते हैं।"[4]

इसमें आतंकवादियों को उप-राज्य कर्त्ता माना गया है एवं ये सिर्फ राजनीतिक नहीं वरन् बहुत से उद्देश्यों के लिए लड़ते हैं।

यू.एस. रक्षा विभाग (1986) के अनुसार आतंकवाद, "हिंसा या बल का, व्यक्ति या सम्पत्ति के

खिलाफ गैरकानूनी इस्तेमाल कर, उस पर दबाव डाल या सरकार एवं समाजों को डरा धमका कर, राजनीतिक, धार्मिक एवं वैचारिकीय उद्देश्यों की प्राप्ति करता है।"[5]

इस परिभाषा में हिंसा, बल का गैरकानूनी इस्तेमाल, दबाव एवं आतंकवाद के अनेक उद्देश्यों की बात कही गई है। यू. के. आतंकवाद का निरोध (अस्थायी) कानून, 1974 के अनुसार, "आतंकवाद राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हिंसा का प्रयोग है एवं इसमें किसी भी प्रकार की हिंसा जिसका इस्तेमाल जनता या जनता के किसी हिस्से में डर उत्पन्न करने के लिए किया जाता है, शामिल है।"[6]

भारत में गैरकानूनी गतिविधियाँ निरोधक अधिनियम, 2008 (भाग-15) के अनुसार आतंकवाद के अन्तर्गत शामिल है : "बम का इस्तेमाल या डाइनामाइट या अन्य विस्फोटक या ज्वलनशील पदार्थ या बन्दूक या अन्य घातक शस्त्रों या विषैली गैस या अन्य रसायन या अन्य खतरनाक पदार्थ या किसी भी प्रकार के स्वरूप का कोई अन्य साधन। "किसी भी प्रकार के स्वरूप का कोई अन्य साधन" से तात्पर्य है कोई भी ऐसा कार्य जिसके द्वारा लोगों में डर उत्पन्न किया जाए।"[7]

उपरोक्त परिभाषा में आतंकवाद को बहुत ही व्यापक स्तर पर परिभाषित किया गया है। अतः यह स्पष्ट है कि आतंकवाद की परिभाषाओं में बहुत सारे ऐसे तत्व हैं जो समान हैं जैसे हिंसा, डर, लोगों की हत्या, दबाव आदि परन्तु इसके अलावा भी बहुत सारे अन्य तत्व हैं जिसे विशेषज्ञों एवं संस्थाओं ने अपनी-अपनी परिभाषाओं में व्यक्त किया है। अधिक तत्वों के होने से सहमति की सम्भावनाएँ कम होती हैं तथा परिभाषा विस्तारित हो जाता है जिससे स्पष्टता एवं सटीकता में कमी आ जाती है।

आतंकवाद के विशेषज्ञ ऐलक्स पी. स्मिड्थ ने आतंकवाद की 109 परिभाषाओं का विश्लेषण किया एवं उनमें 22 तत्वों को चिन्हित किया। उनमें से पहले दस तत्व आवृत्ति के हिसाब से इस प्रकार है : "हिंसा, बल 83.5%; राजनीतिक 65%; डर, आतंक 57%; धमकी 47%; मनोवैज्ञानिक प्रभाव एवं प्रत्याशित प्रतिक्रियाएँ 41.5%; शिकार-लक्ष्य विभेदीकरण 37.5%; सोद्देश्य, नियोजित, व्यवस्थित, संघठित क्रिया 32%; युद्ध के तरीके, रणनीति, साधन 30.5%; अतिरिक्त सामान्यता, स्वीकार नियमों का उल्लंघन, बिना किसी मानवीय अवरोध के 30%; बल, वसूली एवं समर्पण के प्रेरित करना 28%।"[8]

स्मिड्थ ने इन परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर एक सहमति बनाने की चेष्टा की। सैद्धान्तिक स्तर पर परिभाषाओं में न्यूनतम सहमति की फिर भी सम्भावनाएँ हैं परन्तु व्यवहारिक स्तर पर इसका अभाव है। अक्सर शत्रु या विपक्ष को 'आतंकवादी' लेबल दिया जाता है। अपने हित या स्वार्थ अनुसार किसी संघठन को आतकंवादी कहना विवाद को जन्म देता है। आतंकवादी भी स्वयं नहीं पसन्द करते है कि उन्हें आतंकी कहा जाए एवं उनकी शिकायत है कि जब भी कोई पीड़ित न्याय के लिए प्रयास

करता है, उसे आतंकवादी कहा जाता है। इस मतैक्य के अभाव के कारण संयुक्त राष्ट्र संघ में भी विभिन्न खण्डीय समझौतों के द्वारा अलग-अलग आतंकवादी गतिविधियों को परिभाषित एवं गैर-कानूनी घोषित किया है। 1994 से संयुक्त राष्ट्र महासभा ने आतंकवाद की निम्नलिखित परिभाषा के आधार पर, आतंकवादी घटनाओं की निन्दा की : "आपराधिक कृत्य जिसमें राजनीतिक लक्ष्यों के लिए, सामान्य नागरिक, या समुदाय या कुछ लोगों में डर का माहौल पैदा किया जाता है, उसके औचित्य या समर्थन में राजनीतिक, दार्शनिक, वैचारिकी, जातीय, प्रजातीय, धार्मिक या कोई अन्य कारण ही क्यों न हो, वह किसी भी हालत में उचित नहीं है।"[9]

आतंकवाद को सर्वसम्मति से परिभाषित करने के मार्ग में कई विवादित मुद्दे हैं, उनका विवरण इस प्रकार है :[10]

1. क्या आतंकवाद की पहचान साधन/कृत्य के रूप में या अनुसरण किए जाने वाले लक्ष्यों के साथ होना चाहिए? अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि कुछ ऐसे उद्देश्य इतने 'जायज़' या 'उचित' हो सकते हैं, जिसकी प्राप्ति के लिए हिंसा का प्रयोग वैध है तथा उन हिंसात्मक कार्यों को आतंकवाद नहीं कहा जा सकता है।
2. क्या आतंकवाद की पहचान केवल गैर-राज्य/उप-राज्य कर्त्ता या फिर राज्य के साथ भी होनी चाहिए?
3. क्या आतंकवाद अन्य प्रकार के राजनीतिक हिंसाओं से अलग है?
4. आतंकवाद के इतने प्रकार हैं कि कोई एक परिभाषा देना नामुमकिन है।

आतंकवाद की परिभाषा से जुड़ा पहला विवाद का एक पक्ष यह है कि आतंकवाद की पहचान साधन/कृत्य के रूप में हो, जिसमें हिंसा का प्रयोग एक साधन के रूप में किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जा सकता है एवं सभी परिस्थितियों में यह निन्दनीय है। विवाद का दूसरा पक्ष यह है कि कुछ 'उचित' उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए इसे न्यायसंगत ठहराया जा सकता है। हिंसा के इस्तेमाल को कुछ 'उचित' उद्देश्यों के लिए जायज़ मानने वाले मुख्यतया वे राज्य एवं लोग तथा समुदाय हैं जो आतंकी साधनों का इस्तेमाल करते हैं। इस मुद्दे को प्रचलित उक्ति के द्वारा समझा जा सकता है कि "एक व्यक्ति का स्वतंत्रता सेनानी, दूसरे व्यक्ति का आतंकवादी है।" अर्थात् एक ही व्यक्ति किसी के लिए स्वतंत्रता सेनानी है तो दूसरे के लिए आतंकवादी। 1972 के म्यूनीच नरसंहार के पश्चात्, संयुक्त राष्ट्र संघ में पाश्चात्य देशों के साथ बहस में, तृतीय विश्व के देशों ने तर्क दिया कि अक्सर शासनों के खिलाफ स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले स्वतंत्रता आन्दोलनों को 'आतंकवादी' करार दिया जाता है। अतः अगर संयुक्त राष्ट्र संघ आतंकवाद की निन्दा करे तो वो एक प्रकार से कमजोर के ऊपर शक्तिशाली का समर्थन करना होगा तथा यह यथावत की स्थिति को बनाए रखेगा। इस प्रकार की व्याख्या ओसामा बिन लादेन के

तर्क में भी दिखता है जब उन्होंने Commendable (सराहनीय) एवं Reprehensible (निन्दनीय) आतंकवाद में अन्तर किया तथा कहा कि, "लोगों की सुरक्षा तथा सम्पत्ति की रक्षा के लिए उत्पीड़कों, अपराधियों, चोर तथा डाकुओं को डराना आवश्यक है।.... आतंकवाद की हमारी क्रिया सराहनीय है क्योंकि यह तानाशाहों, हमलावरों एवं अल्लाह के शत्रु, गद्दारों के खिलाफ निर्देशित है जो अपने देश, धर्म, अपने पैगम्बर एवं अपने राष्ट्र के साथ धोखा करते हैं। चीजों को ठीक तथा सीधा करने के लिए उन्हें आतंकित करना तथा सजा देना आवश्यक है।"[11]

"उचित उद्देश्यों के लिए हिंसा की वकालत" तर्क सही नहीं है क्योंकि यह राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हिंसा को जायज़ ठहराती है। उदाहरणस्वरूप 9/11 हमले के बाद तथा जनसंहार करने वाले हथियार के नाम पर अमेरिका ने अफगानिस्तान एवं ईराक पर क्रमशः हमला कर दिया। इस तर्क का दूसरा नकारात्मक पक्ष यह है कि अगर "उचित उद्देश्यों के लिए हिंसा की न्यायसंगता" को स्वीकार किया जाए तो इसका मतलब यह है कि आतंकवादी वो हैं जो न्यायसंगत या उचित उद्देश्यों के लिए नहीं लड़ रहे हैं। अगर इस बात को स्वीकार कर लिया जाए तो इससे आतंकवाद की पूरी इतिहास को अस्वीकार करना होगा, जिसके पीछे हमेशा वैध एवं ठोस कारण थे।

अगर आतंकवाद को सभी परिस्थितियों में अवैध माना जाए, चाहे कोई भी उद्देश्य हो तो इसके भी सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्ष हैं। नैतिक दृष्टि से हिंसा का इस्तेमाल, किसी भी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जायज़ नहीं है। अक्सर आतंकवाद के शिकार लोग तथा राज्य आतंकवाद की पूर्णरूपेण निन्दा करते हैं। परन्तु इसका एक नकारात्मक पक्ष भी है और वह यह कि जब हम आतंकवाद की सम्पूर्ण निन्दा करते हैं तो यह भूल जाते हैं कि उसके पीछे कुछ कारण है जिसने आतंकवाद को जन्म दिया। अक्सर यह दो पक्षों, जो असमान शक्ति सम्बन्धों पर आधारित है, में देखने को मिलता है, उदाहरण के तौर पर, राज्य एवं लोगों के बीच, जब राज्य लोगों की आतंकवादी कृत्यों को हिंसा के द्वारा दबाने का प्रयत्न करते हैं, तब वह उनके माँगों की भी अनदेखा कर देते हैं। आतंकवाद में हिंसा एवं आतंक के साथ-साथ, उसके पीछे कुछ उद्देश्य एवं माँगें भी होती है, जिसे समझे बिना उसका स्थायी समाधान सम्भव नहीं है।

2. क्या आतंक की पहचान गैर-राज्य या उप-राज्य या राज्य के साथ भी की जानी चाहिए?

'आतंक' या 'टेरर' शब्द का प्रयोग पहले फ्रांस सरकार (1793-94) के सन्दर्भ में ही इस्तेमाल किया गया था। पर वर्तमान में यह ज्यादातर गैर-राज्य या उपराज्य तत्वों के सन्दर्भ में प्रयोग किया जाता है। आतंकवाद विशेषज्ञों जैसे लूइस रिचार्डसन ने तर्क दिया कि 'आतंकवाद' की पहचान राज्य नहीं वरन् उप-राज्य कर्त्ताओं के साथ होनी चाहिए।[12] ब्रूस हॉफमेन के अनुसार, 'आतंक' शब्द का प्रयोग राज्य द्वारा

किए गए हिंसा के लिए किया जाना चाहिए, जबकि 'आतंकवाद' का प्रयोग गैर-राज्य कर्त्ताओं द्वारा किए गए हिंसा के लिए होना चाहिए।[13] इसके विपरीत माइकेल वाल्ज़र का तर्क है कि आतंकवाद का व्यवहार राज्य से क्रान्तिकारियों को मिला है। उनके शब्दों में, "साधारण पुरुष एवं महिलाओं को आतंकित करना प्रथमतया घरेलू तानाशाह का कार्य है।.....तानाशाहों ने इस तरीके को सैनिकों को सिखाया एवं सैनिकों ने इसे आधुनिक क्रान्तिकारियों को... अर्थात् कड़े अर्थ में आतंकवाद, मासूम लोगों का बिना सोचे-समझे हत्या है, क्रान्तिकारी आन्दोलन की रणनीति के रूप में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद, इसका उदय तब हुआ जब वह पारम्परिक युद्ध की विशेषता बन चुकी थी।"[14] अगर इतिहास में देखें तो यह बात सत्य है कि राज्य ने भी विभिन्न उद्देश्यों या सन्दर्भों में आतंकवाद को एक रणनीति के रूप में इस्तेमाल किया है। कभी इसका इस्तेमाल घरेलू नीति के तौर पर आन्तरिक विरोध को दबाने के लिए, कभी विदेश नीति के हिस्से के रूप में, कभी आतंकवादी संगठनों के प्रायोजकों के रूप में या युद्ध के एक नीति के रूप में, राज्यों द्वारा किया गया है।

परन्तु अगर संयुक्त राष्ट्र संघ के आतंकवाद सम्बन्धित खण्डीय समझौतों को देखें तो इसमें जो परिभाषाएँ दी गई है- उसमें राज्य की सेना के कार्यवाहियों को उससे अलग रखा गया है तथा उन्हें अन्तरराष्ट्रीय मानवतावादी कानून के अन्तर्गत शामिल किया गया है। उदाहरण के रूप में, आतंकवादी बम विस्फोट संधि पत्र, 1997, आतंकवादी वित्तीयन संधि-पत्र, 1999, परमाणु आतंकवाद सन्धि पत्र, 2005 आदि। अन्तरराष्ट्रीय आतंकवाद पर प्रस्तावित विस्तारित समझौता भी राष्ट्र को इसके परिधि से बाहर रखने की वकालत करता है। इसके अलावा संयुक्त राष्ट्र संघ का खण्डीय उपागम, दंड-विधि मॉडल पर आधारित है जिसमें यह मान लिया गया कि आतंकवाद गैर-राज्य कर्त्ताओं द्वारा राज्य एवं जनता के विरूद्ध प्रयोग किया जाता है एवं राज्य आतंकवाद निरोधी व्यवस्था का सक्रिय हिस्सा है एवं सभी राज्य इस दिशा में सहयोग कर आतंकवाद का उन्मूलन करेंगे।

कुछ विचारकों ने इस विवाद के समाधान के लिए यह सुझाव दिया कि "आतंकवाद को युद्ध के उपजाति के रूप में परिभाषित करना होगा ताकि दोनों वास्तविकताओं से निपटा जा सके, आतंकवादी हिंसा उस आन्दोलन का हिस्सा हो सकता है, जिसमें दूसरा भी सम्मिलित है, परस्पर व्याप्त साधन एवं परिप्रेक्ष्य एवं इसे राज्य एवं गैर-राज्य कर्त्ता दोनों प्रयोग कर सकते हैं।"[15]

3. क्या आतंकवाद अन्य प्रकार के राजनीतिक हिंसाओं से अलग है?

'आतंकवाद' शब्द का इस्तेमाल अक्सर परस्पर परिवर्तनीय रूप से अन्य प्रकार के राजनीतिक हिंसाओं के साथ किया जाता है जैसे विद्रोह, युद्ध, गुरीला युद्ध आदि परन्तु आतंकवाद से वे मूलभूत रूप

से अलग हैं। समस्या यह है कि आतंकवाद एवं अन्य राजनीतिक हिंसा का सामान्य तत्व हिंसा/आतंक है, फिर प्रश्न यह उठता है कि कैसे उसे अन्य राजनीतिक हिंसाओं से अलग करे। विद्रोह एक आन्दोलन है, जबकि गुरीला युद्ध एवं आतंकवाद एक विधि है जिसका इस्तेमाल राजनीतिक आन्दोलनों के लक्ष्य को हासिल करने के लिए किया जाता है। गुरीला युद्ध में राज्य के साथ प्रत्यक्ष लड़ाई होती है जिसमें लोगों का समर्थन होता है एवं इसमें पुलिस या राज्यकर्मियों पर हमला किया जाता है, जबकि आतंकवाद अप्रत्यक्ष तरीके से लोगों पर हमला करता है एवं इसमें उसे लोगों का समर्थन बहुत कम होता है। तकनीकी रूप से विभिन्न प्रकार की राजनीतिक हिंसाओं में अन्तर है परन्तु इनमें अतिव्यपनता भी देखने को मिलती है। इसका कारण यह है कि हिंसा, आतंक, हत्या- यह इन सभी में सम्मिलित है। इसके अलावा अक्सर आतंकवाद अन्य प्रकार के राजनीतिक हिंसा का हिस्सा होता है या एक-दूसरे में परिवर्तित हो सकता है।

4. आतंकवाद की कोई एक परिभाषा होना असम्भव है क्योंकि आतंकवाद के कई प्रकार हैं।

आतंकवाद के इतिहास को अगर देखें तो यह बात स्पष्ट होता है कि आतंकवाद के अनेक प्रकार हैं, क्योंकि इसका इस्तेमाल विभिन्न समय, देश, परिस्थितियों, विभिन्न कर्त्ताओं, नाना उद्देश्यों के लिए समय-समय पर किया गया है। मोटे तौर पर हम आतंकवाद को राज्य एवं गैर-राज्यीय आतंकवाद; अन्तरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय आतंकवाद; पारम्परिक एवं समकालीन आतंकवाद जैसे उपवर्गों में बाँटते हैं। उसी प्रकार गैर-राज्य आतंकवाद को भी कई वर्गों में बाँटा जाता है- जैसे सजातिय-राष्ट्रवादी, वैचारिकीय, धार्मिक-राजनीतिक आतंकवाद आदि। एक अन्य महत्वपूर्ण विभेद पारम्परिक एवं समकालीन आतंकवाद में किया जाता है। पारम्परिक आतंकवाद की कुछ विशेषताएँ हैं जैसे इसमें आतंकवादी संगठनों या आंदोलनों को आसानी से चिन्हित किया जाना है; छोटे एवं पारस्परिक शस्त्रों एवं विस्फोटों का प्रयोग करना; नृजातीय-राष्ट्रवादी संगठनों एवं वर्गों द्वारा मुखर रूप से शिकायत करना एवं सर्जिकल तरीके से लक्ष्यों को चुनना।[16] आधुनिक/ समकालीन आतंकवाद में संगठन-संरचना वर्गीकृत न होकर जाल के समान है, जिसमें छोटे-छोटे सेल में लोग एक-दूसरे से जुड़े हैं एवं केन्द्रीकृत नेतृत्व/पाटब का अभाव होता है। यह मुख्यतया सामान्य विचारधाराओं से जुड़े होते हैं। उपरोक्त के अलावा भी आतंकवाद को अनेक आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है इसलिए यह माना जाता है कि आतंकवाद के इतने प्रकार होने से सभी की विशेषताएँ एवं स्वरूप भी अलग है, इसलिए एक परिभाषा होना सम्भव नहीं है। परन्तु बहुत से विचारकों का यह भी मानना है कि आतंकवाद के बदलते स्वरूप का तात्पर्य यह नहीं है कि इसका कोई संसक्त अस्तित्व नहीं है। इसके अलावा 9/11 हमले के पश्चात्, विशेषज्ञ एवं राजनीतिज्ञ 'नए आतंकवाद' के शुरूआत की बात करने लगे जबकि इसकी विशेषताओं को देखा जाये तो इसकी शुरूआत 1990 के दशक से ही हो गई थी- जो धार्मिक भावनाओं से प्रेरित थी, जिसका दायरा अन्तरराष्ट्रीय था एवं नए तकनीकों का

प्रयोग कर रहा था तथा जिसका उद्देश्य वृहत् स्तर पर जन हानि था। इसमें कोई दो राय नहीं कि समकालीन आतंकवाद द्वारा रासायनिक, जैविकीय एवं परमाणुवीय शस्त्रों की इस्तेमाल की ज्यादा सम्भावनाएँ हैं तथा समकालीन समय में साइबर आतंकवाद पारम्परिक आतंकवाद से भिन्न है।

अतः यह कहा जा सकता है- आतंकवाद, चाहे वह दक्षिणपंथी हो या वामपंथी, राष्ट्रीय हो या अन्तरराष्ट्रीय, यह एक नीति या साधन है, इसमें हिंसा-दैहिक हो या मानसिक आवश्यक तत्व है तथा यह एक सामान्य दर्शन या विचारधारा पर काम करती है। अतः अगर विभिन्न प्रकार के आतंकवाद को देखें तो परिभाषा पर सहमति बनने की सम्भावनाएँ हैं।

परन्तु व्यवहारिक स्तर पर परिभाषा के लिए सहमति बनने के मार्ग में बहुत सारी दुविधाएँ हैं। इसका इस्तेमाल अक्सर व्यक्तिपरक एवं दोहरेपन की नीति पर आधारित होता है। आतंकवाद को वस्तुनिष्ठ तरीकों से परिभाषित किया जा सकता है परन्तु इसे अक्सर व्यक्तिपरक होकर समझा जाता है एवं इसे अपने हित अनुसार एवं संदेहास्पद आधार पर व्याख्यायित किए जाते हैं। आतंकवाद पर दोहरापन से तात्पर्य है कि स्वयं की हिंसक कृत्यों को उचित ठहराना एवं शत्रु-पक्ष की हिंसा का आतंकवाद कहना। उदाहरण स्वरूप अमेरिका समर्थित अफगानिस्तान के मुजाहिद्दिनी जब सोवियत संघ से लड़ रहे थे, तो उन्हें नायक एवं स्वतंत्रता सेनानी कहा गया परन्तु बाद में जब उन्होंने अमेरिका पर हमला किया, तो वे आतंकवाद की श्रेणी में आ गए। इस सन्दर्भ में नौम चोमस्की की उक्ति प्रासंगिक है : "आतंकवाद के अध्ययन को दो तरीकों से समझा जा सकता है। पहला शाब्दिक उपागम के द्वारा, विषय को गम्भीरता से लेते हुए; एवं दूसरा है प्रचारक उपागम द्वारा, जिसमें किसी शक्ति व्यवस्था के फायदा हेतु, आतंकवाद को एक शस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।"[17] विधिक दृष्टि की अपेक्षा, इसे राजनीतिक दृष्टि से देखने की वजह से आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई अपूर्ण, प्रभावहीन एवं चयनात्मक है। अन्तरराष्ट्रीय राजनीतिक में सबसे जयादा दुरूपयोग किए जाने वाली शब्दावली में आतंकवाद शामिल है और इसके पीछे सबसे बड़ा कारण पारिभाषिकीय सहमति का अभाव होना है।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि अन्तरराष्ट्रीय आतंकवाद पर विस्तारित कानून के तहत सर्वसम्मत आतंकवाद की परिभाषा का निर्माण किया जाए। इससे उन कृत्यों को चिन्हित करने में मदद मिलेगी जो गैर-कानूनी एवं निन्दनीय है; आतंकवाद के निरोध में सहायक; तथा आतंकवादियों को सजा दिलाने में मददगार साबित होगा। आतंकवाद पर अन्तरराष्ट्रीय कानून, राज्यों को भी घरेलू स्तर पर आतंकवाद निषेध कानून बनाने में सहायक होगी एवं यह मानवाधिकार के रक्षा के लिए भी लाभप्रद होगा। आतंकवाद की सफल, सर्वव्यापक एवं सर्वसम्मत परिभाषा तभी निर्मित हो सकती है- जब अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में राज्य आतंकवाद की राजनीतिकरण को त्याग दे, उसमें राज्य/उपराज्य/गैर-राज्य कर्त्ताओं को

शामिल किया जाए, हिंसा को वस्तुपरक तरीके से परिभाषित करे एवं आतंकवाद के मूलभूत तत्वों का सामान्यीकरण कर सिद्धान्त निर्माण की चेष्टा की जाए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. C. Gearty, "Introduction", in C. Gearty (ed.), *Terrorism*, Dartmouth, aldershot, 1996, p. xi.
2. Bruce Hoffman, *Inside Terrorison*, Cambridge University Press, New York, 2006, p. 40-41.
3. Paul Wilkinson, *Politics and Democracy*, Routledge Publications, London, 2006, 2nd ed., p. 15-16.
4. Louise Richardson, What terrorist Want : Understanding the enemy, Containing the threat, Random House, New York, 2006, p. 20.
5. as quoted in alex P. Schmid, albert J. Jongman, et al., *Political terrorism : a new guide to actors, authors, concepts, databases, theories and literature*, New Brunswick, N.J. : Transaction Books, 1988, p. 33.
6. Ibid., p. 34.
7. "The Unlawful activities (Prevention), amendment act, 2008 : Committing the same error twice?" available on webpage, http://www.airweb word.com/articles/index.php?article=1399, accessed on 4th May, 2012.
8. alex P. Schmid, albert J. Jongman, et.al., Political Terrorism, pp. 5-6.
9. 1994 United Nations Declaration on Measures to Eliminate International Terrorism annex to UN General assembly Resolution 49/60, "Measure to Eliminate International Terrorism", of December 9, 1994, U.N. Doc. a/Res/60/49.
10. Sonali Singh, *Terrorism and Gandhian Response : Case Studies and Societal Perceptions*, authors Press, New Delhi, p. 29-37 (Excerpts of explanations of 4 points have been taken from this book and translated in Hindi).
11. as quoted in Louise Richardson, *What terrorist want*, p. 7.
12. Louise Richardson, *What terrorist want*, p. 5.
13. Bruce-Hoffman, *Inside Terrorism*, p. 24.
14. Michael Walzer, *Just and Unjust Wars : a moral argument with historical illustrations*, Basic Books, New York, 2000, p. 198.
15. Richard English, *Terrorism: How to Respond*, Oxford University Press, Oxford, 2009, p. 23.
16. Gus Martin, *Understanding Terrorism*, Sage Publications, California, 2006, p. 10.

17. Noam Chomsky, *Pirates and Emperor, Old and New: International Terrorism in the Real World*, Pluto Press, London, 2002. p. 119.

***

26. हिन्द महासागर का अमेरिका के लिये बढ़ता भू-राजनीतिक महत्व

क्षिप्रा शर्मा*

हिन्द महासागर की शक्ति संरचना के बदलाव

जसजीत सिंह के अनुसार 150 वर्षों की संप्रभुता के पश्चात ब्रिटेन के इस क्षेत्र से हटने के पश्चात उत्पन्न निर्वात को भरने में ब्रिटेन द्वारा अमेरिका को अप्रत्यक्ष रूप से महत्व दिया गया हैं। ब्रिटेन द्वारा अमेरिका को डियागो गार्शिया अड्डे का स्थानान्तरण हिन्द महासागर में अमेरिका की सैन्य उपस्थिति की दिशा में महत्वपूर्ण कदम माना जाता है। ब्रिटेन द्वारा इस क्षेत्र से हटना पश्चिमी गठबंधन के सदस्यों में उपस्थिति और गतिविधियों का एक परिवर्तन था। सोवियत संघ ने अमेरिका द्वारा उत्पन्न चुनौतियों का अपनी गतिविधियों द्वारा जवाब दिया है। इससे इस क्षेत्र में बाहरी शक्तियों की उपस्थिति मजबूत हो गई जो इस क्षेत्र को अशांत तथा अस्थिर करने के लिए पर्याप्त उत्तरदायी है।

द्वितीय विश्व युद्ध ने फारस की खाड़ी में निरंतर तेल की आपूर्ति बनाए रखने के प्रयास में अरब सागर के उत्तर में तैनात पश्चिमी नौ सेना की अक्षमता तथा विफलता का खुलासा किया जब जापान ने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान उन्हें कठिनाई में डाल दिया तथा विश्व के देशों को वैकल्पिक मार्गों को खोजने व सुरक्षित करने की दिशा में प्रवृत किया। इसी कारण हिन्द महासागर धीरे धीरे शक्ति केन्द्र के रूप में स्थापित हो गया।

अमेरिका के लिए हिन्द महासागर का भू-राजनीतिक महत्व

अमेरिका की दृष्टि में हिन्द महासागर का महत्व इस बात में है कि वह वैश्विक नौ-परिवहन को सुचारू रूप से गतिमान रखे। विशेष रूप से ऊर्जा स्रोतो से लदे जहाज बिना किसी बाधा के इस क्षेत्र में विचरण कर सके। इसके लिए वह ईरान के द्वारा बार-बार हार्मुज को बंद करने की धमकी का उपाय करे तथा समुद्री लुटेरों से उत्पन्न समस्याओं पर नियंत्रण रखे तथा अपने नवीन व्यापारिक क्षेत्र तथा व्यापारिक मार्गों को सुरक्षित रखे। नव-उपनिवेशवादी युग में अमेरिका द्वारा हिन्द महासागर में सर्वोत्तम सुविधाओं और संवर्को की खोज उसके राजनीतिक व आर्थिक हितों पर आधारित रणनीति का परिणाम है।

---

* **सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, कानोडिया महिला महाविद्यालय, जयपुर, (राजस्थान)**

अमेरिकी हितों के बदलते रणनीतिक आयाम

समय के साथ-साथ अमेरिकी रणनीतिकारों के दृष्टिकोण में यूरोप और मध्यपूर्व की अपेक्षा अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण हो गया है। अपतटीय संतुलन के परिणामस्वरूप दुनियाभर में अमेरिका की भू-राजनीतिक उपस्थिति के रूप में भागीदारी कम होती नजर आ रही है और अमेरिकी रणनीति इसके साथ तालमेल रखते हुए बदलाव की ओर अग्रसर है। अमेरिकी अभिजात वर्ग ने यह स्वीकार कर लिया है कि पश्चिम का अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में पूर्वनिर्धारित वर्चस्व अब नहीं रहा। यूरो-अंटलांटिक प्रभुत्व लम्बे समय तक चला लेकिन अब इसका अंत हो रहा है।

पैक्स अमेरिकाना का विचार भी कमजोर पड़ रहा है द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से दुनिया बदल गई जब अमेरिका ने विश्व नेतृत्व का बेड़ा उठाते हुए ऐसे तंत्र की संरचना की जिसने 70 सालों तक विश्व-व्यवस्था को पर्याप्त स्थिरता प्रदान की। आज विश्व 1991 की तुलना में बदल रहा है। भू-सामरिक दृष्टि से वैश्विक शक्ति केन्द्र के रूप में एशिया का उत्थान वैश्विक मामलों में अमेरिका के एक धुव्रीय वर्चस्व का समापन करता है। एशिया की सैन्य शक्ति का विकास हुआ है। एशिया की प्रमुख शक्तियें जैसे चीन, भारत और जापान का निरन्तर आर्थिक विकास हुआ है। यह सम्मिलित सैन्य शक्ति अमेरिका और यूरोप के सैन्य प्रभाव को कम करती है। राजनीतिक रूप में इस स्थिति ने एशियाई शक्तियों को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद, विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे वैश्विक राजनीतिक और वित्तीय संस्थानों के पुर्नगठन की मांग पर भी बल दिया है ताकि एशिया की शक्ति को वैश्विक संदर्भों में अधिक प्रतिबिम्बित किया जा सके।

हिन्द प्रशान्त क्षेत्र का उदय

2010 में अमेरिका ने हिन्द महासागर पर अपनी नीति स्पष्ट करते हुए कहा कि हिन्द महासागर में होने वाली कोई भी हलचल अमेरिका के हितों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं करती हो लेकिन पूरे विश्व पर नियंत्रण रखने के लिए अमेरिका हिन्द महासागर पर अप्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण रखना चाहता है क्योंकि वह जानता है कि ईरान की खाड़ी का फ्यूल 75 प्रतिशत उर्जा-स्रोतों में काम आता है इसलिए ईरान की खाड़ी एवं पूर्व एशिया के देशों के मध्य नौ परिवहन में किसी भी प्रकार बाधा राजनीतिक समस्या उत्पन्न कर सकती है। इसलिए अमेरिका हिन्द महासागर क्षेत्र में चीन की बढती हुई गतिविधियों को रोकना चाहता है जिसकी सुरक्षा की गारंटी वह अपने प्रभुत्व से कर सकता है। इस कारण इन सभी चुनौतियों का सामना करने के लिए अमेरिका ने सन् 2011 में एशिया से संबंधित एक नई रणनीति घोषित की जिसमें हिन्द प्रशान्त नामक नई अवधारणा दी है। (अमेरिका के अनुसार यह क्षेत्र अमेरिका के पश्चिमी तट से हिन्द महासागर तक विस्तारितत है(2010 में तत्कालीन अमेरिकी विदेश मंत्री **हिलेरी क्लिंटन** ने इसे नई उभरती हुई भौगोलिक और सामरिक वास्तविकता कहा। इसी अवधारणा की सन् 2018 में पुनर्व्याख्या करते हुए अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने कहा कि "अब वैश्विक राजनीति यूरो-अटलांटिक से स्थानान्तरित होकर

हिन्द प्रशान्त की ओर बढ रही है। जहां बीसवीं शताब्दी में भू-राजनीतिक और भू-आर्थिक रूप से यूरो-अटलांटिक वैश्विक राजनीति की दिशा को निर्धारित करता था अब 21वीं शताब्दी में वही दिशा हिन्द प्रशान्त क्षेत्र तय करेगा। अब शांति के केन्द्र के रूप में हिन्द महासागर क्षेत्र अहम भूमिका निभाएगा।" समकालीन अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में एक स्थिर, समृद्ध और सुरक्षित हिन्द-प्रशान्त क्षेत्र व्यापार, ऊर्जा आर्थिक संसाधनों की दृष्टि से सामरिक रूप से महत्वपूर्ण होकर उभर रहा है। अमेरिका चाहे भौगोलिक रूप से हिन्द महासागर से बहुत दूर स्थित है लेकिन पश्चिम एशिया (कुवैत, बहरीन, संयुक्त अरब अमीरात, कतर(तथा अफ्रीका (जिब्बत एवं डियागो गर्शिया(में उपस्थित होकर स्वयं को हिन्द महासागर से जुडा हुआ मानता है। ये सभी आधार अमेरिका के हितों की रक्षा करते हैं।

गुरप्रीत खुराना के अनुसार भौगोलिक रूप से अफ्रीका के पूर्वी तट से हिन्द महासागर के पार पश्चिम प्रशान्त क्षेत्र तक विस्तृत क्षेत्र को हिन्द प्रशान्त क्षेत्र कहा जाता है जिसमें जापान व आस्ट्रेलिया भी शामिल है। यह राजनीतिक और साथ ही आर्थिक क्षेत्र है जिसमें संचार की महत्वपूर्ण समुद्री लाईने शामिल है। जो दो महासागरों के तटों को जोडती है। हिन्द प्रशान्त रणनीतिक व सैन्य दोनों कारणों से अमेरिका के लिए महत्व का क्षेत्र है। अमेरिका की सबसे पहली अनिवार्यता यह है कि उसकी गृह भूमि की बाहरी पश्चिमी परिधि की पूर्वी एशिया में रक्षा का दायित्व उसके सैन्य सहयोगियों दक्षिण कोरिया, जापान, ताइवान, फिलीपिंस आदि पर निर्भरता है। अगली रणनीति अनिवार्यता यह है कि इस क्षेत्र का उपयोग शीत-युद्ध के दौरान उसकी प्रतिद्वन्द्वी महाशक्ति सोवियत संघ को नियंत्रित करने के लिए किया था।

अब भू-रणनीतिक रूप से एशिया में वैश्विक शक्ति केन्द्रों का उभार अमेरिका पर गंभीर प्रभाव डाल सकता है क्योंकि एशिया वैश्विक रणनीतिक चुनौतियों के सामने खुद को सामरिक सामंजस्य के साथ एकीकृत राजनीतिक इकाई के रूप में प्रस्तुत कर रहा है। इसलिए अमेरिका ने इस क्षेत्र में अपनी सामरिक उपस्थिति तथा अपने सहयोगियों व नये अभिनेताओं के साथ साझेदारी को मजबूत करने की भी कोशिश की है।

क्वाड-हिन्द-प्रशान्त का व्यवाहरिक स्वरूप

क्वाड हिन्द प्रशान्त भू-राजनीतिक क्षेत्र का निर्माण करने वाली चार बड़ी लोक तांत्रिक शक्तियों अमेरिका, जापान, भारत व ऑस्ट्रेलिया का चतुष्कोणीय गंठबंधन है जो एशिया-प्रशांत संकल्पना के स्थान पर हिन्दु प्रशान्त की संकल्पना को व्यवहारिक स्वरूप देने के उद्देश्य से मुक्त है। **ब्रह्मम चेलानी** के अनुसार इसकी वैचारिक संकल्पना 2007 में जापान के तत्कालीन प्रधान मंत्री शिंजो आबे द्वारा दी गई परन्तु ऑस्ट्रेलिया के इससे पीछे हटने के कारण उस समय धरातल पर नहीं उतर पायी। यह अमेरिका,

जापान, आस्टेलिया व भारत के बीच अनौपचारिक रणनीति वार्ता है जिसके दो पहलू है पहला **आर्थिक** पहलू जिसमें एशिया में विकासशील देशों को सुरक्षित व उचित तरीके से आर्थिक सहजता उपलब्ध कराने का उद्देश निहित है तथा दूसरा पहलू है **रक्षा-जिसका** अर्थ है हिन्द-प्रशान्त क्षेत्र तथा दक्षिण-चीन सागर में अन्तरराष्ट्रीय कानून का सम्मान करना चाहिए। कूटनीतिक राय में इसे चीन की विस्तारवादी नीति का जवाब माना जा रहा है। एशिया में चीन के प्रभाव को प्रतिसंतुलित करने के लिए इस अनौपचारिक समूह को पुनर्जीवित किया गया। चारों शक्तियों इस क्षेत्र में शांति स्थिरता व समृद्धि को बढ़ावा देने के लिए प्रतिबद्ध है।

पिवोट टू एशिया अथवा एशिया का पुनर्सतुलन : अमेरिका की नवीन नीति :-

उभरते चीन के सामरिक प्रभाव को कम करने के लिए अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने 2012 में अपनी एशिया के प्रति रणनीति को रिबेलेसिंग एशिया अथवा पिवोट टू एशिया के रूप में प्रस्तुत किया है जिसके द्वारा अमेरिका के लिए अवसरों से सम्पन्न इस क्षेत्र को उच्च राजनीतिक महत्व प्रदान करना, राजनीतिक, आर्थिक व रक्षा संसाधनों से सम्पन्न करने का उद्देश्य है। **फ्रीडबर्ग ऐरोन** ने अमेरिका की इस रणनीति को संतुलन के साथ जोड़ा है तथा इसे वैश्विक व्यापार और अन्तरराष्ट्रीय संस्थानों में चीन को घेरने की दिशा में तैयार रणनीति कहा है। इस पुनरसंतुलन रणनीति के है मूलभूत तत्व है।

1. द्विपक्षीय सुरक्षा संबंधों को मजबूत बनाना जैसे भारत, इण्डोनेशिया आदि।
2. चीन जैसी बढ़ती शक्तियों के साथ अमेरिका के सकारात्मक संबंधों को मजबूत करना।
3. क्षेत्रीय बहुपक्षीय संस्थानों के साथ संलग्नता।
4. व्यापार और निवेश का विस्तार।
5. एशिया में व्यापक सैन्य उपस्थिति स्थापित करना।
6. लोकतंत्र और मानवाधिकारों को आगे बढ़ाना।

हिलेरी क्लिंटन द्वारा विचार रूप में प्रस्तुत सिद्धान्त को को तत्कालीन राष्ट्रपति बराक ओबामा ने 2012 में नीति के रूप में अभिव्यक्त किया। अपनी इस रणनीति के तहत अमेरिका ने अपनी समुद्रि सेना के 60 प्रतिशत को इस क्षेत्र में तैनात करने की योजना है। अपने सबसे उन्नत किस्म के रक्षा संसाधनों को इस क्षेत्र में तैनात करने की अमेरिका की योजना है जिसमें फोर्ड क्लास एयर क्राफ्ट, तटीय लडाकू जहाज, बी-2बम, एफ-22 व एफ-35 लड़ाकू तथा पी-8 गश्ती विमान शामिल है। संयुक्त राज्य अमेरिका की इस पुनर्संतुलन रणनीति के अन्तर्गत गुआम में अपनी सैन्य उपस्थिति की योजना भी शामिल है और इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए भी गए है जैसे पनडुब्बियों तथा मानव रहित हवाई वाहन तथा टर्मिनल हाई अल्टीट्यूड एरिया डिफेंस (थाड टी एच ए ए डी(भी इस द्धीप पर तैनाती।

अपनी इस नवीन रणनीति के अनुसरण में अमेरिका, भारत, जापान, दक्षिण कोरिया, वियतनाम और अन्य देशों के साथ रणनीतिक साझेदारी विकसित और मजबूत करने की कोशिश की है। अमेरिका से सक्रिय प्रोत्साहन के साथ जापान ने अपने सशस्त्र बलों को दुनिया के दूसरे हिस्सों में संचालित करने के लिए सितंबर 2015 में अपने संविधान में संशोधन किया है। उत्तर द्वितीय विश्व युद्ध, शांतिवादी जापानी संविधान के बाद जापान को केवल रक्षात्मक ताकतों को बनाए रखने की इजाजत थी। जापान का अमेरिका की रणनीतियों में अहम योगदान है, क्योंकि उसका (जापान(चीन के साथ सेनाकाक् द्विप पर काफी पुराना सीमा विवाद है और अमेरिका जापान के लिए एक सुरक्षा गारंटी है। अमेरिका ने दक्षिण कोरिया, वियतनाम, आस्टेलिया और भारत सहित अन्य के साथ संयुक्त नौसैनिक अभ्याज, सुरक्षा समझौतों, हथियारों की आपूर्ति आदि के रूप में सामरिक गठजोड़ विकसित करने की भी कोशिश की है। अमेरिका ने क्षेत्रीय देशों के साथ अपनी पकड़ और संबंधों को मजबूत करने के लिए आर्थिक पहल भी की है।

हिन्द-महासागर में अमेरिका की सैन्य उपस्थिति

अमेरिका हिन्द-प्रशांत महासागर की एक अनिवासी शक्ति है और इसीलिए उभरते चीन के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए रणनीति भागीदारी विकसित करना चाहता है। हिन्द महासागर में अमेरिका के सैन्य उद्देशों की प्राप्ति हेतु तीन कमाण्ड स्थापित है।

1. **पैकम - पी.ए.सी.ए.एम(. अर्थात पैसेफिक कमाण्ड) :-** जिसमें चीन सम्मिलित है जो भारत तक विस्तारित है तथा जो हिन्द महासागर के केंद्रीय एवं पूर्वी भागों के प्रति उत्तरदायी है तथा किसी समय इस पूरे समुद्र की देखभाल करना इसका दायित्व था।

2. **केन्द्रीय कमाण्ड (सैन्ट कॉम) :-** यह बहरीन में स्थित है और इसने अफगानिस्तान और ईराक में संयुक्त मोर्चे की सहायता की है। तथा यमन जैसे देशों में प्रति आतंकवाद की कार्यवाही की है।

3. **अफ्रीका कमाण्ड (अफ्रीकॉम) :-** इसका उत्तरादियत्व पश्चिमी हिन्द महासागर की रक्षा करना है। यह हॉर्न ऑफ अफ्रीका के लिए कार्य करता है और अदन की खाडी के सम्मुख जिबूती में स्थित है तथा यह हिन्द महासागर और ईरान की खाड़ी में अमेरिकी फौजों को सहायता प्रस्तुत करता है।

अमेरिका के हिन्द महासागर में भारत के साथ संयुक्त प्रयास

रणनीतिक रूप में जापान, दक्षिण कोरिया, ऑस्ट्रेलिया, वियतनाम और सिंगापुर अमेरिका के सुरक्षा नेटवर्क में हैं। इसके साथ ही भारत और अमेरिका ने आर्थिक रक्षा और तकनीति साझेदारी की है। दोनों ने

2005 में एक रक्षा समझौते पर हस्ताक्षर किए जो 2015 में अगले 10 वर्षों के लिए बढ़ा दिया गया। इसमें संयुक्त नौसैनिक अभ्यास सहित सुरक्षा मामलों में घनिष्ट सहयोग की बात की गई है। अमेरिका हिन्द महासागर में भारत की प्रमुखता को स्वीकार करता है इस प्रकार भारत व अमेरिका के बीच एक अनौपचारिक समझ विकसित हुई है जिससे वे हिन्द महासागर में खतरे का मुकाबला करने के दायित्व को बांट सकें।

भारत व अमेरिका के बीच 1992 से संयुक्त नौसैनिक अभ्यास प्रारंभ हुआ जिसमें 2015 से जापान को स्थायी सदस्य के रूप में शामिल किया गया तथा ऑस्ट्रेलिया सिंगापुर अस्थायी सदस्य है। अमेरिका हिन्द प्रशान्त क्षेत्र में भारत को अधिक प्रभावी भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित करता रहा है। 2015 में अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा की दूसरी भारत मात्रा के दौरान दोनों देशों के सम्मिलित एशिया-प्रशान्त अथवा हिन्द प्रशान्त क्षेत्र पर अमेरिका - भारत संयुक्त सामरिक विजन"[9] पर हस्ताक्षर किए। भारत और अमेरिका, सबसे बडें लोकतंत्रों के बीच घनिष्ट सहयोग दुनिया के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में शांति स्थिरता और समृद्धि को सुनिश्चित करने के लिए अनिवार्य है। दोनों देशों में समुद्री सुरक्षा, नेविगेशन की स्वतंत्रता, विशेष रूप से दक्षिण-चीन सागर इत्यादि की रक्षा करने पर सहमति जताई। भारत-अमेरिकी समुद्री रणनीतिकरण के लिए हिन्द प्रशान्त क्षेत्र में एक संतुलक के रूप में नई दिल्ली की क्षमता के बारे मे उनकी चेतना को बढ़ाने का काम भी किया है इस संबंध में भारत व अमेरिकी ने 2018 में द्विपक्षीय समझौते पर हस्ताक्षर भी किए है जैसेः- "लॉजिस्टिक एक्सचेंज मेमोरेंडम ऑफ एग्रीमेंट (लेमोआ)" जिसमें दोनों देशों में एक सीमा तक सैन्य ठिकानों, रसद, सैन्य सुविधाओं के इस्तेमाल पर सहमति शामिल है। यह समझौते अमेरिका द्वारा अपने रक्षा साझेदारों के साथ मिलकर किए गए मूलभूत समझौते में से एक है। अन्य समझौतों में सिस्मोआ (सी आई एस एम ओ ए) (कम्यूनिकेशन इन्टरपोर्टब्लिटी एण्ड सिक्योरिटी मेमोरेंडम एग्रीमेंट संचार और सूचना ज्ञापन भू-स्थनिक बौद्विक सम्पदा के लिए बेसिक एक्सचेंज एण्ड कॉरपोरेशन एग्रीमेंट (बी, ए आई सी ए शमिल है जिन पर बातचीत जारी है। वर्ष 2016 में प्रधान नरेन्द्र मोदी की अमेरिकी यात्रा के दौरान रक्षा प्रौद्योगिकी और व्यापार सहयोग में अभिनव व उन्नत उवसरों को सुविधाजनक बनाने के लिए एक रूपरेखा तैयार की जिसके लिए अमेरिका भारत में रक्षा व्यापार और प्रौधोगिकी साझाकरण के भागीदारी के रूप में सहमत हुआ है। क्षेत्रीय शक्ति के रूप में अपनी उपस्थिति को बनाए रखने के लिए अमेरिका ने हिन्द प्रशांत क्षेत्र में आर्थिक सैन्य और रणनीतिक प्रयासों को बढ़ावा दिया है।

बदलती वैश्विक शक्ति सरंचना में हिन्द महासागर के बढ़ते राजनीतिक, आर्थिक व रणनीतिक महत्व के कारण अमेरिका के इस क्षेत्र में निहित उद्देश्य है जिसकी प्राप्ति हेतु अमेरिका की हिन्द महासागर के प्रति नीति में पिछले दो दशक में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। अमेरिका विभिन्न द्विपक्षीय, बहुपक्षीय प्रयासों द्वारा इस क्षेत्र मे व्यापार तथा आवागमन की स्वतंत्रता को बनाए रखने की कोशिश कर

रहा है। चीन की इस क्षेत्र में बढ़ती सामरिक गतिविधियों को नियंत्रित करने हेतु भी अमेरिका पिवोट टू एशिया तथा क्वाड जैसी नीतियों द्वारा प्रयासरत है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. इंडियन ओसन जोन ऑफ पीस एण्ड फ्यूचर वॉर "(एडिटोरियल मेनस्ट्रीम अगस्त 17,1974)
2. पन्निकर के.एम. इंडिया एण्ड इण्डियन ओसन, बाम्बे 1971, पीपी 22-23
3. सिंह जसजीत, इंडियन ओसन इन ग्लोबल स्ट्रेटजीज सम प्रिस्पेक्टिव्स, आई.डी.एस.ए., नई दिल्ली 1984 पी.2
4. क्लिंटन हिलेरी रोधम "अमेरिकाज पैसेफिक सेन्चूरी : यू.एस. डिपार्टमेंट ऑफ स्टेट थ्रू फॉरेन पॉलिसी मैग्जीन, अक्टूबर 11, 2011
5. खुराना, गुरप्रीत एस. "सिक्योरिटी ऑफ सी लाइन्स : प्रोस्पेक्ट्रस फार इंडिया-जापान कॉपोरेशन स्टेटजिक एनालेसीस वॉल्यूम, नवम्बर 31, 2007 पीपी 139-153.
6. चेलानी ब्रह्म " डिफरेंस प्लेबुक्स एम्ड एट बेलेसिंग एशियाज पॉवर, द जापानी टाइम्स, नवम्बर 3, 2008
7. फ्रीडबर्ग ऐरोन "बुकिंग बीजिंग : एन अल्टेरनेटिव यू.एस. चाइना पॉलिसी, फॉरेन अफेयर्स : 91(5) अक्टूबर 31, 2012 पीपी 48-58
8. यू.एस. डिपार्टमेंट ऑफ डिफेंस "यूनिफाइड कमाण्ड प्लान" अप्रैल 27, 2011, एच.टी.टी.पी//:.डब्ल्यू.डब्ल्यू. डब्ल्यू.डॉट गोव/न्यूज/यूसीपीऋ2011ऋएम.ए.पी.4
9. इंडिया यू.एस. होल्ड फर्स्ट एवरबाइलिटरल डायलॉग यू.एन.मल्टीलिटरल इश्यूज, "फर्स्टपोस्ट, फरवरी 19, 2015.

***

27. विकासशील देशों में पर्यटन व गरीबी के मध्य विचार-विमर्श, विशेषतः भारत के संदर्भ में

डॉ. कुमार अशुतोष*

केतन भट्ट**

प्रारूप- भारत सहित अन्य विकासशील देशों के समग्र विकास की राह में निर्धनता एक अभिशाप है। सरलतम रूप से इसे इस तरह परिभषित किया जा सकता है- मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति से वंचित समाज का वह वर्ग जो एक स्तर तक संतुष्ट एवं सम्मानजनक जीवन जीने में असमर्थ रहता है, गरीब कहलाता है। अधिकाशतः विकासशील देशों में पर्यटन एक महत्वपूर्ण एँव गतिशील उद्योग सिद्ध हुआ है। तीसरी दुनियां के राष्ट्रों (एल0डी0सी0) में पर्यटन विकास वृहद गति के साथ अग्रसर हो रहा है। पर्यटन से होने वाले आर्थिक व रोजगार संबधी लाभ समाज के सभी वर्गो को प्राप्त हो रहे है, जिनमें निम्न आय वर्ग के लोग भी सम्मिलित है। अनेक विद्वानों द्वारा किए गए विश्लेषणों के आधार पर इस शोध पत्र को प्रस्तुत करने का उद्देश्य इस बात पर निहित है कि- क्या पर्यटन विकास गरीबी घटानें की पर्याप्त क्षमता रखता है ? जिस हेतु पर्यटन और निर्धनता के मध्य संबन्ध का आंकलन करने के लिए अनेक विद्वानों द्वारा किए गए शोध व कुछ विकासशील राष्ट्रों के मामलों पर गहन अध्ययन के पश्चात् परिणाम निकाले गए। इस अध्ययन से यह निष्कर्स निकला कि यदि पर्यटन विकास में गरीबी को मद्देनजर रखते हुए धारारेखित किया जाय तो न केवल गरीबी का उन्मूलन होगा अपितु देश को आर्थिक समृद्धि भी प्राप्त होगी। इस शोध से यह सुझाव प्राप्त हुआ कि यदि भारत जैसे अनेक विकासशील राष्ट्रों मे पर्यटन विकास को समावेशित कर अग्रसारित किया जाय तो पर्यटन से प्राप्त होने वाले अनेक लाभ समाज के पिछड़े वर्गो तक पहुंचाये जा सकते है।

पर्यटन उद्योग विश्व के सबसे बड़े उद्योग में से एक है, इसे विशेषतः विकासशील (एनएक्स II) राष्ट्रों के विकास में एक सुदृढ़ साधन के रूप में पहचाना गया है, पर्यटन विश्वस्तर पर सेवा क्षेत्र में अकेला ही 10% लोगों को रोजगार प्रदान करता है। (यू0एन0डब्लू0टी0ओ0 2018)। पर्यटन स्थलों के विभिन्न पहलू जैसे उस स्थल की सामाजिक व्यवस्था, संस्कृति, अर्थ व्यवस्था, तकनीकी, प्राकृतिक सौन्दर्य आदि उस

* **सहायक, प्राध्यापक, सी.वी.एस, दिल्ली विश्वविद्यालय,**

** **पर्यटन विभाग, बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी**

स्थान विशेष के विकास में मुख्य भूमिका निभातें हैं। वैश्वीकरण के इस युग में दक्षिणपूर्वी एशायाई देशों के विकास की गति साक्षी है कि पर्यटन विकास किसी भी राष्ट्र की अर्थिक उन्नति और समृद्धि में एक प्रभावशाली उपकरण सिद्ध हो सकता है।

सन् 1980 के दशक में उभरकर आये पर्यटन के विभिन्न वैकल्पिक रूप जैसे ग्रामीण पर्यटन, समुदाय आधारित पर्यटन, मलिन बस्ती पर्यटन, सतत् पर्यटन, उत्तरदायी पर्यटन आदि राष्ट्र के विकास में श्रेष्ठ योगदान देते हुए दृष्टिगोचर हुए हैं। फलस्वस्प गरीबी उन्मूलन भी परिलक्षित हो रहा है। पर्यटन विकास मुख्यतः रोजगार उत्पन्न करता है जिसके परिणाम स्वरूप गरीबी कम होती है क्योंकि रोजगार उत्पत्ति आर्थिक लाभो का गुणक है। इसके अलावा पर्यटन विकास अपना नकारात्मक प्रभाव भी एक स्थल विशेष के समाज अर्थव्यस्था, तथा पर्यावरण पर छोड जाता है। पर्यटन के विकास तथा इसकी उत्पत्ति सम्बन्धी रणनीति का ढाँचा तैयार करते समय नीति निर्माताओं तथा अन्य हित धारकों को इन नकारात्मक प्रभावों पर गौर करते हुए इनकों कम करने का उद्देश्य सामने रखना चाहिए अधिकांशतः पर्यटन से होने वाले लाभ हर गरीब तक नही पहुँच पाते हालाँकि इससे होने वाले दुष्परिणाम जैसे मुद्रस्फीति,विस्थापन,सामाजिक-सास्कृतिक विध्वंश एवं पर्यावरण पतन आदि गरीबों को प्रभावित करते हैं। पर्यटन का समावेशित विकास होना समय की मांग है ताकि इससे होने वाले लाभ को समाज का हर तबका प्राप्त कर सके, मुख्यतः निर्धन वर्ग। इस हेतु समावेशित पर्यटन विकास व उसकी विकाश सम्बन्धी रणनीति की आवश्यकता क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय दोनों स्तर पर आवश्यक हैं। ऐसा करने से पर्यटन की इस संकल्पना को समर्थन देने वाले राष्ट्र समावेशित विकास के लाभ को प्राप्त कर सकेंगें। समावेशित विकास से यह अर्थ स्पष्ट है कि ऐसा विकास जिससे होने वाले लाभ समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँचाये जा सके एवं इस विकास से नवयुवाओं को आजीविका प्रदान कराते हुए भारत उसके जनसंख्यकीय लाभांश का लाभ उठा सकता है। इस प्रकार भारत से निर्धनता उन्मूलन हेतु समावेशित पर्यटन एक महत्वपूर्ण साधन प्रमाणित होगा।

विश्व आर्थिक मंच (डबल्यू.एफ.एफ) द्वारा जारी की गई विश्वपर्यटन और यात्रा प्रतिस्पर्धा रिर्पोट 2009 के अनुसार -भारत को विश्वस्तर पर प्राकृतिक स्थलो में चौदहवाँ स्थान तथा सास्कृतिक स्थलों में चौबीसवाँ स्थान प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त पर्यटन उद्योग देश भर में करीब 2 करोड़ लोगों को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में रोजगार प्रदान करता हैं (indiamirror.com)। फिर भी भारत का वैश्विक पर्यटन में मात्र 1% हिस्सा ही परिलक्षित हुआ है (पर्यटन मंत्रालय रिर्पोट, 2018)। भट्ट एवं आशुतोष (2019) के द्वारा कहा गया है कि उच्च कोटि के पर्यटन उत्पाद एँव साधन होने के बाद भी भारत विश्वस्तर पर पर्यटन के क्षेत्र में अपनी एक उत्कृष्ट छवि नहीं बना पाया है। इसलिए भारत को एक अप्रतिम पर्यटन रणनीति की आवश्यकता है ताकि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर एक संतोष जनक स्थान प्राप्त किया जा सके, उचित प्रबन्धन एवं प्रवर्तन रणनीति के साथ-साथ प्रांसगिक नीतिनिर्णय पर्यटन विकास सहायक की भूमिका निभायेंगे

लेकिन यह प्रर्याप्त नहीं है। यह भी निश्चय करना होगा कि पर्यटन विकास से होने वाले अधिंकाश लाभ समाज के गरीब वर्गो तक भी पहुंचाये जा सकें।

विश्वबैंक के आंकड़े (2016) बताते है कि भारत में प्रत्येक पांचवा व्यक्ति निर्धन है। भारत की 80% जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में गरीबी के आकंड़े क्रमशः 25% तथा 14% दृष्टिगत हुए है। भारत के 23.6% लोग अपनी क्रयशक्ति क्षमता (P.P.P) पर प्रतिदिन $1.25 से नेचे जीवन यापन करते है (विश्वबैंक 2011)। योजना आयोग भारत सरकार (2013) के आधार पर भारतीय जनसंख्या के 21.9% लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। यह राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय रिपोर्ट दर्शाती है कि गरीबी ने भारतीय अर्थव्यवस्था को बुरी तरह से जकड़ रखा है।

आरेफ (2011) के अनुसार भी पर्यटन विकास को इस तरह अग्रसारित किया जाना चाहिए कि इससे होने वाले आर्थिक लाभ गरीबों तक पंहुच सके। पूर्वोक्त यह भी इंगित करता है कि गरीब के हक में पर्यटन विकास करने हेतु सुदृढ़ ढांचा एवं हितधारको के मध्य पर्यटन गरीबी जागरूकता अनिवार्य है।

हैम्पटन और अन्य (2017) बताते है कि सामावेशित पर्यटन समाज के निचले एवं मध्यम आय वर्गो को रोजगार के अवसर प्रदान करते हुए गरीबी दूर करेगा। अन्तरराष्ट्रीय श्रमिक संगठन (2013) द्वारा सुझाव दिया गया कि गरीबी उन्मूलन हेतु मूल्यांकन तथा निगरानी के साथ रणनीति तैयार की जाने की आवश्यकता है ताकि पर्यावरण, समाज व संस्कृति पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव कम किए जा सके, स्थानीय स्वामित्व को बढ़ावा देना, स्थानीय उत्पादों को प्रोत्साहित करना, आपूर्ति श्रृंखला में निर्धनों को जोड़ना, स्थानीय रोजगार को बढ़ावा देना तथा पर्यटन उद्योग व स्थानीय समुदाय के बीच संचार गरीबी उन्मूलन में प्रभावशाली सिद्ध होगें।

लक्ष्य बिन्दु- इस अध्ययन का लक्ष्य बिन्दु यह पता लगाना है कि क्या पर्यटन विकास को भारत में बड़े पैमाने में फैली गरीबी की दर घटाने के लिए एक सार्थक सामाधान के रूप में अपनाया जा सकता है?

उद्देश-

उपरोक्त लक्ष्य बिन्दु प्राप्त करने हेतु निम्नलिखित उद्श्यों पर विचार विमर्श किया गया गयाः-

1. गरीबी घटाने सम्बन्धी पर्यटन विकास की क्षमता का अन्वेषण।
2. भारतीय पर्यटन की निर्धनता उन्मूलन हेतु सम्भावनाओं का आकंलन।
3. पर्यटन-गरीबी के आलोचना तथा अधिवक्ता दृष्टिकोण का विश्लेषण।
4. अन्य विकासशील राष्ट्रों के मामलों का गहन अध्ययन करके भारत के मामले में परिणामां का सामान्यकरण करना।

कार्यप्रणाली:-

मुख्य रूप से विभिन्न शोध पत्र, पत्रिकाएँ, समाचार पत्र, पर्यटन मंत्रालय की रिपोर्ट, संयुक्त राष्ट्र विश्व पर्यटन संगठन की रिपोर्ट, डब्लू0टी0टी0सी0 की रिपोर्ट आदि का गहन अध्ययन करके पर्यटन की क्षमता का आंकलन किया गया। तत्पश्चात अनके आलोचक और समालोचक दृष्टिकोण का विश्लेषण करके पर्यटन तथा गरीबी के मध्य सम्बन्ध स्थापित किया गया। अन्ततः अनेक कम विकसित राष्ट्रों (एल0डी0सी0) के मामलों का गहन अध्ययन करते हुए यह सिद्ध किया गया कि पर्यटन विकास सार्थक रूप से भारत में गरीबी घटाने में सक्षम है।

पर्यटन की विश्वस्तरीय क्षमताएँ तथा गरीबी उन्मूलन सम्बन्धी संभावनाएँ-

पर्यटन उद्योग 2017 में अकेले ही विश्वस्तर पर 10% सकल घरेलु उत्पाद व 7% निर्यात, में योगदान देता पाया गया (यू.एन.डब्लू.टी.ओ., 2018)। ये आकड़े प्रमाणित करते है, कि पर्यटन विश्वस्तर पर आर्थिक विकास तथा उन्नति का एक प्रभावशाली साधन बनने की क्षमता रखता है। विश्व आर्थिक मंच (डब्लू.ई.एफ.) के अनुसार पर्यटन उद्योग विकासशील देशों में अधिकतम नये रोजगार उत्पन्न करता है, (बोलवेल्ल तथा वेंज, 2008)। अतः पर्यटन विकासशील राष्ट्रों के लिए एक विश्वसनीय उद्योग है तथा इसमें प्रतिस्पधात्मक लाभ सृजन करने की पर्याप्त सम्भावनायें निहित है।

वर्तमान भारत में 28 राज्य तथा 9 केन्द्रशासित प्रदेश है ये राज्य यूरोप के कई छोटे-छोटे राष्ट्रों से भी बड़े है। भारतीय पर्यटन में इसकी अतुलनीय संस्कृति, गौरवशाली इतिहास, विश्वप्रसिद्ध यूनेस्कों के सभी स्थल, मनोहर प्राकृतिक सौन्दर्य, व्यंजन विविधता तथा अनेक उत्कृष्ट सुविधाएँ निहित हैं जो पर्यटन विकास में कीमती योगदान देते हैं (श्रीनिवासन, भट्ट एवं काब्या 2019)। वर्ष 2017 में भारत ने विदेशी पर्यटन आगमन में 14% की बढ़त प्राप्त की। उपरोक्त वर्ष में देश ने कुल 1.014 करोड़ विदेशी पर्यटकों का स्वागत किया और 27.31 अरब यू.एस. डॉलर के बराबर विदेशी मुद्रा अर्जित की जिसमें 19.1% आय वृद्धि का कीर्तिमान भी स्थापित किया। यह रूझान विश्व के औसत आंकड़ों से अधिक है (पर्यटन मन्त्रालय रिपोर्ट, भारत सरकार, 2018)। इसके अतिरिक्त विगत वर्ष में पर्यटन एवं यात्रा क्षेत्र ने 2.59 करोड़ लाभार्थियों को रोजगार प्रदान किया (Economic Times, 2018) और देश को सकल घरेलू उत्पाद में 10% योगदान दिया (डब्लू.टी.टी.सी., 2018) .

भारत सहित अन्य विकासशील देशों में गहन स्तर तक गरीबी व्याप्त है। पर्यटन इन देशों में विकास की ओर गतिशील हो रहा है जो कि निर्धनता उन्मूलन में सहायक सिद्ध होने की प्रबल क्षमता रखता है, (मान्यारा और अन्य, 2006)। इसके अलावा पर्यटन का राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में जो योगदान है वह इन

राष्ट्रों में कहीं अधिक स्पष्ट है (यू.एन.डब्लू.टी.ओ., 2006)। फिर भी गरीब व्यक्तियों को अक्सर उन लाभों से वंचित रखा जाता है, जो लाभ पर्यटन समाज को प्रदान करता है (सचेयवेनस, 2007)। इसलिए अधिकांशतः तीसरी दुनियां के देशों में पर्यटन के विकास में समावेश का अभाव है (आई.टी.ओ., 2010)

पर्यटन गरीबी के मध्य अधिवक्ता एवं आलोचक दृष्टिकोण :-

पर्यटन को गरीबी कम करने का साधन मानने वाले विद्वान अधिवक्ताओं का मानना है कि यह स्थान विशेष की अर्थव्यवस्था को बढ़ाता है तथा व्यक्तिगत आय को बढ़ाते हुए नगरीय व ग्रामीण क्षेत्र तथा अमीर व गरीब के बीच के अन्तर को कम करता है, जिससे एक संतुलित विकास सम्भव होता है। (नजाया तथा सीताराम, 2017; झीझांग व यैंग 2013) पर्यटन विकास स्थानीय आर्थिकवृद्धि करते हुए अन्ततः गरीब का हित करता है (जहों एवं रिंची, 2007)। विकासशील देशों में पर्यटन की गरीबी उन्मूलन क्षमता अत्यधिक सराहनीय है (मुनोज तथा अन्य 2015; रोगेरसो, 2013) क्योंकि यह विकाशील राष्ट्रों के लिए एक प्रमुख निर्यात तथा विदेशी मुद्रा का श्रोत है (श्यमन्, 2013) भारत के संदर्भ में भी उपरोक्त तथ्य प्रमाणित हुए है। माना गया है कि विकासशील राष्ट्रों की अन्तरराष्ट्रीय बाजार में बढ़ती हिस्सेदारी आने वाले दशकों में भी जारी रहेगी यू.एन.डब्लू.टी.ओ., 2014)। पर्यटन को चाहिए कि इसे गरीब से सीधे जुड़ा जाये और गरीबी उन्मूलन का साधन बन कर सामने आये। इस हेतु वैकल्पिक पर्यटन प्रारूप जैसे ग्रामीण पर्यटन, कृषि पर्यटन प्रारूप जैसे ग्रामीण पर्यटन कृषि पर्यटन समुदाय आधारित पर्यटन, मलिन बस्ती पर्यटन आदि गरीब की आजीविका सुधारने में सार्थक सिद्ध होंगे (क्रोइस, 2014)। पर्यटन के ये वैकल्पिक प्रकार गरीबों के कल्याण में सीधा योगदान देंगे (सचेयवेनस, 2007)। पर्यटन विकास को इस तरीके से धारारेखित करने की आवश्यकता है कि इससे सकारात्मक अवसर गरीब तबके तक पहुंचाये जा सकें (आरेफ, 2011)। इस सम्बंध में सार्वजनिक निजी भागीदारी (पी.पी.पी.) तथा आपूर्ति श्रृंखला में स्थानीय संसाधनों का उपयोग समय की आवश्यकता है (बबोला एवं अजेकीगबे, 2007)। भारत में पर्यटन उद्योग समावेशित विकास हेतु एक प्रभावशाली मंच है क्योंकि यह देश के दक्ष व अदक्ष कर्मचारियों को रोजगार देने की क्षमता, विशाल गुणंक प्रभाव तथा आगे व पीछे के उद्योगों के बीच एक मजबूत कड़ी है। (गुप्ता, 2015; राणा, 2011)।

दूसरी ओर आलोचकों की तर्ज पर यह तर्क प्रस्तुत किए जाते है, कि पर्यटन विकास निर्धनों के लिए केवल सीमान्त लाभ ही पैदा करता है (डेलर 2010; क्रोइस तथा वनेगस, 2008)। जबकि पर्यटन विकास निर्धनों पर मुद्रा स्फीति, विस्थापन प्रभाव, समाज तथा संस्कृति विध्वंश, पर्यावरण दुष्प्रभाव आदि के रूप में अपने नकारात्मक प्रभाव छोड़ता है (कुमार व अन्य 2015; मेसन, 2008; आर्चर व अन्य, 2005; जाफरी, 2001)। इसके अतिरिक्त इस बात पर भी संशय है कि पर्यटन से होने वाले लाभ गरीब तबके तक

कैसे पहुंचाये जायें (क्रोइस, 2014) क्योंकि गरीब लोगों के पास पर्यनट के बाजार में भाग लेने के लिए पर्याप्त कौशल, ज्ञान और पूंजी की कमी होती है (होल्डन तथा अन्य, 2011)। विकासशील देशों में पर्यटन के नेतृत्व में होने वाली वृद्धि निर्भरता, सामाजिक व आर्थिक असमानतायें, राजस्व रिवास आदि बीमारियों को जन्म देती है (सारिनेन व रोग्रसों, 2014)। पर्यटकों की जरूरतों को पूरा करने के लिए शासन कभी-कभी भारी मात्रा में निवेश करता है लेकिन स्थानीय गरीबों को अक्सर बुनियादी आवश्यकताओं की कमी में रहना पड़ता है (रीथेर, 2001)। अतः पर्यटन विकास कुछ मामलों में स्थानीय लोगां की हालत और भी खराब कर सकता है (हॉल व गैरी, 2014; डेलर, 2010; ब्रोहमन, 1996)।

हालांकि उपरोक्त आलोचक दृष्टिकोण ने महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाई है क्योंकि यह राष्ट्र को एक प्रभावी योजना तथा नीति निर्माण करने से रोकता है जो कि गरीबों को पर्यटन से लाभ प्रदान कर सकते है (सचेयवेनस 2007; ऑपर्मन 1993) सन्1990 से दृष्टिगत पर्यटन में हो रहे लगातार विकास यह सिद्ध करते है कि पर्यटन गरीब वर्गों को एक सुदृढ़ आय अवसर प्रदान करने में सक्षम है। (श्यमन्, 2013)।

पर्यटन तथा गरीबी के सम्ब्ध में कुछ विकासशील देशों के मामले-

पैराग्वे में पर्यटन के गरीब समर्थक ढांचे को लेकर डैनियल पीक (2008) ने यह निष्कर्ष निकाला कि राष्ट्रीय स्तर पर उचित प्रबन्धन एवं विविधता लाने से ग्रामीण निर्धनों को आय का नया स्रोत मिल जायेगा। उपरोक्त ने यह भी सुझाव दिया कि स्थानीय समुदाय के सदसयों को रोजगार एवं स्वामित्व का अवसर दिया जाय। हैम्पटन तथा अन्य (2017) द्वारा वियतनाम पर किया गया अध्ययन दर्शाता है कि समावेशित विकास निचले एवं मध्यमवर्गीय परिवारों को लाभ का समान अंश प्रदान करेगा और गरीबी के स्तर को कम करने के लिए नये अवसर पैदा करेगा। उपरोक्त ने निर्ष्कष निकाला कि पर्यटन के वैकलपिक रूपों से भिन्न समावेशित पर्यटन के मुख्यतः तीन आयामः सामाजिक, आर्थिक और संस्थागत है।

इसके बावजूद वे यह भी मानते है कि पर्यटन की कमजोर कड़ियां और आर्थिक रिसाव के साथ कम पर्यटक व्यय के जुड़ जाने से समावेशी विकास के आर्थिक पहलू पर भी सवाल उठेगा। (नजोया एवं सीसाराम, 2018) का केन्या पर किया गया अध्ययन, तर्क देता है कि पर्यटन उद्योग स्वाभाविक रूप से गरीबों का समर्थक है। उपरोक्त ने यह भी दर्शाया कि पर्यटन के विस्तारीकरण एवं उसके परिणाम स्वरूप आर्थिक वृद्धि श्रम की मांग को बढ़ा कर, आपूर्ति श्रृंखला को सुदृढ़ बना कर एवं रिसाव दर को घटा कर ग्रामीण व शहरी गरीबों को कम किया जा सकता है। आदिया व अन्य (2017) ने यूंगाडा के अध्यन में विभिन्न ग्रामीण आजीविकीय गतिविधियों का विश्लेषण किया एवं पर्यटन की तुलना कृषि क्षेत्र के बाहर से होने वाली आय के अवसरों से की और पाया कि तुलनात्म्क रूप से पर्यटन द्वारा मिलने वाली आय

अन्य गैर कृषि उद्योंगो से कम होने के बावजूद भी किसी परिवार को गरीबी रेखा से ऊपर रखने में सक्षम है। आरेफ (2018) ने ईरान में गरीबी उपशमन एवं पर्यटन विकास की राह में व्यवस्था की तथा सामुदायिक संसाधनों की कमी को सबसे बड़ी बाधा बताया। गरीबी को हटाने के संदर्भ में पर्यटन उद्योग को किसी भी अन्य क्षेत्र से श्रेष्ट घोषित किया। बबोला एवं अजेकीगब (2007) ने नाइजीरिया के अध्ययन में बताया कि देश के पर्यटन स्थलों में रोजगार प्रदान कर गरीबी घटाने की अपार क्षमता है। उपरोक्त ने विचार किया कि गरीब समर्थक रणनीनियां बनाने से न सिर्फ गरीबी में कमी आयेगी बल्कि सामाजजिक सांस्कृतिक एवं पर्यावरण पहलूओं पर भी काफी सकाररात्मक प्रभाव दिखेंगे। लॉग गुओ (2008) चीन के पर्यटन उद्योग को गरीब-समर्थक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास करते है, और इसमें गरीबी से निपटने की पर्याप्त क्षमता देखते हैं। उपरोक्त पर्यटन को सरकारी योजना और नीतियों में शामिल करने का सुझाव देते है जिससे कि गरीबों को पर्यटन विकास से मिलने वाले कुल लाभ में बढ़ोतरी आये।

पाण्डे व जोशी (2016); नययर व अन्य (2014); सिंह (2012) तथा रॉय 2010, ने पर्यटन उद्योग में रोजगार जनन एवं विदेशी मुद्रा कमाई की अपर क्षमता के कारण इसे भारत के समावेशित विकास का सहायक बताया है। उपरोक्त कहते है कि स्थानीय समुदाय के लोगों को पर्यटन में रोजगार प्रदान करने से ही इसके गरीब-समर्थक प्रभाव सिद्ध होंगे। स्थानीय समुदाय की पर्यटन में सहभागिता भारत को अपने प्रचुर जनसांख्यकीय लाभांश को प्राप्त करने में भी मदद करेगी। पर्यटन को गरीबी से जोड़कर निश्चित रूप से गरीबी को दूर किया जा सकता है।

समाज का ऐसा वर्ग जो कुपोषित, निष्क्रिय और उपेक्षित जीवन जीने के लिए विवश होता है, निर्धन वर्ग कहलाता है। समावेशित विकास का तात्पर्य आर्थिक विकास से है जो गरीबी और असमानता को कम करने की क्षमता रखता है यह एक वैविध्यपूर्ण विकास है जिसके परिणाम स्वरूप समाज के सभी वर्गो को आय व रोजगार के अवसर प्राप्त होते है, इसलिए भारत में समावेशी पर्यटन को बढ़ावा देना गरीबी को कम करने के लिए एक प्रभावशाली साधन बन सकता है ताकि यह सुनिशचित हो सके कि पर्यटन विकास के लाभों को समाज के गरीब वर्ग के साथ भी साझा किया जाय। समावेशी पर्यटन को उचित कार्यान्वयन तथा प्रबन्धन देश में निम्नलिखित लाभ सुनिश्चित करेगा-

- क्षत्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर निर्धनता उपशमन।
- गरीबों को न केवल रोजगार अवसर बल्कि उन्हे पंर्यटन उद्यमों में स्वामित्व और प्रबन्धन के अवसर।
- पर्यटन के विभिन्न वैकल्पिक रूप जैसे सामाजिक, ग्रामीण, मलिन बस्ती आदि का विकास।
- आपूर्ति श्रृखला में उपयुक्त स्थानों पर उपेक्षित वर्ग का शामिल होना।

- स्थानीय समुदाय की पर्यटन गतिविधियों में भागीदारी का बढ़ना।
- श्रृंखलन सम्पादक (पिछड़े व अग्र) को मजबूती तथा आर्थिक रिसाव की दर में कमी से अर्थव्यवस्था की सूक्ष्म और वृहद् स्तर पर समावेशी वृद्धि।

उपरोक्त विश्लेषण समाज के सम्पूर्ण परिवेश के गहन अध्ययन का प्रमाण है जो यह प्रकट करता है कि किसी भी देश का निर्धन वर्ग जिसे हमेशा उपेक्षित ही रखा गया, वह वर्ग उस देश की आर्थिक विकास में बाधक ही बना रहा, जबकि यह वही वर्ग है जिसके पास श्रम है पर अर्थ नहीं। अतः इस उपेक्षित वर्ग के श्रम की पहचान कर उसे उद्यमी बनाया जाये तो वह वर्ग अपनी आर्थिक क्षमता बढ़ाते हुए राष्ट्र व समाज के सुदृढ़ निर्माण में प्रभावशाली भूमिका निभायेगा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. आरेफ, फरिबोर्ज़ (२०११). टूरिज्म इंडस्ट्री फॉर पावर्टी रिडक्शन इन् ईरान, अर्फ्रिकां जर्नल ऑफ़ बिज़नस मैनेजमेंट,, 5(11) 4191.4195. ISSN 1993-8233.
2. अदियिया, ब्राइट., वन्नेस्ते डोमिनिक., रोम्पेय, आंतों वैन (२०१७), द पावर्टी एलिवियेसन पोटेंशियल ऑफ़ टूरिज्म एम्प्लॉयमेंट एस एन ऑफ-फार्म एक्टिविट ओं डी लोकल लिवेलिहूड्स सुर्रौन्डिंग किबले नेशनल पार्क, वेस्टर्न यूगांडा, टूरिज्म एँड हॉस्पिटैलिटी वॉल्यूम १७।
3. बबोला, अबिदेमी., बबतुन्दे अजेकिगाबे., फिलिप ग्बदेगेसिं (२००७). पावर्टी एलिवियेसन इन नाइजीरियाः नीद फॉर द डेवलपमेंट ऑफ़ अर्चेओ-टूरिज्म अनातोलियाः अन इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ टूरिज्म एँड हॉस्पिटैलिटी रिसर्च, 18(2). ISSN: 1303.2917.
4. भट्ट, केतन., आशुतोष, कुमार (२०१९). प्रोमोटिंग योग टूरिज्मः अन एक्सक्लूसिव टूल टू डाईवरसिफ़ाइ टूरिज्म मरकत इन हरिद्वार, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ आईटीमैनेजमेंट एँड इनजीनियरिंग 9,5(2). ISSN: 2249-0558.
5. क्रोएस, रोबेर्तिको (२०१४). टूरिज्म एँड पावर्टी रिडक्शन इन लैटिन अमेरिकाः वेयर डस द रीजन स्टैंड्स?, वर्ल्ड वाइड हॉस्पिटैलिटी एँड टूरिज्म थीम,6(3), 293.300. ISSN 1755-4217.
6. डलर, स्टीवन (२०१०). रूरल पावर्टी, टूरिज्म एँड स्पेतटीअल हेटरोजीनिटी, अन्नाल्स ऑफ़ टूरिज्म रिसर्च वौमे ३७, इशू १।
7. गुओ, लाँग (२००८). प्रो पुअर इन्वेस्टीगेशन इन चाइना : प्रेलिमिनरी इन्वेस्टीगेशन, १९ CEA एनुअल कांफ्रेंस, चाइनास थ्री डीकेडस ऑफ़ इकनोमिक रिफॉर्म्स (१९७८-२००८), कैंब्रिज, यू० के०, १-२ अप्रैल, २००८।
8. हैमपटन, मार्क प., जे. जे. लॉन्ग, फाम होन्ग (२०१८). कैन टूरिज्म प्रमोट इंक्लूसिव ग्रोथ? सप्लाई चेन्स, ओनरशिप एँड एम्प्लॉयमेंट, हा लॉन्ग बे, वियतनाम, द जर्नल ऑफ़ डेवलपमेंट स्टडीज.

54(2) 359-376. DOI: 10.1080/00220388.2017.1296572.

9. न्जोया, एरिक त्वौअमौ., सीताराम, नीलू (२०१८). टूरिज्म कॉन्ट्रिब्यूशन टू पावर्टी अल्लेविअतिओन इन केनिया: अ डायनामिक कम्प्युटेबल जनरल एकुलिब्रियम अनालीसिस, जौरनल ऑफ़ ट्रेवल रिसर्च 57(4), 513–524.

10. पीक, डेनियल (२००८). पावर्टी एलिवियेसन थ्रू टूरिज्म: अ केस स्टडी फ्रॉम पैराग्वे. इ-रिव्यु ऑफ़ टूरिज्म रिसर्च वोल्मे, इशू १।

11. पाण्डेय, तुशाल., जोशी पार्थ (२०१६). इनसटीटूसनल फ्रेमवर्क इन कम्युनिटी बेस्ड टूरिज्म, पालिसी फ्रेमवर्क फॉर अन इंक्लूसिव इंडिया वथ एम्फेसिस ओं अर्मेर प्रोडूसर औरगेनिजेसंस, एमिटी रिसर्च जौरनल ऑफ़ टूरिज्म, एविएशन एँड हॉस्पिटैलिटी 1(1), 55-70.

12. रिजायना, स्चेय्वेंस (२०१७). एक्सप्लोरिंग थे टूरिज्म –पावर्टी नेक्सस, करंट इश्यूज इन टूरिज्म, 10:2.3, 231.254.

www.indiamirror.com

www.tourism.gov.in

www.uttarakhandtourism.gov.in

***

28. संस्कृत वाङ्मय में तुलनात्मक राजनीति के सूत्र

डॉ. पवन कुमार शर्मा*

भारत के सर्वांगीण विकास के परिप्रेक्ष्य में सामान्यतः विद्यार्थियों को यही अध्ययन कराया जाता रहा है कि यह सब, जो आज हमारे पास है, हमें ब्रिटिशर्स की बदौलत ही प्राप्त हुआ है। यदि भारत में ब्रिटिश सरकार की स्थापना न हुई होती तो न जाने भारत की क्या दशा होती ? कुछ विद्वान तो यह भी मानते हैं कि भारत में अंग्रेजों का आगमन दो सौ वर्ष बाद हुआ और वे दो सौ वर्ष पूर्व ही प्रस्थान कर गए। इस दृष्टिकोण से सोचने वाले विद्वानों ने, न केवल स्वंय को धोखे में रखा बल्कि भारत की युवा पीढ़ी को भी अंधकार में रखकर उसे आत्मविश्वास विहीन बना दिया। भारत का अतीत कितना स्वर्णिम रहा है कि यदि उससे भारत की तरुणाई को परिचित कराया गया होता तो निश्चित ही भारत का वर्तमान, और अधिक उन्नत होता, जितना की अभी है। प्राचीन भारत के अध्ययन से हमें न केवल यह ज्ञात होता है कि भारत का अतीत क्या था बल्कि हम इससे भी परिचित होते हैं कि उसने विश्व का मार्गदर्शन किस प्रकार किया। प्रसिद्ध इतिहासकार विल ड्यूरण्ट अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'केस फार इण्डिया' में स्पष्ट रुप से इस महत्व को रेखांकित करते हुए लिखते हैं: भारत अनेक प्रकार से पाश्चात्य जगत की माता है, चाहे वह भाषा हो, विज्ञान हो, करूणा हो या स्थानीय शासन या लोकतंत्र।[1]

1853 में मार्क्स भी कुछ इसी प्राकर से लिखते है ''हम निश्चयपूर्वक, न्यूनाधिक सुदूर अवधि में, उस महान और दिलचस्प देश को पुनर्जीवित होते देखने की आशा कर सकते हैं जहाँ के सज्जन निवासी राजकुमार साल्तिकोव (रूसी लेखक) के शब्दों में ''इटालियन लोगों से अधिक चतुर और कुशल हैं; जिनकी अधीनता भी एक शांत गरिमा से संतुलित रहती है, जिन्होंने अपने सहज आलस्य के बावजूद अंग्रेज अफसरों को अपनी वीरता से चकित कर दिया है, जिनका देश हमारी भाषाओं, हमारे धर्मों का उद्गम है, और जहाँ प्राचीन जर्मन का स्वरूप जाट में, प्राचीन यूनानी का स्वरूप ब्राह्मण में प्रतिबिंबित है।''[2] यद्यपि, माक्र्स ने कभी भी भारत भ्रमण नहीं किया था इसलिए वह भारत के पुनर्जीवित होने की बात करता है, जबकि सच्चाई यह रही कि भारत सनातनी परंपरा का होने के कारण स्वयं अपने को अद्यतन करता रहा। यहाँ पर पुनर्जीवित शब्द का प्रयोग माक्र्स ने भारत की प्रकृति से अनभिज्ञ होने के कारण किया है और साल्तिकोव भी भारत के जाट को जर्मन के समकक्ष तथा ब्राह्मण को यूनानी के समकक्ष इसलिए रखता है क्योंकि उसके सम्मुख इन्हीं दोनों समाजों के उदाहरण थे। वास्तविकता इसके

* **प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ**

विपरीत है क्योंकि भारतीय समाज जर्मनी और यूनान से अधिक पुराना है। जैसा कि मैं ऊपर भी उद्धृत कर चुका हूँ कि इस प्रकार की मनोवृत्ति उपनिवेश काल की देन है। इस प्रकार के विचार भारत में बहुत पहले से विदेशियों के द्वारा प्रचारित किए जा रहे थे, किंतु कालान्तर में भारत के सम्बन्ध में सकारात्मक विचारों को उद्घाटित करने वाले व्यक्ति एवं साहित्य को या तो प्रतिबंधित कर दिए जाने की परंपरा विकसित हुई या फिर उन्हे मुख्य धारा से ही बाहर कर दिया गया। यही कारण था कि विल ड्यूरण्ट की यह पुस्तक सर्वप्रथम **1930** में प्रकाशित हुई थी लेकिन उसके बाद बहुत लंबे समय तक भारत का बुद्धिजीवी वर्ग इस पर बात करने से कतराता रहा; क्योंकि यह भारत के महानतम् अतीत को उद्घाटित करती है और ब्रिटिश राज ने भारत में किस प्रकार शोषणकारी शासन किया उस पर भी प्रकाश डालती है। भारत के विषय में यह एक अत्यधिक प्रमाणिक अभिलेख है जो भारत के गौरवशाली अतीत तथा शेष विश्व को उसके योगदान से परिचित कराता है।

इसी प्रकार सर विलियम जोन्स, जो कि ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कंपनी के कलकत्ता स्थित सुप्रीम कोर्ट, में जस्टिस बनकर **15** जनवरी **1784** में भारत आए और उन्होने भारत के ऊपर बहुत लिखा जो कि लगभग पांच खण्डों में संकलित है, को भी भारत के तथाकथित बुद्धिजीवियों ने भुला दिया। सर विलियम जोन्स ने 1784 में रायॅल एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की और उसके माध्यम से भारत के विपुल संस्कृत साहित्य का अनुवाद कराया। यह संपूर्ण साहित्य न केवल ब्रिटिशर्स के लिए प्रेरणास्पद रहा बल्कि यूरोप के विकास मे भी इसने महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन की।

किन्तु, परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बनीं कि भारत की युवा पीढ़ी को इस प्रकार के ज्ञान से सदैव दूर रखा गया। इस ज्ञान के विभिन्न आयाम रहे हैं। यहाँ पर हम राजनीति शास्त्र के अंतर्गत पढ़ने और पढ़ाए जाने वाले एक आयाम तुलनात्मक राजनीति पर भारतीय परिप्रेक्ष्य में बात करेंगे। जब मैं भारतीय परिप्रेक्ष्य लिखता हूँ तो उसका अभिप्राय प्राचीन से है; क्योंकि आधुनिक तो लगभग सभी पाश्चात्य ही है, चाहे वह प्राचीन हो या अर्वाचीन। जब हम तुलनात्मक राजनीति के विषय में अध्ययन करते हैं तो ध्यान में आता है कि तुलनात्मक राजनीति का अभ्युदय भी अन्य शास्त्रों या अवधारणाओं की भांति ही यूनान में हुआ और प्रायः अरस्तू उसके प्रारंभ कर्ता माने गए। सर्वप्रथम, उन्होंने **158** देशों के संविधानों का अध्ययन किया, जिससे तुलनात्मक राजनीति का आधार बना। लेकिन राजनीतिशास्त्र के विद्यार्थी को कभी भी यह नहीं पढ़ाया गया कि प्राचीन भारत में भी अनेक प्रकार की शासन प्रणालियाँ प्रचलन में थीं और उनका अध्ययन भी तुलनात्मक दृष्टिकोण को विकसित करने में सहायक हो सकता था। आधुनिक तुलनात्मक राजनीति के परिपे्रक्ष्य में समकालीन राजनीति शास्त्री जे.डब्ल्यू.गार्नर लिखते हैं कि ''वर्तमान अथवा अतीत में विद्यमान राज्य व्यवस्थाओं के माध्यम से ऐसी निश्चित सामग्री एकत्रित की जाए जिससे कोई अन्वेषक

चयन तुलना और निरसन की विधियों से राजनीतिक इतिहास में आदर्श प्रारूपों और प्रगतिवादी शक्तियों की खोज कर सके।''[3] जब हम इस परिभाषा का संज्ञान लेते हैं तो समकालीन राजनीति शास्त्रियों की विभेदकारी दृष्टि समझ में आती है कि वे पाश्चात्य राज्यों के स्वरूप को तो तुलनात्मक राजनीति के दृष्टिकोण से सम्यक पाते हैं; किंतु भारतीय राज्य उन्हें इस दृष्टि से उपर्युक्त प्रतीत नहीं होते। कई बार तो वे ऐसा ही प्रगट करते हैं कि भारत में आधुनिक या पाश्चात्य परिप्रेक्ष्य के राज्यों की व्यवस्था का सर्वथा अभाव था। यदि भारत में ब्रिटिशर्स नहीं आए होते तो भारत राजनीतिक इकाई के रूप में स्वयं को संगठित ही नही कर सकता था। यही दृष्टि उन विद्वानों को पक्षपाती बनाती है और प्राचीन भारत के अध्ययन की ओर दृष्टिपात करने से रोकती है। मैं गार्नर की परिभाषा के आलोक में ही प्राचीन भारत में विभिन्न राज्यों की कार्य प्रणाली को आधुनिक तुलनात्मक राजनीति के परिपे्रक्ष्य में समझने की कोशिश करुँगा। प्राचीन भारत की राज्य व्यवस्थाओं को समझने के दृष्टिकोण से वेद, रामायण, महाभारत, ब्राह्मण ग्रंथ, धर्मसूत्र एवं गृहसूत्र तथा कुछ बौद्ध एवं जैन ग्रंथ महत्वपूर्ण हैं। इन्हीं के आलोक में जो शासन प्रणालियाँ प्रचलन में थीं वे अग्रवत् हैं।

1. भौज्य शासन प्रणाली 2. स्वराज्य शासन प्रणाली 3. वैराज्य शासन प्रणाली 4. मद्र शासन प्रणाली 5. राष्ट्रिक शासन प्रणाली 6. पेत्तनिक शासन प्रणाली 7. द्वैराज्य शासन प्रणाली 8. अराजक शासन प्रणाली 9. उग्र और राजन्य शासन प्रणाली ये न केवल राज्य प्रणालियाँ थीं अपितु इनके शासक भी भिन्न-भिन्न उपाधियों या पदवी से विभूषित होते थे और उसी नाम से वे जाने या पुकारे जाते थे।

1. भौज्य शासन प्रणाली:- इस प्रकार की शासन प्रणाली का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण में मिलता है।[4] पाली त्रिपिटक ने भी इस पर प्रकाश डाला है।[5] भौज्य शासन प्रणाली में राजा का निर्वाचित होना अनिर्वाय शर्त थी। किंतु, जब हम इस विषय की और गहराई से जाँच करते हैं तो स्पष्ट होता है कि भौज्य और राट्ठिक या राष्ट्रिक दोनो एक ही हैं।[6] किंतु इनका नेतृत्व वंशानुक्रमिक नहीं होता था। ये मिल-जुल कर नेतृत्व करते थे। इस प्रकार सामान्यतः नेतृत्व एक से अधिक के द्वारा किया जाता था। हम इसे बहुल कार्यपालिका के समकक्ष या बहुलकार्यपालिका भी कह सकते हैं। महाभारत के शांतिपर्व में जो विभिन्न शासकों की सूची दी गई है उसमें भी भौज्य का नाम सम्मिलित है।[7] ऐतरेय ब्राह्मण भी इसका समर्थन करता है और इसे एक जाति के रुप में भी मान्यता देता है। कालान्तर में इसी शासन प्रणाली के आधार पर इसमें रहने वाली जाति भोज के नाम से जानी गई। इस प्रकार की शासन प्रणाली पश्चिमी भारत के गुजरात प्रदेश के काठियावाड़ क्षेत्र में विद्यमान थी। वर्तमान भुज जिला भोज या भौज्य शासन प्रणाली का ही प्रतिनिधि है।

2. स्वराज्य शासन प्रणाली:- स्वराज्य शासन प्रणाली का उल्लेख भी ऐतरेय ब्राह्मण में ही मिलता है।[8] इस

शासन प्रणाली में राजा को 'स्वराष्ट' कहा जाता था जिसका अर्थ है-'स्वयं शासन करने वाला।' 'तैत्तरीय ब्राह्मण' इस शब्द पर विस्तार से प्रकाश डालता है जिसमें वाजपेय यज्ञ की प्रशंसा में लिखा है कि जो बुद्धिमान विद्वान वाजपेय यज्ञ के द्वारा बलि प्रदान करता है वह 'स्वराज्य' प्राप्त करता है और स्वराज्य शब्द की व्याख्या में लिखा है-अपने समान लोगों का नेता बनना, वह बड़प्पन या ज्येष्ठ्य प्राप्त करता है।[9] यानि 'स्वराज्य' वह शासन प्रणाली जिसमें राजा समान लोगों पर अपने गुण वैशिष्ट्य के कारण नेतृत्व करने की क्षमता रखता हो। ये गुण इन्द्र के गुणों के समान समझे जाते थे। इस प्रकार की शासन प्रणाली भी पश्चिमी भारत में प्रचलित थी। यह प्रारंभिक अवस्था का वर्णन है क्योंकि शुक्ल यजुर्वेद के अनुसार यह शासन प्रणाली उत्तरी भारत में भी प्रचलन में थी।[10]

3. वैराज्य शासन प्रणाली- ऐतरेय ब्राह्मण में ही वैराज्य शासन प्रणाली पर भी प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार की शासन प्रणाली हिमालय के पाश्र्व में प्रचलित थी। किंतु कालान्तर में यह दक्षिण में भी प्रचलन में आई। इस प्रकार से इसका प्रचलन पर्याप्त क्षेत्र में था।[11] वैराज्य का शाब्दिक अर्थ होता है 'बिना राजा की या राजा रहित शासन प्रणाली'।[12] ऐतरेय ब्राह्मण इस पर प्रकाश डालते हुए लिखता है कि सारा देश या जाति (जाति से अभिप्राय एक भाषा बोलने वाले लोग, यहाँ पर संस्कृति अलग और भाषा/जाति अलग है) राजपद के लिए अभिषिक्त होता था। जिस प्रकार से संपूर्ण प्रजा ही राजा के रूप में अभिषिक्त हो रही है वह निश्चय ही प्रजातंत्र की प्रतिनिधि शासन प्रणाली होगी।

4. मद्र शासन प्रणाली- प्राचीन भारत में मद्र एक सुव्यवस्थित शासन प्रणाली वाला राज्य था और राज्य की राजधानी भी अत्यधिक भव्यता को प्राप्त थी। यद्यपि, पाणिनी ने अपने अष्टाध्यायी में कहीं पर भी मद्रों की राजधानी का नाम नहीं लिया है किंतु उसका उल्लेख अवश्य किया है, जिसको मार्गों के द्वारा चिन्हित करने पर शाकल (स्यालकोट जो कि वर्तमान में पाकिस्तान में है) के रूप में पहिचाना जा सकता है। प्रारंभिक दिनों में यह निश्चित ही उत्तर मद्रों का निवास स्थान रहा होगा। आज से लगभग दो हजार दो सौ वर्ष पूर्व यह राज्य मैनेन्डर की अधीनता में आया और यहाँ से मद्रों ने दक्षिण की ओर पलायन किया। भौज्य की ही भांति यहाँ पर भी बहुल कार्यपालिका का अस्तित्व था और उसका निर्वाचन होता था। यह प्रणाली राष्ट्रिक कहलाती थी। इसी शासन प्रणाली के आधार पर पश्चिम के राज्यों का नामकरण हुआ जैसे- भौज्य से भुज बना वैसे ही राष्ट्रिक से सौराष्ट्र बना। अर्थशास्त्र के अनुसार सौराष्ट्र के लोग प्रजातंत्री थे।[13] इसी प्रजातंत्री शासन प्रणाली के आधार पर इस क्षेत्र का नाम सुराष्ट्र और बाद में सौराष्ट्र हुआ।

5.राष्ट्रिक शासन प्रणाली:- साहित्य के अध्ययन से यह संज्ञान में आता है[14] कि पश्चिमी भारत में राष्ट्रिक शासन प्रणाली प्रचलन में थी। यद्यपि इसकी कार्य प्रणाली भौज्यों एवं पेत्तनिकों के समकक्ष ही थी किंतु इसमें इनकी भांति न ही वंशानुक्रमिक रूप से कोई एक व्यक्ति राजा होता था और न ही समस्त प्रजा।

लेकिन साहित्य में इस शासन प्रणाली में शासक का उल्लेख बहुवचन में किया गया है, यह स्पष्ट है।[15] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह भी एक प्रजातन्त्री शासन प्रणाली ही थी और थोड़े से भेद के साथ क्रियाशील थी।

6. पेत्तनिक शासन प्रणाली:- पेत्तनिक शासन प्रणाली से अभिप्राय है पैतृक या वंशानुक्रमिक नेतृत्व, जो कि पूर्वजों के समय से चला आ रहा हो।[16] यह शासन प्रणाली भौज्यों एवं राष्ट्रिकों के बिल्कुल विपरीत थी क्योंकि वहाँ निर्वाचन था और यहाँ पर वंशानुक्रम के आधार पर राजा पद प्राप्त करता था। ऐतरेय ब्राह्मण में भी भोजों से भिन्न एक विशिष्ट प्रकार के भोज बताए गए हैं, जिनको 'भोजपितरम्' कहा गया है।[17] इसका अर्थ है वंशानुक्रमिक भोज या वह भोज जो किसी अन्य भोज का पिता भी हो।[18] सही अर्थों में यह विशिष्ट वर्ग की शासन प्रणाली थी जो कि सरदारों या गण शासन की प्रणाली के रुप में पश्चिमी भारत में प्रचलित थी।[19]

7. द्वैराज्य शासन प्रणाली:- वैराज्य शासन प्रणाली के ही समान कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में द्वैराज्य शासन प्रणाली का भी उल्लेख किया है जिसका अर्थ होता है दो का शासन। इसमें प्रतियोगिता के आधार पर पारस्परिक संघर्ष होता है जो कि अंत में नाशकारक सिद्ध होता है।[20] किंतु यह नाशकारक सदैव नहीं होता, क्योंकि भारत के प्राचीन इतिहास में इसके सुखद उदाहरण भी मिलते हैं। महाभारत में इसके विषय में उल्लेख है कि अवंती में विंद और अनुविंद इन दो राजाओं का राज्य था और ये दोनों राजा मिलकर राज्य करते थे।[21] 6वीं एवं 7वीं सदी में नेपाल में भी द्वैराज्य शासन प्रणाली प्रचलन में थी। लिच्छवी राजवंश तथा ठाकुरी राजवंश के राजाओं के यहां भी इसी प्रकार की शासन प्रणाली थी, इसके शिलालेख काठमांडू में पाए गए हैं।[22]

8. अराजक शासन प्रणाली - जैसा कि शब्द से ही विदित है कि 'अराजक' यानि बिना शासक वाली शासन प्रणाली।[23] भारत में इस प्रकार की शासन प्रणाली का महाभारत में भी उल्लेख आया है।[23ए] सही अर्थों में यह शासन सबसे आदर्श है क्योंकि इसमें कोइ्र किसी पर राज्य नहीं करता बल्कि स्वधर्म के आधार पर प्रत्येक मनुष्य के द्वारा राज्य का संचालन होता है। निश्चय ही अराजक शासन प्रणाली का राज्य बहुत ही कम जनसंख्या वाला राज्य रहा होगा, जहाँ पर प्रत्येक विषय पर सभी नागरिक किसी निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए एकत्रित होते होंगे। महाभारत में भी इस प्रकार की व्यवस्था का उल्लेख है। प्राचीन भारत के इन राज्यों के अध्ययन से इनकी शासन प्रणाली ध्यान में आती है। निश्चय ही शासन प्रणालियों के आधार पर प्रशासन तंत्र भी निर्मित किया गया होगा, जिससे शासन का संचालन सुचारू रूप से किया जा सके।

9. उग्र और राजन्य शासन प्रणाली - वेद में इसका उल्लेख मिलता है। केरल के मालाबार में इस प्रकार की शासन प्रणाली प्रचलन में थी। इसमें शासक तो होता था किंतु राजा नहीं। अशोक के शिला लेखों में उसे केवल पुत्रों के रुप में उल्लेख किया गया है।[24]

कालांतर में इन शासन प्रणालियों का और अधिक विस्तार हुआ और उस विस्तार के आधार पर राज्यों के कर संग्रहण की क्षमता के बल पर राजा की पदवी निर्धारित की जाने लगी। शुक्रनीति इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डालती है।[25] वह लिखती है कि-राज्यों के अधिष्ठाताओं की पदवी का निर्धारण कर संग्रहण की क्षमता के आधार पर होगा। वस्तुतः कर संग्रहण की क्षमता राज्य के क्षेत्रफल के विस्तार का भी द्योतक था। शुक्र के अनुसारः

1. सामन्त उसे कहा जाता था जो कि एक लाख से 3 लाख तक प्रतिवर्ष चांदी के सिक्के कर के रूप में एकत्रित करता था।
2. माण्डलिक उसे कहा जाता था जो 4 लाख से 10 लाख तक चांदी के सिक्के कर के रूप में प्रतिवर्ष संग्रहित करता था।
3. राजन उसे कहा जाता था जो कि 11 लाख से 20 लाख प्रतिवर्ष चांदी के सिक्के कर के रूप में संग्रहित करता था।
4. महाराज उसे कहा जाता था जो कि 21 लाख से 50 लाख तक चांदी के सिक्के कर के रूप में प्रतिवर्ष संग्रहित करता था।
5. स्वराज उसे कहा जाता था जो कि 51 लाख से 100 लाख तक चांदी के सिक्के कर के रूप में प्रतिवर्ष संग्रहित करता था।
6. साम्राज्य उसे कहा जाता था जो कि 1 करोड़ से 10 करोड़ तक चांदी के सिक्के कर के रूप में प्रतिवर्ष संग्रहित करता था।
7. विराज उसे कहा जाता था जो कि 11 करोड़ से 50 करोड़ तक चांदी के सिक्के कर के रूप में प्रतिवर्ष संग्रहित करता था।
8. सार्वभौम वह होता था जो 51 करोड़ से ऊपर प्रतिवर्ष चांदी के सिक्के कर के रूप में संग्रहित करता था।

ऐतरेय ब्राह्मण में इन्हीं को अग्रवत् बताया गया है।

ऐतरेय ब्राह्मण-

ऐतरेय ब्राह्मण भी राजा की विजीगीषु प्रकृति के अनुरूप ही उसे राज्य के विस्तार की प्रेरणा देता है। इस प्रेरणास्पद सूक्त में अनेक प्रकार के राज्यों को समाविष्ट करने का आह्वान है।

स य इच्छेदेवं वित्क्षत्रिय मयं सर्वा जितीर्जयतायं स सर्वाल्लोकान्विन्देतायं सर्वेषां राज्ञां श्रैष्ठयमतिष्ठां परमतां

गच्छेत् साम्राज्यं, स्वाराज्यं, वैराज्यं परमेष्ठ्यं राज्यं, महाराज्यमाधिपत्यमयं समंत पर्यायी स्यात्सार्वभौमः सार्वायुष आऽन्तादा परार्धात्पृथिव्यै समुद्र पर्यन्ताया एकराडिति तमेते नैन्द्रेण महाभिषेकेण क्षत्रियं शापयित्वाऽभिषिंचेत्।[26]

यानि, जो ब्राह्मण पुरोहित यह इच्छा करे कि अभिषिक्त होने वाला क्षत्रिय सब जितियों को जीते, सब लोकों को प्राप्त करे, सब राजाओं में श्रेष्ठता प्राप्त करे, एवं साम्राज्य, भौज्य, स्वाराज्य, वैराज्य, परामेष्ठम, राज्य, महाराज्य, अधिपत्य, इन विभिन्न प्रकारों से अभिषिक्त होकर परमस्थिति प्राप्त करे, चारों दिशाओं के अंत तक पहुंचकर आयु पर्यन्त सार्वभौम बने और समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का एक राट् बने, उस क्षत्रिय को इस ऐन्द्र महाभिषेक की शपथ दिलाकर राज्य में अभिषिक्त करना चाहिए।''

ऐतरेय ब्राह्म्ण में वर्णित आठों प्रकार के राज्य एवं वे जोकि पूर्व में अनेक प्रकार की शासन प्रणालियों का परिचय कराते और बाद के सूक्त में राजा से यह अपेक्षा की गई है कि वह छोटी (राज्य) इकाई से बढ़कर सार्वभौम राजा तक की यात्रा को पूर्ण करे और उस पद पर जीवन पर्यन्त बना रहे। यहाँ पर यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि ये आठों प्रकार की राज्य शासन प्रणाली राज्यों की तुलना की दृष्टि से पर्याप्त संभावनाएँ अपने में समेटे हुए हैं, क्योंकि सभी के शासन में पर्याप्त भेद है और यह भेद शासनिक दृष्टि से और प्रशासनिक दृष्टि से भी अनुभव किया जा सकता है।

1) भौज्य शासन प्रणाली में नेतृत्व मिलजुलकर या बहुल रूप में किया जाना पाया जाता है। यदि वे ऐसा करते थे तो शासन और प्रशासन के संचालन के लिए उन्होंने एक संरचना भी तैयार की होगी और वह संरचना क्षैतिज और लंबबत् दोनों ही प्रकार की रही होगी। यदि, ऐसा नहीं रहा होता तो राज्यों का लंबे समय तक संचालन और संस्कृत वाङ्मय में उनकी उपस्थिति संभव नहीं हो सकती थी।

2) इसी प्रकार से ऐतरेय ब्राहम्ण के सूक्त **5/15** में पुरोहित के द्वारा राजा के लिए जो इच्छा व्यक्त की गई है उसमें भी राज्य और राजा के विभिन्न रूपों का उल्लेख अनेक शासन प्रणालियों का प्रतीक है। वासुदेव शरण अग्रवाल इन सभी की विशद व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि "सार्वभौम यानि, सर्वभूमि या महापृथिवी का राज्य। सार्वभौम राजा को चक्रवर्ती के रूप में भी उल्लेखित किया है। चक्रवर्ती यानि, जिसके रथ का चक्र अपने राज्य के बाहर भी निर्वाध गति से चले, वह चक्रवर्ती। सार्वभौम राजा के लिए यह अनिवार्य था कि वह अन्य राज्यों या राजाओं को किसी भी प्रकार से अपने राज्य का भाग बनाये। जब वह ऐसा करता है तो उसे अपने शासन और प्रशासन के दोनों स्वरूप क्षैतिज एवं लम्बवत् का विस्तार करना पड़ता है"।[27] भरत, दुष्यन्त, चंद्रगुप्त एवं समुद्रगुप्त इसी श्रेणी के राजा थे।

3) महाभारत के आदिपर्व में आधिपत्य या आधिराज्य शासन प्रणाली के प्रचलन का भी उल्लेख मिलता है।

इस शासन प्रणाली में राजा अन्य शासकों से कर लेकर उन्हें अपने राज्य में सुरक्षित रहने देता था। पाण्डु ने कुरू जनपद की शक्ति का विस्तार करके मगध, विदेह काशी, सहम, पुण्ड आदि जनपदों को अपना कर दाता बना लिया था[28] और अधिराज्य का भोक्ता कहलाया। जब हम, अधिराज्य के शासन तंत्र की तुलना सार्वभौम राजा या चक्रवर्ती राजा के सांथ करते हैं तो दोनों में शासनिक और प्रशासनिक दृष्टि से पर्याप्त भेद प्रतीत होता है। यही भेद तुल्नात्मक दृष्टिकोण को विकसित करने के लिए हमें पर्याप्त सामग्री उपलब्ध करवाता है।

4) सम्राट जो कि साम्राज्य का अधिपति होता था, को वाङ्मय थोड़ा हीन भाव प्रदान करता है। क्योंकि, सम्राट अपने जनपद की सीमा से बाहर निकलकर किसी भी जनपद को सुरक्षित नहीं रहने देता था। महाभारत के सभापर्व में सम्राट को हड़पने वाला कहा गया है।[29] इसी में साम्राज्य का आधार बल को भी माना है।[30] इन्हीं कारणों से इसको थोड़ा हेय माना है और इसकी शासन व्यवस्था भी अन्यों से अलग हो गयी। महाभारत में जरासंध और रामायण में रावण इसी परंपरा के शासक थे।

5) इसी प्रकार से पारमेष्ठ्य प्रणाली थी जो कि साम्राज्य के विपरीत परंपरा का निर्वहन करने वाली थी।

यह प्रणाली गणराज्यों के मध्य प्रचलन में थी। इस व्यवस्था में शासन का संचालन कुलों के आधार पर होता था और परिवार का ज्येष्ठ व्यक्ति 'राजा' कहलाता था।[31] शाक्यों और लिच्छवियों में यह शासन प्रणाली प्रचलन में थी।[32] यहाँ पर यह ध्यातव्य है कि साम्राज्य में जिस प्रकार से शासन का आधार बल होता था उसी प्रकार से 'पारमेष्ठ्य' शासन व्यवस्था में शासन का आधार शान्ति की नीति होती थी।[33] इस प्रकार से निश्चय ही इस प्रकार की शासन प्रणाली में अन्य शासनों से भिन्न व्यवस्थाओं की संरचना की गई होगी। सही अर्थों में यह शासन कल्याणकारी राज्य की अवधारणा पर अवलंबित था।[34] समन्तपर्यायी या चतुरन्त प्रकार की शासन प्रणाली से अभिप्राय था कि ऐसा शासन जिसमें पृथ्वी के चारों खूँट आपस में संबद्ध हैं। जब हम पृथ्वी के चारों खूँटों की बात करते हैं तो इसका निर्धारण विष्णु पुराण के आधार पर-

उत्तंर यस्य समुद्रस्य, हिमाद्रैश्चैव दक्षिणम्।
वर्ष तद् भारतम् नाम, भारतिः यत्र सन्ततिः।।[35]

किया जाता है। महाभारत इसी की कल्पना करता है। ऐतरेय ब्राह्मण में 'जो एक राट' का उल्लेख किया गया है वह भी इसी ओर संकेत करता है। मौर्य साम्राज्य का उदय इस प्रकार के शासन का ज्वलन्त उदाहरण है।

वासुदेव शरण अग्रवाल इस प्रकार की शासन व्यवस्था की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि मौर्य साम्राज्य का मधुर फल दो रूपों में प्रकट हुआ। एक तो इससे समस्त देश में समान शासन-संस्थाओं की

स्थापना हो गई। शासन के कर्मचारी, विभाग, आय के साधन, कर व्यवस्था, यातायात के मार्ग, दंड और व्यवहार, दीवानी और फौजदारी की न्याय व्यवस्था, नाप-तौल और मुद्राएँ इन सब बातों में देश ने एक सूत्रता का अनुभव किया। इससे जनता के जीवन को एकरूपता प्रदान करने वाले बंधन दृढ़ हुए। विष्णुगुप्त का अर्थशास्त्र साम्राज्य के मंथन से उद्भूत उस एकरूपता का परिचायक महान ग्रंथ है। उदाहरण के लिए, मौर्य साम्राज्य में जो सिक्के चालू थे उनके बहुत से निधान (जखीरे) तक्षशिला से लेकर राजस्थान, मगध, कलिंग, मध्यभारत, महाराष्ट्र, आंध्र, हैदराबाद , मैसूर आदि प्रदेशों में पाए गए हैं। चांदी की इन आहत मुद्राओं की तौल सब जगह 32 रत्ती थी। उन पर बने हुए रूपया चिह्न भी सब जगह एक से पाए गए हैं।[36]

मौर्य साम्राज्य का दूसरा सुफल यह रहा कि उससे देश में अंतर्राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न हुई। भारत वर्ष की जनता अपने चारों ओर के देशों से सच्चे अर्थ में परिचित हुई। भारत वर्ष में जाने वाले लंबे राज्य मार्ग और अधिक लंबे होकर दूसरी राजधानियों से जुड़ गये जिनके द्वारा यहाँ का व्यापारिक यातायात विदेशों के साथ बढ़ा। इन्हीं मार्गों से विदेशी दूत मंडल साम्राज्य की राजधानी पाटलीपुत्र की ओर मुड़े और भारत वर्ष से अनेक धर्म प्रचारक विदेशों में गये।[37]

इस प्रकार से भारत में अनेक प्रकार के राज्यों की शासन प्रणालियाँ अस्तित्व में थीं। उस शासन प्रणाली का सम्मान सभी पड़ोसियों के द्वारा किया जाता था। कालान्तर में दो प्रकार की व्यवस्थाएं बहुतायत में प्रचलन में आई (1) चक्रवर्ती सम्राट या (2) एकराट की। इस कारण से बाद में विभिन्न शासन प्रणालियों का स्वरुप प्रचलन से बाहर हो गया।

इस प्रकार यह ध्यान में आता है कि तुलनात्मक राजनीति के दृष्टिकोण से संस्कृत वाङ्मय में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है, आवश्यकता है तो बस इतनी कि उसकी, उसके अनुरूप व्याख्या हो पावे। पश्चिम के राजनीतिक सिद्धान्तों के अंतर्गत तुलनात्मक राजनीति का विकास सही अर्थों में संविधानवाद के अभ्युदय के बाद और व्यवस्थित रूप से 19वीं सदी के अंत में होना प्रारंभ हुआ। भारत में संविधानवाद जैसी कृत्रिम अवधारणा कभी विकसित ही नहीं हुई। भारतीय जीवन का प्राणतत्व धर्म था उसी के आधार पर समस्त प्रक्रियाएँ संचालित होती थीं। भारतीय धर्म ने समस्त प्राणियों के जीवन को सांगोपांग आच्छादित कर रखा था। वही धर्म उन्हें जीवन को व्यवस्थित करने का मार्गदर्शन करता था। अनेक शासन प्रणाली होने के बाद भी संपूर्ण व्यवस्था का संचालन धर्मानुसार ही होता था। यही कारण रहा कि भारत में अनेकानेक प्रणालियों के बावजूद भी उनके मध्य उक्त प्रकार का विभेद दिखाई नहीं देता जैसा कि पाश्चात्य राज्यों के मध्य दिखता है। यही भारत का वैशिष्टय था कि अनेक शासन प्रणालियों के बावजूद भी वे एक ही धर्म व्यवस्था पर आधारित थीं और उसी के अनुरूप कार्य करती थीं। यही समकालीन विद्वानों के लिए

आश्चर्य का विषय रहा और इसी आधार पर उन्होंने यह समझ लिया कि भारत में शासन व्यवस्थाओं का विकास ही नहीं हुआ था। संस्कृत वाङ्मय को आधार बनाकर यदि विषय का अध्ययन किया जावे तो निश्चय ही यह भ्रम दूर हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. विल डयूरण्ट, केस फार इण्डिया, स्ट्रान्ड बुक स्टाल, मुंबई, 2011, पृ. 3
2. माक्स, एंगेल्स कलेक्टेड वर्क्स, खण्ड 12, पृष्ट 221
3. जे. डब्ल्यू. गार्नर, पालिटिकल साइन्स एण्ड गवर्नमेण्ट, पृ. 23
4. ऐतरेय ब्राह्मण - 8/14
5. अंगुत्तर निकाय- खण्ड-3, पृष्ठ-76
6. अशोक की प्रधान शिलालेख 5 और 13 (के.पी.जायसवाल की पुस्तक हिन्दू राजतन्त्र से उद्धृत)
7. महाभारत शांति पर्व-67/54 (महाभारत- टी.आर.व्यासाचार्य द्वारा संपादित-1908)
8. ऐतरेय ब्राह्मण-8/14
9. तैत्तिरीय ब्राह्मण 1/3, 2, 221
10. शुक्ल यजुर्वेद 15/13
11. ऐतरेय ब्राह्मण 8/14
12. एम. हाग का ऐतरेय ब्राह्मण की टीका, खण्ड-2, पृष्ठ 518
13. कौटिल्यीय अर्थशास्त्र, पृष्ठ 376
14. के.पी.जायसवाल हिन्दू राज तंत्र पृष्ठ-106
15. अगुत्तर निकाय-भाग 3/58-1
16. अगुत्तर निकाय-3/पृष्ठ 456
17. ऐतरेय ब्राह्मण 8/12
18. अगुत्तर निकाय-भाग 3-परिशिष्ट-456 के.पी. जायसवाल की पुस्तक से उद्धृत
19. अशोक के शिलालेख. 5, 13, के.पी. जायसवाल की पुस्तक से उद्धृत
20. कौटिल्य अर्थशास्त्र-
21. महाभारत, सभापर्व, अध्याय 31, उद्योगपर्व अध्याय 165
22. फ्लीट द्वारा संपादित गुप्त इन्सक्रिप्शन्स-परिशिष्ट-6
23. कौटिल्य का अर्थशास्त्र, 1/4, पृष्ठ 9 3-7,
    23ए महाभारत, शान्तिपर्व- अध्याय 59
24. के.पी. जायसवाल की पुस्तक हिन्दू राज तन्त्र पृष्ठ

25. डॉ. आर. भण्डारकर, सम आस्पेक्ट आफ एन्शियेण्ट हिन्दू पालिटी, पृ. 87-88
26. ऐतरेय ब्राह्मण **8/15**
27. वासुदेवशरण अग्रवाल, भारत की मौलिक एकता, पृष्ठ **168**
28. महाभारत आदिपर्व-**105/12-21**
29. महाभारत सभापर्व, **14/2**
30. महाभारत सभापर्व, **14/13**
31. महाभारत सभापर्व, **14/2**
32. महाभारत सभापर्व, **14/6**
33. महाभारत सभापर्व, **14/5**
34. महाभारत सभापर्व, **14/3-4**
35. विष्णुपुराण - **2/3/1-** गीताप्रेस गोरखपुर-संवत् **2067-39वां** संस्करण
36. वासुदेवशरण अग्रवाल, भारत की मौलिक एकता पृष्ठ **170-71**
37. तदैव- पृष्ठ **171**

***

29. भारत में आपदा प्रबंधन नीति का विकास

राजेंद्र कुमार पांडेय*

किसी भी देश में आपदा प्रबंधन को एक व्यवस्थित और प्रभावी स्वरुप देने में एक सुविचारित और दीर्घकालिक आपदा प्रबंधन नीति की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एक अच्छी आपदा प्रबंधन नीति न केवल उस देश में एक विस्तृत और सटीक आपदा प्रबंधन मशीनरी के निर्माण में मील का पत्थर साबित होती है अपितु उसके द्वारा आपदा प्रबंधन में संलगन विविध इकाइयों और कर्मियों की स्पष्ट भूमिका के निर्धारण का भी मार्ग प्रशस्त करती है। यह निसंदेह रूप से कहा जा सकता है कि पूर्व के समय में भारत समेत संसार के विभिन्न देशों में प्राकृतिक अथवा मानव निर्मित आपदाओं में हज़ारों लोगों की असमय और त्रासद मृत्यु का एक बड़ा कारण आपदा प्रबंधन नीति का सर्वथा अभाव रहा है। इसलिए द्वितीय विश्व युद्ध के उत्तरार्ध में कई अंतर्राष्ट्रीय मानवीय संगठनों द्वारा प्रत्येक देश में, विशेषकर अत्यधिक आपदा संभावित देशों में, आपदा प्रबंधन नीति के निर्माण पर बल दिया जाने लगा। इस संगठनों का मूल तर्क यह था कि प्राकृतिक अथवा मानव निर्मित आपदाएं वास्तव में व्यक्ति के प्रबंधकीय क्षमता और कौशल की परिधि से बाहर नहीं हैं।

अतः आधुनिक विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में हो रहे नित नूतन अन्वेषणों और उससे प्राप्त जानकारियों एवं यंत्रों के समुचित प्रयोग से व्यक्ति विभिन्न प्रकार की आपदाओं से होने वाली मृत्यु और संपत्ति के नुकसान को न्यूनतम तो कर ही सकता है यदि उन्हें पूर्णरूपेण रोक पाना संभव न प्रतीत होता हो। इस प्रकार की वैश्विक मुहिम के बावजूद भारत समेत संसार के अनेक देशों में लम्बे समय तक एक व्यवस्थित और व्यापक आपदा प्रबंधन नीति का विकास न हो सका। आपदा प्रबंधन नीति के निर्माण पर सरकारों का ध्यान वस्तुतः १९९० के दशक के दौरान ही गया जब संयुक्त राष्ट्र महासभा ने इस दशक को दशक के रूप में मनाने का प्रस्ताव पारित किया "अंतर्राष्ट्रीय प्राकृतिक आपदा न्यूनीकरण"। इस आलेख में भारत में आपदा प्रबंधन नीति की विकास यात्रा का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारत वर्ष की वैविध्यपूर्ण भौगोलिक स्थिति और जटिल जलवायु प्रणाली देश को हमेशा से ही प्राकृतिक आपदाओं की संभावना से युक्त बनाता रहा है। इसलिए यह स्वाभाविक ही माना जाना चाहिए कि प्राकृतिक आपदाओं का पर्याप्त ज्ञान और उनसे निपटने की कोई न कोई युक्ति इस देश के निवासी प्राचीनकाल से ही सोचते रहे होंगे। भौगोलिक रूप से देखने पर हमें यह ज्ञात होता है कि उत्तर में स्थित विशाल हिमालय जहाँ

* **एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ**

अपनी अद्भुत उच्चता और युवापन से सम्पूर्ण संसार को लुभाता है वहीं इसके नीचे अनवरत चलने वाली भूगर्भीय क्रियाएं इसको अस्थिर बनाये रखती हैं जिसके कारण भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदाएं इस क्षेत्र में सहज रूप से आती अनुभूत की जाती रही हैं। इसी प्रकार देश के विभिन्न हिस्सों में प्रवाहित होने वालीं अनेकों विशालकाय नदियां जहाँ देश के लोगों को चिरकाल से सुख और समृद्धि प्रदान करती आ रहीं हैं वहीं यदाकदा इनके द्वारा बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदा का भी प्रकोप लोगों को सहना पड़ता है।

निसंदेह रूप से देश के तीन तरफ फैला वृहत समुद्र जहाँ लोगों को अपने प्रचुर प्राकृतिक संसाधनों और नौवहन जैसी महत्वपूर्ण सुविधाओं से लाभान्वित करता रहा है वहीं कभी कभार समुद्री प्रक्रियाओं द्वारा उत्पन्न भीषण समुद्री तूफान तटीय क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के प्राण और संपत्ति को संकट में डाल देता है। इनके साथ ही भारत में लोगों को सूखा, अकाल, भूस्खलन, बर्फीले तूफान, शीत लहर, लू, जैसी कई अन्य प्राकृतिक आपदाओं से भी समय समय पर जूझना पड़ता है। यद्यपि विज्ञान और तकनीक की सहायता से इनमे से कई आपदाओं पर वर्तमान समय में काफी हद तक प्रबंधकीय नियंत्रण स्थापित कर लिया गया है या करने का प्रयत्न चल रहा है, तथापि एक समय ऐसा भी था जब सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाएं मानव निर्मित अकाल जैसी महामारी में परिवर्तित हो जाया करती थीं जिसके फलस्वरूप हज़ारों की संख्या में गरीब और निरीह लोग अपने प्राण गवां बैठते थे। उस समय के शासकों द्वारा संभवतः आपदा प्रबंधन के विषय को अनदेखा करने के कारण प्राकृतिक आपदाओं से निपटने की नीति का सर्वथा अभाव दृष्टिगोचर होता रहा है। एक सम्यक आपदा प्रबंधन नीति के अभाव का यह कतई अर्थ नहीं निकलना चाहिए कि भारत के लोग प्राकृतिक अथवा मानव निर्मित आपदाओं से अनभिज्ञ थे या उन्हें इनके किसी न किसी रूप में प्रबंधन की विधा का उनके पास ज्ञान नहीं था।

इस दृष्टि से, यह बात काफी रोचक प्रतीत होती है कि भारत में आपदा प्रबंधन के बहुत ही स्थूल रूप की चर्चा प्राचीन काल से ही होती आती रही है। उदहारण के लिए, आचार्य कौटिल्य द्वारा सृजित प्राचीन काल के विलक्षण ग्रन्थ अर्थशास्त्र में विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं का विशद विश्लेषण प्राप्त होता है। अर्थशास्त्र के मंडल 4 के 'प्राकृतिक आपदाओं से उपचार' नामक तीसरे अध्याय में कौटिल्य ने आपदाओं को 'व्यसन' और प्राकृतिक आपदाओं को 'प्राकृतिक व्यसन' के रूप में वर्णित करते हुए उस समय में लोगों के समक्ष उपस्थित आठ व्यसनों को चिन्हित किया है। ये व्यसन हैंअग्नि :, बारह, महामारी, अकाल, चूहे, व्याघ्र, सर्प और प्रेत। इस अष्ट व्यसनों का निर्धारण करने के पश्चात कौटिल्य ने इनके प्रबंधकीय पक्ष का भी निरूपण किया है। उनके अनुसार ये व्यसन या आपदाएं किसी व्यक्ति या समुदाय विशेष के ऊपर आघात नहीं हैं अपितु राज्य की सामान्य भलाई और सुरक्षा के ऊपर खतरे की तरह होती

हैं।

अतः कौटिल्य यह स्पष्ट करते हैं कि इन आपदाओं से न केवल लोगों को अपना बचाव करना चाहिए वरन राजा का भी यह पुनीत कर्त्तव्य बनता हैं कि वह अपनी प्रजा को इन आपदाओं के दुष्प्रभावों से बचाए। दूसरे शब्दों में, कौटिल्य यह स्पष्ट करते हैं कि लोगों को अष्ट व्यसनों के दुष्प्रभावों को बखूबी समझकर उनसे दूर रहने अथवा उनसे बचने का प्रयास करना चाहिए। उदहारण के लिए, वह लोगों पर यह दायित्व डालते हैं कि यदि उन्हें लगे कि किसी प्रकार से भी बाढ़ की संभावना बन रही हैं तो उन्हें समय रहते अपने सामन और पशुधन समेत किसी ऊँचे और सुरक्षित स्थान पर चला जाना चाहिए। साथ ही वे शासक पर भी यह दायित्व डालते हैं कि बाढ़ अथवा सूखे की स्थिति से निपटने के लिए शासक को आवश्यक खाद्य पदार्थों समेत अन्य वस्तुओं का पर्याप्त भंडार अपने पास सुरक्षित रखना चाहिए। इस तरह कौटिल्य के माध्यम से यह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता हैं कि प्राचीन काल में भी लोग प्राकृतिक आपदाओं से भली भांति परिचित थे और उनसे समुचित बचाव या प्रबंधन हेतु विविध प्रकार के उपायों का भी उस समय प्रचलन था। यद्यपि वर्तमान समय में प्राकृतिक आपदाओं के स्वरुप और उनके प्रभावी प्रबंधन के विषय में हमें कौटिल्य के विचार कुछ अटपटे या अधूरे लग सकते हैं, तथापि यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि प्राचीन समय में इस प्रकार के विषयों का विशद विवेचन ही उस समय के समाज की स्पष्ट दृष्टि और कौशल का परिचायक माना जा सकता हैं।

चूँकि प्राकृतिक अथवा मानव निर्मित आपदाओं की विभीषिका इतिहास के प्रत्येक कालखंड में हुई हैं इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि इन आपदाओं से निपटने का कोई न कोई तरीका मध्यकाल में भी तलाशा जाता रहा होगा। किन्तु उल्लेखनीय बात यह है कि जिस स्पष्टता और सुविचारित ढंग से प्राकृतिक आपदाओं से निजात पाने पर विचार प्राचीन काल में किया गया था उस प्रकार की दृष्टि का मध्यकाल में सर्वथा अभाव पाया जाता है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि आपदा प्रबंधन जैसे कदाचित बोझीले और लोकोपयोगी कार्य सरकारों द्वारा तभी किया जाते हैं जब उनके अंदर शासन व्यवस्था को लोकोन्मुखी और लोक कल्याणकारी बनाने की अभिलाषा पर्याप्त रूप में विद्यमान रहती है। इस सन्दर्भ में यह कहना समीचीन रहेगा कि मध्यकाल में अकबर जैसे कुछ गिने चुने शासकों को छोड़कर अधिकतर शासकों की मनोवृति विजय अभियानों पर जाने अथवा विलासिता में रत रहने की रही है जिसके कारण आपदा प्रबंधन जैसे विषय न ही उनके ध्यान में आ पाए और फलतः न उनके शासन की प्राथमिकता बन पाए। तथापि, अकबर जैसे शासकों के समय में प्राकृतिक आपदाओं से निपटने में लोगों की सहायता करने के अनेकों दृष्टान्त इतिहासकारों ने वर्णित किये हैं जिनसे यह निष्कर्ष निकला जा सकता है कि मध्यकाल में भी आपदा प्रबंधन के कतिपय प्रयत्न लोगों और शासकों दोनों के द्वारा किये जाते रहे हैं।

औपनिवेशिक आपदा प्रबंधन नीति

भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ ही समाज जीवन के विभिन्न पक्षों के साथ आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में भी कतिपय परिवर्तन की संभावना प्रबल होती दिखाई दे रही थी। किन्तु शासन की बागडोर सँभालने के साथ ही औपनिवेशिक शासकों ने इस बात के स्पष्ट संकेत देने प्रारम्भ कर दिए कि भारत में उनके शासन का मुख्य लक्ष्य देश के आर्थिक शोषण से ब्रिटिश व्यापारियों और पूंजीपतियों की जेबें भरना था। लोक कल्याण अथवा किसी अन्य प्रकार का रचनात्मक कार्य सर्वथा उनकी परिधि से बाहर की वस्तु थी। अतः आपदा प्रबंधन जैसे विषय उनकी प्राथमिकता में दूर दूर तक कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते थे। प्राकृतिक आपदाएं लोगों की जीवन को दूभर करती रहीं किन्तु अंग्रेज़ों के कान पर जूं तक नहीं रेंगती थी। इस प्रकार के वातावरण में ह्रदय विदारक दृश्यों की प्रस्तुति देश के विभिन्न हिस्सों में पड़ने वाले नियमित अकालों ने की।उस समय देश में सूखे के कारण खाद्यान्नों का उत्पादन घट जाने से यद्यपि अकाल की स्थिति प्रायः बन जाया करती थी तथापि जिन कारकों ने अकालों को महामारी के रूप में परिवर्तित करने में महती भूमिका निभायी वे विशेष रूप से ब्रिटिश शासकों की खाद्यान्न व्यापर के क्षेत्र में अहस्तक्षेप की नीति से जुड़े थे।

दूसरे शब्दों में, खाद्यान्न व्यापर के क्षेत्र में अहस्तक्षेप की नीति के कारण सरकार खाद्यान्न अधिशेष क्षेत्रों से खाद्यान्न अल्पता वाले क्षेत्रों में समुचित मात्रा में खाद्यान्न नहीं पहुँचा सकी। इस बीच निजी व्यापारियों द्वारा खाद्यान्नों के मूल्यों में अतिरेकी वृद्धि करने उसे गरीब जन सामान्य की पहुँच से बाहर कर दिया। इस प्रकार खाद्य पदार्थों के अभाव में हज़ारों गरीब और निरीह लोग काल के गाल में समाहित हो गए। भीषण अकालों की श्रृंखला ने अंततः अंग्रेजी सरकार को विचलित किया। तत्पश्चात, पहली बार सरकार का ध्यान आपदा प्रबंधन जैसे कदाचित अनावश्यक विषयों की तरफ गया। कालांतर में सरकार ने कई अकाल आयोगों की स्थापना की किन्तु उनकी संस्तुतियों पर पूर्णरूपण ध्यान कभी नहीं दिया गया। अतएव, अकाल और अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कुशल और प्रभावी प्रबंधन की ओर समुचित ध्यान देने की बजाय सरकार ने इनके प्रति बहुत ही संकुचित दृष्टि अपनाते हुए इसे केवल एक प्रशासनिक समस्या माना। फलतः स्वाभाविक रूप से इस समस्या का निराकरण भी प्रशासनिक स्तर पर ही करने का मन बनाते हुए सरकार ने देश में अकाल कूट नामक प्रथम विशिष्ट कदम (फेमिन कोड) उठाया।

इस कोड के माध्यम से जिलों में तैनात प्रशसनिक अधिकारियों से यह अपेक्षा की गई कि वे मानसून के असफल होने की अवस्था में कुछ ऐसे आवश्यक उपाय कर लें जिनके माध्यम से अकाल

जैसी स्थिति से निपटने में वे सक्षम रहें और लोगों को असमय काल कवलित होने से बचा सकें। किन्तु यह प्रशासनिक कदम न केवल सैद्धांतिक रूप से अपर्याप्त और त्रुटिपूर्ण था अपितु इसके द्वारा प्रशासनिक अधिकारियों पर कोई निश्चित एवं ठोस कार्य का दायित्व नहीं सौंपा गया जिनके द्वारा वे लोगों के कष्टों का निवारण कर सकते। इससे भी अधिक सोचनीय विषय यह था कि यह फेमिन कोड केवल अकाल की विभीषिका से निपटने के लिए कल्पित था और अन्य प्राकृतिक अथवा मानव निर्मित आपदाओं से अभी भी सरकार का कोई लेना देना नहीं था। इस प्रकार औपनिवेशिक आपदा प्रबंधन का प्रयास सर्वथा निष्फल रहा। अंग्रेजी सरकार न केवल आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में किसी नीति के निर्माण में विफल रही अपितु इसने आपदा प्रबंधन को बहुत ही सतही और हल्के तरीके से लिया। फलतः अंग्रेजी शासन के दौरान अनेक प्रकार की प्राकृतिक और मानव निर्मित आपदाएं लोगों के जीवन क्रम को खंडित करती रहीं और सरकार हाथ पर हाथ धरे मूक दर्शक की भांति निहारती रही।

स्वातंत्र्योत्तर आपदा प्रबंधन नीति

स्वातंत्र्योत्तर काल में भी भारत में आपदा प्रबंधन नीति के विकास का क्रम सुगम नहीं रहा। इसमें कोई संदेह नहीं है कि स्वतंत्रता के पश्चात सरकार के समक्ष लोगों के आर्थिक और सामाजिक विकास की गति को द्रुतगामी और फलदायक बनाने का महती दायित्व था।साथ ही सरकार के पास आर्थिक और मानवीय संसाधनों की अपर्याप्तता के साथ साथ लोगों के भोजन, वस्त्र और आश्रय जैसी मूलभूत आवश्यकताओं को यथाशीघ्र पूरा करने का गुरुत्तर दबाव था। इसलिए आपदा प्रबंधन जैसे विषय न ही सरकार के ध्यान में आये और न ही उनकी ओर कोई विशेष प्रयास किया गया।दूसरे शब्दों में, स्वातंत्र्योत्तर काल में भी सरकार ने ब्रिटिश शासन की आपदा सहायता नीति को ही आपदा प्रबंधन का पर्याय मानना उचित समझा। इस बीच देश में आने वाली भीषण बाढ़ों और सूखों ने सरकार को विवश किया कि वो इन समस्यायों से निपटने का कोई दीर्घकालिक नहीं तो तात्कालिक उपाय ही तलाशे। फलतः, लम्बे समय तक देश में आपदा प्रबंधन के नाम पर केवल बाढ़ और सूखे की समस्या की ओर ही ध्यान दिया गया।

चूँकि 2017 तक देश में आर्थिक और सामाजिक प्रगति की दिशा को निर्देशित करने और संसाधनों के समुचित आवंटन का सर्वप्रमुख माध्यम पंचवर्षीय योजनाएं थीं, अतः अप्रत्यक्ष रूप से आपदा प्रबंधन के सूत्र विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में भी देखे जा सकते हैं। इस दृष्टि से यह उल्लेखनीय हैं कि नौवीं पंचवर्षीय योजना तक सभी पंचवर्षीय योजनाओं में आपदा प्रबंधन के विषय को कृषि के विकास के साथ जोड़कर देखा गया। दूसरे शब्दों में, बाढ़ और सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाओं को उसी सीमा तक प्रबंधकीय दृष्टिकोण से देखा गया जहां तक देश में कृषि की दशा सुधारने और खाद्यान्न के उत्पादन की अभिवृद्धि में उनकी कोई भूमिका पाई गई। अन्यथा भूकंप और समुद्री तूफान जैसी प्राकृतिक आपदाएं प्रलयंकारी होने

के बावजूद सरकार की प्राथमिकता का हिस्सा किसी भी पंचवर्षीय योजना में नहीं बन पाईं।कालांतर में देश में प्राकृतिक आपदाओं के बढ़ते दबाव और वैश्विक स्तर पर आपदा प्रबंधन के विषय को और अधिक गंभीरता से लेने के आग्रह के बीच दसवीं पंचवर्षीय योजना में सर्वप्रथम एक स्वतंत्र अध्याय देश में आपदा प्रबंधन के विषय पर नियोजित किया गया। इस दस्तावेज में यह बात स्पष्ट रूप से इंगित की गई कि प्राकृतिक आपदाएं देश में न केवल आर्थिक विकास की गति को कुंद करती हैं अपितु इनके द्वारा की गयी भारी क्षति इनके प्रबंधकीय व्यय से काफी अधिक बैठता है। अतः इस योजना दस्तावेज में यह आग्रह किया गया कि देश में एक सुविचारित आपदा प्रबंधन नीति के निर्माण के साथ ही आपदा प्रबंधन के विन्दुओं को विकास की प्रक्रियाओं और योजनाओं में समुचित तरीके और मात्रा में समायोजित किया जाय।

भारत में एक समर्पित आपदा प्रबंधन नीति के निर्माण की प्रक्रिया को गति 2005 में संसद द्वारा आपदा प्रबंधन अधिनियम के पारित करने से मिली। इस अधिनियम के अंतर्गत स्थापित होने वाले राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण ने संभवतः अपने इस दायित्व को बखूबी समझा कि बिना एक दीर्घकालिक राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन नीति को मूर्त रूप दिए देश में आपदा प्रबंधन के कार्य को अपेक्षा के अनुरूप सशक्त और प्रभावी नहीं बनाया जा सकता है। अतः लम्बी जद्दोजहद तथा व्यापक विचार विमर्श के उपरांत राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण ने सरकार के समक्ष राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन नीति का मसौदा प्रस्तुत किया। अंततः 22 अक्टूबर 2006 को यह मसौदा केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा स्वीकृत होने के पश्चात राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन नीति के रूप में देश को प्रथम समर्पित आपदा प्रबंधन नीति प्राप्त होती है।इस नीति के माध्यम से प्रथम बार देश में आपदा प्रबंधन के मंत्र में आमूलचूल कायाकल्प की बात आयी। इस नीति के मूल में देश में एक निवारण की संस्कृति के विकास पर बल दिया गया जिसके माध्यम से लोगों को प्राकृतिक और मांनव निर्मित आपदाओं से बचने अथवा निवृत होने का संकल्प लेने का निवेदन है। यह नीति देश के सामाजिक और आर्थिक विकास की प्रक्रिया के प्रत्येक हितधारक को इस बात की अनुभूति कराने का यत्न करती है कि आपदाओं से बचाव और उनका दीर्घकालिक प्रबंधन हर दृष्टि से आपदाओं द्वारा किये जाने वाले नुकसान और पुनर्निर्माण में व्यय होने वाली राशि की तुलना में सर्वथा लाभ का सौदा रहेगा।

भारत में आपदा प्रबंधन नीति की विकास यात्रा का आलोचनात्मक विश्लेषण वस्तुतः मानव कल्याण से सम्बंधित नीतियों और समस्यायों का चिरकाल से शासकों की दृष्टि से ओझल रहने की दुखद वृत्ति पर एक टिप्पणी मानी जा सकती है। प्राचीन काल, मध्य काल और यहाँ तक कि भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक काल को भी निसंदेह रूप से एक सम्यक आपदा प्रबंधन नीति को न अपनाने के लिए क्षमा इस आधार पर किया जा सकता है कि उनकी प्राथमिकताओं में विजय अभियानों पर जाना और स्वार्थपरक

नीतियों को अपनाना प्राथमिकता रह सका होगा। किन्तु सबसे दुर्भाग्य की बात यह लगती है कि स्वतंतता प्राप्ति के पश्चात् भी काफी लम्बे अरसे तक आपदा प्रबंधन का विषय ही शासकीय शब्दावली का हिस्सा नहीं बन पाया और किसी आपदा प्रबंधन की बात करना तो शासकों के लिए दिवास्वप्न जैसा प्रतीत होता था। इस दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर भारतीय विकास की अवधारणा तथा उसके माध्यम से जन सामान्य के जीवन के जिन पहलुओं को प्राथमिकता के आधार पर ध्यान देने का चिंतन किया गया वे वस्तुतः दीर्घकालिक तो कतई नहीं प्रतीत होते हैं। अन्यथा प्राकृतिक आपदाओं से नियमित रूप से होने वाले भीषण नुकसानों से सरकार कैसे आँख चुरा सकती थी। परन्तु ऐसी स्थिति लम्बे समय तक देश में इस लिए बनी रह सकी कि आपदाओं को प्रकृति के अभिशाप के रूप में स्वीकार करने की जन मानस की वृत्ति को अक्षुण्ण रखा गया और इस प्रकार का आभास कराया गया कि प्राकृतिक आपदाएं शासकीय प्रबंधन की परिधि से बाहर की वस्तु हैं।

इस प्रकार के निराशावादी वातावरण में देशवासियों, विशेषकर नियमित रूप से प्राकृतिक और मानव निर्मित आपदाओं की मार झेल रहे लोगों, को अंतर्राष्ट्रीय संगठनों विशेषकर संयुक्त राष्ट्र संघ का आभारी होना चाहिए जिसने वैश्विक स्तर पर आपदाओं की बढ़ती चुनौती को समझा और उससे निपटने के लिए प्रत्येक देश की सरकार को कमर कसने के लिए प्रेरित किया। वस्तुतः भारत ही नहीं अपितु विश्व के अधिकतर देशों में आपदा प्रबंधन नीति के सृजन की समग्र प्रक्रिया नब्बे के दशक से आरम्भ होकर इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक ही मूर्त रूप में आ पाई। इस दृष्टि से भारतीय प्रयास और भी शिथिल और मंद थे जिसके फलस्वरूप देश में एक व्यापक और सम्यक आपदा प्रबंधन नीति का निर्माण 2006 में फलीभूत हो पाया। तथापि इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि देर आए दुरुस्त आए। वर्तमान में यह आशा की जा सकती हैं कि एक समर्पित आपदा प्रबंधन नीति के निर्माण से देश के आपदा प्रबंधन तंत्र को एक नई दिशा मिलेगी और यह अन्तः वह आपदाओं से होने वाले जानमाल के नुकसान को न्यूनतम करने के अपने महती लक्ष्य की प्राप्ति में सफल होगा।

संदर्भ

1. डब्ल्यू. निक कार्टर, *डिजास्टर मैनेजमेंटः ए डिजास्टर मैनेजर्स हैंडबुक*, एशियाई विकास बैंक, मनीला, 1991, पृ. २६
2. राजेंद्र कुमार पांडेय, 'प्राकृतिक आपदा एवं विकास' *लोक प्रशासन*, वर्ष 3, अंक 2, जुलाई-दिसंबर, 2011, पृ. 347
3. कौटिल्य, *अर्थशास्त्र*, (आर शामशास्त्री द्वारा अनुवादित और सम्पादित), चौखम्भा प्रकाश, दिल्ली, 2014, पृ. 294 -295

4. वी ए स्मिथ, *अकबर: द ग्रेट मुग़ल*, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई यॉर्क, 1918, पृ. 187
5. तीर्थंकर रॉय, *नेचुरल डिसास्टर्स एंड इंडियन हिस्ट्री*, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2012, पृ. 25
6. राजेंद्र कुमार पांडेय, 'आपदा प्रबंधन में सुशासन की चुनौतियाँ', *लोक प्रशासन*, वर्ष 9, अंक 2, जुलाई-दिसंबर, 2017, पृ. 138
7. भारत सरकार, द *ड्राट ऑफ़ 1987: रिस्पांस एंड मैनेजमेंट*, मिनिस्ट्री ऑफ़ एग्रीकल्चर, नई दिल्ली, 1989, पृ. 13
8. भारत सरकार, रिपोर्ट ऑफ़ द वर्किंग ग्रुप ऑन डिजास्टर मैनेजमेंट फॉर द इलेवेंथ फाइव ईयर प्लान (2007-2012), प्लानिंग कमीशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. २७
9. राजेंद्र कुमार पांडेय, 'राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण की नियामकीय भूमिका', *लोक प्रशासन*, वर्ष 10, अंक 2, जुलाई-दिसंबर, 2018, पृ. 21
10. भारत सरकार, *नेशनल पालिसी ऑन डिजास्टर मैनेजमेंट*, मिनिस्ट्री ऑफ़ होम अफेयर्स, नई दिल्ली, 2009, पृ. 2

30.बिहार में बाढ़ प्रबंधनः नीति एवं राजनीति

पंकज कुमार झा*

भारत विश्व के सर्वाधिक बाढ़ प्रभावित देशों में से एक है। 1980 के राष्ट्रीय बाढ़ आयोग के अनुसार, देश की लगभग 40 मिलियन हैक्टर भूमि व कुल आबादी के 1/8 लोग बाढ़ से प्रभावित है (आरबीए 1980)। बहरहाल बिहार में बाढ़ नियंत्रण व प्रबंधन की संपूर्ण राजनीति को समझने के लिए उन दोनों पक्षों को समझना होगा जो इस राजनीति को आधार प्रदान करते हैं। बाढ़ नियंत्रण की राजनीति से संबंधित स्थापित परिप्रेक्ष्य हाइड्रोलॉजिकल मापन की बात करता है। इसका मानना है कि बड़े बांध, तटबंध, रिंग डैम, डिटेंशन बेसिन, आदि के माध्यम से बाढ़ नियंत्रण किया जा सकता है। गौरतलब है कि यह पक्ष नेहरुवादी बड़े बांध की अवधारणा को घोर समर्थक है। ठीक इसके बरक्स दूसरा परिप्रेक्ष्य बाढ़ संबंधी स्थानीय ज्ञानमीमांसा (Local epistemology) का समर्थक है एवं बाढ़ के साथ जीने के नजरिये को प्रमुखता से समर्थन करता है। उपरोक्त दोनों ही पक्षों की अपनी अलग राजनीति व फलसफा हैं, बहरहाल सत्यता यह भी है कि राज्य द्वारा प्रेरित पक्ष हाइड्रोलॉजिकल मापन का ही समर्थन करता है। इसलिए यह लेख बिहार में बाढ़ की राजनीति व नीति को तीन भाग में समझने की कोशिश करता है। पहला हिस्सा में बाढ़ के साथ संयोजन की संकल्पना को विस्तार से समझाने की कोशिश करता है। दूसरा हिस्सा बिहार में आपदा प्रबंधन की नीति को आलोचनात्मक रुप से देखने की कोशिश करता है। एवं तीसरा हिस्सा, बाढ़ प्रभावित इलाके में प्रयोग होने वाले रिवर साईड व कंट्री साईड के आपसी संबंध व इसमें राजनीति व प्रशासन की भूमिका को आलोचनात्मक रुप से प्रस्तुत किया गया है।

बाढ़ के साथ संयोजन (Living with Flood)

बाढ़ के साथ संयोजन परंपरागत रुप से बाढ़ प्रबंधन में लोक विद्या या स्थानीय ज्ञान को प्रमुखता से प्रस्तुत करता है। इसका मानना है कि मनुष्य व समाज का नदी, तालाब व बाढ़ से अटूट संबंध रहा है, ऐसे में बाढ़ उनके लिए कभी भी आपदा नहीं हो सकती है (अहमद 1999, 1999एः मिश्रा 1994, 1997, 1999, 2001)। इस प्रकार, बाढ़ के साथ संयोजन यानि लिविंग विद् फ्लड की संकल्पना के अंतर्गत तीन प्रमुख बिंदु हैं- क) बाढ़ एक आपदा नहीं है, ख) बाढ़ आजीविका के रुप में ग) बाढ़ संस्कृति व उत्सव के रुप में

बाढ़ के साथ संयोजन का मानना है कि बाढ़ आपदा नहीं है वरन् एक प्राकृतिक परिघटना है।

* **सहायक प्रोफेसर राजनीति विज्ञान विभाग मोतीलाल नेहरु कॉलेज, दिल्ली**

अपनी बातों को पुरजोर तरीके से रखते हुए वे मानते हैं कि आपदा वैसी स्थिति को कहते हैं कि जिसके आने की तिथि व समय पक्की नहीं होती है। मसलन सूनामी, भूकंप इत्यादि। परंतु बाढ़ की तो हर वर्ष आने की एक पक्की तिथि होती है। इसलिए उसको कैसे आपदा कहा जा सकता है।

बिहार के कटिहार जिला स्थित महानंदा बेसिन के भरौं गाँव में रहने वाले हल्कू चौधरी (67) के माने तो- स्थानीय रुप से बाढ़ से जुड़े विभिन्न रुप हैं। जब नदी का पानी खेत खलियान तक पहुँच जाए तो उसे बाढ़ कहते हैं। यह कृषि के लिए बहुत उपयोगी होता है। जब यह पानी आवासीय इलाके में पहुंच जाए तो उसे बोह कहते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि बाढ़ व बोह दोनों ही प्रलयकारी नहीं होती है। जब पानी घरों की खिड़कियों तक पहुँच जाये तथा गाय बकड़ी डूबने लगे तो वैसी स्थिति को हुम्मा कहते हैं। जब स्थिति नियंत्रण से बाहर हो जाती है और गाय-भैसों को खोल दिया जाता है उस स्थिति को शाह कहते हैं। जब स्थिति और भी भयावह हो जाती है तो उसे प्रलय कहते हैं।

महत्वपूर्ण है कि बाढ़ के सभी रुप भयावह नहीं होते हैं। हुम्मा, शाह और प्रलय ही बहुत विभत्सकारी रुप है, जबकि बाढ़ व बोह सामान्यता से लाभकारी होता है।

बाढ़ एक आजीविका के रुप में

बाढ़ लोगों की आजीविका से अभिन्न रुप से जुड़ी हुई है। इसे दो प्रमुख रुपों में समझा जा सकता है। पहला, बाढ़ अपने साथ बहुत सारे मछली के किस्मों को लेकर आता है एवं दूसरा, बाढ़ का पानी धान की खेती के लिए बहुत उपयोगी होता है। इसी अवधारणा को फ्रांसिस बुकानन (1928), दिनेश मिश्रा (2000) व आशीष नंदी (2003) ने भी विस्तृत रुप से प्रस्तुत किया है।

शोध यात्रा के दौरान रिवर साइड के स्थानीय निवासी रघुनाथ ठाकुर के अनुसार, बाढ़ के समय नदी और पोखर में मछलियों की बहुत सारी किस्में पायी जाती थी। हम भी दिन भर में तीन बार मछली पकड़ने जाते थे। हम केवल पैघ माछ (बड़ी मछली) ही पकड़ते थे, एवं छोट माछ (छोटी मछली) नदी में यह सोचकर छोड़ देते थे कि इसपर नदी का अधिकार है। पहले हम लोग पाँच-पाँच किलो की बड़ी मछली को पकड़ते थे। परंतु अब सब कुछ नष्ट हो चुका है (झा 2015)।

नंदन राय (25) रिवर साइड में रहते हैं, हमारे क्षेत्र में, तीन प्रकार के धान की फसल पाई जाती है- अगहनी, गरमा व भदही। इनमें से केवल अगहनी की खेती बाढ़ के समय किसान करते हैं। बाढ़ का पानी अपने साथ जो मिट्टी लेकर आती है वह अगहनी धान के लिए जीवनदायी होती है। छोटे किसान (जिनके पास 1-2 एकड़ जमीन होती है) के लिए अगहनी धान करना सबसे उपयोगी व आसान होता है (झा 2015)।

बाढ़ संस्कृति व उत्सव के रुप में

बिहार में बाढ़ प्रभावित इलाकों में जब तटबंध और बांध नहीं बने थे तब वहां के लोकजीवन में ज़नेर खेलना और ज़नेर गीत के गाने का खासा महत्व था। ज़नेर लोगों के बीच लोक-साहर्चय, सामाजिक पूंजी और सामुदायिक सहभागिता का अद्भूत रूपक के तौर पर स्थापित था। कोसी, कमला-बलान, बागमती और महानंदा के इलाके में ज़नेर की प्रथा को स्थानीय जुबान में झिंझिर, झझेर, कस्तीखोरी या कस्तीबाज़ी भी कहा जाता था। पहले सावन-भादो के ठहाठह इंजोरिया यानी चांदनी रात में लोग-बाग नाव में सवार होकर ज़नेर खेलने जाते थे। बुजुर्गों, महिलाओं, युवक-युवतियों और बच्चों की पूरी टोली खुशहाली और तामझाम के साथ निकल पड़ते थे। साथ में ढोल-बाजा, झाल-मृदंग भी होता था (झा 2014)।

दिलचस्प है कि ज़नेर की इस प्रथा का जिक्र आंचलिक कथाकार फणीश्वर नाथ रेणु ने भी अपने रिर्पोताज़ ऋणजल धनजल में किया है। रेणु ने लिखा है- 'गांव के लोग जिनके पास नाव की सुविधा नहीं होती, वह सामान्य तौर पर केले के पौधों का भेला बनाकर भी ज़नेर का आनंद लेते थे। वहीं, जमींदार लोगों के पास नाव होते थे और वह नाव पर हारमोनियम-तबला के साथ झिझिर या जल विहार करने निकलते थे' (रेणु 1977)।

महानंदा बेसिन स्थित भरी गाँव निवासी नरेन्द्र नाथ ठाकुर (62) के अनुसार, हम बांध के कारण सब कुछ गंवा चुके हैं। पहले स्थानीय लोगबाग जनेर के गीत गाते थे। वे नाव में स्टोव, खाने की सामग्री लेकर जाते थे। चांदनी रात में नदी में नाव पर लोगबाग खाना बनाते और नाचते गाते थे। आज बांध बंधने के कारण नदी ने अपना प्राकृतिक प्रवाह खो दिया है। वह सीमटती जा रही है। ऐसे में धीरे धीरे जनेर जैसे त्योहार भी धीरे धीरे समाप्त होती जा रही है (झा 2015)।

बाढ़ संस्कृति व उत्सव के रुप में

लेख के इस भाग में हम बिहार में बाढ़ प्रबंधन की नीति से संबंधित प्रमुख मुद्दे यानि विस्थापन, पुनर्वास व राहत के विशेष संदर्भ में स्थानीय लोगों की इथनोग्राफिक नोट की प्रस्तुत करने की कोशिश करेंगे। महानंदा बेसिन के अंतर्गत विस्थापन की समस्या काफी भयावह है। आपदा प्रबंधन एक्ट, 2005 व राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन नीति, 2009 विस्थापित जनों के लिए विभिन्न राहत संबंधी रणनीति प्रदान करती है। इसके अंतर्गत अलग राहत शिविर, खाद्य आपूर्ति, चिकित्सा व्यवस्था, साफ पानी, माल जाल की सुरक्षा आदि को खास स्थान दिया जाता है। परंतु व्यवहार में राहत सामग्री के बंटवारे, विस्थापन आदि से संबंधित बहुत सारे मुद्दे हैं जो यहाँ की स्थानीय आबादी को बहुत प्रभावित कर रही है। महानंदा बेसिन के इलाके में आजमनगर, प्राणपुर, कदवा सहित 100 से अधिक गाँव में बाढ़ से विस्थापन की समस्या देखी गई है (झा

2015)।

विस्थापन

महानंदा बेसिन स्थित कदवा ब्लॉक के बेलंदा गाँव निवासी धनिया देवी (46) ने विस्थापन के दंश को इस रुप में व्यक्त किया है-

अब हम विस्थापित हो गए हैं। हमारे घर, जमीन सभी पानी में चला गया है। हमारे पास आजीविका चलाने का कोई और उपाय नहीं है। हमें कभी कभी सरकारी राहत सामग्री के अन्तर्गत भोजन और पानी मिल जाता है, परंतु जब यह नहीं मिल पाता है तब हम भूखे सो जाते हैं।

यह स्पष्ट है कि जो लोग-बाग विस्थापित होते हैं उन्हें बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है जैसे घर से विस्थापन, भूमि से विस्थापन, बेरोजगारी, हाशियाकरण, खाद्य असुरक्षा आदि जिसे मिशेल एम. कार्निया (2007) ने रेखांकित किया है। कार्निया द्वारा रेखांकित सभी समस्याओं में अपने फील्ड शोध में हमने यह भी देखा है कि एक और समस्या दिखाई पड़ती है- वह है महिला की सुरक्षा की। विस्थापित परिवार में महिला काफी असुरक्षित महसूस करती हैं उसे असमाजिक तत्वों व पुलिस प्रशासन की प्रताड़ना का सामना करना होता है। समग्र रुप से देखें तो राज्य अपने पुलिस तंत्र व स्थानीय माफिया के सहयोग से बांध पर अस्थायी रुप से रह रहे विस्थापित लोगों को खदेड़ती है, हाथापाई करती है एवं उनके अस्थानीय निवास को तोड़ती है। यह ऐसा वास्तविक चेहरा है जो राज्य के आपदा प्रबंधन के दावों पर सवालिया निशान खड़ा करता है।

पुनर्वास

आपदा प्रबंधन से जुड़ा दूसरा प्रमुख मुद्दा पुनर्वास से जुड़ा हुआ है। बिहार आपदा प्रबंधन पुनर्वास संबंधी स्पष्ट प्रावधान का उल्लेख किया गया है। इसके अंतर्गत यह कहा गया है कि बाढ़ जैसे किसी आपदा से अगर कोई परिवार विस्थापित हुआ है तथा जो गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहा है, उसका घर बाढ़ से क्षतिग्रस्त हुआ हो अथवा जलमग्न हो गया हो, उसकी पहचान सर्वप्रथम किया जाए एवं उन्हें पुनर्वासित किया जाए। इसमें यह प्रावधान है कि प्रभावित परिवारों को सरकारी जमीन से 4 डेसीमिल जमीन प्रदान किया जाए (आपदा प्रबंधन ऐक्ट, बिहार सरकार; 2007)। परंतु अपने द्वारा किए गए फील्ड शोध में हमने कुछ और ही स्थिति को पाया।

जल्लाहरेरामपुर गाँव की निवासी और स्व सहायता समूह में कार्यरत मीना देवी (55) के अनुसार, हमारे गाँव में 2008 के बाढ़ में करीब 40 घर जलप्लावित हो गए। तब से इन घरों के लोगबाग बांध पर बहुत

मुश्किलातों में रहते हैं। तब से अब तक लगभग 10 साल बीत चुके हैं परंतु हमें पुनर्वास की जमीन नहीं मिली है। मैं गाँव के तरफ से लगातार ब्लॉक व कलेक्टर के ऑफिस जाती हूँ ताकि बाढ़ प्रभावितों को व्यवस्थित पुनर्वास मिल सके। परंतु कलेक्टर साहब ने एक दिन मुझे कहा, आप हर दिन क्यों चली आती हैं यहाँ क्या आप बाढ़ पीड़ितों के लिए मुकदमा लड़ रही है। उन्होंने हमें बहुत हतोत्साहित किया। हम ऐसे प्रशासन की उम्मीद नहीं कर रहे थे।

महत्वपूर्ण बात है कि हमने अन्य लोगों से भी बात किया जिससे हमें यह जानकारी मिली कि केवल 20- 25 परिवारों को पुनर्वास मिला। परंतु पुनर्वास केवल उन्हें ही मिला जो उच्च जाति के साथ तथा स्थानीय राजनेता व प्रशासन के बहुत करीबी थे। इससे साफ पता चलता है कि स्थानीय प्रशासन आम लोगबाग के प्रति कितनी अमानवीय और असंवेदनशील हो गया है। और बाढ़ की राजनीति में यह पक्ष बहुत ही अहम है।

राहत बाढ़ प्रबंधन संबंधी तीसरा मुद्दा राहत (relief) से संबंधित है। राज्य सरकार आपदा प्रबंधन संबंधित इस नीति के अंतर्गत आपदा से प्रभावित प्रत्येक परिवार को 6000 रुपया राहत राशि के रुप में देने का प्रावधान है। तथा जिस परिवार का घर पूर्ण रुप से या आंशिक रुप से बाढ़ से प्रभावित हुआ है उसे 95,100 प्रति परिवार देने का प्रावधान किया गया है (आपदा प्रबंधन एक्ट, 2005)। परंतु फील्ड वर्क के दौरान हमने देखा कि इस कार्य में भी व्यापक धांधली दिखाई पड़ती है।

राहत सामग्री के बंटवारे में स्थानीय पंचायती राज की संस्थाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। ऐसे में गाँव का मुखिया व सरपंच व स्थानीय प्रशासन की मिली भगत दिखाई पड़ती है। स्थानीय प्रशासन यानि ब्लाऊ विकास अधिकारी व सी.ओ. मुखिया, सरपंच व वार्ड सदस्य से राहत सामग्री के लिए अर्ह लोगों की सूची मांगते हैं। मुखिया व सरपंच स्थानीय लोगों से इसके बदले घूस मांगते हैं। आजमनगर ब्लॉक निवास माखन लाल राय (30) के अनुसार, इस सूची में नाम डलवाने के लिए मुखिया और सरपंच पीसी (परसेंटेज) मांगते हैं। वह कहते हैं कि उन्हें ही 6000 रुपये की राशि मिलेगी जो 500 रुपया देगा। जब हम इसका कारण पूछते हैं तो वह बोलते हैं कि 'अरे ये तो मुफ्त का माल ही मिल रहा तुमको। 500 दे दोगे तो क्या होगा'। बेलंदा निवासी सज्जन मंडल के अनुसार, यह आप घूस नहीं देंगे तो आपका नाम सूची से काट दिया जाता है भले ही आप क्यों न सबसे अधिक जरुरतमंद हों। और उनका नाम सूची में डाल दिया जाता है जिसने उन्हें घूस दिया है।

स्थानीय लोगों से बातचीत करने पर यह भी पता चला कि जो रपट आपदा प्रबंधन की राशि के बंटवारे, राहत व सामग्री के नाम पर तैयार किया जाता है वह केवल रस्मआदायगी होती है। बहुत गुस्से में स्थानीय निवासी उदित कुमार (30) ने कहा कि 'ये बस सरकारी फाइलों की पेट भरने के लिए बनाया जाता

है'।

रिवर साईड[3] व कंट्री साईड[4] की आपसी राजनीति

[3] रिवर साईड का अर्थ है नदी व बांध के बीच रहने वाली आबादी, जो बाढ़ से तुरंत प्रभावित होती है तथा अचानक आये बाढ़ के विरोध में बांधों को भी काटती है।, विस्तार से देखें पंकज कुमार झा (2014), राज्य और बाढ़ नियंत्रण की राजनीतिः बिहार के कटिहार के विशेष संदर्भ में, पीएच.डी. थीसिस (अप्रकाशित), राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

[4] बांध के बाहर रहने वाली आबादी कंट्री साईड कहलाती है, बाढ़ प्रभावित इलाके में कंट्री साईड व रिवर साईड की शब्दावली विशेष लोकप्रिय है। इस विषय को इस थीसिस में विशेष रुप से समझाया गया है।

तस्वीर 1 रिवर साइड व कंट्री साइड

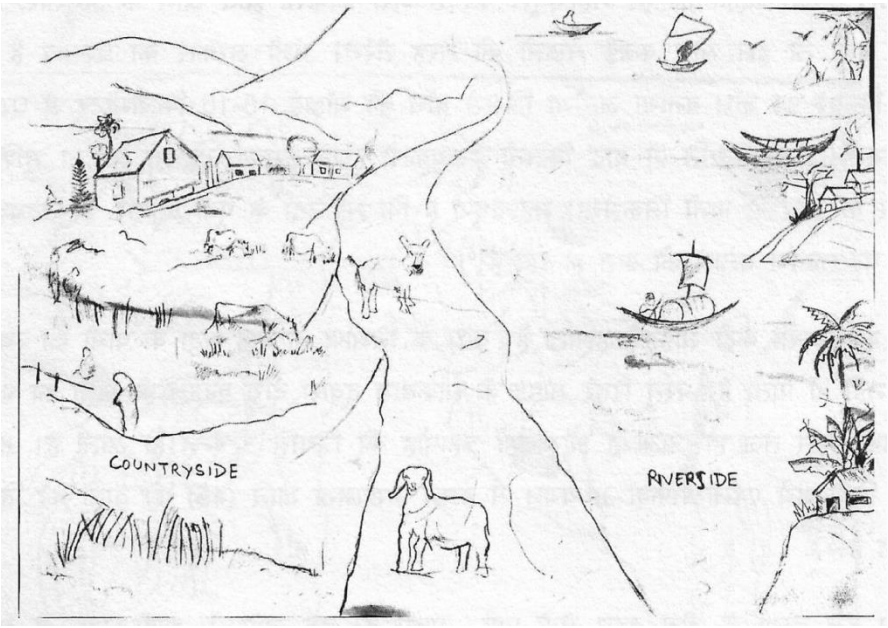

स्रोत- लेखक,

लेख के तीसरे हिस्से में, फील्ड नरैटिव के माध्यम से रिवर साइड व कंट्री साइड के आपसी

राजनीति में स्थानीय राजनीति व प्रशासन की भूमिका को देखा जा सकता है। बाढ़ के समय विशेष रुप से रिवर साईड व कंट्री साईड के बीच के आपसी संबंध व टकराव को बहुत नजदीक से देखा जा सकता है।

एक धक्का और दो बाँध को तोड़ दो.....

भरी गाँव के लोगों की छवि पूरे इलाके में बाँध विरोधी के रुप में रही है। यहाँ के निवासी अक्सर बाढ़ की आपदा होने पर बाँध को काटती है। भरौं सहित पूरे कदवा पंचायत में आने वाले रिवर साईड स्थित गाँवों की आबादी बाँध का विरोध एक धक्का और दो बाँध को तोड़ दो, बाँध हटाओं कदवा बचावो के नारे के साथ करते रहे हैं।[5] बाँध के कारण भीतर स्थित गाँव यानि रिवर साईड के लोगों की अर्थव्यस्था समाप्त।

[5] महत्वपूर्ण है कि बाँध के संदर्भ में उपरोक्त नारा अरविंद सिन्हा द्वारा निर्देशित 75 मिनट की एक डॉक्यूमेंटरी फिल्म दुई पाटन के बीच में से ली गई है, जिसमें 1987 में आए बाढ़ के बाद कदवा प्रखंड में कचौरा बाँध को काटने के सजीव दृश्य को दिखाया गया है। इसमें कचौरा बाँध को काटने वाले लोगों का मानना था कि बाँध से फायदा केवल ठेकेदारों, इंजीनियरों तथा महानंदा परियोजनाओं के अफसरों को है, आम आदमी को इससे कोई फायदा नहीं मिलता, आम आदमी का फसल तो 25 सालों से लगातार डूब रहा है। नदी-के बाढ़ का पानी बाँध के भीतर रुक जाती है, उसका जमाव हो जाता है, जिससे यहाँ के लोग मनमाफ़िक फसल उपजा नहीं पाते हैं। महत्वपूर्ण रुप से भरी निवासी चाँद खान के अनुसार, बाँध अगर इस इलाके में बना तो हम लोग कबई मछली की तरह तैरेंगे। अभी सरकार का प्रस्ताव है कि महानंदा के पश्चिमी किनारे पर बाँध बनाया जायेगा जिससे बाँध की चौड़ाई 15-16 किलोमीटर से घटकर 3 किलोमीटर हो जायेगी। वैसी स्थिति में बाढ़ कितनी प्रलयकारी होगी इसका अंदाज़ा लगाना मुश्किल होगा। लोगों के छप्पर के ऊपर से पानी निकलेगा। महत्वपूर्ण है कि महानंदा के पूर्वी किनारे पर तटबंध है और पश्चिमी किनारे पर तटबंध बनाने की बात हो रही है।[6]

रिवर साइड के बाहर का हिस्सा कंट्री साइड कहलाता है। बांध के निर्माण के बाद नदी के पानी का स्वतंत्र प्रवाह कंट्री साईड में नहीं हो पाता है। परंतु रिवर साइड के लोगबाग द्वारा बांध काटते ही पानी का प्रवाह कंट्री साइड में अचानक बहुत तेज हो जाता है और वहाँ ऊहापोह की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अपने फील्ड वर्क के दौरान किए गए एथ्नोग्राफिक अध्ययन में हमने अखलाख खान (45) की बातों को विशेष रुप से रेखांकित किया है-

वर्ष में बाकी के साल हम लोगों के बीच बहुत मैत्री पूर्ण संबंध है। पर्व त्योहारों, शादी-व्याह, व अन्य सुख दुःख में दोनों के बीच आपसी संबंधी बहुत मधुर होता है। परंतु बाढ़ के समय पता नहीं क्या हो जाता है। रिवर साइड व कंट्री साइड के लोग आपस में बांध व तटबंध के मुद्दे पर खून के प्यासे हो जाते

हैं।

[6] महत्वपूर्ण है कि सरकार द्वारा प्रस्तावित बाँध अगर निर्मित हो गए तो इससे 10 पंचायत प्रभावित होगी, जिसमें प्रमुख रुप से सिकोरना, घनगाँवा, चाँदपुर, गोपीनगर, जाजा, तैतलिया, घमरसिया आदि। कदवा के पूर्व विधायक प्रो. उस्मान गनी खान ने एक महत्वपूर्ण देते हुए कहा कि बाँगडोव के पास महानंदा नदी का बँटवारा है। महानंदा पहले उधर होकर गुजरती थी तथा इधर से कंकड़ नदी गुजरती थी। परन्तु महानंदा नदी अब इधर से गुजरने लगी। जाहिर सी बात है अगर वहीं खुदाई की जाए तो पानी का बँटवारा ठीक से हो पायेगा, जीवन इधर भी आसान होगा और उधर भी अमनचैन आ जायेगा।

तस्वीर-2 रिवर साइड व कंट्री साइड के बीच आपसी तनाव

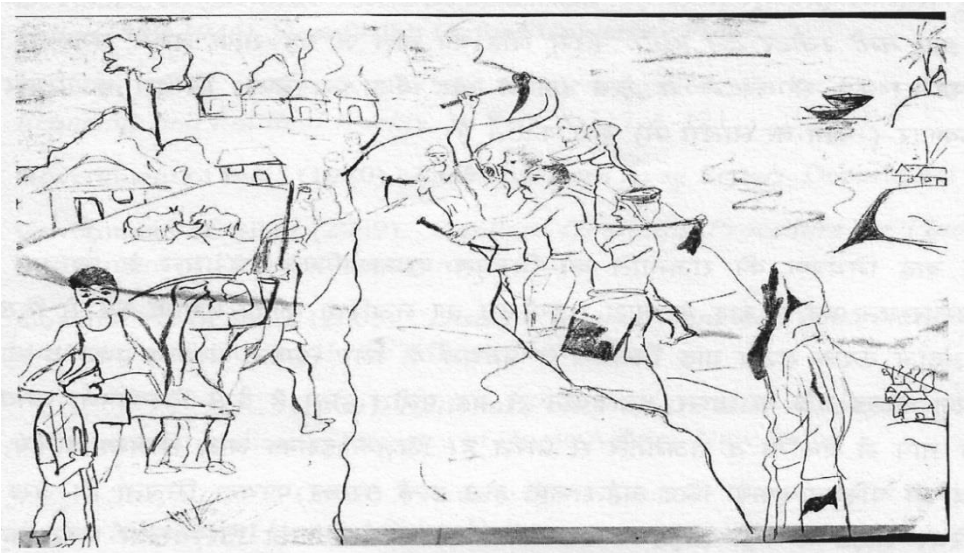

राज्य की भूमिका

रिवर साइड व कंट्री साइड के बीच इस आपसी तनाव में राज्य की भूमिका बहुत आलोचनात्मक प्रतीत होता है। राज्य के अंतर्गत स्थानीय प्रतिनिधि, नौकरशाही व ठेकेदारों की भूमिका इस संदर्भ में विशेष रुप से बताना अनिवार्य होगा। जैसे ही बाढ़ के पानी का स्तर बढ़ता है, रिवर साइड के लोग डर से कांपते रहते हैं। वहीं स्थानीय लोगों ने बताया कि 2008 के बाढ़ के समय जब बांध काटा जा रहा था तब स्थानीय नेताओं ने भी बांध कांटने में लोगों को प्रोत्साहित किया।

कंट्री साइड निवासी स्थानीय निवासी सूरज साहनी (35 वर्षीय) के अनुसार, स्थानीय विधायक हमेशा रिवर साइड के लोगों का साथ देते हैं तथा जब भी बाढ़ का समय आता है। रात में रिवर साइड के लोगों के साथ मिलकर बांध को काटते हैं। इस पूरी वारदात में पुलिस व प्रशासन भी स्थानीय राजनीति के

साथ मिलकर काम करता है।

मनी इज मनी स्वीटर देन हनी

अपने फील्ड वर्क में जब मैने स्थानीय लोगों से यह जानना चाहा कि क्या बांध के बनाने के पीछे व काटने के पीछे किसी प्रकार का विशेष हित कार्य करता है। कौन बांध को बनवाना और काटना चाहता है। इस पर 65 वर्षीय हरमू सिंह ने हमें मुस्कुराते हुए कहा- क्या आप नहीं जानते किसके हित हैं इसके पीछे। अरे साहब। मनी इज मनी स्वीटर दैन हनी। हरमू सिंह की बात से यह साफ लगने लगा था कि बांध को बनाने को नियमित रुप से काटने में नेता (अपने वोट बैंक के लिए), सिविल इंजीनियर (राजनीति दबाव में) व ठेकादर (पैसा के लालच में) बांध काटते हैं।

समग्र रुप से बिहार में बाढ़ नियंत्रण की राजनीति को विस्तृत एथ्नोग्राफिक अध्ययन के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। परंपरागत रुप से बाढ़ के साथ सहयोजन का नजरिया काफी प्रभावी रुप से दिखाई पड़ता है। जिसको नजरअंदाज करके राज्य बाढ़ नियंत्रण व प्रबंधन के लिए आपदा प्रबंधन एक्ट व नीति को प्रस्तुत करती है। परंतु फील्ड वर्क के प्राप्त अवलोकन से यह प्रतीत होता है कैसे विस्थापन, पुनर्वास व राहत की नीति अपने आप में एकांगी व राजनीति से प्रेरित है। जिसके इसका लाभ मिलना चाहिए, वे इसकी बाट जोहते हैं एवं जो परिवार इसके लिए अर्हत नहीं होते उन्हें उसका फायदा मिलता है। लेख के तीसरे हिस्से में हमने रिवर साइड व कंट्री साइड के आपसी संबंध व तनाव को विस्तार से प्रकट करते हुए इसमें राज्य के स्थानीय राजनीतिक प्रतिनिधि, स्थानीय नौकरशाही, सिविल इंजीनियर व ठेकेदार की भूमिका को आलोचनात्मक रुप से प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. Ahmed, I.(1999).Living with the floods: In Exercise in alternatives. Dhaka : The University Press Limited.

2. .....(1999a). Governance and Floods. Seminar, 478, 34-41.

3. Buchanan, F.(1928).an account of the District of Purnia, 1809-10, Superintendent's Report. Bihar and Orissa: Government Printing Press.

4. Baviskar, A. (1995). In the Belly of the River. New Delhi: Oxford University Press. Chandra, R. (2012).Knowledge as Property: Issues in the Moral Grounding of Intellectual Property Rights. New Delhi: Oxford University Press.

5. De'Souza, R. (2006).Drowned and Dammed : Colonial Capitalism and Flood Control in Eastern India (1809-1946). New Delhi: Oxford University Press.

6. Dhawan, B. D. (1989). Major and Minor Irrigation Works: Cost aspects of the Controversy. Economic and Political Weekly, 30 Sept, A-117-A-121.

7. Government of India (1980). Rashtriya Barh ayog Report. Department of Irrigation. New Delhi.

8. Government of Bihar (2009). Standard Operating Procedure for Flood Disaster Management. Department of Disaster Management. Patna.

9. Government of India (2005). Disaster Management act, 2005 National Disaster Management authority, Ministry of Home affairs. New Delhi.

10. ..... (2009). National Policy on Disaster Management, 2009, National Disaster Management authority. Ministry of Home affairs. New Delhi.

11. ..... (2013). a Review of the Disaster Management act, 2005, Report of The Task Force. Ministry of Home affairs, Delhi.

12. Hemant . (2010). Is Desh Mein Jo Ganga Bahtihai, Prabhat Prakashan. Delhi: Daryaganj. Heller, P. (2000). Degree of Democracy: Some Comparative Lessons from India. World Politics, 52(04):484-519.

13. ..... (2001). Moving the State: The Politics of Democratic Decentralization in Kerala, South Africa and Porto alegre. Politics and Society, 29(1),131-63.

14. ..... (2009) Democratic Deepening in India and South Africa, Journal of asian and African Studies. 44(1).123-49.

15. Jha, P.K. (2014). Janer kei Geet, (Hindi). Jansatta.7 October.

16. ..... (2015). State and Politics of Flood Control, Case Study of Katihar District of Bihar, unpublished PhD thesis, Department of Political Science, University of Delhi: Delhi.

17. ..... (2015). Bihar assembly Polls 2015: Seemanchal's Biggest Issue is Nowhere its Focus, India Today Blog, Retrieved 20 April, 2018 from http://indiatoday.intoday.in/story/bihar-

assembly-polls-2015-seemanchals-biggest-issue-is- nowhere-its-focus/1/514

18. .....(2017).Barh se Jiyab, Bandh se Marab: Barh Niyantran ki Rajneeti, (Hindi), Parthiman Journal, 9, 246-262..

19. Mallet, V. (2017).River of Life, River of Death: The Ganges and India's Future. London: Oxford University Press.

20. Mallick, L. (1953). Koshi. Patna : Bharat sewak Press.

21. Mishra, A. (1995). aaj Bhi Khade Hain Talaab (Hindi). New Delhi: Gandhi Peace Foundation (GPF).

22. ..... (2008).Tairne wala Samaj aaj Dob Raha Hai (Hindi).New Delhi: Gandhi Peace Foundation (GPF).

23. Mishra, D. K. (1994), Bandini Mahananda.(Hindi). Patna: SamtaPrakshan.

24. ..... (1997). The Bihar Flood Story. Economic and Political Weekly. august 30. Vol. 32, No. 35,pp 2206-2217.

25. . ..... (1999). Flood Protection That Never Was – Case of Mahananda Basin of North Bihar", Economic and Political Weekly, July, 17-23, Vol.34, No.29, pp. 2013-2018

26. ..... (1999). The Embankment Trap.Seminar478, June. pp. 46-51

27. ..... (2000). Boya Per Babool Ka -Barh Niyantran Ka Rahasya, (Hindi). New Delhi: Prithavi Prakshan.

28. ..... (2001). Living with Floods. Economic and Political Weekly. July 21-27. Vol. 36. No 29, 2756-2761.

29. ..... (2002). Living with the Politics of Floods. Dehradun: People's Science Institute. ..... (2005). The Kamla – People and River on A Collision Course', Patna: Barh Mukti abhiyan.

30. ..... (2008).Trapped Between the Devil and the Deep Sea – Story of the Kosi River. Dehradun : People's Science Institute, SANDRaP.

31. ..... (2009). The Inevitable Has Happened. Economic and Political Weekly, September, 6-12, Vol.43,No.36, 8-12.

32. Manor, J. (1999).The Political Economy of Democratic Decentralization, The World Bank, Washington DC.

33. Mondal, P. (2015), 'Disaster Management in India: Classification, Policies and Other Details, SCRIBD, Retrieved 1st April, 2018 from https://www.scribd.com/document/256597865/Disaster-Management-in-India-Classification-Policies-and-Other-Details

34. Nandy, a. (2003).The Romance of the State and the Fate of Dissent in the Tropics. New Delhi: Oxford Publication.

35. Ostrom, E. (1990). Governing the Commons: The Evolution of Institutions for Collective actions. Cambridge: Cambridge University Press.

36. Perry, R. W. (2007). What is a Disaster?. In Havidan Rodriguez, Enrico L. Quarantelli, and Russell R. Dynes, (eds), Handbook of Disaster Research. New York: Springer.

37. Quarantelli, E. L. (Henry) (2005). A Social Science Research agenda for Disasters of the 21st Century: Theoretical, Methodological and Empirical Issues and their Professional Implementation', in Ronald W. Perry and Enrico L. Quarantelli, (eds.) What is A Disaster? New answers to Old Questions, New York: Springer.

38. Rao, R.J (2001),Biological Resources of the Ganga River India. Netherlands: Kluwer academic Publishers.

39. Rangachari, R. (1999). Some Disturbing Questions. Seminar 478. 62-67.

40. Ray, C. N. (2005). A Note on the Disaster Management Bill. Economic and Political Weekly. 40(47), 19 November.

41. Renu, P. (1977). Rinjal-Dhanjal (Hindi). Delhi: Rajkamal Publication.

42. Sarkar, S & Sharma, A (2006). Disaster Management act, 2005? A Disaster is waiting?

Economic and Political Weekly. 41(35). 2 September.

43. Scott, J. C. (1998).Seeing Like A State: How Certain Schemes to Improve the Human Condition Have Failed. New Haven and London: Yale University Press.
44. Singh, P. (2008). The colonial state, zamindars and the politics of flood control in north Bihar (1850-1945)'. In Indian Economic and Social History Review. Los angeles, London/ New Delhi/ Singapore : Sage Publication.
45. Singh, S. (2016), The Local in Governance - Politics, Decentralization, and Environment, New Delhi: Oxford University Press.
46. The Economic Times (2018). India accounts for 1/5th of global death from floods. July 17, Retrieved 20 april, 2018 from https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/india-accounts-for-1/5th-of-global-deaths-from-floods/articleshow/65020398.cms

    Tripathi, H. (2003).Bihar kenadiya : Itihasik v Sanskrit Sarvekshan. Patna: Bihar Hindi granth academy.
47. Williams, P. B. (1999) Flood Control vs Flood Management. Seminar 478, pp 18-22.

31. नए भारत के निर्माण में सरकारी योजनाओं का योगदान

सरिता*

नए भारत अर्थात न्यू इंडिया का विचार वर्तमान समय में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा भारत के विकास के स्वरुप के निरूपण और इसके सामाजिक एवं आर्थिक स्वरुप के पुनर्निर्धारण हेतु प्रस्तुत नवीन संकल्पना है। नए भारत का विचार वास्तव में देश के वर्तमान राजनीतिक नेतृत्व द्वारा कल्पित एक ऐसी अवधरणा है जिसके माध्यम से राष्ट्र निर्माण के स्वरुप को नए सिरे से निरूपित किया गया है। इस प्रकार यह एक तरह से आने वाले वर्षों में देश के विकास और लोगों के जीवन को स्तर को सुधारने की एक ठोस रुपरेखा पस्तुत करने का प्रयत्न है। रोचक बात यह है कि नए भारत के विचार को प्रस्तुत करने के पश्चात केंद्रीय सरकार ने उत्तरोत्तर नित नवीन योजनाओं और कार्यक्रमों का शुभारम्भ का क्रम जारी रखा है जिससे कि नए भारत के विचार को अमली जामा पहनाया जा सके। साथ ही उल्लेखनीय बात यह भी है कि नए भारत का विचार वस्तुतः समग्रतामूलक विचार है जिसके माध्यम से व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और इसके अन्तरराष्ट्रीय परिदृश्य पर व्यापक रूप से विचार किया गया।[i] यही कारण है कि नए भारत के विचार को व्यावहारिक रूप देने के लिए आरम्भ की गई योजनाओं, कार्यक्रमों और क़दमों का क्षेत्र बहुत ही व्यापक और सर्वस्पर्शी है। इस शोध पत्र में नए भारत के निर्माण की दिशा में आरम्भ की गई योजनाओं, कार्यक्रमों के साथ साथ उठाये गए अन्य क़दमों का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

राष्ट्र निर्माण की ऐतिहासिक पृष्ठ्भूमि

भारत में राष्ट्र निर्माण का एक समृद्ध ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ही देश के अनेक मनीषियों और विचारकों ने दमनकारी औपनिवेशिक अंग्रेजी शासन के विकल्प के रूप में अपने सपनों के भारत की रुपरेखा प्रस्तुत की थी। उदाहरण के लिए, राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी ने अपने सपनों के भारत की कल्पना प्रस्तुत करते हुए इस राम राज्य के रूप में निरूपित करने का संकल्प किया था। परन्तु देश की स्वतंत्रता के पश्चात शासन की बागडोर पंडित नेहरू के हाथों में आने के साथ ही अब जिस भारत की कल्पना के साकार होने के समय आया था वह वस्तुतः पंडित नेहरू के सपनों के भारत की कल्पना ही थी।[ii] दूसरे शब्दों में, स्वातंत्र्योत्तर काल में पंडित नेहरू को ही यह अवसर मिला कि देश को विकास के पथ पर अग्रसर कर सकें और इस प्रक्रिया में उनके द्वारा कल्पित स्वरुप ही देश के भविष्य का निर्धारण

* **शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली**

करेगा। अतः देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक, वैश्विक और यहाँ तक कि ज़मीनी स्तर पर क्रियान्वित की जाने वाली योजनाओं और कार्यक्रमों के बारे में भी पंडित नेहरू ने एक समग्र रुपरेखा प्रस्तुत की। इस विचार को ही कालांतर में विकास की नेहरूवादी अवधारण का नाम दिया गया जिसके मूल में नियोजित आर्थिक विकास के साथ साथ देश में समाज के समाजवादी ढांचे की स्थापना की बात मानी जा सकती है।

इस प्रकार वास्तव में भारत के विषय के यह कहना तथ्यों से दूर जाना नहीं माना जायेगा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश की सामाजिक और आर्थिक प्रगति को नयी दिशा देने के लिए समय-समय पर देश के राजनीतिक नेतृत्व द्वारा भारत वर्ष की एक विशिष्ट कल्पना प्रस्तुत की जाती रही है। देश की स्वतंत्रता के तुरंत बाद जब पंडित जवाहरलाल नेहरू देश के प्रधान मंत्री बने तो उन्होंने भारत के लिए एक समाजवादी, प्रगतिशील और लोकतान्त्रिक देश की विचार प्रस्तुत किया। इस दृष्टि से जहाँ देश के लोकतान्त्रिक स्वरुप का निरूपण संविधान द्वारा ही कर दिया गया था वहीं प्रगतिशीलता के मूल्य को विकसित करने के लिए नेहरू ने देश के लोगों में वैज्ञानिक मनोवृति के विकास का आह्वान किया। इसी प्रकार देश के आर्थिक विकास की दिशा को समाजवादी स्वरुप देने के लिए योजना आयोग का गठन किया गया। तत्पश्चात लगभग सात वर्षों तक नेहरू द्वारा कल्पित भारत की अवधारणा के अनुरूप हीं देश के निर्माण की दशा और दिशा का निर्धारण होता रहा है। किन्तु २०१४ में प्रधानमंत्री बनने के उपरांत ही नरेंद्र मोदी द्वारा एक नए भारत के निर्माण का आह्वान किया जाने लगा है। इस आलेख में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा कल्पित नए भारत की संकल्पना का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

भारत एक विविधताओं वाला देश है जिसमे अनेक जाति, धर्म, भाषा, और संस्कृति के लोग रहते हैं।[3] भारत की यही विविधता उसे संसार अन्य देशों से भिन्न और खूबसूरत बनाती है। परन्तु इस प्रकार की विविधता देश के निर्माण की कल्पना को काफी जटिल तथा एकाधिक चिंतन का आधार भी प्रदान करती है। अतः देश की स्वतंत्रता के समय संसद भवन के केंद्रीय कक्ष के अपने ऐतिहासिक भाषण में नेहरू ने एक ऐसे भारत की कल्पना प्रस्तुत की थी जिसमें गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, विभिन्न प्रकार की विषमताओं और हिंसा व अन्य पाशविक प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाया जा सके। इसके साथ ही देश की करोड़ों जनता को जीवन की बुनियादी जरूरतों को मुहैया कराने के साथ ही उन्हें एक सुखी और संतोषजनक जीवन का आधार प्रदान किया जा सके। पंडित नेहरू द्वारा प्रस्तुत की गयी भारत वर्ष की कल्पना के सहारे ही लगभग साथ वर्षों तक देश के सामाजिक और आर्थिक विकास की रुपरेखा तय होती रही है। किन्तु प्रधानमंत्री के रूप में अपने आगमन के साथ ही नरेंद्र मोदी ने नेहरू की कल्पना के भारत को

काल बाह्य बताते हुए एक नए भारत की कल्पना प्रस्तुत की और उसी के अनुरूप अपनी सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों का निर्धारण करने लगे। प्रधानमंत्री मोदी द्वारा प्रस्तुत नए भारत की संकल्पना को दो स्तरों पर समझा जा सकता है। प्रथम, इसके अनुसार देश की सामाजिक और आर्थिक विकास की दशा और दिशा को तय करने वाली पूर्ववर्ती संस्थाओं, प्रक्रियाओं, विचारों आदि को समाप्त करके उनके स्थान पर नवीन इकाइयों का सृजन किया जाय। उदाहरण के लिए, पदभार ग्रहण करने के बाद ऐतहासिक लाल किले से अपने प्रथम उद्बोधन में ही मोदी ने योजना आयोग को भंग कर उसके स्थान पर नीति आयोग के गठन की घोषणा की। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि अब देश के आर्थिक ढांचे में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है जिसके अनुसार समाजवादी उन्मुख उपक्रमों को बंद कर उनके स्थान पर जान सामान्य द्वारा देश के आर्थिक विकास में अपने योगदान को वृहत्तर बनाने का विचार किया जाय। इस प्रकार मोदी द्वारा एक ऐसे भारत की कल्पना प्रस्तुत की गयी जिसके अंतर्गत पुरानी व्यवस्थाओं को नए सिरे से सृजित किया जाय और राष्ट्र निर्माण के प्रकल्प में जो भी पूर्ववर्ती संस्था अथवा प्रक्रिया आड़े आये उसे दरकिनार करने अन्तः समाप्त ही कर दिया जाय।

दूसरी तरफ प्रधानमंत्री द्वारा यह भी उद्घोषित किया गया कि अब देश में विकास की प्रक्रिया को नई गति देने के लिए विज्ञान तथा तकनीक के क्षेत्र में हो रहे नित नूतन अविष्कारों और प्रौद्योगिकी का सहारा लेकर लोगों के जीवन को अधिक से अधिक सुखद और निष्कंटक बनाया जाय। इस दृष्टि से प्रधानमंत्री ने अनेक योजनाओं और कार्यक्रमों की घोषणा की जिसके अनुसार देश के लोगों का जीवन जीने का नजरिया ही बदल जाय। उदाहरण के लिए, प्रधानमंत्री द्वारा घोषित डिजिटल इंडिया कार्यक्रम एक ऐसे ही कार्यक्रम है जिसके द्वारा लोगों को अपने जीवन की अधिक से अधिक चीजों और प्रक्रियायों को अपने मोबाइल द्वारा अपनी मुट्ठी में करने की कल्पना प्रस्तुत की गयी है। प्रधानमंत्री इस बात से भली भांति परिचित रहे हैं कि स्वतंत्रता के बाद देश में जिस चीज की सबसे अधिक बहुलता रही है वह थी असंख्य नीतियां और कार्यक्रम जिनका घोषित उद्देश्य लोगों के जीवन में आमूलचूल परिवर्तन लाना था। किन्तु वास्तविक रूप से ये सारी कवायद लोगों के जीवन को कितना सुचारु बना पाई हैं यह किसी से छुपा नहीं है। इसलिए वर्तमान सरकार द्वारा न केवल नवीन योजनाओं और कार्यक्रमों की घोषणा की जा रही है वरन उनके क्रियान्वयन पर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है और उनके क्रियान्वयन की स्थिति पर लगातार नज़र राखी जा रही है।

तकनीक आधारित आर्थिक विकास

नए भारत के निर्माण में वर्तमान सरकार का सर्वाधिक जोर जिस क्षेत्र पर है वह है देश के आर्थिक

विकास की दशा और दिशा को इस प्रकार पुनर्निर्धारित करना कि लोगों का जीवन पूरी तरह से उपलब्ध सूचना और संचार प्रौदयोगिकी पर आधारित हो जाय। इसे एक देश के आर्थिक विकास की रणनीति में एक क्रांतिकारी परिवर्तन इस दृष्टि से माना जा सकता है कि इसके द्वारा लोगों की आवश्यकताओं और उनकी पूर्ति के साधनों के मध्य की दूरी को न्यूनतम करने का मार्ग सुगम हो सके। उदहारण के लिए, पूर्व में लोगों को विभिन्न दैनिक उपभोग की सेवाओं जैसे बिजली, पानी आदि के बिल के भुगतान करने के लिए उन विभागों के कार्यालयों पर जाकर अपना कार्य करना पड़ता था। किन्तु डिजिटल इंडिया नामक कार्यक्रम के मूल में इसी बात को दृष्टिगोचर किया गया कि लोगों को अधिकाधिक सेवाओं की आपूर्ति घर बैठे ही उनके मोबाइल में उपलब्ध तकनीक के माध्यम से किया जा सके।

नए भारत के निर्माण की दिशा में सरकार का बहुत अधिक ज़ोर कृषि के विकास और कृषकों की स्थिति को सुधारने पर रहा है। इस दृष्टि से सरकार ने कृषि विकास से सम्बंधित अनेक योजनाओं का शुभारम्भ किया जिनमे प्रमुख हैंराष्ट् :रीय मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, परंपरागत खेती विकास योजना, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, प्रधानमंत्री कृषि बाजार यानि इकृषि - बाजार योजना इत्यादि।[iii] इन योजनाओं का मूल हेतु यह है कि कैसे देश में कृषि क्षेत्र के समग्र का विकास इस प्रकार सुनिश्चित किया जा सके कि न केवल देश में फसलों का उत्पादन बढ़ाया जा सके अपितु कृषि भूमि की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता को भी बढ़ाया जा सके। इस सन्दर्भ में प्रधानमंत्री का किसानों की आय दुगुनी करने की महत्वाकांक्षी योजना को सिरे चढाने के लिए ग्रामीण क्षेत्र के समग्र विकास के साथ साथ किसान कल्याण से सम्बंधित भी कई योजनाओं का शुभारम्भ किया गया है। दृष्टान्त के लिए, पूर्व से ही क्रियान्वित की रही महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना को जारी रखने के साथ साथ दीनदयाल अंत्योदय योजना, दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना और किसान पेंशन योजना जैसी अनेक कल्याणकारी योजनाओं को भी आरम्भ किया गया है। इस योजनाओं के माध्यम से यह सुनिश्चित करने के प्रयत्न किया जा रहा है कि ग्रामीण क्षेत्रों में न केवल लोगों को बिजली, सड़क और पानी जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति व्यवस्थित और स्थाई रूप से की जा सके अपितु ग्रामीण युवा शक्ति में कौशल और रोजगारोन्मुखी वृति का विकास किया जा सके जिससे कि वे अपने लिए कुछ नकदी की कमाई भी कर सकें।

ग्रामीण विकास के साथ ही एक जिस अन्य क्षेत्र पर सरकार ने विशेष बल दिया है वह है महिला विकास का क्षेत्र। इस सरकार का यह दृढ मत है कि यदि देश की आधी आबादी को समुचित सुख और सुविधाएँ मुहैया न कराई गयीं तो देश का सर्वांगीण विकास संभव नहीं हो सकेगा। अतः महिला विकास के

क्षेत्र अनेक योजनाओं का शुभारम्भ किया गया है जिनमे प्रमुख हैंप्रधानमंत्री मातृत्व वंदना योजना :, प्रधानमंत्री महिला शक्ति केंद्र योजना, बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ, प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना, शादी शगुन योजना आदि। इस योजनाओं के माध्यम से महिला, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं के जीवन को और अधिक सुगम बनाने का प्रयत्न किया गया है। सरकार की योजनाओं का मंतव्य वस्तुतः यह प्रतीत होता है कि महिला विकास से जुड़े जितने भी अहम् पहलू हैं उन सब पर सरकार कोई न कोई योजना क्रियान्वित करे जिससे कि महिलाओं की स्थिति को सुधारा जा सके। इस तरह लड़कियों के जन्म से लेकर उनकी पढाई, विवाह, कौशल विकास, घर-गृहथी के विषय और स्वास्थ्य से सम्बंधित मुद्दों पर विशेष बल दिया गया है। फलतः अब ऐसी स्थिति का निर्माण हो रहा है जहाँ ग्रामीण समाज को कोई भी तबका या व्यक्ति अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु स्वयं को विवश न महसूस करे।

राष्ट्रीय गौरव की अभिवृद्धि

देश के समकालीन राजनीतिक विमर्श में राष्ट्र गौरव की अभिवृद्धि सरकार की विशेष प्राथमिकता है।[iv] इस दिशा में सरकार के प्रयासों को तीन श्रेणियों में विभाजित करके देखा जा सकता है। प्रथम, देश की सामाजिक और आर्थिक विकास को नयी दिशा देने के लिए सरकार द्वारा अनेक ऐसे कदम उठाये गए हैं जिनके द्वारा देश में आधारभूत ढांचे को नयी गतिशीलता प्रदान की जा सके। इस दृष्टि से सरकार की प्रमुख योजनाएं हैंसेतु भारतम योजना :, ग्राम उदय से भारत उदय अभियान, स्मार्ट सिटी योजना, नमामि गंगे योजना, स्मार्ट गंगा सिटी योजना, पूर्वोत्तर के विकास की योजनाएं, प्रधानमंत्री खनिज क्षेत्र कल्याण योजना, वन धन योजना, दिव्यांगों के लिए योजनाएं आदि। इस योजनाओं के द्वारा सरकार सामाजिक और आर्थिक के तुलनात्मक रूप से अभी तक उपेक्षित क्षेत्रों और वर्गों पर विशेष ध्यान दिए जाने का क्रम निर्धारित किया गया है।

द्वितीय, इस सरकार का यह स्पष्ट रुख रहा है कि देश के समक्ष लम्बे समय से उपस्थित विवाद के मुद्दों अथवा चुनौतियों को टालने की बजाय उनसे पूरे मनोयोग से निपटने की दृष्टि विकसित की जाय। अतः, सरकार द्वारा पिछले कुछ दिनों से अनेक ऐसे मुद्दों को चिन्हित किया गया है जिनके बारे में कोई न कोई निर्णायक कदम उठाया जा सके। इस दृष्टि से सरकार का कश्मीर के विषय में लिए गए निर्णयों को दृष्टान्त के रूप में देखा जा सकता है। इसी प्रकार से देश के विभिन्न हिस्सों में चल रही आतंकवादी और माओवादी गतिविधियों पर भी सरकार ने प्रभावी अंकुश लगाने में बड़ी सफलता हासिल की है। इस सन्दर्भ में सरकार द्वारा विज्ञान और विशेषकर अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में किये जा रहे विशिष्ट प्रयासों ने भी इस क्षेत्र में बड़ी सफलताओं के मार्ग प्रसस्त किये हैं।

अंत में, नए भारत के निर्माण की दिशा में सरकार के प्रयासों का विवेचन कदाचित तब तक अपूर्ण प्रतीत हो सकता है जब तक कि इसकी विदेश नीति पर दृष्टिपात न किया जाय। वस्तुतः, देश के अंदर समृद्धि और जीवटता का जो वातावरण निर्मित हुआ है उससे सरकार को संभवतः यह प्रेरणा मिली कि वैश्विक स्तर पर भी देश की गरिमा और प्रतिष्ठा को अग्रसर किया जाय।[v] इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर प्रधानमंत्री ने अब तक संसार के अधिकतर देशों की यात्रायें संपन्न कर ली है और बड़े देशों के साथ भारत की मित्रता को प्रगाढ़ किया है। यही कारण है कि पिछले कुछ समय में लिए गए कई बड़े निर्णयों, जो कि पूर्व की स्थिति में कई देशों द्वारा आलोचना की विषय वस्तु बनतीं, के बावजूद भी देश की अन्तरराष्ट्रीय स्थिति पर बहुत अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है। यहाँ तक कि चीन जैसे देश जो कि परंपरागत रूप से भारत के विरोधी रहे हैं ने भी अब अपने रुख में स्पष्ट परिवर्तन करते हुए भारत की अकारण की जाने वाली आलोचनाओं से बचने का संकल्प लिया है। इस प्रकार गुट निरपेक्ष आंदोलन के अवसान के बाद वैश्विक स्तर पर भारत के घटते प्रभाव को नए भारत के प्रणेताओं ने पलट दिया है और देश को फिर से अन्तरराष्ट्रीय विरादरी में सम्मानजनक स्थान दिलाने में सफलता हासिल की है।

मर्यादित सफलताएं

हालाँकि सरकार द्वारा नए भारत के निर्माण की दिशा में अनेक योजनाओं और कार्यक्रमों का शुभारम्भ किया गया और अनेक विस्मयकारी निर्णय लिए गए, सफलता की दृष्टि से प्रत्येक योजना का क्रियान्वयन सामान रूप से प्रभावी नहीं रहा है। कई बार तो ऐसे भी प्रतीत होता है कि सरकार के कई कदम फलदायी होने की बजाय दुखदायी साबित होते दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इस सन्दर्भ में, आर्थिक क्षेत्र में विमुद्रीकरण, वस्तु और सेवा कर की सामान प्रणाली, भ्रष्टाचार के उन्मूलन के कठोर प्रयास जैसे कई ऐसे कदम अथवा निर्णय रहे हैं जिनके परिणाम विरोधाभासी रहे हैं। दूसरे शब्दों में, इन बड़े आर्थिक निर्णयों ने देश की आर्थिक विकास की दशा और दिशा को एक नए शीर्ष पर ले जाने की बजाय देश आर्थिक मंदी का कारण बने। इसके साथ ही विकास की अनेक योजनाओं का क्रियान्वयन भी समय और लागत की दृष्टि से अपेक्षा के अनुरूप नहीं रहा है जिससे नए भारत के निर्माण की गति मंद पड़ती दृष्टिगोचर होती है।

आर्थिक क्षेत्र में सुस्ती के साथ साथ सरकार के राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में भी कई ऐसे निर्णय आए जिनसे देश के सामान्य वातारवण में अशांति और अराजकता के तत्वों का संचार हुआ। इस दृष्टि से जो बात सबसे अधिक विस्मयकारी लगती है वह है सरकार को विभिन्न हितधारकों को विश्वास में लिए बिना बड़े बड़े निर्णय कर लेना। इस वृत्ति से समाज के कई वर्गों में असहजता और कुछ हद तक असुरक्षा के वातावरण का निर्माण हुआ जिसका प्रतिफलन अशांति और अराजकता के रूप में देखने को

मिल रहा है। निश्चित रूप से ऐसी प्रवृत्तियां नए भारत के निर्माण की दिशा में सकारात्मक भूमिका निभाने की बजाय नकारात्मक और विध्वंसकारी रूप धारण कर सकती हैं जिन्हे किसी भी सूरत में सुखद या सामान्य स्थिति नहीं माना जा सकता है।

देश के समकालीन आर्थिक और राजनीतिक विमर्श में नए भारत अर्थात न्यू इंडिया का विचार निश्चत रूप से राष्ट्र के नवनिर्माण की दिशा में एक सार्थक कदम माना जा रहा है। स्वतंत्रता के लगभग सात दशक के दौरान अपनाई गई राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में नया आयाम जोड़ते हुए जिस नए भारत के विचार को वर्तमान सरकार ने प्रस्तुत किया था उसको व्यावहारिक स्वरुप प्रदान करने के लिए इसने अनेक महत्वाकांक्षी कदम भी उठाये हैं। इन कदमों से निसंदेह एक ऐसे वातावरण के निर्माण का आभास होने लगा था कि इक्कीसवीं सदी का भारत वास्तव में न केवल आर्थिक विकास के नए कीर्तिमान स्थापित करेगा अपितु वैश्विक रूप से भी शनैः शनैः नेतृत्व की भूमिका में आने लगेगा। किन्तु भारत में विकास की योजनाओं के क्रियान्वयन की चुनौती शाश्वत रूप से वर्तमान समय में भी विद्यमान है जिसके कारण सरकार की कई महत्वाकांक्षी योजनाएं अपेक्षित परिणाम देने में या तो असफल प्रतीत हो रही हैं या मर्यादित सुफल ही दे पायी हैं। किसी भी सूरत में इसे संतोषजनक स्थिति नहीं माना जा सकता है। अतः इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती है कि यदि नए भारत के विचार को मूर्त रूप में परिवर्तित करना है तो सरकार को योजनाओं के क्रियान्वयन को और अधिक प्रभावी और समयबद्ध बनाना पड़ेगा। इसके अभाव में नए भारत का विचार एक मृगमरीचिका के रूप में ही हमें ललचाता रहेगा और हम बिना किसी ठोस परिणाम के नए भारत के निर्माण की अनंत यात्रा पर गतिमान बने रहने के छद्म आभास के साथ जीते रहेंगे।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारत सरकार, *स्ट्रेटेजी फॉर न्यू इंडिया @75*, नीति आयोग, नई दिल्ली, पृ. 3
2. सुनील खिलनानी, द *आईडिया ऑफ़ इंडिया*, पेंगुइन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 27
3. एम्. एस. गोरे, यूनिटी इन डाइवर्सिटीः द इंडियन एक्सपीरियंस इन नेशन बिल्डिंग, रावत, जयपुर, 2002, पृ.16
4. सौरभ मालवीय, *विकास के पथ पर भारत*, यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2019, पृ. 2-3
5. बिबेक देबरॉय, अनिर्बान गांगुली और किशोर देसाई (सं.), *मेकिंग ऑफ़ न्यू इंडियाः ट्रांसफॉर्मेशन अंडर मोदी गवर्नमेंट*, विजडम ट्री, नई दिल्ली, पृ. 6
6. इयान हॉल, *मोदी एंड द रिइन्वेंशन ऑफ़ इंडिआज फॉरेन पॉलिसी*, पॉलिसी प्रेस, लंदन, 2019, पृ. 126

32. भारत में न्याय प्रणाली : टूटते सपने व आशा की किरण

डॉ. दिनेश कुमार गहलोत*

डॉ. हरिराम परिहार**

किसी भी देश के लोकतंत्र की जड़ें कितनी गहरी है यह चार संस्थाओं की संविधानिक स्थिति को जानकर पता लगाया जा सकता है। इसमें न्यायपालिका, लोक सेवा आयोग, चुनाव आयोग व महालेखा परीक्षक शामिल है। इसमें पहली संस्था न्यायपालिका है। यदि न्यायपालिका स्वतंत्र व निष्पक्ष है, कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के दबाव से मुक्त है तो ऐसी स्थिति में कहा जा सकता है कि उस देश में लोकतंत्र की जड़ें गहरी है। देश की स्वतंत्रता से पूर्व जब अंग्रेजों का शासन था तब हमारी न्यायपालिका स्वतंत्र नहीं थी क्योंकि उस समय हमारी न्यायपालिका पर ब्रिटिश नियंत्रण था। देश की आजादी के बाद जब नये संविधान का निर्माण किया गया तब सबसे अधिक स्वतंत्रता न्यायपालिका को ही प्रदान की गई। गत 70 वर्षों के संविधानिक इतिहास में हमारे उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालय ने अपनी निष्पक्षता व स्वतंत्रता को कई बार प्रमाणित किया है।

भारत की न्यायपालिका के बारे में यह कहा जाता है कि यह न केवल नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा करती है बल्कि किसी भी सरकार की तानाशाही प्रवृत्ति को भी नियंत्रित करती है। न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति ने तो सरकारों को नागरिक हितैषी निर्णय लेने हेतु मजबूर किया। हमारी न्यायपालिका ने अपनी न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के द्वारा जिस तरह से संविधान की रक्षा की है वह प्रशंसनीय है। यही कारण है कि भारत में जब संस्थागत पतन की प्रवृति बढ़ती जा रही है इसके बावजूद न्यायपालिका आज भी आम भारतीय के लिए आशा की किरण बनी हुई है। **रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य (1950)** का मामला हो या **चम्पाकम डोरायजन बनाम मद्रास राज्य (1950)** का मामला न्यायपालिका ने स्वतंत्र स्थिति को प्रमाणित किया है। **गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य (1967)** के मामले में जिस तरह से न्यायपालिका ने व्यवस्थापिका को अपनी सीमाएँ बतलाई उससे पूरे देश की प्रशंसा मिली। इस मामले में न्यायालय ने स्पष्ट निर्णय दिया कि संविधानिक विधि अथवा सामान्य विधि में कोई अंतर नहीं है साथ ही यह भी कहा कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन नहीं कर सकती। यह निर्णय व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका के लिए न्यायपालिका द्वारा दिया गया एक संकेत था कि यदि वे

* **सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान जय नारायण व्यास विश्वद्यालय, जोधपुर**

** **सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान राजकीय महाविद्यालय, जोधपुर**

नागरिकों के मौलिक अधिकारों में किसी प्रकार की छेड़खानी का प्रयास करेंगे तो न्यायपालिका चुप नहीं रहेगी।

केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973) के मामले में जिस तरह से न्यायपालिका ने एक संतुलित निर्णय दिया वह इस बात को बतलाता है कि न्यायपालिका जनमत का कितना सम्मान करती है। जिस तरह से न्यायपालिका ने संविधान संशोधन के संदर्भ में संसद की शक्ति को स्वीकार किया उससे एक बार ऐसा लगा कि न्यायपालिका ने व्यवस्थापिका के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया लेकिन इसी मामले मे आधारभूत संरचना का जो सिद्धांत प्रतिपादित किया गया उसने एक बार फिर यह प्रमाणित किया कि भारत की न्यायपालिका अपनी अपेक्षित भूमिका को बखूबी समझती है। इस मामले में न्यायलय ने स्पष्ट निर्णय दिया कि संसद संविधान में संशोधन तो कर सकती है लेकिन वह संविधान के "मूल ढ़ाँचा" में संशोधन नहीं कर सकती है। आधारभूत संरचना का सिद्धांत यह बतलाता है कि भारत का संविधान देश की सर्वोच्च विधि है और उसमें इस प्रकार का कोई संशोधन नहीं किया जा सकता है जो संविधानिक दर्शन व संविधान निर्माताओं की सोच के विपरीत हो। **मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ (1980)** के मामले में नीति निदेशक तत्व व मूल अधिकारों में जो सामंजस्य स्थापित किया गया वह एक बार फिर यह सिद्ध करता है कि न्यायपालिका संसदीय भावनाओं तथा विधि के शासन में संतुलन को किस तरह से स्थापित करती है। **इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ (1992)** के मामले में आरक्षण संबंधी प्रावधानों की विस्तार से व्याख्या तथा समाज के सभी वर्गों के हितों को जिस तरह से ध्यान में रखा गया वह न्यायपालिका की संविधान के निर्वचन की भूमिका को स्पष्ट करती है।

कार्यस्थल पर महिलाओं की समुचित सुरक्षा करना हमारी सरकार की जिम्मेदारी है। व्यवस्थापिका को इस संदर्भ में विधि बनाने की आवश्यकता थी लेकिन जब इस संदर्भ में कोई विधि नहीं थी तो उच्चतम न्यायालय द्वारा **विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997)** के मामले में जो दिशा निर्देश जारी की गई वह स्पष्ट करती है कि हमारी न्यायपालिका समाज के एक बड़े वर्ग के हितों की किस तरह से रक्षा करती है। आज भी विशाखा गाइडलाइन सभी कार्मिक संगठनों के लिए मार्गदर्शन का कार्य करती है। **इंडियन यंग लॉयर्स एसोसिएशन बनाम भारत संघ (2018)** के मामले में सबरीमाला मंदिर में महिलाओं के प्रवेश पर लगी रोक को उच्चतम न्यायालय ने असंविधानिक ठहराया। न्यायालय ने स्पष्ट कहा कि भक्ति में किसी भी प्रकार का लैंगिक भेदभाव नहीं हो सकता नवतेज जोहर बनाम भारत संघ (2018) के मामले में दो वयस्कों के बीच सहमति से समलैंगिक संबंध को अपराध बनाने वाले लगभग डेढ़ सौ वर्ष पुराने कानून अर्थात आईपीसी की धारा 377 को समाप्त कर दिया गया। न्यायालय का स्पष्ट मत है कि चाहे समाज का कोई छोटा भी वर्ग क्यों ना हो उसके मौलिक अधिकारों की रक्षा होनी चाहिए। **जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ (2018)** के मामले में आईपीसी की धारा 497 को गैरकानूनी माना गया। न्यायालय ने स्पष्ट

विचार व्यक्त किया कि यह धारा महिलाओं के साथ भेदभाव करती है। **कॉमन कॉज बनाम भारत संघ (2018)** के मामले में न्यायालय ने एक तरह से इच्छा मृत्यु को स्वीकार कर लिया। इस मामले में न्यायालय ने स्पष्ट कहा कि गरिमा पूर्ण मृत्यु का अधिकार नागरिकों के मौलिक अधिकार के अंतर्गत शामिल है। **साफिन जहां बनाम अशोकान (2018)** के मामले में न्यायालय ने धर्म बदलना इच्छा अनुरूप धर्म के चुनाव का मौलिक अधिकार के रूप में स्वीकार किया। वर्ष **2018 के स्वप्निल त्रिपाठी बनाम भारत के उच्चतम न्यायालय** के मामले में जिस तरह से न्यायालय ने कोर्ट की कार्यवाही का सीधा प्रसारण के अधिकार को स्वीकार किया वह अपने आप में इस बात को प्रमाणित करता है कि न्यायपालिका नागरिकों के संविधानिक अधिकारों के प्रति कितनी सजग है साथ ही इस बात को भी स्पष्ट करता है कि कोर्ट की सीधी कार्यवाही के प्रसारण से नागरिकों में संविधानिक जागरूकता का विकास भी होगा। यह निर्णय उच्चतम न्यायालय द्वारा नागरिकों के अधिकारों में संविधानिक जागरूकता का एक प्रयास है। उच्चतम न्यायालय का यह निर्णय यह स्पष्ट करता है कि हमारी न्यायपालिका नागरिकों के अधिकारों की किस तरह से रक्षा करती है। इन सब मामलों में न्यायालय द्वारा निभाई गई भूमिका वह कारण है जिसकी वजह से देश के आम नागरिक की आशाएँ अभी भी न्यायपालिका से जुड़ी हुई है। संस्थागत पतन के इस दौर में न्यायपालिका ही भारत में एक ऐसी संस्था है जिससे आम आदमी न्याय की अपेक्षा व उम्मीद रखता है। लेकिन इन सबके बावजूद का पिछले कुछ दशकों में न्यायपालिका में कुछ ऐसी घटनाएँ भी हुई है जिससे आम नागरिक का विश्वास डगमगाया है।

जिस तरह से न्यायाधीशों पर कदाचार व अक्षमता के आरोप लगे इससे आम नागरिक को निराशा हाथ लगी है। संविधान लागू होने के पहले 40 वर्षों तक न्यायपालिका की स्थिति संतोषजनक रही है लेकिन इसके बाद दिन-ब-दिन न्यायपालिका की भूमिका पर लोगों को संदेह हुआ है। 1993 में वी रामास्वामी उच्चतम न्यायालय के ऐसे पहले न्यायाधीश बने जिनके विरूद्ध लोकसभा में उन्हें हटाने के लिए प्रस्ताव लाया गया। यह अलग बात थी कि वह प्रस्ताव पारित नहीं हो पाया। लेकिन जिस तरह से पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के रूप में कार्य करते हुए उन पर भ्रष्टाचार के आरोप लगाए गए वह आरोप न्यायपालिका पर विश्वास डगमगाने का पहला संकेत था। इसके बाद अलग-अलग उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाने के लिए प्रस्ताव लाए गए। इसके अंतर्गत कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सौमित्र सैन, कर्नाटक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश तथा बाद में सिक्किम उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश बने पीडी दिनाकरण, गुजरात उच्च न्यायालय के जेबी पारदीवाला, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के न्यायाधीश एसके सैंगले पर जिस तरह के आरोप लगाए गए उससे न्यायपालिका भी उन संस्थाओं में शामिल होने लगी जिसमें आम जन का विश्वास कम होने लगा। लेकिन पिछले दो-तीन

वर्षों से लगातार कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हुई जिसने इस विश्वास को पूरी तरह से हिला दिया।

वर्ष 2017 में कर्नाटक उच्च न्यायालय के तत्कालीन न्यायाधीश सी एस कर्णन को लेकर जिस तरह का विवाद हुआ वह कई सारे प्रश्न खड़े करता है। सीएस कर्णन भारत के संविधानिक इतिहास के ऐसे पहले व एकमात्र न्यायाधीश बने जिन्हें पद पर रहते हुए न्यायिक अवमानना के मामले में छह माह की सजा दी गई। वर्ष 2018 के जनवरी माह में जिस तरह से उच्चतम न्यायालय के चार वरिष्ठ तम न्यायाधीशों के द्वारा एक प्रेस कांफ्रेंस आयोजित की गई वह यह प्रमाणित करती है कि देश के सबसे बड़े न्यायालय में सब कुछ ठीक नहीं चल रहा है। चार न्यायाधीशों ने जिस तरह से उच्चतम न्यायालय के प्रशासनिक निर्णय पर प्रश्न उठाए वह भारत के लोकतंत्र के लिए बहुत बड़ा खतरे का संकेत है। इसके बाद तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा को हटाने के लिए राज्य सभा में प्रस्ताव लाया गया हालांकि राज्यसभा के सभापति ने यह प्रस्ताव खारिज कर दिया लेकिन यह भी भारत के संविधानिक इतिहास में पहली बार हुआ कि किसी मुख्य न्यायाधीश की ईमानदारी पर संदेह करते हुए इस प्रकार का प्रस्ताव लाया गया। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के वर्तमान न्यायाधीश एसएन शुक्ला के बारे में पूर्व मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा तथा वर्तमान मुख्य न्यायाधीश रंजन गोगोई दोनों ने राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री को इन्हें हटाने के लिए पत्र लिखा था। यह भी भारत के संविधानिक इतिहास में पहली बार हुआ। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी घटनाएँ भी है जो उच्चतम न्यायालय के आंतरिक प्रशासन पर प्रश्न लगाती है। न्यायाधीशों की नियुक्ति के संदर्भ में सरकार व कॉलेजियम के बीच मतभेद इन वर्षों में स्पष्ट दिखाई दिए। उत्तराखंड उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति के एम जोसेफ की उच्चतम न्यायालय में नियुक्ति को जिस तरह से लटकाया गया वह प्रमाणित करता है कि सरकार वांछित लोगों को ही न्यायाधीश के रूप में देखना चाहती है। इसी प्रकार से गुजरात उच्च न्यायालय के न्यायधीश ए ए कुरैशी को मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्त नहीं किया गया तथा यह मामला वर्तमान समय में उच्चतम न्यायालय में विचाराधीन है। यह उदाहरण इस बात को प्रमाणित करते हैं कि न्यायपालिका भी संस्थागत पतन के इस दौर में अछूती नहीं है।

पिछले दो दशकों की घटनाओं ने न्यायधीशों की नियुक्ति प्रक्रिया पर भी प्रश्न उठाए है। अनुच्छेद 124 की धारा 2 के अनुसार उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है तथा इस संदर्भ में भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करना आवश्यक है। इसी प्रकार से अनुच्छेद 217 की धारा 1 के अनुसार उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा उस राज्य के राज्यपाल से परामर्श करके की जाती है **एस पी गुप्ता बनाम भारत संघ (1982)** तथा **सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट ऑन रिकॉर्ड एसोसिएशन बनाम भारत संघ (1993)** के वादों में दिए गए निर्णय से कॉलेजियम व्यवस्था

की स्थापना हुई। हालांकि न्यायाधीशों की नियुक्ति के संदर्भ में कॉलेजियम जैसे शब्द का उल्लेख संविधान में नहीं है। 1993 से कॉलेजियम व्यवस्था प्रारम्भ हो गई। इस कॉलेजियम में भारत के मुख्य न्यायाधीश अध्यक्ष के रूप में होते हैं जबकि उच्चतम न्यायालय के चार वरिष्ठतम न्यायाधीश सदस्य के रूप में शामिल होते है। 1998 में राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय से लिए गए संदर्भ पर यह निर्णय दिया गया कि कॉलेजियम की अनुशंसा को राष्ट्रपति एक बार पुनर्विचार हेतु भेज सकता है। इस प्रकार से उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति में निर्णायक भूमिका स्वयं न्यायपालिका की हो गई। भारत विश्व का एक ऐसा देश बन गया जहां न्यायाधीशों की नियुक्ति एक प्रकार से न्यायधीश करने लग गए हैं।

वर्ष 2000 में संविधान की समीक्षा करने हेतु पूर्व मुख्य न्यायाधीश एम एन वैंकटचैल्लयैया की अध्यक्षता में एक आयोग गठित किया गया जिसने वर्ष 2002 में अपनी अनुशंसा दी। इस आयोग ने न्यायाधीशों की नियुक्ति के संदर्भ में न्यायिक नियुक्ति आयोग की स्थापना की अनुशंसा की थी। डॉ मनमोहन सिंह की सरकार द्वारा इस हेतु वर्ष 2013 में 120 वां संविधान संशोधन विधेयक भी लाया गया लेकिन यह पारित नहीं हो पाया। वर्ष 2014 में लोकसभा भंग हो जाने के कारण यह विधेयक भी समाप्त हो गया। वर्ष 2014 में 121 वां संविधान विधेयक पारित किया गया जो राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बाद 99 वें संविधान संशोधन के रूप में लागू हुआ। इस संशोधन के द्वारा संविधान में 124क, 124ख तथा 124 ग अनुच्छेद जोड़े गए। इसके द्वारा राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग का प्रावधान किया गया जिसमें मुख्य न्यायाधीश अध्यक्ष, उच्चतम न्यायालय के दो वरिष्ठ न्यायाधीश सदस्य के रूप में, विधि मंत्री पदेन सदस्य के रूप में तथा दो विधि विशेषज्ञों को सदस्य के रूप में शामिल किया गया। इस आयोग द्वारा उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति व उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के स्थानांतरण के संदर्भ में राष्ट्रपति को अनुशंसा करने का कार्य करने का प्रावधान किया गया लेकिन इन संशोधन को भी **सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट ऑन रिकॉर्ड एसोसिएशन बनाम भारत संघ (2015)** के मामले में चुनौती दी गई। जे एस खेहर की अध्यक्षता वाली संविधान पीठ ने 16 अक्टूबर 2015 को दिए अपने निर्णय में 99 वें संविधान संशोधन को संविधान के आधारभूत संरचना का उल्लंघन मानते हुए इसे असंविधानिक घोषित कर दिया तथा कॉलेजियम व्यवस्था को बहाल कर दिया। इसके बाद एक बार फिर कॉलेजियम की अनुशंसा पर राष्ट्रपति द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति होने लगी है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति में कार्यपालिका व न्यायपालिका दोनों की भूमिका रहे इस हेतु मेमोरेंडम ऑफ प्रोसीजर विकसित किया गया है। वर्तमान में इसी प्रक्रिया से न्यायाधीशों की नियुक्ति हो रही है। इन सब के बावजूद भी नियुक्ति प्रक्रिया निरंतर विवाद का विषय रहा है। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है

कि अब कॉलेजियम की अनुशंसा वेबसाइट पर अपलोड भी की जा रही है, जिससे आमजन को भी किसी व्यक्ति पर कॉलेजियम की अनुशंसा तथा सरकार की आपत्तियों की जानकारी मिल पा रही है। न्यायाधीशों का आचरण भी स्वयं कई बार विवाद का विषय बना है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश एसएन शुक्ला का मामला इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। न्यायपालिका द्वारा 1999 में इन हाउस प्रोसीजर की स्थापना की गई जो कि सात चरणीय प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के अंतिम चरण के तहत एस एन शुक्ला को हटाने हेतु मुख्य न्यायाधीश ने राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री को पत्र लिखा है। न्यायपालिका भारत जैसे देशों में समाज के अंतिम व्यक्ति के लिए आज भी आशा की अंतिम किरण है। पिछले 7 दशकों में न्यायपालिका ने अपनी स्वतंत्रता का परिचय दिया है। शासन व्यवस्था के तीनों अंगों में सर्वाधिक आशा न्यायपालिका से है। न्यायपालिका कार्यपालिका के दबाव से मुक्त रहें तथा स्वयं न्यायाधीश अपनी अपेक्षित भूमिका को समझे तभी लोकतंत्र पर मंडराते खतरों को कम किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. ऑस्टिन ग्रेनविल, द इंडियन कांस्टीटयूशन-कॉर्नरस्टोन ऑफ ए नेशन; 2016, ऑक्सफोर्ड इंडिया पेपरबैक्स 2. जैन एम.पी., इंडियन कांस्टीटयूशनल लॉ, लेक्सिस नेक्सिस
2. पांडे जे.एन., कांस्टीटयूशनल लॉ ऑफ इंडिया, सेन्ट्रल लॉ एजेंसी
3. बसु, डी.डी., इंट्रोडक्शन टू द कांस्टीयूशन ऑफ द इंडिया; 23 वॉ संस्कण, लेक्सिस
4. पालखीवाला, नानी, वी, द नेशनः द लॉस्ट डिकेड्स; यू.बी.एस. पब्लिर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स
5. नरीमन, फली एस., गॉड सेव द ऑनरेबल सुप्रीम कोर्ट; हे हाउस इंडिया, 2018

***

33. विधान परिषद् की संरचना एवं कार्य का एक सामान्य अवलोकन

डॉ. अशोक कुमार*

संघीय व्यवस्था के अनुरूप भारत में केन्द्र की भाँति राज्यों में विधानमंडल की व्यवस्था है, किन्तु कुछ राज्यों में ही विधानमंडल द्विसदनीय है। बहुत से राज्यों में मात्र एक सदनीय विधान सभा ही है। सात राज्यों यथा बिहार, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तेलंगना और जम्मू-कश्मीर में द्विसदनीय विधानमंडल है। राज्य स्तरीय द्विसदनीय विधानमंडल के प्रथम, निम्न एवं लोकप्रिय सदन को 'विधान सभा' तथा द्वितीय एवं उच्च सदन को 'विधान परिषद' कहा जाता है। विधान परिषद का अस्तित्व विधान सभा की इच्छा पर निर्भर करता है, हालांकि संसद की उसमें स्वीकृति आवश्यक है। विधान परिषद् एक स्थायी सदन है तथा इसकी सदस्य संख्या राज्य की विधान सभा की कुल सदस्य संख्या के एक-तिहाई से अधिक नहीं हो सकती है, हालांकि न्यूनतम 40 बतायी गई है। विधान परिषद् की स्थिति विधान सभा की तुलना में बहुत ही कमजोर है। विधान परिषद् की कार्य-प्रणाली की अनेक सीमाएँ हैं तथा अनेक उपायों से इसे नियंत्रित किया जा सकता है।

द्विसदनात्मक प्रणाली, धन विधेयक, वित्त विधेयक, संसदीय प्रक्रियाएँ, आनुपातिक प्रणाली, गणपूर्ति।

प्रस्तावना:

संविधान के अनुच्छेद 168(1) व (2) के अनुसार, "प्रत्येक राज्य के लिए एक विधानमंडल होगा, जो राज्यपाल तथा कुछ राज्यों में दो सदनों तथा कुछ राज्यों में एक सदन से मिलकर बनेगा। जहाँ किसी राज्य के विधानमंडल के दो सदन होंगे, वहाँ एक 'विधान सभा' और दूसरा 'विधान परिषद' के नाम से जाना जायेगा।"[1] इस प्रकार संविधान द्वारा प्रत्येक राज्य के लिए एक विधानमंडल की व्यवस्था की गयी है।

संविधान की व्यवस्था के अनुसार कुछ राज्यों में विधानमंडल के दो सदन, विधान सभा (Legislative Assembly) और विधान परिषद (Legislative Council) है तथा कुछ राज्यों में विधानमंडल का एक सदन है, जिसे 'विधान सभा' कहा जाता है। राज्यपाल को भी विधानमंडल का अभिन्न अंग माना गया है। इस प्रकार राज्य विधानमंडल के अग्रलिखित तीन अंग हो सकते हैं: राज्यपाल, विधान सभा और विधान परिषद्।

राज्यपाल विधानमंडल के किसी सदन का सदस्य न होते हुए भी विधानमंडल का अभिन्न अंग होता है। विधान सभा को विधानमंडल का लोकप्रिय, प्रथम, निम्न सदन ;Lower House) कहा जाता है। इसके सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा होता है तथा विधान परिषद् को विधानमंडल का द्वितीय एवं उच्च सदन (Upper House) कहा जाता है। इसके सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से होता है। यह उल्लेखनीय है कि

* पी.एच.डी, पटना विश्वविद्यालय, पटना

जिन राज्यों में विधानमंडल के दो सदन हैं, उनमें राज्यपाल, विधान परिषद् तथा विधान सभा तीनों को संयुक्त रूप से विधानमंडल कहते हैं। भारतीय संघ के जिन राज्य की विधायिका एक सदन यानि विधान सभा है, उनमें राज्यपाल और विधान सभा, दोनों को संयुक्त रूप से विधानमंडल कहते हैं।

राज्यों के लिए विधान परिषद् का गठन संविधान द्वारा ऐच्छिक रखा गया है। संविधान के अनुसार राज्य की विधान सभा अपने उपस्थित व मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत से पारित प्रस्ताव द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भारतीय संसद, साधारण कानून बनाने की प्रक्रिया से ही कानून बनाकर किसी राज्य में विधान परिषद् की स्थापना कर सकती है और इसी प्रकार किसी राज्य में स्थापित विधान परिषद् को समाप्त भी कर सकती है।[2]

संविधान के द्वारा द्विसदनात्मक व्यवस्था वाले राज्य की विधान परिषद् के सदस्यों की कुल संख्या उस राज्य की विधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या के एक-तिहाई से अधिक नहीं होगी परन्तु ऐसे किसी भी राज्य में विधान परिषद् के सदस्यों की कुल संख्या किसी भी दशा में 40 से कम नहीं होगी।[3] परन्तु जम्मू-कश्मीर इसका अपवाद है जहाँ विधान परिषद् में 36 सदस्य हैं।

विधान परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन परोक्ष रूप से आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा होता है। निर्वाचन प्रणाली के अनुसार कुल सदस्यों की संख्या का विभाजन निम्नलिखित प्रकार है:

(1) विधान परिषद् के कुल एक-तिहाई सदस्यों का निर्वाचन उस राज्य की स्थानीय संस्थाओं (नगरपालिका, जिला बोर्ड आदि) के सदस्यों द्वारा होता है।

(2) कुल सदस्यों के एक-तिहाई राज्य की विधान सभा के सदस्यों द्वारा उन सदस्यों में से निर्वाचित किये जायेंगे जो विधान सभा के सदस्य नहीं हैं।

(3) कुल सदस्य संख्या के 1/12 सदस्य विश्वविद्यालयों के कम-से-कम तीन वर्ष पुराने स्नातकों द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे।

(4) कुल सदस्य संख्या के 1/12 सदस्य राज्य की माध्यमिक शिक्षा संस्थाओं व उनसे उच्च स्तर की शिक्षा संस्थाओं के कम-से-कम तीन वर्ष पुराने शिक्षकों द्वारा निर्वाचित हां ेगे।

(5) शेष 1/6 सदस्य राज्य के राज्यपाल द्वारा मनोनीत किये जायेंगे।

वर्तमान में विभिन्न राज्यों की विधान परिषदों की रचना:

राज्य	कुल सदस्य संख्या	स्थानीय संख्याओं द्वारा	राज्य विधान सभा	स्नातकों द्वारा निर्वाचित	शिक्षकों द्वारा निर्वाचित	राज्यपाल द्वारा नामजद

		निर्वाचित सदस्य	द्वारा निर्वाचित सदस्य	सदस्य	सदस्य	सदस्य
बिहार	75	24	27	6	6	12
कर्नाटक[4]	75	21	21	6	6	9
उत्तर प्रदेश	108	39	39	9	9	12
महाराष्ट्र	78	22	30	7	7	12
जम्मू-कश्मीर	36	6	22	2		6
आन्ध्र प्रदेश[5]	58	20	20	5	5	8
तेलंगना[6]	40	14	14	3	3	6

संविधान के अनुसार विधान परिषद् के उम्मीदवार के लिए आवश्यक है[7] कि वह (i) भारतीय नागरिक हो, (ii) कम से कम 30 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, (iii) संघ या राज्य सरकार के अधीन मंत्रीपरिषद् को छोड़कर किसी लाभ के पद पर कार्यरत न हो, (iv) सम्बन्धित राज्य का निवासी हो और (v) संसद द्वारा निर्धारित अन्य सभी योग्यताएँ रखता हो।

संविधान के अनुच्छेद-172(2) की व्यवस्था के अनुसार विधान परिषद् एक स्थायी सदन है।[8] यह कभी भंग नहीं होती इसके द्वारा एक-तिहाई सदस्य प्रति दो वर्ष के उपरान्त अवकाश ग्रहण करते हैं और उनके स्थान पर नवीन सदस्य निर्वाचित होते रहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक सदस्य का कार्यकाल 6 वर्ष रहता है, परन्तु त्याग-पत्र देकर कोई भी सदस्य समय से पूर्व भी अपना पद छोड़ सकता है।

यदि कोई सदस्य सदन की आज्ञा के बिना लगातार 60 दिनों तक विधानमंडल (दोनों सदनों के लिए समान नियम) की बैठकों से अनुपस्थित रहता है तो सदन उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकता है।

विधान परिषद् की गणपूर्ति व अधिवेशन के नियम विधान सभा के अनुरूप ही हैं। संविधान के अनुच्छेद-193 की व्यवस्था के अनुसार यदि कोई सदस्य आवश्यक शपथ-ग्रहण किये बिना अथवा अयोग्य होते हुए भी विधानमंडल की सदस्यता ग्रहण कर लेता है तो उसे 500 रुपये प्रतिदिन के हिसाब आर्थिक दण्ड देना होता है। (i) किसी सदस्य द्वारा अपने दल के निर्देश के प्रतिकूल सदन में मतदान करने अथवा बिना अनुमति के मतदान में अनुपस्थित रहने पर उसकी सदस्यता समाप्त हो जाती है, परन्तु यदि 15 दिन में उसका दल उसे क्षमा कर देता है तो उसकी सदस्यता प्रभावित नहीं होती, (ii) निर्वाचित होने के बाद किसी निर्दलीय सदस्य द्वारा किसी

राजनीतिक दल की सदस्यता ग्रहण कर लिये जाने पर, (iii) शपथ ग्रहण कर लेने के पश्चात् किसी मनोनीत सदस्य द्वारा किसी राजनीतिक दल की सदस्यता ग्रहण कर लिये जाने पर एक वर्ष में विधानमंडल के दोनों सदनों के कम से कम दो अधिवेशन (सत्र) राज्यपाल द्वारा आमन्त्रित किया जाना अनिवार्य होता है। दोनों अधिवेशनों के मध्य अधिकतम 6 माह का अन्तर ही हो सकता है, गणपूर्ति के लिए 10 सदस्यों अथवा सदन के 1/10 सदस्यों की उपस्थिति (इनमें से जो भी अधिक हो) आवश्यक होती है। इस निर्धारित उपस्थिति के अभाव में गणपूर्ति होने तक के लिए अध्यक्ष या सभापति द्वारा बैठक निलम्बित कर दी जाती है।

विधान परिषद् एक कमजोर द्वितीय सदन है। इसे राज्य सभा से भी कम अधिकार प्राप्त हैं। इसके कार्यों को निम्नलिखित तीन वर्गों में प्रस्तुत किया जा सकता है:

1. विधायी शक्तियाँ : एक साधारण विधेयक किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। दोनों सदनों द्वारा पारित होने पर ही वह कानून बन सकता है। विधान सभा द्वारा पारित होने के बाद प्रत्येक विधेयक विधान परिषद् की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। विधान परिषद् विधेयक को अस्वीकृत कर सकती है या उसे संशोधित कर सकती है अथवा उस पर कोई कार्यवाही न करते हुए उसे उसी रूप में पारित कर सकती है जिस रूप में विधान सभा ने उसके पास भेजा था। यदि परिषद् तीन माह की अवधि में विधान सभा को कोई सूचना नहीं देती है तो विधेयक को परिषद् द्वारा अस्वीकृत मान लिया जाएगा। परिषद् यदि विधेयक को अस्वीकृत करती या संशोधन करती है या उस पर कोई कार्यवाही नहीं करती है तो विधान सभा को पुनः उस विधेयक पर विचार करना पड़ता है। विधान सभा विधान परिषद् के सुझावों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है तथा विधेयक को पारित कर सकती है। विधेयक पुनः विधान परिषद् के पास भेजा जाता है। परिषद्, उपर्युक्त मार्गों में से कोई भी मार्ग अपना सकती है लेकिन इस बार एक माह से अधिक की देरी नहीं लगा सकती। यदि इस बार भी परिषद् विधान सभा द्वारा पारित विधेयक को स्वीकृत नहीं करती है तो विधान सभा पुनः उपर्युक्त प्रक्रिया ही अपनायेगी। इस प्रकार विधान परिषद् प्रथम बार तीन माह की देरी तथा दूसरी बार एक माह की देरी लगा सकती है अर्थात् परिषद् विधान सभा द्वारा पारित विधेयक के मार्ग में अधिक-से-अधिक चार माह की देरी लगा सकती है। संविधान इस प्रश्न पर मौन है कि उस विधेयक के सम्बन्ध में क्या होगा जो परिषद् द्वारा पारित होगा लेकिन विधान सभा द्वारा अस्वीकृत। विशेषज्ञों का कहना है कि इस प्रकार का विधेयक अन्तिम रूप से अस्वीकृत समझ लिया जाएगा।

2. विधायी शक्तियाँ: वित्तीय क्षेत्र में विधान परिषद् की वही स्थिति है जो राज्य सभा की है। इस सदन में धन विधेयक पुनः नहीं भेजा जाता। विधान सभा द्वारा पारित होने के बाद धन विधेयक परिषद् के पास सुझाव के लिए भेजा जाता है। परिषद् को अपने सुझावों के साथ चैदह दिनों के अन्दर विधेयक को विधान सभा के पास लौटा देना पड़ता है। यदि वह इस अवधि के अन्दर ऐसा नहीं करती है तो विधेयक स्वतः कानून बन जाता है। विधान सभा परिषद् के सुझावों को स्वीकृत या अस्वीकृत कर सकती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वित्तीय मामलों में विधान परिषद् को नहीं के बराबर अधिकार प्राप्त है।

मंत्रिपरिषद् को नियंत्रित करने की वास्तविक शक्ति विधान सभा को प्राप्त है क्योंकि मंत्रिपरिषद् विधान सभा के प्रति उत्तरदायी है। इस सम्बन्ध में भी विधान परिषद् की शक्तियाँ बहुत थोड़ा है, फिर भी वह कुछ सीमा तक कार्यपालिका को नियंत्रित कर सकती है। प्रशासन सम्बन्धी मामलों पर परिषद् में प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछे जा सकते हैं। सार्वजनिक महत्व के प्रश्न पर इसमें वाद-विवाद हो सकता है तथा प्रस्ताव पारित किया जा सकता है, लेकिन विधान सभा के सदृश्य यह मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित नहीं कर सकती।

राज्य विधान परिषद् के पक्ष और विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं। विधान परिषद् के विपक्ष में तर्क निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है:

(1) विधान परिषद् की रचना अप्रजातान्त्रिक है, क्योंकि इसके सदस्य परोक्ष रूप से निर्वाचित होते हैं।

(2) इस सदन द्वारा धन व समय की बर्बादी होती है क्योंकि विधान सभा द्वारा पारित विधेयक अन्ततः पारित होता ही है।

(3) विधान परिषद् का कार्यपालिका पर कोई प्रभावशाली नियन्त्रण नहीं होता। विधान सभा का ही कार्यपालिका पर प्रभावी व एकल नियन्त्रण है।

(4) वित्तीय विधेयकों में उसकी शक्ति न के बराबर है अर्थात् केवल विलम्बकारी है।

(5) आलोचकों का यह भी तर्क है कि निर्वाचन में पराजित हुए राजनेताओं को इस सदन में स्थान देकर जनता की इच्छा का अनादर किया जाता है।

(6) आलोचकों का तर्क है कि विधान परिषद् में कुछ विशिष्ट वर्गों के प्रतिनिधित्व व उनके हितों की रक्षा के नाम पर, ये सदस्य बहुसंख्यक हितों की उपेक्षा करते हैं।

(7) उपर्युक्त के अतिरिक्त संविधान लागू होने के 70 वर्षों बाद भी अनेक राज्यों में विधान परिषद् की स्थापना नहीं हुई जो इस बात का प्रमाण है कि यह सदन अनुपयोगी है। यही नहीं, पश्चिम बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, पंजाब आदि राज्यों में भी विधान परिषद् थी, बाद में इसका उन्मूलन कर दिया गया है।

विधान परिषद् के पक्ष में तर्क निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है:

(1) यह सदन विधेयक में विलम्ब करके जनता को अपना मत अभिव्यक्त करने का अवसर देता है। स्पष्टतः जनता के हित में है।

(2) यह संशोधनकारी सदन के रूप में कार्य करता है। ब्लण्ट्शली ने कहा भी है कि "चार आँखें दो आँखों की तुलना में सदैव अच्छा देखती है।"

(3) विधान परिषद् में विशेष हितों- अल्पसंख्यकों, विभिन्न व्यवसायों व वर्गों को प्रतिनिधित्व मिलता है।

(4) इसमें परिपक्व और अनुभवी लोग होते हैं। राज्यपाल इसमें कुछ ऐसे व्यक्तियों को मनोनीत करता है जो

कला, साहित्य, विज्ञान, समाज सेवा, सहकारिता आन्दोलन में विशेष अनुभवी हों।

(5) यह सदन वाद-विवाद का बहुत ही उपयुक्त सदन है क्योंकि इसमें थोड़े सदस्य होते हैं जो किसी प्रस्ताव या विधेयक पर शान्ति व गम्भीरता से विचार कर सकते हैं।

(6) प्रथम सदन के कार्य-बोझ को कम करने के लिए विधान परिषद् उपयोगी है।

अध्ययन का उद्देश्य:

शोध आलेख का उद्देश्य 'विधान परिषद्' की संरचना तथा कार्यों का सामान्य अवलोकन करना है ताकि राज्य विधानमंडल में न केवल विधान परिषद् की स्थिति की जानकारी प्राप्त हो सके, बल्कि इसकी आवश्यकता व प्रासंगिकता के आयाम भी स्पष्ट हो सके। इस शोध आलेख से विधान परिषद् के पक्ष तथा विपक्ष में तर्कों को प्रस्तुत किया गया है, जिसके इसकी अनिवार्य अथवा द्वितीयक स्थिति का आकलन संभव होगा। इस शोध आलेख से राज्यों की राजनीति में द्विसदनात्मक प्रणाली का औचित्य भी प्रमाणित हो सकता है। स्पष्टतः शोध आलेख का उद्देश्य स्पष्ट रूप में सर्वविदित है।

परिकल्पना:

प्रस्तुत शोध पत्र का शीर्षक "विधान परिषद् की संरचना एवं कार्य का एक सामान्य अवलोकन" है। इस शीर्षक की परिकल्पना को इसके अस्तित्व व औचित्य से सम्बद्ध किया जा सकता है। सामान्यतः विधान परिषद् को द्वितीय ही नहीं, द्वितीयक (गौण) सदन कहा जाता है। यह वाक्य सही नहीं है। विधान परिषद् की स्थिति राज्य विधानमंडल में विधान सभा की तुलना में निश्चित रूप में कमजोर है, परन्तु गौण नहीं कहा जा सकता है। वर्ष 2007 में द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग के सातवें प्रतिवेदन के बाद विधान परिषद् की स्थिति सशक्त हुई है तथा भविष्य में इसे लोकतांत्रिक सन्दर्भ में अनिवार्य बनाया जाना अपेक्षित है। वस्तुतः स्थानीय निकायों की राज्य के विधायन में सशक्त भागीदारी हेतु विधान परिषद् के गठन को सभी राज्यों में अनिवार्य बनाना अपेक्षित है। इस बात की परिकल्पना की जा सकती है कि भविष्य में राज्य विधायिका भी संसद की भाँति द्विसदनात्मक हो सकती है।

साहित्य सर्वेक्षण:

विधान परिषद् की संरचना और कार्य पर अबतक अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन सम्पन्न हुए हैं तथा किसी राज्य के विधान परिषद् पर भी कई महत्वपूर्ण अध्ययन कार्य महत्वपूर्ण रूप में पूर्ण किये गये हैं। इस विषय पर अबतक के महत्वपूर्ण अध्ययन में कुछ साहित्य का सामान्य अवलोकन अनिवार्य प्रतीत होता है। ऐसा करना शोध कार्य को सार्थकता प्रदान करता है। वस्तुतः शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए साहित्य सर्वेक्षण का अनिवार्य माना जाता है। इसी अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए हमने अपने प्रस्तुत शोध आलेख की तैयारी में निम्नलिखित प्रमुख साहित्य का सर्वेक्षण है।

'भारत का संविधान-एक परिचय' नाम की पुस्तक का लेख ब्रजकिशोर शर्मा के द्वारा किया गया है, जिसका प्रकाशक- पी एच आई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड तथा प्रकाशन वर्ष 2015 (ग्यारहवां संस्करण) है। प्रस्तुत पुस्तक में संविधान की रचना के पूर्व की घटनाएँ जैसे संवैधानिक सुधार व विकास आदि से लेखन प्रारम्भ हुआ है तथा सम्पूर्ण संविधान के पक्षों को व्यवस्थित रूप में लेखन किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में अध्याय-13 का शीर्षक राज्य विधानमंडल (पृष्ठ संख्या 236-252) है। इस अध्याय में राज्य विधानमंडल विषयक तमाम बातों को बहुत ही व्यवस्थित रूप में विशेषत: संविधान के अनुच्छेदों को दर्शाते हुए प्रस्तुत किया है। बी०के० शर्मा ने 'भारत का संविधान-एक परिचय' से शासन के तीनों अंगों के सम्बन्ध में व्यापक जानकारी प्रस्तुत कर दिया है।

डा० अमरजीत सिंह नारंग की पुस्तक 'भारतीय शासन एवं राजनीति', गीतांजली पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली से प्रकाशित है, जिसका प्रथम संस्करण वर्ष 1998 है। ए०एस० नारंग ने अपनी पुस्तक में राज्यों में शासन तथा राजनीति पर बहुत ही व्यवस्थित विचार प्रस्तुत किया है। वस्तुत: इस पुस्तक, पृष्ठ संख्या-17-9 से 194 में उन्होंने राज्य विधायिका की द्विसदनात्मक राजनीति के साथ-साथ राज्यों की राजनीति के परिवर्तित आयाम को स्पष्ट करने का सार्थक प्रयास किया है। इतना ही नहीं, डा० नारंग ने सम्बन्धित अध्याय के अन्तर्गत राजनीति को प्रभावित करने वाले कारकों को भी स्पष्ट किया है। इस पुस्तक से विधान परिषद् के सम्बन्ध में सामान्य जानकारी प्राप्त होती है।

डा० जे०सी० जौहरी और डा० आर० के० पुरवार ने 'भारतीय शासन और राजनीति' नाम की पुस्तक लिखा है, जिसका प्रकाशन- विशाल पब्लिकेशन्स जालन्धर-नई दिल्ली तथा द्वितीय संस्करण वर्ष 1988 है। इन विद्वानों के द्वारा अपनी प्रस्तुत पुस्तक, पृष्ठ संख्या-667 से 681 तक में "राज्यों में विधानमंडल" शीर्षक के अन्तर्गत विधान परिषद् विषयक जानकारी प्रदान की गई है। उस पुस्तक में कहा गया है कि यदि विधान परिषद् का कार्य ठीक है तो उसका अस्तित्व रहना चाहिए, अन्यथा उसे विघटित कर देना उचित है। स्पष्टत: कार्यकरण के परिप्रेक्ष्य में सदन के अस्तित्व के औचित्य को स्पष्ट किया गया है।

डा० जय प्रकाश शर्मा की पुस्तक 'भारतीय राजनीतिक व्यवस्था' राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर से प्रकाशित है तथा उसका प्रथम प्रकाशन वर्ष 2000 है। शर्मा ने अपनी पुस्तक के अन्तर्गत "राज्य विधायिका" शीर्षक के अन्तर्गत विधान परिषद् की संरचना व कार्यकरण पर सुन्दर आलेख लिखा है। इस पुस्तक में विधानमंडल के दोनों सदनों के सन्दर्भ में विस्तृत चर्चा की गई है।

डा० बसन्ती लाल बाबेल की पुस्तक 'भारत का संविधान' है, जो सेन्ट्रल ला पब्लिकेशन, इलाहाबाद से प्रकाशित (तेरहवाँ संस्करण, 2014) है तथा मोतीलाल नेहरू पुरस्कार से पुरस्कृत भी है। प्रस्तुत पुस्तक में डा० बाबेल ने राज्य विधानमंडल का अनुच्छेदगत विश्लेषण किया है। इस पुस्तक में विधान परिषद् के सभी पक्षों का संवैधानिक उपबंध के अनुरूप विवेचन है।

शोध प्रविधि:

प्रस्तुत शोध आलेख के लेखन में ऐतिहासिक एवं वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का सहारा लिया गया है। शोध आलेख की तैयारी में पूर्व का साहित्य सर्वेक्षण का अवलोकन किया गया है, जिसके सन्दर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि इसमें तुलनात्मक पद्धति का भी आंशिक प्रयोग किया गया है।

शोध आलेख के सम्पूर्ण अध्ययन से विधान परिषद् की उपस्थिति तथा द्विवसदनात्मक राज्यों की राजनीति का स्वरूप हुआ है। इस अध्ययन से विधान परिषद् की संरचना तथा कार्य बहुत ही स्पष्ट हो जा रहे हैं। निश्चित रूप में राज्य विधायिका में विधि निर्माण एवं कार्यपालिका पर नियन्त्रण के परिप्रेक्ष्य में विधान परिषद् की स्थिति विधान सभा की तुलना में बहुत ही दुर्बल है। प्रस्तुत आलेख में विधान परिषद् के पक्ष तथा विपक्ष में कई तर्क प्रस्तुत किये गए हैं। सभी तर्कों के निष्पक्ष अवलोकन के बाद निष्पक्ष निष्कर्ष देते हुए यह कहा जा सकता है कि राज्य विधायिका के द्वितीय एवं उच्च सदन 'विधान परिषद्' के अस्तित्व का कायम रखा जाये तथा यह लोकतांत्रिक सन्दर्भ में भी आवश्यक प्रतीत होता है। द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग, 2005 के सातवें प्रतिवेदन (वर्ष 2007) में प्रस्तुत सुझाव में भी स्थानीय निकायों के राज्य विधायिका में उचित प्रतिनधित्व हेतु विधान परिषद् के गठन को अनिवार्य बताया गया है। स्पष्टतः प्रस्तुत आलेख का निष्कर्ष शोध परिकल्पना के अनुरूप है तथा इसकी सार्थकता व अनिवार्यता बिल्कुल स्पष्ट है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. भारत का संविधान, अनुचछेद 168(1) तथा 168(2)
2. भारत का संविधान अनुच्छेद, 169
3. भारत का संविधान, अनुच्छेद-171(1)
4. पूर्व में कर्नाटक विधान परिषद् की सदस्य संख्या-63 थी, लेकिन 1987 में इसे 75 कर दिया गया है।
5. आन्ध्र प्रदेश, Internet से अध्ययन।
6. तेलंगना, Internet से अध्ययन।
7. भारत का संविधान, अनुच्छेद-173
8. भारत का संविधान, अनुच्छेद-172 (2)

***

34. दिव्यांगों हेतु पर्यावरण शिक्षा

प्रोफेसर विमलेश शर्मा*

पर्यावरण स्वयं में व्यापक सम्प्रत्यय है। व्यक्ति जिस प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक वातावरण में रहता है वह उसका पर्यावरण है। पर्यावरण से अभिप्राय-प्रत्येक वस्तु जो हमारे चारों तरफ है तथा जिस पर हमारा जीवन निर्भर रहता है। पर्यावरण शिक्षा एकीकृत प्रक्रिया है जो मानव को उसके प्राकृतिक या मानवनिर्मित वातावरण के सम्बन्धो का ज्ञान कराती है। इसके अर्न्तगत संसाधनो का उपयोग, विनियोग, संरक्षण, जनसंख्या, यातायात, तकनीकी और ग्रामीण एवम् शहरी नियोजन का मनुष्य के समग्र पर्यावरण से सम्बन्ध निहित होता है।

पर्यावरण शिक्षा का उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनो के दोहन को रोकना और प्राकृतिक पर्यावरण को दूषित होने से बचाना प्रमुख है। पर्यावरण शिक्षा स्वयं की प्रकृति के अनुरुप अन्तर्विषयीय अनुशासन के रुप में जाना जाता है जैसे –

1. मानव जीवन में प्राकृतिक सम्पदा और शुद्ध प्राकृतिक पर्यावरण की जानकारी प्रदान करना आवश्यक है।
2. प्राकृतिक सम्पदा के दोहन से होने वाले दुष्परिणाम परिस्थतिकीय सन्तुलन का बिगड़ना, धातु एवं अधातु खनिज भंण्डार में कमी का होना प्रमुख है।
3. प्राकृतिक पर्यावरण के प्रदूषित होने वाले दुष्परिणाम शुद्ध पेयजल, शुद्ध वायु और शुद्ध खाद्य पदार्थो में कमी का होना, उचित पोषण और स्वास्थ्य विकास में बाधा उत्पन्न होना संभव है।
4. वैज्ञानिक आविष्कार, बढती हुई भौतिक आवश्यकताओं, अनावश्यक प्रयोग तथा बढती जनसंख्या प्रमुख है।
5. औद्योगिककरण, वनो का कटना, तेल से चलने वाले वाहन, रासायनिक पदार्थो का उपयोग प्रमुख है।

भारतीय तो प्राचीन काल से ही प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति बड़े सचेत, सजग रहे हैं। बौद्धिक काल में प्रकृति के गुणों की प्रशंसा तथा दैवीय रुप में पूजा भी की गई है। वनस्पतियों, पेड़-पौधे, जल, वायु, सूर्य, ऊषा, रात्रि आदि को ईश्वर की अद्वितीय देन माना गया है तथा नित्यप्रति हवनों का विधान मन, वायु, आत्मा को शुद्ध करने हेतु भी किया गया था। लेकिन भौतिकवादी सभ्यता के बढने से मनुष्य प्रकृति की

---

* **शिक्षा विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, कुतुब संस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली**

रक्षा के स्थान पर प्रकृति का दोहन करने लगा और उसे शुद्ध रखने के स्थान पर प्रदूषित किया जाने लगा और इसी समय प्राकृतिक संसाधनो के दोहन एवम् प्रकृति में फैलते प्रदूषण से होने वाली हानियों की तरफ सर्वप्रथम युरोपीय देशो का ध्यान आकर्षित हुआ और एक समय ऐसा आया कि पर्यावरण अन्तरराष्ट्रीय समस्या बन गई और इसके समाधान के लिए उपायों पर विचार विमर्श शुरु हो गया। इसी दिशा में सर्वप्रथम पहल 1961 में विश्व वन्य जीवन कोष की स्थापना, 1963 में अन्तरराष्ट्रीय जैव कार्यक्रम का शुभारम्भ, 1972 में सयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण कार्यक्रम की शुरुआत 5 जून, 1977 को समस्त विश्व में 'पर्यावरण-दिवस' का मनाना और पर्यावरण प्रदूषण रोकने के उपायों पर विचार करना, 5 जून 1983 को "विश्व पर्यावरण दिवस" मनाना और 5 जून 1992 को ब्राजील में पृथ्वी पर्यावरण सम्मेलन का आयोजन प्रमुख था। अन्तरराष्ट्रीय संस्था संयुक्त राष्ट्र संघ और यूनेस्को द्वारा भी इस दिशा। क्षेत्र में विशेष कार्य किए गए हैं।

भारतीय सन्दर्भ में प्राकृतिक सम्पदा के संरक्षण और प्रकृति को प्रदूषण मुक्त करने की शुरुआत सर्वप्रथम सरकारी स्तर पर पर्यावरण एवम् वन मंत्रालय के द्वारा की गई। इसी दिशा में सन् 1974 में प्रदूषण निवारण एवम् नियन्त्रण अधिनियम बनाया गया 1977 में जल उपकर अधिनियम बनाया गया। 1981 में वायु प्रदुषण निवारण अधिनियम बनाया गया तथा 1986 में पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम बनाया गया। इस समय देश में पर्यावरण प्रदूषण नियन्त्रण से सम्बन्धित अनेकों योजनाएँ केन्द्रीय सरकारें या प्रान्तीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्डों के माध्यम से चल रही है। इन कार्यक्रमों के संचालन में अनेकों संस्थाओं – भारतीय वानिकी अनुसंधान एवम् शिक्षा परिषद, भारतीय वन्य जीवन संस्थान, भारतीय वनस्पति संस्थान और भारतीय जन्तु सवैक्षण संस्थान आदि का अत्याधिक सहयोग प्राप्त हो रहा है। कि प्राकृतिक प्रदूषण को रोकने के लिए औपचारिक अनौपचारिक शिक्षा संस्थाओं द्वारा, स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा, प्रौढों शिक्षा तथा जनसंचार के माध्यमों सें सभी बालक बालिकाओं, युवा, प्रौढ़ो एवं दिव्यांग बालकों जैसे दृष्टिबाधित, श्रवणबाधित, मन्द बुद्धि, अस्थि विकलांग अधिगम अक्षमता के लिए 'पर्यावरण शिक्षा' की महती आवश्यकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने पर्यावरण शिक्षा को प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा स्तर पर देने की सिफारिश की जिससे छात्रों में पर्यावरण के प्रति जागरुकता / चेतना उत्पन्न हो, मानव यह अनुभव करे कि वह स्वयं प्रकृति का अंग है अर्थात उसका निर्माण पंचतत्वों से हुआ है। उन्हें पर्यावरण सम्बन्धी नियम, कानून और नीतियों की जानकारी हो सके और शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर पर्यावरण शिक्षा के पाठ्यक्रम का निर्माण इस प्रकार से हो कि प्राथमिक स्तर पर स्थानीय पर्यावरण का ज्ञान कराया जाय, माध्यमिक स्तर पर पर्यावरण और मानव सम्बन्धों को स्पष्ट किया जाए और उच्य स्तर पर पर्यावरण सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान एवम् प्रशिक्षण दिया जाय। इसके साथ ही राष्ट्रीय पाठ्यचर्या कार्यक्रमों 2000 की संस्तुति पर्यावरण शिक्षा

के लिये सामूहिक प्रयास में समस्या को पहचान कर, विश्लेषण कर आवश्यकताओं को समाधान किया जाना आवश्यक है। महान दार्शनिकों, चिन्तकों द्वारा समयानुसार प्राकृतिक सम्पदा के संरक्षण हेतु एवमं स्वयं के बुद्धिमतापूर्वक आध्यात्मिक विकास हेतु संसाधनों के उपयोग पर महत्व दिया है।जिससे समाज के सभी वर्गो में पर्यावरणीय चेतना को विकसित किया जा सके। इसी तथ्य को समग्र शैक्षिक प्रक्रिया में समावेशित कर समाज के सभी वर्गो को शामिल किया जा सके।

हमारे समाज का एक वर्ग दिव्यांग बालकों का भी है उनका शिक्षा सम्बन्धी दायित्व भी अध्यापकों के समूह पर निर्भर करता है उन बालकों की आवश्यकताओं को समझा जाय और उसी के अनुरूप व्यक्तिगत या सामूहिक रूप में पर्यावरण सम्बन्धी मूलभूत जानकारी अनुभवों के साथ दी जानी चाहिए, क्योंकि विशेषज्ञ भी जानते हैं कि पर्यावरण समस्या का निराकरण तभी संभव हो सकता है जब सभी दिव्यांग बालक। बालिकाओ में शिक्षा के साथ – साथ पर्यावरण के सम्बन्ध में जागरुकता उत्पन्न की जा सके। सयुंक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के अनुसार यह कार्यक्रम सहभागिता के रूप में बालक, युवा, प्रोढ़ौं में व्यक्तिगत सामूहिक रूप से जीवन स्वास्थ्य की समस्याओं की पहचान, विश्लेषण और निराकरण किया जाय। अवकाश के क्षणो में सामुदायिक क्रियाकलायों का आयोजन कर व्यक्तिगत क्षमता का आकलन कर व्यक्तिगत एवम् सामाजिक जीवन में सौन्दर्यात्मकता का विकास किया जा सकें। पर्यावरण जागरूकता से बोध उत्पन्न होता है, संसाधनो को पहचानने की, विश्लेषण करने की क्षमता का विकास होता है तथा स्वयम् के स्वस्थ विकास हेतु पर्यावरण एवम् जैव वैज्ञानिक तत्वों में अन्तनिर्भरता आती है।

दिव्यांग बालकों के लिये पर्यावरण शिक्षा

दिव्यांग बालकों – दृष्टिबाधित, श्रवणवाधित, मन्दबुद्धि, अस्थिग्रस्त की शिक्षा एक शैक्षिक अनुदेश है। जिसकी अपनी अलग – 2 आवश्यकताएँ होती हैं। शिक्षक को इन बालकों के प्रति समाज के सकारात्मक दृष्टिकोण हेतु, पूर्ण सहभागिता कौशलों का विकास, व्यूहरचनाओं का चयन, आंशिक अनुशीलन एवम् समग्र प्रतिबद्धता के साथ शिक्षित करने में असंख्य चुनौतियो का सामना करना पड़ता है। शिक्षा की प्रक्रिया के तहत् दिव्यांग बालकों की आवश्यकता के अनुरूप अधिगम – अनुभवों की विविधता, बोध, संवेदनशीलता उत्तरदायित्वों का निर्वाह, दृढ़संकल्पता एवम् कार्य करने के प्रति समर्पण भावना आवश्यक होनी चाहिए। क्योंकि दृष्टिबाधित बालक देख नही सकता, श्रवणबाधित बालक सुन नही सकता, मन्दबुद्धि बालक की बुद्धिलब्धी का परीक्षण करके ही शिक्षा, प्रशिक्षण योग्य बनाया जा सकता है तथा अस्थिग्रस्त बालक की चलने, कार्य करने की अपंगता को ध्यान में रखना आवश्यक है। शिक्षक सक्षम व विकलांग बालकों को अधिगम अनुभव मात्र एक स्रोत के माध्यम से नहीं दिए जा सकते हैं। संयुक्त विधियों की आवश्यकता होती है जिससे छात्रों के उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके। समावेशित

पर्यावरणीय शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के तहत् शिक्षक को चयनित विधियो के अन्तर्गत कक्षीय सहभागिता पर अधिक महत्व दिया जाना चाहिए जिससे सामान्य एवम् दिव्यांग बालकों को साथ – साथ सीखने का अवसर प्राप्त हो। वास्तविक परिस्थितियों के अनुभवों का ज्ञान पर्यावरण द्वारा दिया जाना चाहिए। शिक्षा द्वारा पर्यावरण के विषय में अधिगम हो, पर्यावरण के माध्यम से अधिगम हो तथा पर्यावरण के लिये अधिगम हो क्योंकि पर्यावरण का सम्बन्ध व्यक्ति विशेष से नही। पर्यावरणीय संसाधनों की जागरुकता हेतु क्षमता का विकास समग्र जैविक एवम् अजैविक प्राणियों में करना चाहिए तथा प्राकृतिक सम्पदा के संरक्षण, सुधार हेतु समाज की भागीदारी सकारात्मक से होनी चाहिए।

दिव्यांग बालक बालिका पर्यावरण के विषय में सीखे

दिव्यांग बालक बालिका पर्यावरण के माध्यम से सीखे

दिव्यांग बालक बालिका पर्यावरण के लिए सीखे

सर्वप्रथम आवश्यकता है कि पर्यावरण को जानें, ज्ञान प्राप्त करें, जागरूक हो, दृष्टिकोण विकसित हो, मूल्य एवम् कौशलों का विकास करें, सहभागिता सुनिश्चित करें तथा सम्बन्धित कार्यो को वास्तविकता में ढालने का प्रयास करें। विद्यालीय कार्यक्रम में प्रारम्भिक स्तर पर बालक बालिका को स्वयं के वातावरण का ज्ञान, स्वच्छता की जानकारी क्षेत्रीय गतिविधियों तथा अवलोकन के माध्यम से आवश्यकतानुसार दी जानी चाहिए। उच्च माध्यमिक एवम् उच्चतर माध्यमिक स्तर पर वातावरणीय प्रत्यय – पेड-पौधे, जन्तु, पशुओं की जीवनचर्या तथा अन्तक्रिया से सम्बन्धित होने चाहिए।

पर्यावरण फैंडली उपकरण के प्रयोग की दक्षता का विकास किया जाना चाहिए। शिक्षक दिव्यांगता फैंडली वातावरण को पर्यावरण फैंडली व्यवहार में परिवर्तित कर सकारात्मक दिशा प्रदान करता है। सभी बालकों में पर्यावरणीय मूल्यों का विकास हो, प्राकृतिक सम्पदा का संरक्षण हो, प्राकृतिक संसाधनो की जानकारी हो, स्वास्थ्य की दृष्टि से स्वच्छ बनें, पर्यावरण की गुणवत्ता में सुधार हो, व्यक्तियों में पर्यावरण के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति दृष्टिकोण का विकास हो, सहभागिता सुनिश्चित हो, निर्णय क्षमता का विकास हो, प्राकृतिक संसाधनो की जानकारी हो, सामुदायिक सदस्यों में मानवतावादी सम्बन्ध स्थापित हों, स्थानीय वातावरणीय उपलब्ध सामग्री का उपयोग किया जा सके। इसलिए पर्यावरणीय नवाचारी गतिविधियों को दिव्यांग बालकों के स्तरानुरुप अपनाकर मूल्यों का विकास किया जा सकता है जो इस प्रकार से है –

1. पर्यावरणीय खेल विधि इसके अन्तर्गत शब्द, क्रास शब्द, क्विज आदि के द्वारा पर्यावरणीय तथ्यों

का बोध कराया जा सकता है।

2. शैक्षिक साहित्य – दिव्यांग बालकों की आवश्यकतानुसार पर्यावरणीय साहित्य को उपलब्ध कराकर अध्ययन हेतु प्रोत्साहित कर सकता है।
3. सामाजिक सेवाएँ – रेडक्रास, मेले का आयोजन तथा स्काउट एवम् गाइड के माध्यम से सामाजिक सेवा का बोध कराना आवश्यक है।
4. हौबिज़ / रूचि - दिव्यांग बालक स्वयं की रूचि के अनुसार बागवानी, पत्रियों का संकलन, चित्रों का संकलन में सहभागिता निभा सकता है।
5. सांस्कृतिक कार्यक्रम - दिव्यांग बालकों की योग्यता के अनुसार कलात्मकता, चित्रकारी, दस्तकारी, संगीत, नृत्य, अभिनय ललित कला और सामुदायिक क्रियाओं में भागीदारी आवश्यक है।
6. नागरिक प्रशिक्षण – इसके अर्न्तगत विद्यार्थी सहयोग समुदाय और विद्यार्थी परिषद् बैंक का निर्माण कर नागरिकता का प्रशिक्षण दिया जा सकता है।
7. अभिनयात्मक खेल – इसके अर्न्तगत छात्र वास्तविक जीवन की परिस्थिति को ध्यान में रखकर अभिनय करता है, स्वयं को प्रस्तुत करने का उत्तम अवसर प्राप्त होता है। जो कि सामाजिक सन्दर्भ में प्रवृत्त अभिनयात्मक दृष्टि तथा संम्प्रेषण कौशलों का विकास करती है तथा समाज की आवश्यकता के अनुरुप अभिनयकती को संवेदनशील बनाती है।
8. क्षेत्रीय निरीक्षण विधि – इसके अर्न्तगत दिव्यांग बालकों की विभिन्न स्थलों, स्थानों, वस्तुओं का तथा दर्शनीय स्थलों का अवलोकन कर वास्तविक पर्यावरणीय अनुभवो को दिया जा सकता है जो कि लम्बे समय तक अनुभव स्थायी रहते हैं।
9. वाद-विवाद प्रतियोगिता – पर्यावरणीय थीम पर दिव्यांग छात्रों द्वारा पक्ष – विपक्ष में अपने विचारों को जूरी के सम्मुख तर्क सहित प्रस्तुत करना होता है।
10. प्रोजेक्ट कार्य विधि – व्यक्तिगत एवम् सामूहिक दोनो रुपों में प्रोजेक्ट कार्य किया जाता है जैसे संसाधित पक्षियों पर, पशुओं पर, व्यक्तियों पर, बालकों पर आंकड़ों को एकत्रित कर, विश्लेषण कर सार्थक निष्कर्ष प्राप्त किए जाते है।
11. सहभागिता विधि – इसके अर्न्तगत दिव्यांग बालकों को पर्यावरण बोध हेतु बाल-सभा का आयोजन, कठपुतली प्रदर्शन, पोस्टर निर्माण, कहानी लेखन, फ्रोटोग्राफी, दिवस आयोजन, त्योहार मनाना, सीली नृत्य प्रतिस्पर्धा आयोजन, ईको क्लबनिर्माण करना, बचाव करना, संरक्षण करना आदि का उद्देश्य सहभागिता से कार्य पूर्ण कर सहयोगात्मक भावना का निर्माण किया जा सकता है।
12. संगणक कम्प्यूंटर आधारित अनुदेशन – पर्यावरणीय शिक्षा हेतु बालकों द्वारा संगणक कम्प्यूटर आधारित अनुदेशनों का प्रयोग आवश्यक है क्योंकि शिक्षा रुपी मिशन की, पर्यावरण संरक्षण,

स्वच्छता रुपी उद्देश्य की प्राप्ति कम्प्यूटर आधारित अनुदेशन माध्यम से ही प्राप्त की जा सकती है।

शारीरिक एवम् मानसिक दिव्यांग बालकों के लिये पर्यावरण शिक्षा को आवश्यकतानुरुप सामान्य बालकों के साथ सहभागी वातावरण में गतिविधियों को अपनाकर प्रदान की जा सकती है कि दिव्यांग बालकों को भी पर्यावरण शिक्षा का व्यक्तिगत एवम् सामूहिक रुप में जानकारी हो इससे उत्पन्न समस्याओं के प्रति जागरुक रह सकें। पर्यावरण गुणवत्ता सुधार तथा प्राकृतिक सम्पदा संरक्षण हेतु सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो सके, क्योंकि पर्यावरण किसी एक व्यक्ति का नही अपितु इसकी छत्रछाया में जैविक और अजैविक दोनो ही सम्मिलित हैं इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व है कि प्राकृतिक पर्यावरण में सुधार एवम् संरक्षण के लिए प्रयासरत रहें। दिव्यांग बालकों में पर्यावरण शिक्षा द्वारा उत्तम आदतें, मूल्य, नैतिकता, शिष्टाचार एवम् चारित्रिक गुणों का विकास हो जो स्वयं के ज्ञान, कौशल, दृष्टिकोण और व्यवहार से जनसमाज में पर्यावरण सुधार रुपी परिवर्तन को लाकर आदर्श प्रस्तुत कर सकता है।

दिव्यांग बालकों की आवश्यकता के अनुरुप पर्यावरणीय ज्ञान प्रदान दिया जाय दिव्यांग मित्रवत विद्यालय कॉलेज विश्वविद्यालयों संस्थाओं में दिव्यांग बालकों के साथ पर्यावरण मित्रवत व्यवहार किया जाय उनका आत्म विश्वास बढ़ाएँ, उनका मार्गदर्शन किया जाए तथा सामाजिक भागीदारी हेतु प्रोत्साहित किया जाए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सक्सेना ए.बी (1991) 'पर्यावरण शिक्षा' आर्यबुक डिपो, दिल्ली
2. सिंह साविन्द्र (2000) 'पर्यावरण भूगोल' शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश।
3. शर्मा बी (2016) 'समावेशित विशिष्ट शिक्षा' शारदा पुस्तक भवन, 20-ए यूनिर्वसिटी रोड, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश
4. यूनेस्कों (1977) 'ट्रेन्ड्स इन इनवायरमेण्टल एजूकेशन' पेरिस, न्यूयकि
5. रघूवंशी S/O अरुण (1998) 'पर्यावरण तथा प्रदूषण' हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, मध्य प्रदेश।
6. शर्मा आर. ए. (2004) 'पर्यावरण शिक्षा' आर. लाल, बुक डिपों मेरठ, उत्तर प्रदेश
7. कालीराम (1995) 'पर्यावरण शिक्षा' आर. लाल, बुक डिपों मेरठ, उत्तर प्रदेश
8. मिश्रा सन्ध्या (2005) 'पर्यावरण शिक्षा' आर. लाल, बुक डिपों मेरठ, उत्तर प्रदेश
9. मित्तल सन्तोष (2006) 21 वी सदी में पर्यावरण शिक्षा एवम् भारतीय सन्दर्भ, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी उत्तर प्रदेश
10. गुप्ता आर. डी एवम् सिंह के बी. (2010) पर्यावरण अध्ययन आर. लाल, बुक डिपो मेरठ, उत्तर प्रदेश

***

35. समकालीन हिन्दी सिनेमा में बनारस की संस्कृति का यथार्थवादी चित्रण

अभिजीत कुमार मिश्रा*

सुरभि गुप्ता**

वर्तमान वैश्वीकरण के युग में सिनेमा विधा की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। सिनेमा एक दृश्य माध्यम है जिसे निरक्षर जनता भी आराम से देख समझ लेती है। सिनेमा अपने मनोरंजन पक्ष के साथ-साथ समाज में व्यापक बदलाव लाने के क्षमता के वजह से अति महत्वपूर्ण है। सिनेमा या मनोरंजन का कोई भी माध्यम समय में बदलाव के आधार पर बदलता रहता है। हिन्दी के भौगोलिक विस्तार में भी सिनेमा की भूमिका बढ़ती जा रही है। भारत के गैर-हिन्दी प्रदेशों से लेकर समीपवर्ती देशों में हिन्दी के प्रचार- प्रसार में सिनेमा की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है। हिन्दी सिनेमा भाषा, साहित्य और संस्कृति का लोकदूत बनकर इन भू–भागों में पहुंचने के लिए अग्रसर है।

सिनेमा के जन्म के शुरूआत से ही साहित्य का इस कला में विशेष स्थान रहा है और सफल साहित्य ने फिल्म की सफलता में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। विश्व के लगभग हर भाषाओं में महत्वपूर्ण रचनाकारो के रचना के आधार पर कई कालजयी सिनेमा बने है यथा शेक्सपीयर, लियो टालस्टॉय, चार्ल्स डिकेन्स, अलेक्जेंडर डयुमेज. हिन्दी सिनेमा में भी प्रेमचन्द, अमृतलाल नागर, भगवती चरण वर्मा, सेठ गोविंद दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, रेणु, मन्नु भंडारी, राजेंद्र यादव एवं भीष्म साहनी आदि के रचनाओं को आधार लेकर भी महत्वपूर्ण फिल्मों का निर्माण हुआ।

यथार्थवादी संस्कृति को रूप देने में सिनेमा ने प्रारंभ से ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। यद्यपि प्रारंभिक सिनेमा में आजादीपूर्ण परिस्थितियों में ऐतिहासिक, धार्मिक पहलु ज्यादा हावी थे। यथा सिंकदर, पुकार, झांसी की रानी आदि फिल्मों में कुरीतियों के विरूद्ध जबरदस्त मोर्चा खोला गया। बेमेल विवाह को जहां 'दुनियां न माने' (1937) फिल्म में दर्शाया गया वही फ़ॉज आस्टेन की फिल्म 'अछूत कन्या' (1936) में अस्पृशयता पे प्रहार किया गया। इसी तरह फिल्म 'सुजाता' में विमल राय ने ऐसा ही दिखाने का प्रयास किया है। हिन्दी सिनेमा ने हिन्दी प्रदेश की सामाजिक समस्याओं पर गंभीर प्रहार किया है। आजादी के उपरांत भी जारी रहे जातिगत विभेद, वर्ग विभेद, स्त्री उत्पीड़न, गरीबों का शोषण आदि मुद्दे पर क्रमशः

* **शोधार्थी दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

** **सहायक प्रोफेसर, सरदार पटेल पुलिस विश्वविद्यालय, जोधपुर**

सुजाता (1958), प्रेम रोग (1982) दामूल (1985), मदर इंडिया (1957) जैसी फिल्में यथार्थवादी चित्रण में मील का पत्थर है।

बात बनारस की करें तो बनारस ने साहित्यकारों, फिल्मकारों, गीत और संगीतकारो को शुरू से ही आकर्षित किया है। अमेरिकी लेखक मार्क ट्वेन (1835–1210) ने बनारस के बारे में सही लिखा है–
"बनारस इतिहास से भी पुरातन है, पंरपराओं से पुराना है, किम्वदंतियों (लिजेण्डस) से भी प्राचीन है और जब इन सबको एकत्र कर दें तो इन संग्रह से भी दोगुना प्राचीन है।"

गालिब द्वारा अपने सबसे लंबी नज्म 'चिराग-ए-दैर' का बनारस में लिखा जाना, भारतेंदु मंडल की साहित्यिक रचनाओं की समृद्धता, उस्ताद विस्मिल्ला खां के शहनाई की धुन इत्यादि को प्रेरणा बनारस के संस्कृति ने ही दी है। लोक मान्यताओं में बनारस जीवन काल तक ही सीमित नही अपितु मृत्यु के उपरांत भी महत्व रखता है। बनारस की संस्कृति के पंरपरा से संपूर्ण भारत के सांस्कृतिक धागे इतनी महीन तरीके से जुड़ें है जिससे बनारस सिनेमा समेत अन्य कई विधाओं का केन्द्र हो जाता है।

21वीं सदी में जब सिनेमा महानगरीय संस्कृति से स्थानीय लोक संस्कृति की ओर उन्मुख हुआ तो बनारस की संस्कृति का यथार्थवादी चित्रण व्यापक तौर पर हुआ। कुछ फिल्मों ने इस संदर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। भावना तलवार की फिल्म 'धर्म' (2007) ऐसी ही एक सिनेमा है जिसमें बनारस की संस्कृति में धर्म के महत्व को दिखाने के साथ धार्मिक और पारंपरिक रूढ़िवादिता पर प्रहार किया गया है जैस अंतर्जातीय विवाह का विरोध और सांप्रदायिकता की समस्या का बखूबी चित्रण किया गया है यह ठीक है कि बनारस के घाटों पर सांस्कृतिक विविधता का सम्मान होता रहा है पर देश के बदलते हालातों में बढ़ती संप्रदायिक मनोवृति कि ओर भी हिन्दी सिनेमा का ध्यान गया हैं साम्प्रदायिकता की यही समस्या आनन्द. एल. राय द्वारा निर्देशित फिल्म 'रांझणा' (2013) मे दिखाया गया है। रांझणा में बनारस के घाट और गलियों की संस्कृति का यथार्थवादी चित्रण किया गया है। इस फिल्म में बनारस की होली, नाव, घाटों पर विभिन्न वर्गों की जीवन शैली का बखूबी चित्रण है।

'मुल्क' (2018) की कहानी बनारस से शुरू होती है। वही बनारस जहाँ काशी विश्वनाथ मंदिर और ज्ञानवापी मस्जिद एक साथ है। निर्देशक अनुभव सिन्हा के धार्मिक सद्भाव का रोमांटिक कथानक मुराद अली और चौबे-सोनकर की चुहलबाजियों से शुरू होती है। गंगा जमुना तहजीब की स्याही से शुरुआती संवाद लिखे गए हैं। फिल्म में बनारस को लेकर लोक सम्भावना और संशय दोनों दिखया गया है। फिल्म कई बार उपदेशात्मक लगती है। ऋषि कपूर ने बनारसी अंदाज में फीकापन दिखता है पर कुल मिला के बनारस के मोहल्लों के जीवन शैली को पा जाएँगे। बनारस की समन्वित संस्कृति पर बाबरी विध्वंस के

असर से लेकर हाल की परिस्थितियों में युवाओं में बढ़ती साम्प्रदायिक मनोवृति का सूक्ष्म चित्रण है। मुल्क की विशेषता यह है कि यह बेहतर हिंदू या बेहतर मुसलमान बनने की बजाय बेहतर इंसान बनने की बात करती है।

इसी तरह दीपा मेहता द्वारा निर्देशित फिल्म 'वाटर' (2005) में बनारस में विधवाओं की दयनीय स्थिति को दिखाया गया है। पंकज परासर की फिल्म 'बनारस' (2006) में जातिप्रथा और बनारस के समाज में फैले आर्थिक विभेद को चित्रित किया गया है। प्रदीप सरकार द्वारा निर्देशित फिल्म 'लागा चुनरी में दाग' (2007) में बनारस के निम्न वर्गीय परिवार की दयनीय आर्थिक दशा को प्रदर्शित किया गया है। आर्थिक संकट के उपरांत अपनी परिस्थितियों में वेश्यावृति कि ओर गमन की त्रासदी को इस फिल्म में दिखाया गया है। काशीनाथ सिंह जी के चर्चित उपन्यास 'काशी का अस्सी' पे आधारित फिल्म 'मोहल्ला अस्सी' में निर्देशक चद्रप्रकाश द्विवेदी ने आधुनिकता के जद में आते बनारस के पारंपरिक घाट और बदलते राजनैतिक और सामाजिक माहौल का बनारस पर पड़ने वाले प्रभाव का सूक्ष्म चित्रण किया है।

इसी तरह कई अन्य फिल्मों यथा, 'इशक' (2013) 'पीकू' (2015), 'बंटी बबली' (2005), 'गैंग्स ऑफ वासेपुर' (2012), 'बस इतना सा ख्वाब है' आदि में बनारस शहर के घाट, गलियों आदि के जनजीवन के सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों को दर्शाया गया है।

हाल ही में निरज घेवाण की फिल्म 'मसान' ने तो बनारस की संस्कृति के यथार्थवादी चित्रण में एक ऐतिहासिक छाप छोड़ी है। बदलती सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों में परंपरा ओर आधुनिकता की लड़ाई जो चल रही है 'मसान' उसका प्रतिनिधित्व कर रहा है। इंटरनेट और फेसबुक का युवा वर्ग पर प्रभाव, विवाहपूर्व यौन संबंध स्थापित करने करने की प्रवृति के साथ उसका विरोध इत्यादि के साथ ही जातिगत विद्रुपताओं, प्रशासनिक भ्रष्टाचार प्रवृति एवं मणिकर्णिका एवं हरिश्चंद्र घाट आदि समुदाय की संस्कृति का चित्रण और अन्य कई सामाजिक विद्रुपताओं को नीरज ने परत दर परत खोलने का प्रयत्य किया है।

फिल्मों में बनारस गंगा और पान के बाद मसान के लिए मशहूर हुआ है। मुक्ति भवन, इस मसान (फिल्म नहीं) वाले किस्से के ठीक पहले का दृश्य दिखाती है। बनारस में मुक्ति भवन या मोक्ष भवन जैसे ठिए उनके लिए बनाए गए हैं जो गंगा किनारे देह छोड़कर मोक्ष पाने की इच्छा रखते हैं। इस फिल्म के जरिए (बतौर एक हिन्दुस्तानी) अपने बारे में यह जानना बहुत रोचक है कि मरने के बाद भी हम स्वर्ग नहीं मुक्ति चाहते हैं।

शुभाशीष भूटियानी निर्देशित 'मुक्ति भवन' नामक अति चर्चित फिल्म भी उसी मान्यता पर

आधारित है जिसमें बनारस में मृत्यु को मोक्ष प्राप्ति के द्वार के तौर पर देखा जाता है। मुक्ति भवन में मृत्यु के निकट अवस्था वाले लोग निवास कर रहे होते हैं ताकि उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हो जाए। फिल्म में एक पुत्र अपनी पत्नी और बेटे से दूर होकर अपने पिता को लेकर इसी मुक्ति भवन में चला जाता है जहाँ एक ओर उसके समक्ष पारिवारिक जिम्मेदारियों हैं तो दूसरी और पारलौकिक जगत का केंद्र में होना।

यह फिल्म माया से मुक्ति के बाद घेरने वाली मुक्ति की माया की झलक दिखाती है। यह बताती है कि कैसे कुछ लोग सालों-साल इस तरह की धर्मशालाओं में मौत का इंतजार करते बिता देते हैं। और कैसे कुछ आते हैं और चटपट अपने हिस्से का मोक्ष बुक कर ऊपर की यात्रा पर निकल जाते हैं।

इस तरह समकालीन हिन्दी सिनेमा में बनारस के संस्कृति का यथार्थवादी चित्रण का प्रयास किया गया है। नये फिल्मकार महानगरीय संस्कृति से हटकर जब स्थानीय और छोटे शहरों की संस्कृति कि ओर उन्मुख हुए हैं तो बनारस समकालीन हिन्दी सिनेमा में और महत्वपूर्ण हो चला है। बनारस अपने भौगोलिक संरचना के आधार पर समूचे पूर्वी उ.प्र. के साथ-साथ बिहार के संस्कृति का भी प्रतिनिधित्व करता है। साथ ही बनारस की घाट और गलियों में भारत के विभिन्न क्षेत्रों की संस्कृति भी ज्यों की त्यों जीवित है।

समकालीन हिन्दी सिनेमा ने बनारस के जीवन शैली के विभिन्न आयामों का वास्तविक चित्रण करने का प्रयास किया है और राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय पटल पर बनारस के संस्कृति के सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलुओं को दिखाने का प्रयास किया है। बनारस साहित्य और सिनेमा के लिये हमेशा उर्वर भूमि रही है। साहित्य और सिनेमा के लिए बनारस वह समुद्र है जिसमें कुशल गोताखोर डुबकी लगाकर साहित्य और सिनेमा सम्बन्धी बहुमूल्य मोतियों को चुन सकता है। सिनेमा और बनारस की सभ्यता-संस्कृति की अविच्छिन्न गठजोड़ की शृंखला एक अनवरत परिसंवाद को स्थापित करती है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. सिनेमा जीवन की पाठशाला – जय प्रकाश चौकसे (वेंटेन बुक)
2. हिन्दी सिनेमाः नीति और अनीति – डॉ. विरेन्द्र सक्सेना (नेहा पब्लिकेशन)
3. लिबास – गुलजार (राधा कृष्णा प्रकाशन)
4. भारतीय सिनेमा का इतिहास – अनिल भार्गव (सिने साहित्य प्रकाशन)
5. समकालीन हिन्दी सिनेमा – सी. भास्कर राव (के.के. पब्लिकेशन)
6. सिनेमा के सोच – अजय ब्रहात्मव (वाणी प्रकाशन)
7. भारतीय हिन्दी सिनेमा की विकास यात्रा - देवेन्द्रनाथ सिंह (शर्मा पब्लिकेशन)
8. Ideology of Hindi Film - Pradsa Madhava (Oup India Publiskashan)

9. नये दौर का नया सिनेमा – प्रियदर्शन (वाणी प्रकाशन)
10. Bollywood Nation: India Thought's Its Cinema - Vamsee Juluri (Penguine India)
11. सिनेमा उद्भव एवं विकास – रियाज हसन (नेहा पब्लिशर्स)
12. सिनेमा समकालीन सिनेमा – अजय ब्रम्हात्मज (वाणी प्रकाशन)
13. हिन्दी फिल्में और सामाजिक सरोकार - प्रो. एम. वेंकटेश्वर (साहित्य कुंज, 30 जून, 2013)
14. साहित्य और सिनेमा के रिश्ते (लेख) – ओम थानवी (जानकी पुल) 30 जून 2014
15. हिन्दी सिनेमा का बदलता मिजाज (लेख) – ओम थानवी (जानकी पुल) 30 जून,2014
16. समय (पत्रिका) - इकबाल रिज्वी
17. द हिन्दू : द स्टोरी टेलर – नमराता जोशी (21 अप्रैल 2016)
18. चवन्नी चैप (हिन्दी ब्लॉग) – अजय ब्रम्हात्मज (20 मार्च 2014)

***

36. आधुनिक प्रबंधन में भारतीय लोकाचार

* प्रो. मुकेश रंगा*

प्रत्येक समाज कुछ खास तरह के नियमों से चलता है। उन्हीं नियमों में से कुछ ऐसे नियम भी होते हैं, जिन्हें समाज किसी को तोडने की इजाजत नहीं देता। उन्हें तोडना समाज बिल्कुल नैतिक मानता है। ऐसा करने वालों को समाज दंड भी देता है।

लोकाचार एक प्रकार का व्यक्तियों के आचरण का नियंत्रक है। लोकाचार को हमेशा समाज के द्वारा सही और नैतिक माना जाता है। लोकाचार एक ऐसा नैतिक नियम या मूल्य है जिसे माज कभी भी टूटते हुए नहीं देख सकता है। चूंकि लोकाचार को समाज के सदस्यों की व्यापक स्वीकृति रहती है, इसलिए उसके टूटने पर समाज में बेचैनी होती है। लोकाचार को समाज अपने स्थायित्व का आधार मानताहै। उसे तोड़ने वाले को समाज विभिन्न तरीकों से दंडित करने का प्रयास करता है।

यह सत्य है कि प्रत्येक समाज में कुछ न कुछ लोकाचार अवश्य पाया जाता है। पर यह कोई जरूरी नहीं है कि जो एक जगह लोकाचार है, वही दूसरी जगह पर भी लोकाचार हो। जैसे मुसलमानों के बीच चचेरे, ममेरे एवं फुफेरे भाई बहनों के बीच शादी करना लोकाचार का उल्लंघन नहीं है। उत्तर भारत के हिन्दुओं के बीच मामा-भगिनी के बीच विवाह लोकाचार का उल्लंघन है, जबकि दक्षिण भारत के हिन्दुओं के बीच मामा-भगिनी का विवाह लोकाचार का समर्थन है। भाई-बहन, मां-पुत्र , पिता-पुत्री के बीच वर्जित यौन संबंध विश्वव्यापी लोकाचार के उदाहरण हैं।

उपनिषदों में निहित मानव जीवन का उद्देश्य सभी की भलाई के लिए था। इसके पीछे एक युक्त दर्शन था, जिसमें कहा गया था कि पूरी दुनिया एक परिवार है। इसके पीछे के अंतर्निहित विचार को समझने के लिए विद्वतापूर्ण कठोरता और क्षीणता की आवश्यकता हो सकती है, जिसे वैदिक ग्रंथों के गहन दार्शनिक सार को देखते हुए, सरल व्याख्याएँ हैं जो समझ में आती हैं।उदाहरण के लिए, भारत के प्रसिद्ध रहस्यवादी संत कबीर को उनकी सरल और मिट्टी की शैली में भारतीय लोकाचार के व्यावहारिक दृष्टिकोण प्राप्त करने के लिए पढ़ा जा सकता है। कबीर दास की एक प्रसिद्ध और बार-बार बोली जाती है. साईं इतना दीजिये, जा मे कुटुम समाय। मैं भी भूखा न रहूँ, साधु ना भूखा जाय। अर्थात कबीर दस जी कहते हैं कि परमात्मा तुम मुझे इतना दो कि जिसमे बस मेरा गुजरा चल जाये , मैं खुद भी अपना पेट पाल सकूँ और आने वाले मेहमानो को भी भोजन करा सकूँ।

---

* **व्यवसाय प्रबन्धन संस्थान छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर।**

औपचारिक रूप से, ज्ञान का शरीर, जो नैतिकता की नैतिक और विशाल भारतीय प्रणाली (नैतिक दर्शन) से अपने समाधान प्राप्त करता है, प्रबंधन में भारतीय लोकाचार के रूप में जाना जाता है। भारतीय लोकाचार समाज के स्व-प्रबंधन और शासन के सिद्धांतों को संदर्भित करता है, इकाई या ज्ञान द्वारा एक प्रणाली के रूप में प्रकट और महान शास्त्रों द्वारा आगे लाया जाता है जैसे कि वेद, उपनिषद, गीता, महाभारत, बाइबल और कुरान। भारतीय लोकाचार सभी आत्माओं की आवश्यक असीमता और दिव्यता है यह ब्रह्मांड और समस्त जीवन की आवश्यक एकता और एकजुटता है।

कैम्ब्रिज एडवांस्ड लर्नर्स डिक्शनरी ने लोकाचार (एथोस) को "किसी व्यक्ति या समूह के सामाजिक व्यवहार और संबंध के बारे में विश्वासों, विचारों आदि का समूह" के रूप में परिभाषित किया है।

विलियम पी स्कॉट ने अपनी पुस्तक डिक्शनरी ऑफ सोशलॉजी में इस तथ्य की पुष्टि करते हुए स्पष्ट ढंग से कहा है कि लोकाचार का मानना वैकल्पिक नहीं है और अनुरूपता में कमी को ठोर ढंग से दंडित किया जाता है।

ऑक्सफोर्ड एडवांस्ड लर्नर्स डिक्शनरी ने इसे "एक विशेष समूह या समाज से संबंधित नैतिक चार और दृष्टिकोण" के रूप में परिभाषित किया है।

लोकाचार की विशेषताएं

1.संतुलन भारतीय विचार की एक स्थिर स्थिति है, अर्थात इच्छा और इच्छाहीनता, आध्यात्मिक और धर्मनिरपेक्ष मूल्यों, व्यक्तिपरक और भौतिकवादी दुनिया के बीच संतुलन।

2. भारतीय लोकाचार इस अवधारणा पर केंद्रित है कि यदि आप अच्छे हैं तो दुनिया भी आपके लिए अच्छी है।

3. भारतीय लोकाचार मनुष्य के सत्य के रूप में अस्तित्व पर केंद्रित है। परम आत्मा से ज्यादा परिपूर्णकुछ भी नहीं है।

4. भारतीय लोकाचार के अनुसार, आत्म-प्रेरणा और आत्म-विकास के माध्यम से काम पर उत्कृष्टता के माध्यम से कुल गुणवत्ता प्रबंधन का आश्वासन दिया जा सकता है।

5. भारतीय लोकाचार के अनुसार, किसी को आध्यात्मिक मूल्यों और धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के बीच संतुलन कायम करना चाहिए ताकि एक अमीर व्यक्ति भी भौतिकता और आध्यात्मिकता का जीवन जी सके।

6 भारतीय लोकाचार मुख्य रूप से उपनिषदों, भगवद् गीता और पुराणों से लिया गया है।

7. भारतीय लोकाचार आंतरिक संसाधनों पर जोर देता है। बाहरी संसाधनों की तुलना में आंतरिक संसाधन बहुत अधिक शक्तिशाली हैं।

8. भारतीय लोकाचार मूल्यों और नैतिकता पर अधिक जोर देता है। धन शक्ति नहीं हैय ज्ञान, अच्छा स्वास्थ्य और ध्वनि चरित्र वास्तविक शक्ति प्रदान करते हैं।

भारतीय लोकाचार संस्कृति, रिवाज, धर्म, नैतिकता, परंपरा के साथ-साथ विभिन्न रंगों और इनमें से प्रत्येक की डिग्री का एक विस्तृत वेब है।यह समाज की अच्छाई के लिए हमारे लोकाचार की सौहार्दपूर्ण भूमिका और योगदान का पता लगाने और मूल्यांकन करने का उच्च समय है। हमें विभिन्न कारणों से अपने प्रबंधन में भारतीय लोकाचार की आवश्यकता है। जो शांति से काम करता है और यहां तक कि सबसे ज्यादा खर्च करता है। जैसा हम सोचते हैं, इसलिए हम सफल होते हैं, इसलिए हम बन जाते हैं। काम में बहाने के लिए शक्ति और सहयोग दिव्य से आता है। सभी आपसी सहयोग और सम्मान से सबसे अच्छा आनंद लेंगे। भारतीय भारतीय लोकाचार के उत्पाद हैं। भारतीय प्रबंधन विधियां भारत में काम करने के लिए बाध्य हैं। भारतीय लोकाचार अन्य देशों में मौजूद लोकाचार से बेहतर है। भारतीय लोकाचार प्रबंधन सर्वोच्च आत्मा और सर्वोच्च सत्य में विश्वास करता है। यदि आप अच्छा करते हैं, तो आप अच्छे होते हैं। अगर आप अच्छे हैं, तो पूरी दुनिया अच्छी है। भारतीय एथोस प्रबंधन क्षमता और मूल्यों और संस्कृतियों पर टैप करता है। सही होने के लिए, वर्तमान में रहना और खुद को विकसित करना भारतीय लोकाचार प्रबंधन का मुख्य सार है। संस्कृति भारत का आधार है और एक ऐसे देश के रूप में जिसकी संस्कृति की जड़ें धर्म में हैं यह भूमि के धर्मों से अपना पाठ आकर्षित करता है चाहे वह हिंदू धर्म हो, बौद्ध धर्म, या कोई अन्य। हमारे प्राचीन धर्मग्रंथों द्वारा भारतीय लोकाचार के प्रमुख विचारों और विचारों को बताया गया है:

1. अहंकार की अपेक्षा अहंकार का उच्चीकरण

2. सार से लड़ने के बजाय सार का त्याग।

3 अधिकारों की अवधारणा के बजाय कर्तव्यों की अवधारणा

4 बाहरी नियंत्रण के बजाय आत्म नियंत्रण।

5 व्यक्तिगत उपलब्धि के बजाय टीम की उपलब्धि

6. भौतिक समृद्धि के बजाय आध्यात्मिक प्राप्ति

7. इस युग की दुनिया और सुधार के लिए चिंता

8. सभी सत्य की खोज करें और उसका स्रोत खोजें

9. हावी होने के बजाए भरोसे की उपज

प्रबंधन एक संगठन की योजना, निर्णय लेने, आयोजन, अग्रणी, प्रेरणा और मानव संसाधन, वित्तीय, भौतिक और सूचना संसाधनों को नियंत्रित करने की प्रक्रिया है, जो अपने लक्ष्यों को एक कुशल और प्रभावी तरीके से पूरा करने के लिए है। प्रबंधन व्यवहार विज्ञान है और इसे संस्कृति विशिष्ट और संस्कृति के प्रति संवेदनशील होना है।

कॉर्पोरेट जगत में, प्रबंधन की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। हमारे पास आदेश की एक उचित श्रृंखला है जो केवल तभी कार्य कर सकती है जब उसमें कुशल प्रबंधन हो। शुरुआती विद्वानों ने इस आवश्यकता को दूर किया और प्रबंधन के सिद्धांतों के साथ आया। ये सिद्धांत प्रबंधकों के लिए बुनियादी दिशानिर्देशों की तरह हैं।

प्रबंधन को कई सिद्धांतकारों ने अपने तरीके से परिभाषित किया है। हेनरी फेयोल ने प्रबंधन के रूप में परिभाषित किया, प्रबंधन का अनुमान लगाना, योजना बनाना, व्यवस्थित करना, आदेश देना, दूसरों की गतिविधियों का समन्वय और नियंत्रण करना है। सरल शब्दों में, प्रबंधन उन कार्यों को व्यवस्थित करने और उन्हें सौंपने का एक साधन है जिनके बीच कार्य करना आवश्यक है। जो लोग इसे कर सकते हैं, और फिर यह सुनिश्चित करना कि उक्त कार्य य से किया जाता है।

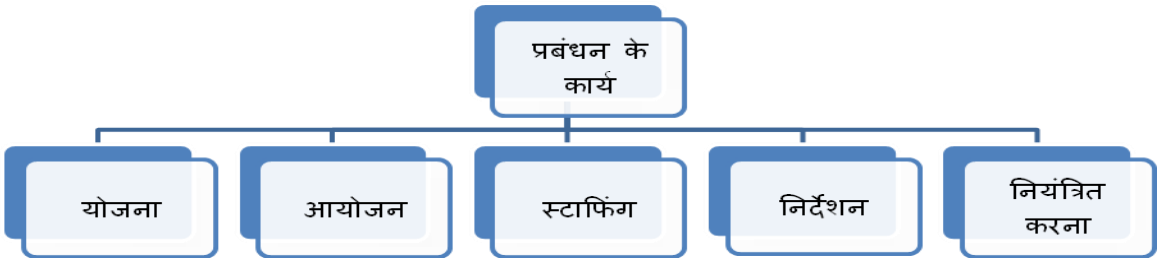

प्रबन्धन के कार्य

भारतीय प्रबंधन के सिद्धांत

1. पूर्णता प्राप्त करने के लिए किसी की संपूर्ण क्षमता, ऊर्जा और कौशल का उपयोग

क्योंकि मानव महान प्रयासों में सक्षम हैं

2. योगा कर्मसु कौशलम का पालन करना समर्पण के साथ आत्म-विकास और आत्म-विकास के

माध्यम से काम पर उत्कृष्टता प्राप्त करना लेकिन, अधिक महत्वपूर्ण बात, लगाव के बिना।

3. कर्म योग (नि:स्वार्थ कार्य) के मार्ग के बाद आत्म–शुद्धि और सार्वजनिक लाभों के रूप में कई गुना लाभ मिलते हैं

4. छोटे, अमूर्त वस्तुओं और महत्वपूर्ण मूर्त वस्तुओं को समान रूप से महत्वपूर्ण समझना। व्यक्ति को तीसरी आंख, ज्ञान चक्षु, ज्ञान की आंख, विजन, इनसाइट और दूरदर्शिता का विकास करना चाहिए। बाहरी संसाधनों की तुलना में आंतरिक संसाधन बहुत अधिक शक्तिशाली हैं। ईश्वरीय गुण आंतरिक संसाधन हैं। पूंजी, सामग्री, संयंत्र और मशीनरी बाहरी संसाधन हैं।

5. एक समग्र दृष्टिकोण का उपयोग करना, जो दिव्य (दैवीय का अर्थ है ज्ञान, ज्ञान और शक्ति में पूर्णता), व्यक्तिगत स्वयं और ब्रह्मांड के बीच एकता लाने पर केंद्रित है।

6. सहकारिता सामूहिक कार्य को शामिल करने वाले किसी भी उद्यम में टीमवर्क और सफलता के लिए एक शक्तिशाली साधन है।

प्रबंधन के लिए भारतीय लोकाचार के बुनियादी सिद्धांत

1परमात्मा के बीच एकता का संकेत करने वाला समग्र दृष्टिकोण (दैवीय का अर्थ है ज्ञान, ज्ञान और शक्ति में पूर्णता), व्यक्तिगत आत्म और ब्रह्मांड।

2 सूक्ष्म, अमूर्त विषय और सकल मूर्त वस्तुएं समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। व्यक्ति को तीसरी आंख, ज्ञान चक्षु, बुद्धि की दृष्टि, दृष्टि, अंतर्दृष्टि और दूरदर्शिता का विकास करना चाहिए। बाहरी संसाधनों की तुलना में आंतरिक संसाधन बहुत अधिक शक्तिशाली हैं। ईश्वरीय गुण आंतरिक संसाधन हैं। पूंजी, सामग्री और संयंत्र और मशीनरी बाहरी संसाधन हैं।

3. कर्म योग (नि:स्वार्थ कार्य) दोहरे लाभ प्रदान करता है, आत्म शुद्धि और सार्वजनिक लाभ के रूप में निजी लाभ

4. पूर्णता के लिए असीम क्षमता, ऊर्जा और प्रतिभाएं हैं क्योंकि इंसान के दिल में आत्मा है!

5. सहकारिता सामूहिक कार्य से जुड़े किसी भी उद्यम में टीम के काम और सफलता के लिए एक शक्तिशाली साधन है।

6. योग कर्मसु कौशलम् भक्ति के साथ और बिना आसक्ति के स्व-प्रेरणा और स्व-विकास के

माध्यम से कार्य में उत्कृष्टता। संगठन में कार्य संस्कृति में सुधार के लिए प्रासंगिक भारतीय **लोकाचार के कुछ तत्व निम्नलिखित**

1. जो अपने कर्तव्यों को शांत और मन से करता है वह सबसे अधिक प्राप्त करता है।

2. सभी प्राणी आपसी सहयोग और सम्मान से सबसे अच्छे का आनंद लें।

3. सभी काम दुनिया में अच्छे काम करने का एक अवसर है, इस प्रकार हमारे काम में भौतिक और आध्यात्मिक रूप से लाभ होता है।

4. शक्ति में काम करने के लिए शक्ति और सहयोग दिव्य द्वारा दिया जाता है।

5. जैसा कि हम सोचते हैं, वैसा हम बन जाते हैं एवं सफल होते हैं। भारतीय लोकाचार एक व्यक्तिपरक प्रबंधन प्रणाली की मांग करता है।

यह निम्नलिखित की समझ की ओर जाता है:-

1 प्रबंधन रवैया: शीर्ष प्रबंधन दृढ़ता से मूल्य-उन्मुख समग्र प्रबंधन में विश्वास करता है। राजस्व सभी हितधारकों- कर्मचारियों, ग्राहकों, शेयरधारकों और नागरिकों की सेवा और संतुष्टि के माध्यम से उत्पन्न होता है। सामाजिक जिम्मेदारी का निर्वाह लगातार सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

2. संगठन का मानवीयकरण– मानवीय संगठनों के तीन पहलुओं, अर्थात् अंतर-वैयक्तिक संबंधों,

मानव-मशीन समीकरण का प्रबंधन करना जहां मनुष्य व्यक्ति की मानसिक और आध्यात्मिक वृद्धि के माध्यम से प्रमुख चिंता और आंतरिक प्रबंधन है।

3. आत्म आत्मनिरीक्षण: आत्म–-परीक्षा, आत्म–विश्लेषण और आत्म-आलोचना को बधाई और असहमति के क्षेत्रों का पता लगाने, किसी के विचारों, भावनाओं, भावनाओं, संवेदनाओं और भावनाओं का आंतरिक मूल्यांकन और आत्मसमर्पण करने और अहंकार को वश में करने की इच्छा।

4 आंतरिक प्रबंधन- (चेतना द्वारा आत्म प्रबंधन या प्रबंधन) जब आत्मा नियंत्रण में लेती है और मनुष्य के अन्य चार घटकों अर्थात् शरीर, मन, बुद्धि और हृदय से जुड़ती है, तो इन चारों के बीच के संघर्ष को हल किया जा सकता है। इसे चेतना द्वारा प्रबंधन कहा जाता है। स्व-प्रबंधन का उद्देश्य पहले स्वयं को समझना और प्रबंधित करना है और फिर दूसरों को समझना और प्रबंधित करना है।

संकल्पना	प्रबंधन अवधारणा	भारतीय लोकचार में प्रबंधन
प्रबंधन	दूसरों के माध्यम से चीजों को प्राप्त करना	अन्य लोगों को उत्पादन करने में मदद कर असाधारण परिणाम प्राप्त करना
आदमी – मशीन समीकरण	मशीन मनुष्य पर हावी है! मनुष्य होंठ सहानुभूति प्राप्त करता है	आदमी को मशीन के पीछे वाले मनुष्य को उचित सम्मान, भावनात्मक स्थिरता, जिंदगी का स्वस्थ दर्शन
उत्पादकता	उत्पादन केंद्रित है	लोगों के प्रति केंद्रित
गुणवत्ता	अन्तर्राष्ट्रीय मानकीकरण संगठन (ISO), सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन (TQM), गुणवत्ता प्रबन्धन (QC) द्वारा उत्पाद की गुणवत्ता। मानव मूल्य, गुणवत्ता एवं मामूली भूमिका	मानव गुणवत्ता, मूल्य, चरित्र, मन संवर्धन, संपूर्ण मनुष्य दृष्टिकोण।
संरचना	श्रेणीबद्ध	जैविक विकास, स्वायत्त
योजना	परिणामों द्वारा प्रबंधन	रणनीति द्वारा प्रबंधन
प्रभावी पर्यवेक्षण	कार्य के प्रति चिंता और लोगों के लिए नही	काम करने वाले का निर्माण। मदद करो विकसित करने के लिए अधीनस्थ नेतृत्व की गुणवत्ता
लोगों की प्रेरणा	कुछ संशोधनों के साथ मास्लो का सिद्धांत	स्व-प्रेरणा पर जोर, अधीनस्थों को प्रोत्साहित करना रचनात्मकता और स्वायत्ता देना।
साधन	लगभग बाहरी संसाधनों पर भरोसा	आंतरिक संसाधनों पर भरोसा
विकास	अंततः माल के कारोबार पर निर्भर करता है	निजी और सार्वजनिक फायदे का समन्वय करना।

कंपनी का स्वास्थ्य	तुलन पत्र और नफा एवं नुकसान खाता एवं उन्मुख	लोग उन्मुख प्रदर्शन, पर्यावरण के अनुकूल। निजी – सार्वजनिक लाभ
लाभप्रदता	पैसे के मामले में सामाजिक लागत बैलेंस शीट में शामिल नहीं	अच्छी सार्वजनिक छवि के संदर्भ में सामाजिक लागतों को आंतरिक रुप देना। ग्राहक और समाज का भरोसा
विकास	अंततः माल के कारोबार पर निर्भर करता है	निजी और सार्वजनिक फायदे का समन्वय करना।
कंपनी का स्वास्थ्य	तुलन पत्र और नफा एवं नुकसान खाता एवं उन्मुख	लोग उन्मुख प्रदर्शन, पर्यावरण के अनुकूल। निजी – सार्वजनिक लाभ
लाभप्रदता	पैसे के मामले में सामाजिक लागत बैलेंस शीट में शामिल नहीं	अच्छी सार्वजनिक छवि के संदर्भ में सामाजिक लागतों को आंतरिक रुप देना। ग्राहक और समाज का भरोसा
सफाई के घटक	नौकरी संवर्धन पर ध्यान	मन समृद्ध पर प्राथमिक जोर
अधिकार और कर्तव्यों	लेने पर जोर देने पर जोर नहीं। अधिकार प्राथमिक हो जाते हैं। कर्तव्य सहायक हो जाता है	देने पर जोर लेने पर जोर नहीं। कर्तव्यों को बहुत महत्व दिया और अधिकार द्वितीयक मूल्य मानते हैं
कार्य की संतुष्टि	रचनात्मकता को अनदेखा कर लाभ पर ध्यान।	नवाचार के माध्यम से, विशिष्टता, असाधारण परिणाम एवं समस्या निवारण
विपणन	ग्राहक पकडने के लिए उत्सुक होड और मांग को बनाए रखने, बाजार संचालित अर्थव्यवस्था	सहयोग के माध्यम से पूरक भूमिका। सामाजिक विपणन में जागरुकता
प्रशिक्षण	कार्यात्मक कौशल, समग्र और मूल्य उन्मुख नहीं	मूल्य उन्मुख, समग्र दृष्टिकोण और दोनों पर समान जोर

		(कौशल/मूल्य)
प्रणाली	अंतर-संबंधित तत्वों को समुच्चय समग्र रुप से काम करना। मात्रा और उद्देश्य पहलू पर अधिक जोर	संगठनात्मक के माध्यम से कार्य व्यक्त करना। गुणवत्ता एवं मात्रा जोर के साथ व्यक्तिपरक पहलू पर बराबर जोर।

5. पीछे की ओर हटना: कभी भी कुछ भी तय न करें, कभी भी एक शब्द न बोलें, और किसी भी निर्णय से पूर्व कुछ समय अवश्य लगाये तुरन्त निर्ण न लें कुछ समय के लिए किसी स्थिति से पीछे हटना किसी को नियंत्रित करने और किसी स्थिति को नियंत्रित करने में सक्षम बनाता है। इस समय का उपयोग और एक प्रशंसनीय समाधान के साथ आने के लिए किया जा सकता है।

6. मन की गतिशीलता: तर्कसंगत और स्थायी निर्णयों के लिए, शांत और शांतिपूर्ण मन एक आवश्यकता है। एक परिपूर्ण मौनम (शांत मन) आवश्यक है। समस्याओं के समाधान खोजने के

लिए ध्यानपूर्ण चुप्पी सबसे विश्वसनीय तरीका है, जो स्पष्ट रूप से तर्क और बुद्धि से निपटने के लिए बहुत कठिन हैं। इस माध्यम से व्यक्ति चेतना या आंतरिक चेतना को चेतना कह सकता है।

7. अर्न्तज्ञान की भूमिका: अफ्रज्ञान बिना किसी तर्क या अनुमान के प्रत्यक्ष ज्ञान या निश्चितता में आने. की क्रिया है। यह आंतरिक मन द्वारा तत्काल अनुभूति है। जब पूरी तरह से विकसित किया जाता है, तो शीघ्र और ध्वनि निर्णय लेते समय प्रभावी साबित होता है। अफ्रज्ञान कौशल किसी को उतार-चढ़ाव वाले वातावरण और तेजी से परिवर्तनों के साथ आत्मविश्वास से सामना

करने में सक्षम बनाते हैं। आस्था अफ्रज्ञान की शक्ति को विकसित और कार्यान्वित करने के लिए एक शर्त है।

8.स्व-प्रेरित गतिशील ध्यान: गतिशील ध्यान, निम्न चेतना को उच्च चेतना में बदलने के लिए ध्यान है और इसलिए इसे ध्यान को परिवर्तित करना कहा जाता है। ध्यान के माध्यम से, एक शांत और शांत मन के साथ, एक उच्च स्तर की चेतना तक पहुंचता है जो समस्याओं की एक भीड़ से निपटने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है। इसे प्रबंधन के प्रति चेतना दृष्टिकोण कहा जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

- Chatterjee, B. K., *Organisational Behaviour And Beyond*, 1st Edition, Asian Books Private Ltd., New Delhi 110002, c2004

- Hanna, Mark D., *Integrated Operations Management*, PHI Prvate Ltd, New Delhi 110001
- Krajewski, Lee J., Ritzman. Larry P., *Operations Management – Strategy and Analysis*,
- Pearson Education (Singapore) Pte. Ltd, New Delhi 110092
- Sherlekar, S.A., *Management*, 1st Edition, Himalaya Publishing House, Mumbai 400004
- Robbins, Stephen P., Organizational Behaviour, 15th Edition, Pearson Education (Singapore) Pte. Ltd, New Delhi 110092
- http://www.samanvaya.com
- https://sites.google.com/site/gyanvigyanvatika2/lokachar
- https://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/126864/7/07_chapter%202.pdf
- https://www.dailypioneer.com/2016/columnists/understanding-indian-ethos.html
- https://www.speakingtree.in/blog/indian-ethos-management
- 10 International Conference of Research in Science, Technology and Management, ISBN-978-93-87793-05-7, Role of Indian Ethos for Management That May Help to improve work culture in Organization, Dr. Rajshri Randive Admane
- Indian Ethos & Values in Modern Management, Himadri Barman

***

37. एकात्म मानव दर्शन और प्रेमचंद

मंजू चतुर्वेदी*

स्वातंत्र्योत्तर काल में एकात्म मानव दर्शन का व्यवस्थित सैद्धांतिक निरूपण हालाँकि पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा किया गया माना जाता है, इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि 'यत पिंडे, तत ब्रह्माण्डे' की संकल्पना के रूप में विद्यमान एकात्मकता का भाव कालांतर से भारतीय चिंतन परंपरा और जीवन शैली का अभिन्न अंग रहा है। वाह्य रूप से हर प्रकार की विविधता तथा अनेक स्थानों पर असमरूपता दृष्टिगोचर होने के बावजूद एकात्मकता भारतीय जन मानस में यत्र तत्र सर्वत्र देखी जा सकती है। इस दृष्टि से महत्वपूर्ण बात यह भी है कि इस एकात्मकता का प्रकटीकरण भारतीय जन जीवन के अनेक क्षेत्रों जैसे कला, विज्ञान, व्यवसाय, सामुदायिक जीवन तथा साहित्य में प्रचुर मात्रा में अनुभूत किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में मुंशी प्रेमचंद के विचारों में सविहित एकात्मकता के तत्वों का निरूपण किया गया है।

एकात्म मानव दर्शन का सार

एकात्म मानव दर्शन पंडित दीनदयाल उपाध्याय की भारतीय चिंतन परंपरा को समृद्ध करने की दिशा में एक अनुपम देन माना जा सकता है। इस विचार का विशद तथा व्यवस्थित प्रतिपादन पंडित जी ने साठ के दशक में मुंबई में प्रस्तुत किये गए अपने चार व्याख्यानों के माध्यम से किया था।* अपने उद्बोधन में पंडित जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि एकात्म मानव दर्शन के रूप में किसी नवीन वैचारिक अधिष्ठान का वे प्रतिपादन नहीं कर रहे हैं। वह तो पुरातन काल से भारतीय चिंतन परंपरा में उपस्थित एकात्मकता के भाव का पुनर्पाठ ही कर रहे हैं। वस्तुतः दीनदयाल जी के एकात्म मानव दर्शन का मूल आधार है 'यत पिंडे, तत ब्रह्माण्डे'। इस उपनिषदिक युक्ति का सरलतम अर्थ यह लगाया जा सकता है कि जो इस घर या परिवार में है वही समस्त ब्रह्माण्ड में भी उपस्थित है। दूसरे शब्दों में, एकात्म मानव दर्शन मूलतः जीवन मूल्यों का व्यष्टि से समष्टि तक का विचरण है। इस दर्शन परंपरा में एक व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व कालांतर में सम्पूर्ण मानवता का प्रतिविम्ब बन जाता है। या यों भी कह सकते हैं कि एकात्म मानव दर्शन में व्यक्ति के व्यक्तित्व का उत्तरोत्तर वृहतीकरण परिवार, समाज, राष्ट्र, मानवता और अंततः चराचर सृष्टि तक माना गया है।*

---

* **शोधार्थी, हिंदी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली**

इस दर्शन के अनुसार, मानव जीवन के विभिन्न पक्ष स्वतंत्र न होकर एक दूसरे के ऊपर अंतर्निर्भर रहते हैं और उनमें पूरकता का सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। वास्तव में भारतीय चिंतन परंपरा का वैशिष्ट्य भी यही रहा है कि वह इस सृष्टि को समष्टि से अलग न देखकर उनको समग्रता में अनुभूत करता है। इसी विचार को पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने मानव, समाज और प्रकृति के एकात्म के रूप में देखा। वास्तव में यही एकात्मकता जीवन का शास्वत सत्य है। अंतिम विश्लेषण के रूप में किसी भी परिस्थिति अथवा कालचक्र के प्रवास की प्रथम दृष्टया विसंगति के बावजूद अन्तः विजय जीवन के सकारात्मक मानवीय पक्ष की ही होती है। इस एकात्मकता से परे या इसके विपरीत जो कुछ भी समाज अथवा देश में दृष्टिगोचर होता है वह कृत्रिम, क्षणभंगुर और पराभवकारी होता है जिसका बहुत लम्बे समय तक टिके रह पाना भी असंभव सा प्रतीत होता है।

प्रेमचंद और एकात्म मानव दर्शन

एकात्म मानव दर्शन के तत्त्व प्रचुर मात्रा में भारत के साहित्यिक कृतियों में भी दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार का दृश्य न केवल हिंदी साहित्य अपितु अन्य भाषाओँ के साहित्य में भी स्थान स्थान पर देखे जा सकते हैं। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य में एकात्मकता के सूत्रों को निरूपित करने में प्रेमचंद का कथा साहित्य बहुत अधिक सहायक होता है। जगविदित है कि मुंशी प्रेमचंद को हिंदी साहित्य में कथा सम्राट का स्थान प्राप्त है जो कहानियों और उपन्यासों के रूप में उनके विपुल योगदान को रेखांकित करता है। उनका कथा साहित्य वस्तुतः उनके समय की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों के प्रतिबिम्न की तरह प्रतीत होता है जिसके माध्यम से उन्होंने समाज और व्यक्ति के जीवन की विसंगतियों को शब्द चित्र के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद के कथा साहित्य की विषय वस्तु की विविधता और व्यापकता का अंदाज इसी बात से लगाया जा सकता है कि उन्होंने अपने कथानक और पात्रों के चयन में मनुष्यों के साथ चराचर जगत के अन्य जीवों को भी पर्याप्त महत्व दिया है। उनकी लगभग हर कहानी अथवा उपन्यास में एकात्मकता के तत्वों के दर्शन प्रचुर मात्रा में होते हैं जिनका प्रमाण मंत्र, ईदगाह, और दो बैलों की कथा नामक उनकी तीन प्रसिद्ध कहानियों के विश्लेषण से दर्शाने का प्रयत्न किया गया है। यद्यपि इन कहानियों का लेखन काल अलग अलग है फिर भी इन कहानियों का अन्तःसम्बन्ध प्रेमचंद के भावात्मक दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है।

मंत्र

मंत्र प्रेमचंद की उत्कृष्ट कहानियों में अग्रणी मानी जाती है। इस कहानी में प्रेमचंद दिखाते हैं कि पाश्चात्य सभ्यता का प्रसार बहुत तेजी से समाज पर पड़ता हुआ प्रतीत होता है। डॉ चड्ढा उसी का प्रतिनिधित्व करते हैं। दूसरी ओर बूढ़ा भगत जो मंत्र के माध्यम से समाज में सर्पदंश से ग्रस्त मानवता के

संताप को दूर करता है भारतीय विद्या व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है। निसंदेह पाश्चात्य शिक्षा में पला बढ़ा डॉ चड्ढा समाज के अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त मनुष्यो को रोगमुक्त करने के नाम पर वस्तुतः स्वयं को संतृप्त करता ही प्रतीत होता है क्योंकि उसके जीवन का उद्देश्य मानवता की रोगों से मुक्ति नहीं अपितु उसके स्वयं के जीवन में अनेक प्रकार की आसक्तियों को पूरा करना है। उदाहरण के लिए जब बूढ़ा भगत अपने छोटे बेटे को लाकर डॉ चड्ढा के चरणों में रखता है और उसके प्राणों को बचाने की गुहार लगाता है तो डॉ चड्ढा बड़ी बेरहमी से उस बच्चे का उपचार करने को यह कहकर मना कर देता है कि अब उसके खेलने का समय हो गया है। इसलिए वह इसका उपचार करने में स्वयं को असमर्थ पाता है। जैसा कि प्रेमचंद लिखते हैं, "डॉ चड्ढा ने कलाई पर नज़र डाली। केवल दस मिनट समय और बाकी था। गोल्फ कल सवेरे आओ - उतरते हुए बोले स्टिक खूंटी से-, कल सवेरे; यह हमारे खेलने का समय है।"

आधुनिक शिक्षा की यही विसंगति है कि हमने बड़ी निष्ठुरता से अपने सुख और समाज के सुख को अलग अलग कर दिया है जबकि संपूर्ण विश्व में सभी कुछ तो एकात्म है। उसका दर्शन एकात्मता के माध्यम से ही हो सकता है। इसलिए तो जब डॉ चड्ढा के पुत्र को सर्पदंश का सामना करना पड़ता है और सम्पूर्ण माहौल ग़मगीन हो जाता है तब यह बात उस बूढ़े और गरीब किन्तु विद्यावन्त भगत के कानों में पड़ती है। उस समय व्यक्तिगत अनुभवजनित वैमनस्य उसके समष्टिगत कल्याण की दृष्टि को धूमिल नहीं कर पाता।भगत के मन के द्वन्द को निरूपित करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं, "इतने में दो आदमी आते दिखाई दिए। दोनों बातें करते चले आ रहे थे चड्ढा बाबू का घर उजड़ गया -, वही तो एक लड़का था। भगत के कान में यह आवाज पड़ी। उसकी चाल और भी तेज हो गई। थकान के मारे पाँव न उठते थे इस ------- तरह वह कोई दस मिनट चला होगा कि डॉ साहब का बांगला नज़र आया।"* दूसरे शब्दों में, अनेकों प्रकार के पशोपेश से मुक्त होकर वह डॉ चड्ढा के पुत्र को सर्पदंश के संताप से मुक्त करने के लिए अचानक देवदूत सा प्रकट होता है। अपनी विद्या का प्रकटीकरण करके भगत डॉ चड्ढा के बेटे को ठीक कर देता है। इस प्रकार ग़मगीन माहौल को आनंद में परिवर्तित करने के बाद वह वहां से बिना किसी श्रेय को प्राप्त किये चला जाता है। इस प्रकार प्रेमचंद इस कहानी में डॉ चड्ढा और भगत के मनोभावों के एकात्म को बड़े प्रभावी ढंग से रेखांकित किया है।

ईदगाह

ईदगाह प्रेमचंद द्वारा लिखी गयी कहानियों में ऐसी मनोदशा का प्रतिनिधित्व करती है जो अर्थाभाव में भी एकात्मकता को दुर्लक्ष्य नहीं करती। छोटा सा बालक हामिद अपनी दादी के साथ विपन्न अवस्था में रहकर भी जीवन के सब आनंदों को उसके स्नेह के द्वारा अनुभव करता है। इसलिए जब

ईदगाह पर ईद का मेला लगता है तो वह भी अपने बाल मन को मेले में जाने से रोक नहीं पाता है। किन्तु पैसे का अभाव उसको मेले में शाहखर्ची की अनुमति भी नहीं देता। भारतीय परंपरा में पंचतत्व की अवधारणा, जिसको पंडित दीनदयाल उपाध्याय अपने एकात्म मानव दर्शन के माध्यम से व्यष्टि से समष्टि के अन्तर्सम्बन्ध को स्थापित करने में प्रयोग करते हैं, की व्यवहारिकता का प्रकटीकरण दादी पोते के - मनोभावों के सम्बन्ध में आसानी से समझा जा सकता है। इस दृष्टि से हामिद को वस्तुतः दादी की आत्मा का ही विस्तार माना जा सकता है। इसलिए दादी तुरंत बाल मन के संशय को भांप जाती हैं और किसी प्रकार से अपने बहुत संभालकर रखे हुए तीन पैसे जो कि भौतिक दृष्टि से तो बहुत कम हैं किन्तु आत्मिक दृष्टिकोण से वे संसार में सबसे अधिक मूल्य रखते हैं, हामिद को दे देती है। फिर जब उसके सर पर हाथ फेरकर यह कहती है कि जा तू भी मेला देख आ तो बालक हामिद का मनमयूर दादी के स्नेह से आप्लावित हो जाता है और वह भागकर मेले में जाने वाले गांव के अन्य बालकों की टोली का हिस्सा बन जाता है।

टोली में सम्मिलित बालक अपनी अपनी आर्थिक अवस्था के आधार पर अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने की भावना एक दूसरे पर प्रकट करके शान बघारते हैं। किन्तु बालक हामिद जिन मानसिक द्वंदों में पड़कर मेला देखने आया है वह अवस्था उसको दादी के पसोपेश के साथ एकात्म करती है। यही कारण है कि मेले में आने के बावजूद भी वह अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ और खिलौनों के साथ स्वयं को जोड़ नहीं पाता है। वह जैसे ही अपने सभी साथी बालकों के प्रभाव में वशीभूत इन वस्तुओं के साथ जुड़ता हुआ अनुभव करता है वैसे ही उसे अपनी बूढी दादी का झुर्रीयुक्त चेहरा चूल्हे में से गर्म रोटी को हाथ से सेकते हुए हाथों को जलने की असीम पीड़ा के साथ एकात्म कर देता है। इस प्रकार मेले के भौतिक आकर्षण पर दादी-पोते की एकात्मकता भारी पड़ जाती है। इसलिए हामिद मेले में उपलब्ध अनेक व्यंजन और खिलौनों की मीमांसा अपने प्रकार से करता हुआ प्रतीत होता है। अतः वह मेले में उस दुकान पर जाकर खड़ा होता है जो खिलौना उसकी दादी के हाथ जलने के कष्टों से मुक्ति दिला सके और उसके मन के अंदर असीम आनंद का प्रकटीकरण कर सके। वह अपने साथ जो पैसे लाया है उससे वह एक लोहे का चिमटा ही अपनी दादी के लिए खरीद पाता है।

इस प्रकार जहाँ हामिद के दोस्त मिठाइयां और खिलौने खरीदते हैं वहीँ हामिद लोहे के सामान की दुकान से तीन पैसे का एक चिमटा खरीदता है। शाम को घर लौटने पर जब दादी उससे पूछती है कि उसने क्या क्या खाया या ख़रीदा तब वह अपना चिमटा दिखलाता है जिसे देखकर दादी को बहुत क्रोध आता है। जैसा कि प्रेमचंद लिखते हैं का है कि दोपहर हुआअमीना ने छाती पीट ली। ये कैसा बेसमझ लड़", कुछ खाया न पिया, लाया क्या, चिमटा सारे मेले में तुझे और कोई चीज न मिली जो यह लोहे का चिमटा उठा !

लाया? हामिद ने अपराधी तुम्हारी उँगलियाँ तवे से जल जाती थी - भाव से कहा -, इसलिए मैंने इसे लिया।"* हामिद का जवाब सुनकर अमीना की आँखों में आंसू आ जाते हैं और वह हामिद को गले लगा लेती है। इस प्रकार, इस कहानी में एकात्मकता के भाव का प्रस्फुटन नन्हे हामिद के माध्यम से होता है जो सिर्फ अपने बारे में न सोचकर अपनी दादी की तकलीफों को दूर करने का उपाय निकालता है। अब उसकी दादी का सुख ही उसका सुख बन जाता है।

दो बैलों की कथा

इस कथा में भी प्रेमचंद के 'सर्वभूते हितेरतः' की भाव अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। झूरी नामक किसान, जो हीरा और मोती नामक दो बैलों को अपने परिवार के सदस्य की भांति ही मानता है और उनके सहयोग से अपने परिवार का भरण पोषण करता है, को अपने बैलों के प्रति अगाध स्नेह के प्रतीक के रूप में दिखाया गया है। इस प्रकार से झूरी के परिवार में दो बैलों को मिलाकर एकात्मकता का जो सहज दर्शन होता है वह प्रेमचंद के मानवीय पक्ष को स्पष्ट रूप से प्रतिष्ठापित करता है। प्रेमचंद वस्तुतः ऐसे कथाकार हैं जिनके साहित्य में व्यष्टि से समष्टि तक का अन्तःसम्बन्ध कहीं भी दुर्लक्ष्य नहीं होता है चाहे वह मनुष्य हो या जानवर। यों भी कह सकते हैं कि ईशोपनिषद के भाव "ईशावश्यमं इदंसर्वं" की अनुभूति प्रेमचंद के साहित्य में सर्वथा अभिव्यक्त होता है। तभी तो वे दोनों बैलों के मुंह से परिवार की चिंता का प्रकटीकरण करवाते हैं और हीरा मोती को गया के यहाँ भेजने पर बैलों के भाव को इस रूप में व्यक्त करते हैं तुम हम गरीबों को क्यों निकल रहे हो"? हमने तो तुम्हारी सेवा करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। अगर इतनी मेहनत से काम न चलता था तो और काम ले लेते। हमें तो तुम्हारी चाकरी में मर जाना कबूल था।"*

इस भावपूर्ण वर्णन में प्रेमचंद 'यत पिंडे, तत ब्रह्माण्डे' के मूलभाव को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास करते हैं। वस्तुतः दीनदयाल उपाध्याय भी अपने एकात्म चक्र के माध्यम से व्यष्टि से समष्टि के अन्तःसम्बन्ध के द्वारा एक दूसरे को प्रभावित करने की कल्पना को प्रतिष्ठापित करते हैं। यही भाव हीरा - मोती, झूरी और उसकी पत्नी के आचरण में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। हीरा और मोती के जीवन में झूरी के परिवार से अलग होने के बाद एक क्षण का भी संतोष नहीं था और हर प्रकार के कष्ट का सामना करते हुए भी वे अंततः झूरी के द्वार पर ही आकर खड़े होते हैं। इस प्रकार हर तरह का कष्ट सहकर भी जब कोई प्राणी अपने आत्मीय जन के पास जाने का यत्न करता है तो यह उनकी एकात्मकता का उत्कृष्ट उदाहरण बन जाता है। यही एकात्मकता ही भारतीय जीवन शैली का मूल आधार है। प्रेमचंद के साहित्य में यह भाव कहीं भी दुर्लक्ष्य नहीं होता है। दीनदयाल उपाध्याय ने भी अपने सम्पूर्ण साहित्य में जो

भाव प्रकट किया है उनमे भी एकात्मकता की प्रतिष्ठापना को बल मिलता है।

प्रेमचंद के कथा सागर में से उक्त तीन कहानियों को जब हम दृष्टिगत रखकर एकात्म मानव दर्शन के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन करते हैं तो इस महान कथाकार की न केवल तीन कहानियां अपितु सम्पूर्ण साहित्य एकात्म मानव दर्शन के इर्द गिर्द घूमता प्रतीत होता है। अंततः यही प्रतीति उन्हें न केवल कथा सम्राट के रूप में प्रतिष्ठापित करती है बल्कि वे मानवता के संरक्षक, हितवर्धक एवं सम्पोषक के रूप में भी ख्याति अर्जित करते हैं। इसी कारण प्रेमचंद का समग्र साहित्य कहीं पर भी निहित श्रेयस के भाव से विलग नहीं हुआ है। साथ ही उन्होंने अपने साहित्य में अनेक स्थानों पर सामाजिक कुरीतियों पर न केवल कटाक्ष किया है अपितु उनकी भर्त्सना भी की है। प्रेमचंद का यह व्यवहार न केवल मनुष्य बल्कि अन्य प्राणियों के साथ भी एकरूप होता है। इसलिए उनके कथा साहित्य में हर प्रकार के प्राणी एक साथ चलते मिलते हैं। उपरोक्त तीनों कहानियों में भी प्राणी के मध्य कोई भेद नहीं है न अवस्था के आधार पर और न - ही योनि के आधार पर। प्रेमचंद का समग्र साहित्य सामाजिक सरोकारों पर टीका टिप्पणी करते हुए एकात्मकता की प्रतिष्ठापना या पोषण करता हुआ परिलक्षित होता है। प्रेमचंद के साहित्य का मूल्यांकन राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भारत की भावभूमि के अनुरूप होना चाहिए जिसका कदाचित अभाव सा प्रतीत होता है।

संदर्भ ग्रंथ सुची

1. महेश चंद शर्मा, *दीनदयाल उपाध्यायः कर्तृत्व एवं विचार*, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 3
2. दत्तोपंत ठेंगड़ी, *पंडित दीनदयाल उपाध्यायः विचार दर्शन, खंड 1*, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986, पृ.17
3. मुंशी प्रेमचंद, "मंत्र", *मानसरोवर, भाग - 1*, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 78
4. वही, पृ. 81
5. मुंशी प्रेमचंद, " ईदगाह ", *मानसरोवर, भाग* - 2, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 198
6. मुंशी प्रेमचंद, "दो बैलों की कथा ", *मानसरोवर, भाग* - 4, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 35

***

38. मैथिली में तकनीकी शब्दों के महत्व व अनुप्रयोग

पुतुल कुमारी*

भाषा न केवल विचार विनिमय का माध्यम है अपितु इसकी उपस्थापना, संरक्षण व संवर्धन का एक शक्तिशाली उपक्रम भी है । भाषा के अभाव में कुछ भी सोचना-विचारना संभव नहीं है । और, जैसा कि हम जानते हैं विचार के अभाव में मानवीय अनुभूति, अनुभूतिजन्य अनुभव एवं तार्किकता की निष्पति को ज्ञान-विज्ञान की दिशा में मोड़ना और उसे सुरक्षित रखना असंभव सा है। विज्ञान की मान्यता है कि सृष्टि के प्रत्येक जीव-जन्तु की अपनी एक विशिष्ट भाषा होती है जिसके द्वारा वह अपने भावनात्मक संवेगों का आदान-प्रदान करता है। परंतु भाव के साथ-साथ विचारों का उपस्थापन, उसका संरक्षण और संवहन की शक्ति केवल और केवल मनुष्य में है ।मनुष्य को उसकी भाषा-शक्ति के कारण ही सृष्टि का सबसे ज्ञानी समझदार व सभ्य प्राणी माना जाता है। तात्पर्य यह कि भाषा की प्रगति पर ही ज्ञान-विज्ञान की प्रगति निर्भर करती है । जैसे- जैसे मनुष्य की भाषा विकसित होती जाती है, वैसे-वैसे ही उसकी सभ्यता-संस्कृति का विकास भी होता जाता है । पुनः भाषा स्वयं ही उस विकसित सभ्यता-संस्कृति को भावी पीढी तक पहुँचाने मे सेतु का काम करती है जिसको आत्मसात् कर नवीन पीढी नव-नव स्थापना करते हुए ज्ञान-विज्ञान के भंडार को भरती रहती है । इसके विपरीत ज्ञान-विज्ञान के नये-नये सूत्रों के द्वारा भाषा भी अपनी प्रगति में अनवरत् लगी रहती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाषा सभ्यता-संस्कृतिक एवम ज्ञान-विज्ञान का संपूरक होती है । भाषा का इतिहास ही संस्कृति का इतिहास है; ज्ञान-विज्ञान का इतिहास है। प्रसंगोन्मुख हुआ जाए उससे पहले मैथिली भाषा के संवर्द्धन, संरक्षण के लिए किये गये प्रयासों का उल्लेख अनिवार्य हो जाता है ।

मैथिली के रूप में जिस भाषा को आज हम जानते हैं उसका इतिहास यद्यपि अति प्राचीन एवम साहित्य अत्यंत समृद्ध है, तथापि मैथिली के रूप में इसका नामकरण पहली बार उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम वर्ष अर्थात् सन् 1801 ई. में एक अंग्रेज विद्वान एच टी कोलब्रु के द्वारा ही किया जा सका । अज्ञानतावश, एक समृद्ध साहित्यिक परंपरा के वावजूद, दीर्घावधि तक इस भाषा को हिन्दी एवम बांग्ला भाषा का उपांग माना जाता रहा । कालांतर में एक अंग्रेज अधिकारी सर जार्ज ओ. अब्राहम के तीस वर्षों

* शोधार्थी, मैथिली विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

के भागीरथी प्रयास से मैथिली एक स्वतंत्र भाषा के रूप में अपनी पहचान बना सकी । तत्पश्चात् मैथिली भाषा-साहित्यपर विस्तृत और क्रमिक शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत कर अंग्रेज शोद्धार्थी ग्रियर्सन महोदय ने भाषा-साहित्य के प्रति मिथिलावासियों में गौरव-बोध का सूत्रपात किया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में साहित्यिक-सांस्कृतिक एवम सामाजिक उत्थान के लिए दरभंगा राज के तत्कालीन महाराजा लक्ष्मेश्वर सिंह द्वारा नव जागरण का बीज बोया गया जिसने बीसवीं शताब्दी की पहली शताब्दी तक आन्दोलन का रूप ले लिया। इस आंदोलन को उस समय के प्रसिद्ध मैथिल विद्वानों यथा: म.म. उमेश मिश्र, पं बलदेव मिश्र प्रभृति अनेक अंग्रेजी, संस्कृत विद्वान का सहयोग और समर्थन भी प्राप्त हुआ । इस क्रम में, भाषा की उन्नति के लिए विभिन्न विन्दुओं पर विमर्श चलता रहा। मैथिली की उन्नति कैसे हो, इसे लिखने के नियम क्या हों, शैली कैसी हो, उच्चारण के नियम क्या हों आदि अनेक विषयों पर विभिन्न लेखादि का पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से समय-समय पर प्रकाशन होता रहा। अनेक गोष्ठियों-संगोष्ठियों में तदर्थ मंथन चलते रहे। पत्र-पत्रिका के माध्यम से मैथिली भाषा के संरक्षण-संवर्द्धन के लिए जिस आंदोलन का सूत्रपात हुआ उसमें मिथिला से बाहर रहनेवाले अप्रवासी मैथिल विद्वानों नें महती भूमिका निभायी । विडंबना ही कहा जा सकता है कि करोड़ों मैथिली-भाषी की धरती मिथिला से दूर मैथिली की पहली पत्रिका 'मैथिली-हित साधन' का प्रकाशन पहली बार जयपुरमे सन् 1905 मे प्रारंभ हुआ । तदनन्तर, अनेक पत्रिकाओं यथा: बनारस में 'मिथिला मोद' (1906), पटना में मिथिला मिहिर'(1908), मथुरा में 'मिथिला प्रभा'(1920), अजमेर में 'मैथिल प्रभाकर' (1929) आदि के प्रकाशन से मैथिली भाषा को गतिशील और जीवंत बनाये रखने का उद्यम होता रहा । फलस्वरूप इस अवधि में मैथिली की गद्य विधा का तीव्रता के साथ विकास हुआ । 'मिथिला मिहिर' के संपादक मंडल में रहे द्विवेदीयुगीन लेखक पंडित जनार्दन झा 'जनसीदन' द्वारा लिखी मैथिली कथा 'ताराक वैधव्य' प्रथम आधुनिक मैथिली कथा शैली के रूप में सामने आयी । प्रकारांतर से उपन्यास, नाटक, व्यंग्य विधा में भी अनेक कार्य हुए । इस प्रकार पद्यात्मक साहित्य के लिए प्रसिद्ध मैथिली साहित्य भंडार गद्य विधा से और अधिक समृद्ध और सुसज्जित होने लगा । मोटे तौर पर, बीसवीं शताब्दी में व्याकरण, लिपि, शब्द-कोश निर्माण, भाषा-विज्ञान आदि अनेक विषयों मे अनेक महत्वपूर्ण काम हुए जो मैथिली भाषा-साहित्य के विकास के लिए मील का पत्थर साबित हुए।

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् 30 नवंबर 1949 को भारतीय संविधान के निर्माण का कार्य पूरा हुआ तथा इसके कतिपय अनुच्छेदों को इसी दिन से लागू भी कर दिया गया। हालँकि यह पूर्णरूप से 26 जनवरी 1950 को ही संपूर्ण भारतवर्ष में प्रभाव में आ सका। इस नूतन भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 में हिन्दी को राजभाषा का दर्जा देते हुए अन्यान्य भारतीय भाषाओं की उन्नति, संरक्षण एवम संवर्द्धन की व्यवस्था की गयी थी। जैसा कि हम जानते हैं भाषा को बहता नीर कहा गया है । इसके इस बहाव के मंद पड़ने से भाषा गतिहीन व रूग्ण हो जाती है; उसका विकास थम-सा जाता है । भाषा को यदि नदी माना जाय तो शब्द-सामर्थ्य उसका जल है । अर्थात् भाषा की पूँजी उसका शब्द है । जल का प्रवाह जितना अविरल रहेगा, नदी उतनी ही निर्मल और दीर्घजीवी होगी । वही भाषा जीवित रहती है जिसकी आँत अधिक मजबूत हो ; जिसमें नये-नये शब्दों को उदरस्थ कर पचा लेने का सामर्थ्य हो । सौभाग्य से मैथिली सहित अन्य भारोपीय भाषाओं के परिवार के पास यह शक्ति और सामर्थ्य मौजूद है । शब्द संग्रह,शब्द समायोजन एवम सरल प्रयोग-विधि भाषा में यथेष्ट प्रवाह पैदा कर उसे गतिशील बनाते हैं।

आज का युग विज्ञान का युग है। नित नये तकनीकों का विकास, वैज्ञानिक अनुसंधान-आविष्कार के फलस्वरूप ढेर सारे विदेशी शब्दों का प्रवाह भारतीय भाषाओं में होना लाजिनी है। मैथिली भी इसका अपवाद नहीं हो सकती। इन शब्दों में अधिकांश अंग्रेजी, लैटिन एवम ग्रीक भाषाओं से विकसित या अनुप्राणित हैं । विभिन्न वैज्ञानिक निकष पर यह सिद्ध हो चुका है कि मातृभाषा में बोध-लब्धता की क्षमता सर्वाधिक होती है। शिक्षा का माध्यम यदि मातृभाषा हो तो विषयों को सीखना अपेक्षाकृत ज्यादा सहज होता है। अतः विदेशी भाषाओं से विज्ञान और तकनीक में आये इन शब्दों को मातृभाषा में पचाकर सरल-सहज व बोधगम्य बनाना अपरिहार्य हो जाता है। अस्तु, आजाद भारत के सरकार द्वारा संविधान के अनुच्छेद 351के अध्यधीन भारतीय भाषाओं की उन्नति के उद्देश्य से सन 1950 ई. में एक शिक्षा सलाहकार बोर्ड की स्थापना की गयी थी, परंतु इस कार्य की व्यापकता तथा जटिलताओं को देखते हुए इसके लगभग एक दशक के पश्चात् सन् 1961 में प्रसिद्ध शिक्षाविद् डी एस कोठारी अध्यक्षता मे एक अखिल भारतीय तकनीकी एवं वैज्ञानिक शब्दावली आयोग का गठन कर लिया गया। तबसे लेकर आद्यावधि, भारत सरकार के मानव संशाधन विकास मंत्रालय के अधीन काम करते हुए आयोग नें हिन्दी सहित अन्यान्य भारतीय भाषाओं के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। नये-नये तकनीकी शब्दों के निर्माण सहित पारिभाषिक शब्दावलियों को गढने के लिए आयोग द्वारा निरंतर प्रयास जारी है । इस क्रम में देश के चौदह राज्यों में हिन्दी सहित क्षेत्रीय भाषाओं की संयुक्त अकादमी की स्थापना कर इस संदर्भ में गंभीर प्रयास किये जा रहे हैं।

सन 2003 में तत्कालीन सरकार द्वारा संविधान की अष्टमअनुसूची में सम्मिलित कर लिए जाने से मैथिली भाषा के विकास की संभावनाएँ बढी है । यूपीएससी, बीपीएससी जैसे प्रतिष्ठित संस्थानों के

द्वारा वैकल्पिक विषय के रूप में मान्यता मिलने से इस भाषा के प्रति प्रशासकीय प्रतियोगी छात्र-छात्राओं का आकर्षण भी बढा है । माध्यमिक व उच्चतर शिक्षा में वैकल्पिक विषय के रूप में मैथिली पहले से ही स्वीकृत है। प्राथमिक शिक्षा में मैथिली को सम्मिलित किये जाने की मांगें जोड़ पकड़ चुकी है । विद्वानों के मतानुसार मातृभाषामे शिक्षा सर्वाधिक सहज, प्रभावी एवं बोधगम्य होती है । हाल में ही अगस्त 2019 में लखनऊ मे तकनीकी भाषा संदर्भित आहुत एक सेमिनार में बतौर मुख्य अतिथि एकेटीयू के कुलपति प्रो विनय कुमार पाठक नें अपने उद्बोधनमे देश की पिछड़ापन का मुख्य कारण शिक्षा से मातृभाषा की दूरी को बताया है । डा॰ पाठक के अनुसार जिस भाषा में हम सबसे अच्छी तरह सोच सकते हैं, शिक्षा उसी भाषा में दिया जाना श्रेयस्कर है। और, वह भाषा अपनी मातृभाषा ही हो सकती है।

मैथिली भाषा काफी समृद्ध है और शिक्षा का माध्यम होने की पर्याप्त योग्यता एवम संभावना इसमें विद्यमान है । संविधान सम्मत भाषा होने के कारण कोई वैधानिक अवरोध भी नहीं है । प्रसन्नता की बात है कि साहित्य अकादमी के संयोजक प्रसिद्ध शिक्षाविद् डा॰ प्रेम मोहन मिश्रा नें मैथिली में रसायन विज्ञान का अनुवाद कर इस दिशा में प्रयास करना आरंभ कर दिया है । चूँकि, तकनीकी ओ वैज्ञानिक शब्दाली का क्षेत्र काफी विस्तृत है। प्राकृतिक विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान, अर्थ-विज्ञान व प्रशासकीय भाषा सहित अनेक शास्त्रों में प्रयुक्त कठिन और जटिल विदेशज शब्दों का सरल-सहज पर्याय का निर्माण करना कोई साधारण काम नहीं है । हालाँकि मानव संशाधन विकास मंत्रालय के सहयोग से मैथिली-हिन्दी अकादमी इस ओर गंभीरता से काम कर रहा है । निर्दिष्ट विषयपर विभिन्न अकादमियों के द्वारा सेमिनार आदि का आयोजन, विशेषज्ञ समिति का गठन आदि कर माध्यम से तकनीकी शब्द का निर्माण और प्रयोग से संबंधित विमर्श निरंतर चल रहा है । मैथिली भाषा के संदर्भ में ऐसे विमर्शों की उपयोगिता एवं उपादेयता और बढ जाती है। मैथिली भाषा के लब्धप्रतिष्ठित वैयाकरण, भाषा-वैज्ञानिक, वैज्ञानिक, शिक्षा-शास्त्री, विषय-विशेषज्ञ आदि के सामूहिक प्रयास से इस दुरूह कार्य को सुगम बनाया जा सकता है।

उपरोक्त क्रम में, तकनीकी और वैज्ञानिक शब्दावली आयोग सहित अनेक विद्वान का मत है कि नये शब्दों की निर्माण-प्रक्रिया में शब्द की सरलता एवं बोधगम्यता पर विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए।

परंतु, यहाँ प्रश्न उठता है कि सरलता से क्या अभिप्राया ? उच्चारण की सरलता अथवा वर्तनी की ? चूँकि, मैथिली भाषा की प्रकृति ध्वन्यात्मक अधिक है, इसलिए उच्चारण की सरलता तो इसका अनिवार्य तत्व है ही । लेकिन अर्थवत्ता और वर्तनी की सरलता के बिना अभीष्ठ की प्राप्ति असंभव सा है । जैसे कि सर्वज्ञात है अधिकांश तकनीकी एवं वैज्ञानिक शब्द की व्युत्पति लैटिन, ग्रीक, अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं से हुई है। ऐसे सभी प्रकार के शब्दों के लिए आलोच्य भाषा अथवा अन्यान्य भारतीय भाषा में सटीक पर्याय की तलाश करना असंभव नही तो कठिन अवश्य ही है । जैसा कि पूर्व का अनुभव भी कहता है, ऐसे शब्दों के पर्याय यदि तत्सम शब्द के सहयोग से मिल भी जाते हैं तो वह उच्चारण, वर्तनी, अर्थवत्ता

तथा प्रयोग की दृष्टि से अधिक क्लिष्ट हो जाता है फलस्वरूप वे लोकप्रिय अथवा सर्वग्राही नहीं बन पाते। परिणाम यह होता है कि शनैः शनैः उनका प्रयोग स्वयंमेव कम या समाप्त होने लगता है । स्वयं मैथिली को भी अपने शब्दों के संदर्भ में ऐसे संकटों का सामना करना पड़ रहा है। उदाहरणस्वरूप इंजीनियरिंग, आॅपरेटिंग सिस्टम, कम्प्यूटर आदि को लिया जा सकता है । इंजीनियरिंग के लिए अभियांत्रिकी, आॅपरेटिंग सिस्टम के लिए प्रचालन तंत्र, कम्प्यूटर के लिए संगणक आदि पर्याय के निर्माण तो किये गये परंतु वे उतने लोकप्रिय नही हो सके । आज भी प्रायः उनका प्रयोग मूल अंग्रेजी रूपों में ही धड़ल्ले से होता है । इसलिए मेरे विचार से ऐसे तकनीकी शब्द जो मैथिली में लोकप्रिय हो चुके हैं अथवा जनमानस की बोल-चाल में रच-बस गये हों ; शब्द एवम उनके भावों से सुदीर्घ परिचिति बन चुकी है उनको यथावत् प्रयोग किये जाने की छूट मिलनी चाहिए । मोबाइल, टीभी, रेडियो, माउस, की-बोर्ड, ट्रेन, बस, कार, आदि ऐसे ही कुछ प्रचलित, सुपरिचित और पूर्व से रचे-बसे शब्द हैं जिनके लिए किन्हीं नये शब्दों के निर्माण की आवश्यकता नहीं महसूस की जानी चाहिए।

दूसरे प्रकार के शब्द जो अनुप्रयुक्त विज्ञान, अर्थशास्त्र गणित आदि में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचलन में हैं एवम तकनीकी ओ वैज्ञानिक शब्दावली आयोग द्वारा हिन्दी में जस के तस रख दिये गये हैं यथाः गणित का sine, cosine, theta, भौतिकी की मात्रा यथा मीटर, लीटर; रसायन विज्ञान के तत्व यथा हाइड्रोजन, ऑक्सीजन; जीव-विज्ञान का माइटोकॉड्रिया आदि उनको वैसे ही मैथिली में भी स्वीकार किया जाना चाहिए।

तीसरे प्रकार में वे शब्द आते हैं जो अंग्रेजी अथवा अन्य विदेशी भाषाओं के व्युत्पन्न हैं और जिनके लिए न तो नये शब्दों का निर्माण संभव है और न ही उनसे जनमानस का अधिक परिचय ही है । ऐसे शब्दों के लिए विज्ञान-विद्, भाषा वैज्ञानिक एवं मैथिली वैयाकरण तथा शिक्षा-विद् के सहयोग से पारिभाषिक शब्दावली कस सहज और सरल निर्माण किये जाने की आवश्यकता है ताकि छात्र-छात्रा, अध्येता सहित अध्यापक आदि को अपनी मातृभाषा में उनकी परिचिति तथा उनके तात्विक अर्थों को समझने-समझाने में आसानी हो।

चौथे प्रकार में वैसे शब्द हो सकते हैं जिनके लिये नये-शब्दों का निर्माण संभव है । लेकिन ऐसे शब्दों के निर्माण में तकनीकी एवं वैज्ञानिक शब्दावली आयोग सहित मैथिली के प्रसिद्ध विद्वान यथा :पंडित गोविंद झा आदि विद्वान के शाब्दिक सरलता से संबंधित सुझावों को ध्यान में रखा जाना अपरिहार्य है । जैसे कि ऊपर में सरलता का आशय स्पष्ट कर दिया गया है तकनीकी शब्द के नव-निर्माण की प्रक्रिया में नये शब्दों के उच्चारण, वर्तनी एवं बोधगम्यता तीनों स्तर पर सरलता और सहजता का ध्यान रखा जाना चाहिए । मैथिली भाषा प्रायः एक ध्वन्यात्मक भाषा है । अतः वर्तनी यदि सरल रहेगा तो उच्चारण स्वयंमेव सरल हो जाएगा । लेकिन प्रश्न है कि वर्तनी को सरल कैसे बनाया जाए । मेरे विचार

से, वर्तनी की सरलता के लिए तत्सम शब्द की जगह तद्भव शब्द के उपयोग की दिशा में कार्य करना ज्यादा समीचीन हो सकता है। उदाहरण स्वरूप तत्सम शब्द आलस्य को लिया जा सकता है। 'आलस्य' का तद्भव 'आलस' होता है जो प्रायः उच्चारण, वर्तनी एवं बोधगम्यता तीनों स्तर पर आलस्य की अपेक्षा सरल है ।इससे अन्यान्य शब्दों का निर्माण भी आसान है यथाः आलसी, आलसपन आदि। तात्पर्य यह कि नये शब्दों के निर्माण में तत्सम शब्दों के प्रयोग की पूर्ण निर्भरता को कुछ हद तक त्यागकर तद्भव शब्दों में यदि इनके विकल्प तलाशें जाएँ तो अपेक्षाकृत कुछ अधिक सरल शब्दों का निर्माण संभव हो सकता है । इसका यह अर्थ कतई नहीं कि तत्सम शब्द के उपयोग ही न हों । तत्सम शब्दों से अन्य शब्दों की अपेक्षा अधिकाधिक तकनीकी शब्दों का निर्माण किया जा सकता है । परंतु इस क्रम में यह भी संभव है कि इन निर्मितियों में कुछ शब्द अपेक्षा के विपरीत इतने कठिन हो जाएँ कि इनका प्रयोग आम शिक्षित-जनों के लेल दुरूह साबित हों । इस निर्माण प्रक्रिया में भाषाजनित पूर्वाग्रह से दूर होकर अंग्रेजी अथवा अन्य विदेशी भाषा के स्थान पर अन्यान्य भारतीय भाषाओं से भी शब्द उधार लेने में हिचकिचाहट की गुंजाइश न हो तो अच्छा है।

आज का युग कम्प्यूटर का युग है । कम्यूर की प्रोग्रामिंग बाइनरी सिस्टम से होता है । अर्थात् इसमें अक्षर के स्थान पर 1, 0 (एक आ शून्य) प्रयुक्त होता है। इसलिए ऐसे प्रोग्रामों को विकसित करने की आवश्यकता भी है जो कम्प्यूटर में प्रयुक्त शब्दों को मातृभाषा में बदलकर उन्हें ज्यादा बोधगम्य बना सके। खुशी की बात है कि फ्यूल (फ्रीक्वेंटनली यूज्ड एंट्रीज फार लोकलाइजेशन) प्रोजेक्ट के तहत कम्प्यूटर मे बाए बार प्रयुक्त होनेवाले शब्दों के लिए मैथिली के सरल शब्द गढने के प्रयास किये जा रहे हैं और प्रायः ऐसे 578 शब्दों को चिन्हित कर नये मैथिली शब्द को गढने की दिशा में मंथन भी जारी है । निश्चितरूप से ऐसे अन्य प्रोजेक्टों की आवश्यकता भी मैथिली को है । इसके अतिरिक्त मैथिली भाषा की साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था, शिक्षा-विद्, शोधार्थी, विषय-विशेषज्ञ लोगों को भी इस दिशा में सामूहिक प्रयासों के द्वारा आयोग की इस योजना को सफल बनाने में योगदान देना चाहिए।

अंत मे निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मैथिली भाषा अपनी देहयष्टि से हृष्ट-पुष्ट एवं काफी समृद्ध है । परंतु समय के साथ कदमताल करते हुए यह निरंतर प्रगति करती रहे इसके लिए आवश्यक है कि इसकी शाब्दिक पौष्टिकता को अक्षुण्ण रखने का निरंतर प्रयत्न होता रहे ;गरिष्ठ शब्दाहार को अच्छी तरह पकाकर देशी-विदेशी सभी प्रकार के शब्द वयञ्जन इसे परोसे जाएँ। मैथिली की आँत पर्याप्त मजबूत है । आवश्यकता है तो बस शब्दाहारों के शोधन एवम परिमार्जन की। मैथिली का स्वास्थ्य बढाकर मिथिला की संप्रेषण-शक्ति को और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। इसकी संप्रेषण-शक्ति के विस्तार से मैथिली भाषा चमत्कारिक रूप से शिक्षा का बेहतर माध्यम बन सकती है। इसकी पर्याप्त योग्यता इसके पास है। नित नये खुराकों को पचाकर यह और अधिक जीवंत, दीर्घायु व गतिशील हो सकेगी ऐसा मेरा निजी विश्वास है। मैथिली भाषा में तकनीकी शब्दों के निर्माण व प्रयोग से इन सपनों को साकार करना संभव है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भारत का संविधान- सुभाष कश्यप
2. प्रशासनिक शब्दावली- वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली
3. फोरमेशन ऑफ मैथिली लैग्वेज- डॉ० सुभद्र झा
4. ए हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिट्रेचर- डॉ० जयकान्त मिश्र
5. मैथिली साहित्य का इतिहास- डॉ० दुर्गानाथ झा 'श्रीर्ष'
6. उच्चत्तर मैथिली व्याकरण- पं० गोविन्द झा
7. मैथिली का उद्‌गम और विकास- पं० गोविन्द झा
8. द लैंग्वेज- ब्लूमफिल्ड
9. भारत का भाषा सर्वेक्षण- मैथिली अकादमी, पटना
10. मैथिली पत्र पत्रिका का विकास- चन्द्रनाथ मिश्र 'अमर'

***

© भारत सरकार
प्रकाशन नियंत्रक

अंक 63 पी.सी.एस.टी.टी. 2 (जुलाई-सितंबर) वर्ष 2019 (7-9)

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली - 110066.

Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Education (Department of Higher Education)
West Block-7, R.K. Puram, New Delhi - 110066.
☎ 011-26105211 • Website: www.cstt.mhrd.gov.in
www.csttpublication.mhrd.gov.in
Mobile App: "CSTT Publication"

मुद्रण निदेशालय द्वारा, भारत सरकार मुद्रणालय में मुद्रित एवं
प्रकाशन नियंत्रक, सिविललाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित, 2019